THE BOOK WAS DRENCHED

आधुनिक भारतीय शासन

सन् १९४७ ई० के भारतीय स्वतन्त्रता ऐक्ट के अनुसार संशोधित तथा परिवर्धित

लेखक

गोरखनाथ चौबे एम्० ए०

भूतपूर्व रजिस्ट्रार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

—:०:—

भूमिका लेखक

स्वर्गीय डाक्टर बेनीप्रसाद

एम्० ए०, डी० एस-सी० (लंदन)

प्रकाशक

रामनारायण लाल

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद

पाँचवाँ संस्करण] १९४९ [मूल्य ५)

मुद्रक
जाब प्रिन्टर्स, प्रयाग
६४६

प्राक्कथन

आधुनिक भारतीय शासन का पाँचवाँ संस्करण पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया जा रहा है। पाठकगण कह सकते हैं कि जब देश का शासन बदल रहा है और इसकी रूप-रेखा समाप्तप्राय है तो पिछले शासन-विधान की क्या आवश्यकता है। परन्तु पिछला शासन-विधान तब तक कार्यान्वित होता रहेगा जब तक नया विधान कार्य रूप में परिणत न कर दिया जाय। इस कार्य में कम से कम एक वर्ष का समय अवश्य लगेगा। इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए वर्तमान राष्ट्रीय सरकार ने १९३५ ई० के संघ-शासन-विधान में कुछ परिवर्तन के पश्चात् १९४७ ई० से ही इसे चलाने की अनुमति दी है। पुस्तक का नवीन संस्करण १९४७ ई० के संशोधित ऐक्ट के आधार पर तैयार किया गया है।

विधान सभा द्वारा जो विधान तैयार किया गया है, उसकी रूप-रेखा वर्तमान विधान से बहुत कुछ भिन्न है। फिर भी शासन-व्यवस्था सम्बन्धी अनेक बातों का आधार पूर्ववत् रखा गया है। ऐसी दशा में कोई भी राजनीति का विद्यार्थी वर्तमान शासन-विधान की उपयोगिता को कम नहीं कर सकता। वर्तमान स्थिति में जब कि भारतीय शासन-विधान सम्बन्धी अनेक बातें सन्दिग्ध हैं, शासन-विधान लिखना एक कठिन कार्य है। भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों का मिश्रण इतना अधिक है कि अनेक स्थलों पर कुछ बातें स्पष्ट नहीं होतीं। यथाशक्ति इन कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न किया गया है।

पाठक गण यह भली भाँति समझ सकते हैं कि हमारा देश इस समय किस प्रकार से शासित हो रहा है। स्थान-स्थान पर भविष्य की योजनाओं पर भी प्रकाश डाला गया है। गवर्नर जनरल तथा गवर्नर के अधिकार, धारा सभाओं का संगठन, स्वायत्त शासन आदि विषयों पर विचार प्रकट करते समय अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। इसका कारण यह है कि इनका वाह्य रूप पूर्ववत् होते हुये भी

इनकी कार्य-शैली बदल दी गई है। इन स्थलों का अध्ययन करते समय पाठकगण विशेष रूप से सतर्क रहें। भारतीय रियासतों का स्वरूप भी वह नहीं है जो पहले रहा है। यदि प्रस्तुत पुस्तक पाठकों की इन शंकाओं को दूर कर भारतीय शासन-विधान को समझने में सहायक सिद्ध हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

राम भवन, प्रयाग
२२-६-४६

गोरखनाथ चौबे

भूमिका

आजकल के हिन्दोस्तान का शासन सम्बन्धी विकास इंगलैंड, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, फ्रांस और दूसरे देशों के राजनीतिक संगठन से बहुत कुछ भिन्न है। राजनीतिक गहराई की दृष्टि—जो पश्चिमी देशों के सार्वजनिक जीवन की विशेषता थी, हममें न थी। हमारी 'पब्लिक लाइफ' (सार्वजनिक जीवन या खिदमते खल्क) पर जल्दी और बार-बार होने वाली तब्दीलियों का वैसा असर कभी नहीं पड़ा जैसा और देशों के लोगों पर। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि यहाँ की राजनीतिक तरक्की का ढंग नीरस या निस्सार रहा है। इसमें पूर्वी लोगों और पश्चिमी राष्ट्र के मिलन का अनुभव है। उनके आपस में मिलने-जुलने की तसवीर आइने की तरह साफ-साफ दिखाई देती है। १८६१ के बाद हिन्दोस्तान की शासन-पद्धति का विकास साम्प्रदायिक ढंग पर हुआ है। हिन्दोस्तानी समाज के बहुत से हिस्सों के अलग-अलग बढ़ने की लगातार कहानी इसके अन्दर पाई जाती है।

जिसे हिन्दोस्तानी राजनीति की थोड़ी भी जानकारी हासिल करनी है और जिसके अन्दर राजनीतिक कामों में हाथ बँटाने की इच्छा है उसके लिये हिन्दोस्तान की शासन-पद्धति का पढ़ना बहुत ही जरूरी है। इस मुल्क में अब ३ करोड़ से ज्यादे लोगों को वोट देने का इख्तयार हासिल हो चुका है और राजनीतिक उन्नति इतनी हो चुकी है कि राजनीतिक संस्थाओं की जानकारी और भी जरूरी हो जाती है। पं० गोरखनाथ चौबे एम० ए० ने इन दोनों जरूरतों को पूरा करने की कोशिश की है। हमें विश्वास है कि हिन्दी जबान वालों की राजनीतिक जानकारी के लिये यह किताब सब तरह से मदद देगी। इसमें लेखक ने

हिन्दोस्तानी इतिहास और राजनीति दोनों का इतनी खूबी के साथ बयान किया है कि शासन-पद्धति ऐसा कठिन मजमून हर पहलू से सहल और साफ हो गया है। राजनीतिक संस्थाओं की बारीकियों और उनकी कमजोरियों का इतना अच्छा वर्णन किया गया है कि पढ़ने वाले लेखक की मिहनत की तारीफ किये बगैर नहीं रह सकते। हम गवर्नमेंट, हिन्दोस्तान की सरकार और सूबों की सरकारों के काम करने के तरीके और इनके आपस के सम्बन्ध के बयान करने में लेखक को जो कामयाबी हासिल हुई है वह उसके बखूबी पढ़ने और समझने का नतीजा है। १९३५ के संघ-शासन (फेडरेशन) विधान की जाँच-पड़ताल में किसी भी तरह की तरफदारी और खींचतानी नहीं की गई है।

लोगों का ख्याल है कि आजकल की अन्तर्राष्ट्रीय उलझनों की वजह से मौजूदा शासन-विधान को कोई अहमियत नहीं है। केन्द्र और सात सूबों में शासन-विधान के स्थगित हो जाने से उनका ऐसा सोचना बहुत कुछ ठीक हो सकता है, लेकिन आये दिन हमें इस पर विचार तो करना ही होगा। हुकूमत के मामले में कितनी ही तब्दीलियाँ क्यों न हो जायँ, उसकी तवारीखी जानकारी के लिये तमाम पिछले तरीकों का जानना निहायत जरूरी है। ऐसी हालत में मौजूदा संघ-शासन की गहरी जानकारी हर हिन्दोस्तानी के लिये उसके राजनीतिक जीवन के वास्ते बहुत ही जरूरी है। आगे चलकर हुकूमत के जो तरीके काम में लाये जायेंगे उनकी बुनियाद बहुत कुछ इसी पर रक्खी जायगी। विद्यार्थियों और दूसरे लोगों के लिये इसीलिये यह जरूरी है कि वे इसकी जानकारी पूरी तरह हासिल करें, ताकि मौका आने पर वे मुल्क की तरक्की में कन्धा टेक सकें।

स्थानीय शासन (Local self-government) और गाँव की पंचायतों के महत्व को लेखक ने पूरी तरह समझा है। पंचायत पर एक अलग बयान लिखकर इसके फायदे पर अच्छी रोशनी डाली गई है। हिन्दोस्तानी हुकूमत के सभी पहलुओं पर नजर डालते हुये ऐसा कोई सवाल नहीं उठता जिसका जवाब किताब अन्दर मौजूद न हो। अगर कुछ पेचीदे सवाल पूरी तौर से बयान नहीं किये गये हैं तो इसकी वजह सिर्फ यही है कि हुकूमत का मजमून अपने दायरे से बाहर न जाने पाये। कोई भी लेखक बड़ी-से-बड़ी किताब के अन्दर

तमाम पेचीदगियों को हल नहीं कर सकता। कचहरियाँ, स्वास्थ्य और सफाई, सरकारी आमदनी और खर्च तथा नौकरियाँ इनका अलग-अलग बयान किया गया है। देशी रियासतों की मौजूदा राजनीतिक हालत, हिन्दोस्तानी सरकार से उनका सम्बन्ध और उनकी आगे आने वाली हालत पर भी रोशनी डाली गई है। मतलब यह है कि हिन्दोस्तान को राजनीतिक संस्थाओं की जानकारी के लिये वे तमाम बातें इसमें मौजूद हैं जो हर एक हिन्दोस्तानी के लिये जरूरी हैं। यह सौभाग्य को बात है कि अब हिन्दी में भी इस तरह को गम्भीर राजनीतिक किताबें लिखी जाने लगी हैं। इसकी जबान बहुत ही साफ और सहल है। इसलिये पढ़ने वालों को किसी कठिनाई का सामना न करना पड़ेगा।

राजनीति विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी
१ मई, १९४१ ई०



बेनीप्रसाद

विषय सूची

अध्याय १

शासन का विकास

अध्याय २

शासन के गुण-दोष

अध्याय ३

गवर्नर-जनरल

अध्याय ४

केन्द्रीय कार्यकारिणी

अध्याय ५

केन्द्रीय धारा-सभा

अध्याय ६

केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार का सम्बन्ध

अध्याय ७

गवर्नर

अध्याय ८

प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल

अध्याय ९

प्रान्तीय धारा-सभा

अध्याय १०

प्रान्तीय स्वराज

अध्याय ११

प्रान्तीय विभाग

अध्याय १२

स्थानीय स्वराज

अध्याय १३

स्थानीय संस्थायें

अध्याय १४
ग्राम पंचायत

अध्याय १५
भारतीय रियासतें

अध्याय १६
स्वास्थ्य और सफाई

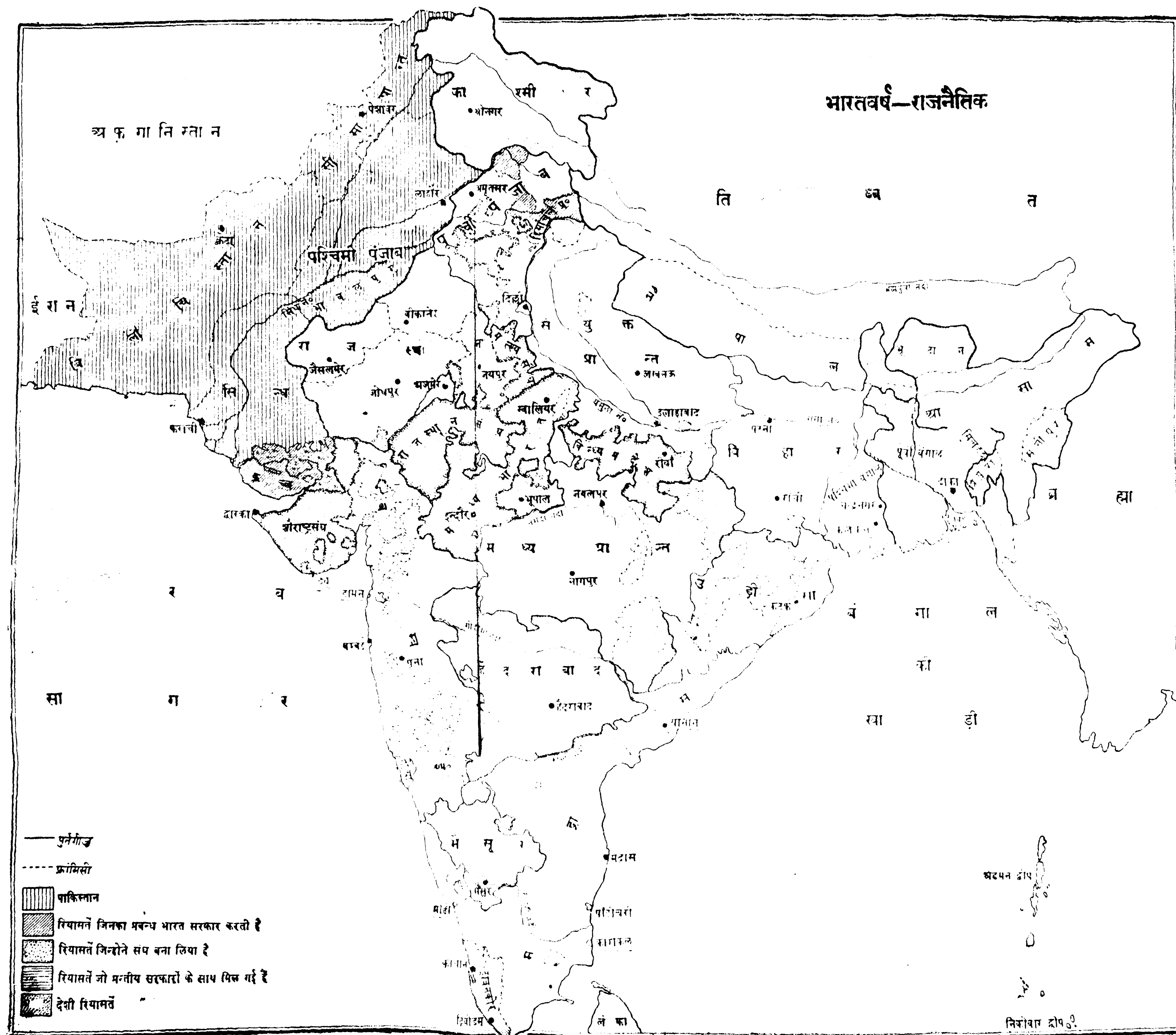
अध्याय १७
न्यायालय

अध्याय १८
सरकारी नौकरियाँ

अध्याय १९
शिक्षा

अध्याय २०
सरकारी आय-व्यय

अध्याय २१
पुलीस और जेल



भारतवर्ष—राजनैतिक
अ फ़ गा नि स्ता न
का श्मी र
श्रीनगर
ति ब्ब त
ई रा न
पेशावर
लाहौर
अमृतसर
पश्चिमी पंजाब
दिल्ली
बीकानेर
जैसलमेर
जोधपुर
अजमेर
जयपुर
ग्वालियर
लखनऊ
इलाहाबाद
रीवाँ
भूपाल
जबलपुर
इन्दौर
कराची
द्वारका
सौराष्ट्रसंघ
म ध्य प्रा न्त
नागपुर
बम्बई
पूना
है द रा बा द
हैदराबाद
मद्रास
पांडिचेरी
कारीकल
लं का
ढाका
बं गा ल
की
खा ड़ी
र ब
सा ग र
अंडमन द्वीप
निकोबार द्वीप
पुर्तगीज़
फ्रांसिसी
पाकिस्तान
रियासतें जिनका प्रबन्ध भारत सरकार करती है
रियासतें जिन्होने संघ बना लिया है
रियासतें जो प्रान्तीय सरकारों के साथ मिल गई हैं
देशी रियासतें

आधुनिक भारतीय शासन

अध्याय १

शासन का विकास

कांग्रेस के अथक परिश्रम के बावजूद सम्पूर्ण भारतवर्ष दो हिस्सों में विभाजित कर दिया गया। मुसलिम लीग अपने दो राष्ट्रों वाले सिद्धान्त (Two Nations Theory) में सफल रही। महात्मा गाँधी ने अंत समय तक विभाजन का विरोध किया था और विभाजन के पश्चात् भी उन्हें यह पूरी आशा थी कि किसी न किसी दिन दोनों की राष्ट्रीयता और सरकार एक होकर रहेगी। विभाजन के फलस्वरूप देश को किन महान विपत्तियों का सामना करना पड़ा है—यह बात किसी से छिपी नहीं है। आज लाखों स्त्री पुरुष असहाय और अनाथ मारे मारे भटक रहे हैं। इस विभाजन का परिणाम क्या होगा—इसका निर्णय भविष्य पर निर्भर है।* देश के बटवारे से जनता को कोई लाभ नहीं है। दोनों भागों की स्थिति का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। पाकिस्तान के दो हिस्से हैं—पूर्वी पाकिस्तान और पच्छिमी पाकिस्तान। पूर्वी पाकिस्तान में पूर्वी बंगाल तथा आसाम का सिलहट ज़िला है। इसका क्षेत्रफल ५४००० वर्गमील और

भारतवर्ष और पाकिस्तान

*I find no parallel in history for a body of converts and their descendants claiming to be a nation apart from the parent stock. If India was one nation before the advent of Islams it must remain one in spite of the change of faith of a very large body of her children. You do not claim to be a separate nation by right of conquest but by reason of acceptance of Islam. Will the two nations become one if the whole oftIndia accepted Islam ? (A letter of Mahatma Gandhi to Mr. Jinnah)

जनसंख्या ४ करोड़ १८ लाख है। पच्छिमी पाकिस्तान में पच्छिमी पंजाब, सीमा प्रान्त, बलूचिस्तान तथा सिन्ध है। इसका क्षेत्रफल १७६००० वर्ग-मील और जन-संख्या २ करोड़ ३८ लाख है। पाकिस्तान का कुल क्षेत्र-फल २३३००० वर्गमील और जन-संख्या ६ करोड़ ५६ लाख है। भारतीय संघ का क्षेत्रफल १३६७००० वर्गमील और जन-संख्या ३२ करोड़ ४० लाख है। पूर्वी और पच्छिमी पाकिस्तान में १००० मील का अन्तर है। सम्पूर्ण भारत की १४·७ प्रतिशत भूमि पाकिस्तान में और ८५·३ प्रतिशत् भारतीय संघ में है। अर्थात् क्षेत्रफल में पाकिस्तान भार-तीय संघ का सातवाँ भाग और जन-संख्या में पाँचवा भाग है।

पाकिस्तान निर्धन देश है। इसमें लोहा कहीं नहीं निकलता। कोयला भी नाममात्र है। उद्योग-धंधों में दिवालिया है। खेती की स्थिति अच्छी है। समूचे भारत में जोती जाने वाली कुल भूमि २० करोड़ ६० एकड़ है, इसमें १ करोड़ १८ लाख पाकिस्तान में है। कुल हिन्दु-स्तान का ७२ फीसदी जूट पाकिस्तान में होता है, परन्तु वहाँ एक भी जूट मिल नहीं है। पाकिस्तान में कुल ६७४८ मील रेलवे लाइन है और कराची तथा चिटागाँव केवल दो बन्दरगाह हैं। गेहूँ उत्पन्न होने वाली लगभग २५ प्रतिशत् भूमि पाकिस्तान में है।

भौगोलिक स्थिति

१५ अगस्त १६४७ ई० तक भारतवर्ष का क्षेत्रफल १८०८६७६ वर्ग-मील रहा है जिसमें बृटिश भारत का क्षेत्रफल १०६६१७१ वर्गमील और भारतीय रियासतों का ७१२५०८ वर्ग मील था। बृटिश भारत में २६५८ २७००० व्यक्ति तथा भारतीय रियासतों में ६२६७ ३००० व्यक्ति रहते रहे हैं। उत्तर से दक्खिन तक इस देश की लंबाई २००० मील और चौड़ाई २५०० मील रही है। भारतवर्ष स्वयं एक संसार है। सारे संसार का भ्रमण करने पर भी इस देश में कुछ नवीनता दिखलाई पड़ेगी। समूचे देश की जनसंख्या लगभग ४० करोड़ के रही है। गत दस वर्षों में यहाँ की आबादी १५ फ़ी सदी बढ़ी है। चीन के सिवाय यह देश संसार में सबसे बड़ा रहा है। रूस को छोड़कर यह सारे योरुप के बराबर था। बृटेन के बराबर बराबर इसके १५ टुकड़े किये जा सकते थे। समुद्र के किनारों की लम्बाई ५००० मील के लगभग है। इतना लंबा किनारा बहुत कम देशों को नसीब होगा। इन्हीं किनारों पर कराँची, बम्बई, मद्रास और कलकत्ता ऐसे बन्दरगाह हैं। १५ अगस्त १६४७ ई० को यह देश दो भागों में बाँट दिया गया। एक हिस्से का

नाम भारतीय संघ (Indian Union) और दूसरे का पाकिस्तान है। परिणाम स्वरूप इसका क्षेत्रफल, जन संख्या तथा अनेकों बातों में विभाजन किया गया।

संसार की सबसे पवित्र नदी गंगा इसी देश में बहती है। इसको प्रशंसा वेदों के अतिरिक्त यूनान के सबसे बड़े दार्शनिक सुकरात ने भी की है। जिस बौद्ध धर्म को आज भी संसार का आठवाँ भाग मान रहा है, उसका जन्मदाता भगवान बुद्ध इसी देश में पैदा हुए थे। कृष्ण ऐसे महापुरुष ने, जिनका दर्शन-शास्त्र संसार की सभी भाषाओं में अनुवादित हो चुका है, इसी देश में जन्म लिया था। संसार का सबसे महान् व्यक्ति महात्मा गाँधी यहीं निवास करते थे। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि इस देश में कोई ऐसी विशेषता है जो महान् व्यक्तियों को उत्पन्न करती रहती है। समय के प्रवाह में यह देश आज पिछड़ा हुआ दिखाई पड़ता है, परन्तु इसका पिछला इतिहास सोने के अक्षरों में अभी तक हमारे सामने मौजूद है। विदेशियों ने भी मुक्त कंठ से इसकी प्रशंसा की है। फ्रांसीसी यात्री बरनियर लिखता है, 'यह हिन्दोस्तान एक ऐसा अथाह गड्ढा है जिसमें संसार का अधिकांश सोना और चाँदी चारों ओर से अनेक रास्तों से आ आकर जमा होता है, और जिससे बाहर निकलने का उसे एक भी रास्ता नहीं मिलता।' सम्भव है हमें फिर वे दिन देखने को मिलें।

भौगोलिक दृष्टि से हिन्दोस्तान की स्थिति संसार के सभी देशों से अच्छी है। जापान की तरह यहाँ बार बार भूचाल और ज्वार भाटे नहीं आते। अफ्रीका की तरह यहाँ कोई रेगिस्तान नहीं है। इस देश की प्राकृतिक बनावट उस क़िले की तरह है, जिस पर दुश्मन का एक भी हमला काम नहीं कर सकता। उत्तर में २९००२ फ़ीट ऊँचा हिमालय पर्वत है। इतना ऊँचा पहाड़ संसार के किसी भी देश में नहीं पाया जाता। बाकी तीन तरफ अथाह समुद्र है। इन्हीं से सारे देश को पानी मिलता है। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से यह देश उस स्थान पर बसा हुआ है जहाँ से संसार के सभी रास्ते गुजरते हैं। यही कारण है कि एक समय यह देश संसार भर से व्यापार करता था। यहाँ की बनी हुई चीजें दुनियाँ के बाजारों में चौगुनी कीमत पर बिकती थीं।* सड़कों का समूचे देश में एक जाल सा फैला हुआ है। नदियों के कारण व्यापार में और भी सुविधा होती है। कच्चे माल की जो सुविधा इस

* Ruins of the Indian Trade and Industries—B. D. Basu.

देश में पायी जाती है वह किसी और देश में नहीं मिलती। यदि यहाँ का कच्चा माल बाहर जाने से रोक दिया जाय तो योरुप के कितने ही देश ग़रीबी से तबाह हो जायँगे। यह देश संसार भर को जूट प्रदान करता है। दुनियाँ में जितनी चाय की खपत है उसका ६० फ़ीसदी यहीं पैदा होता है। ६० फ़ीसदी लाह संसार को यही देता है। इस देश को कच्चे माल का एक बहुत बड़ा कारखाना कहा जाय तो अनुचित न होगा।

सारा देश सूबों और रियासतों में बँटा हुआ है। प्रत्येक हिस्सा अपनी अपनी विशेषतायें रखता है। जिस प्रकार योरुप का एक निवासी अपने ही महाद्वीप में दूसरे देशवासियों की बोली नहीं समझता, उसी तरह हिन्दोस्तान के एक हिस्से का रहने वाला दूसरे प्रांत को बोली नहीं जानता। समूचे देश में २२५ भाषाएँ बोली जाती हैं। इस देश की बदनसीबी यह है कि सब से उपजाऊ होते हुए भी सब से ग़रीब है। अमेरिका, रूस और हिन्दोस्तान—ये तीन संसार के सबसे धनी देशों में गिने जा सकते हैं। हिन्दी इस देश की मातृभाषा है। चीनी भाषा को छोड़कर इसके बोलने वाले संसार में सब से अधिक हैं। सारे भारतवर्ष में २५०० संस्थायें हिन्दी प्रचार का कार्य कर रही हैं। लगभग २३ करोड़ आदमी हिन्दी बोलते हैं। इस देश की जलवायु न अधिक ठंढी है और न गर्म। मध्यम दर्जे की गर्मी और सर्दी दोनों ही पड़ती है। साल में चार चार महीने के तीन मौसम होते हैं। ये क्रमशः एक दूसरे के बाद आते रहते हैं। मौसमों का इतना सुन्दर क्रम किसी और देश में नहीं पाया जाता।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि इस देश की भौगोलिक परिस्थिति सर्वथा अनूकूल है। उन्नति के सभी साधन प्रकृति ने इसे दे रक्खा है। नदी, पहाड़, झील, समुद्र और जंगल, इनसे न केवल यहीं के निवासी, बल्कि संसार के बहुत से लोग लाभ उठाते हैं। इस देश की अच्छी से अच्छी लकड़ी अब तक विदेशों में भेज दी जाती थी। शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से इस देश की जलवायु व्यक्ति के लिए सर्वथा अनुकूल है। यहाँ का वातावरण धार्मिक विचारों से ओत-प्रोत है। यहाँ के निवासियों का जीवन सरल और उनके विचार उच्च होते हैं। अधिकतर व्यक्ति गाँवों में निवास करते हैं। इन्हीं के अनुकूल इस देश का सामाजिक संगठन भी बनाया गया था, जो किसी न किसी रूप में आज भी दिखाई पड़ता है। ग्राम-पंचायतें इस देश की सबसे पुरानी संस्थायें

है। अँगरेजी राज के पहले केन्द्रीय शासन कभी भी स्थानीय संगठनों में बाधा नहीं डालता था। पंचायतें स्वतंत्र रूप से राज्य करती थीं। सभी क्षेत्रों में स्वतन्त्रता की भावना दिखाई पड़ती थी। भौगोलिक स्थिति ने यहाँ के राष्ट्रीय जीवन को एक विशेष ढाँचे में ढाल दिया था।

अँगरेज़ों का आगमन

सर टामस रो १६१५ ई० में जहाँगीर के दरबार में आया। तब से बराबर अँगरेज़ों के आने का एक ताँता आरम्भ हुआ। १६०० ई० में एलिज़ाबेथ के समय में ईस्ट इंडिया-कम्पनी की स्थापना हुई। इस कम्पनी का उद्देश्य हिन्दोस्तान से व्यापार करना था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए तिजारती अँगरेज इस देश में लगातार आते रहे। उस समय इस देश की राजनीतिक परिस्थिति काफी अच्छी थी। औरंगजेब की मृत्यु तक, अर्थात् सन् १७०७ ई० तक यहाँ का शासन-प्रबन्ध बहुत ही सुदृढ़ और सर्वप्रिय था। किसी विदेशी के दिल में यह खयाल तक नहीं आ सकता था कि मुगल राज्य का सितारा किसी दिन अस्त हो जायगा। पुर्तगीज़, फ्रान्सीसी, डच और अँगरेज़ सभी अपनी अपनी तिजारत में लगे हुए थे। व्यापार में एक दूसरे को दबा देने के लिए इनमें आपस में छोटी-मोटी लड़ाइयाँ भी होती रहीं। लेकिन ये लड़ाइयाँ औरंगजेब की मृत्यु के बाद आरम्भ हुईं। मुगलों में कोई ऐसा शासक नहीं हुआ जो इतने बड़े राज्य को चलाता। केन्द्रीय शासन कमजोर होने लगा। प्रान्तों के सूबेदार और नव्वाब मनमानी करने लगे।

इस बिगड़ती हुई राजनीतिक परिस्थिति से विदेशियों ने पूरा पूरा लाभ उठाया। इनके आपसी झगड़े दक्खिनी हिन्दोस्तान के कोने कोने में फैल गये। हिन्दोस्तानियों ने भी इनमें हिस्सा लिया। अन्त में अँगरेज़ों की विजय हुई। १७५७ ई० में प्लासी की लड़ाई ने इस बात का फैसला कर दिया कि अंगरेज़ भारतीय व्यापार में सर्वेसर्वा हैं। १७६५ ई० में अँगरेज़ों को बंगाल की दीवानी मिली। उन्हें यह अधिकार मिला कि वे बंगाल प्रान्त की मालगुज़ारी वसूल कर सरकारी खज़ाने में भेज दें। इसके बदले में उन्हें कुछ हिस्सा दे दिया जाता था। अभी तक अँगरेज़ केवल व्यापारी समझे जाते थे, लेकिन १७६५ के बाद वे धीरे धीरे राजनीतिक मामलों में हाथ डालने लगे। ज्यों ज्यों इस देश का शासन-प्रबन्ध कमज़ोर होता गया, अँगरेज़ों को राजनीतिक मामलों में हाथ बटाने का मौक़ा मिलता गया। परिणाम यह हुआ कि १८५७ ई० तक

ईस्ट-इंडिया कम्पनी हिन्दोस्तान के एक बहुत बड़े हिस्से का मालिक बन गई। भारतवासियों ने होश सँभाला और १८५७ ई० में अपनी खोई हुई आज़ादी को हासिल करने का एलान किया। इस युद्ध को अंग्रेज़ ग़दर के नाम से पुकारते हैं। वास्तव में यह स्वतंत्रता का प्रथम युद्ध था। भारत-वासी इसमें असफल रहे। १८५८ ई० में ईस्ट-इंडिया कम्पनी तोड़ दी गई। इंगलैंड की पार्लियामेंट ने भारतीय शासन का भार अपने हाथों में ले लिया। तब से यही पार्लियामेंट इस देश का शासन करती रही है। १५ अगस्त १९४७ को बृटिश पार्लियामेंट ने भारतीय संघ और पाकि-स्तान दोनों को पूर्ण स्वतन्त्रता देकर अपने ९० वर्ष के शासनाधिकार को समाप्त कर दिया।

ऐतिहासिक विभाग

अमेरिका की शासन-पद्धति की तरह भारतवर्ष का शासन-विधान एक या दो दिन में नहीं बनाया गया है। कहा जाता है कि अमेरिका की शासन-पद्धति को २० मिनट में कोई भी पढ़ सकता है। १७८३ ई० में वहाँ की शासन-पद्धति का निर्माण किया गया था। भारतवर्ष की शासन-पद्धति इतनी सूक्ष्म नहीं है। इसे समझने के लिए काफी समय और सामग्री की आवश्यकता है। इसका विकास क्रमशः हुआ है। हिन्दू और मुसलमानी ज़माने में जो शासन-पद्धति यहाँ थी उसका वर्णन करना हमारी इस पुस्तक के बाहर की चीज़ है। हमें केवल यही देखना है वर्तमान स्वतन्त्र भारत की शासन-पद्धति का विकास कैसे हुआ है। किस समय यह शासन-पद्धति बनी, कब कब इसमें परिवर्तन किए गए और वर्तमान शासन-पद्धति किन सीढ़ियों से होकर आज स्थापित की गई है। साथ ही हम यह भी देखेंगे कि नये शासन-विधान का स्वरूप कैसा है और इसमें कौन कौन सी त्रुटियाँ हैं।

भारतीय शासन-पद्धति के विकास का वर्णन करते हुए १९०९ ई० में ३ दिसम्बर को ब्रिटिश सम्राट् की ओर से एक विवरण प्रकाशित किया गया था, जिसका आशय निम्नलिखित है :—

"१७७३ और १७८४ ई० में जो क़ानून पास किए गये थे, उनका आशय हिन्दोस्तान में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की मातहती में एक सुव्य-वस्थित शासन-पद्धति की स्थापना करना था। १८३३ ई० के कानून ने भारतवासियों के लिए नौकरी आदि का दरवाज़ा खोल दिया। १८५८ के क़ानून ने भारतवर्ष का शासन-प्रबन्ध कम्पनी के हाथ से सम्राट् के हाथ में दे दिया। उसी समय जनता को बहुत से अधिकार, जो अभी

तक मौजूद हैं, दिए गये थे। १८६१ ई० के क़ानून ने प्रतिनिधित्व शासन को नीव डाली। १६०६ ई० के क़ानून के अनुसार भारतीयों के अधिकार को और भी वृद्धि हुई।" १६१६ के क़ानून ने भारतीय प्रतिनिधियों को शासन में बहुत बड़ा हिस्सा देकर यह स्पष्ट कर दिया कि किस प्रकार वे प्रान्तीय स्वराज से बढ़ते बढ़ते पूर्ण स्वराज प्राप्त कर सकते हैं। १६३५ ई० के शासन-विधान ने भारतवासियों को प्रान्तीय स्वतन्त्रता की पूरी बागडोर सौंप दिया। १६४७ ई० की स्वतन्त्रता की घोषणा के अनुसार वर्तमान शासन-पद्धति स्वतन्त्र भारतीय संघ की पहली नवीन पद्धति है जो अभी तक पूर्ण रूप से निर्मित नहीं है।

अध्ययन की सुविधा के लिए भारतीय शासन के विकास को हम चार भागों में बाँट सकते हैं। पहले काल में कम्पनी केवल व्यापारिक संस्था थी। धीरे धीरे वह एक बहुत बड़े राज्य का मालिक बन बैठी। दूसरे काल में पार्लियामेंट ने शासन-प्रबन्ध का भार अपने हाथ में ले लिया और एक दृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना की। तीसरे काल में भारतवासियों को शासन-प्रबन्ध में थोड़ा बहुत अधिकार दिया गया जो प्रान्तीय स्वराज के नाम से सूचित किया जाता है। चौथा काल १५ अगस्त १६४७ ई० से आरम्भ होता है जो भारतीय स्वतन्त्रता का जन्म दिन है।

प्रथम काल (१७५७—१८५८)

ऊपर कहा गया है कि ईस्ट-इंडिया-कम्पनी की स्थापना १६०० ई० में हुई थी। इसका उद्देश्य भारतवर्ष से केवल व्यापार करना था। कुछ लोगों की यह धारणा है कि आरम्भ में ही अँगरेजों का उद्देश्य एक राज्य की स्थापना करना था, लेकिन यह बात सरासर गलत है। इंगलैंड और हिन्दुस्तान के इतिहास को देखते हुए, इस कथन को कोई भी स्वीकार नहीं कर सकता। दक्षिणी हिन्दुस्तान में कम्पनी ने अपना व्यापार आरम्भ किया। मुगल-साम्राज्य धीरे-धीरे कमज़ोर हो रहा था। प्रान्तों के हाकिम मनमानी करने लगे थे। कम्पनी ने शासन की कमज़ोरी से काफी लाभ उठाया। उसके नौकर राजनीतिक मामलों में हाथ डालने लगे। धीरे-धीरे उनकी तिजारत भी बढ़ती गई। इसलिए कम्पनी का दबदबा दक्षिणी हिन्दुस्तान में बढ़ने लगा। उधर १७६५ ई० में बंगाल की दीवानी ले लेने से कम्पनी को काफी मुनाफा होने लगा। उसे अपनी तिजारत में उतना फायदा नहीं था जितना बङ्गाल की लगान-वसूली में। प्रजा से मनमाना धन वसूल करने में कम्पनी ने कोई कसर बाक़ी

न रक्खी। अब उसे इस बात का चस्का लगा कि इसी तरह और भी सूबों में अधिकार प्राप्त किये जायें। नतीजा यह हुआ कि दक्खिनी हिन्दोस्तान में वर्षों तक तिजारत का बहाना लेकर लड़ाइयाँ चलती रहीं।

१७७३ ई० का चार्टर ऐक्ट

राज्य की स्थापना तो कम्पनी ने कर दिया लेकिन उसके पास शासन-प्रबन्ध की सामग्री काफी नहीं थी। बंगाल के गवर्नर ने ११ नवम्बर १७७३ ई० के एक पत्र में यह लिखा कि 'जो कुछ भी जगह कम्पनी के अधिकार में आ गई है उसके प्रबन्ध का कोई माकूल इन्तजाम नहीं है।' उसने यह भी प्रगट किया कि जल्दी से जल्दी एक ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिससे शासन का कार्य चलाया जाय। इंगलैंड की पार्लियामेंट ने १७७३ ई० में रेग्यूलेटिङ्ग ऐक्ट (Regulating Act) पास करके हिन्दोस्तान में एक गवर्नर-जनरल और उसकी कौन्सिल के लिये विधान बनाया। कलकत्ते में फोर्ट विलियम के स्थान पर एक न्यायालय भी इसी ऐक्ट के अनुसार स्थापित किया गया। मद्रास और बम्बई के गवर्नर अपना सब काम गवर्नर-जनरल की सलाह से करने लगे। पार्लियामेंट को इस बात का अधिकार दिया गया कि वह कम्पनी के मामलों में हाथ डाल सके। गवर्नर-जनरल को सलाह देने के लिए ४ सदस्यों की एक सभा बनाई गई। इसका उद्देश्य यह था कि जो कुछ राज्य कम्पनी के हाथ में आ गया है उसे अच्छी तरह चलाया जाय। साथ ही और भी नई नई जगहें शामिल की जायँ।

पिट्स इण्डिया बिल १७८४

१७८४ में पिट इंडिया बिल पास किया गया। अब तक कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर कम्पनी के कामों की देख रेख करते थे, लेकिन इस ऐक्ट के अनुसार एक नये संगठन का जन्म हुआ जिसका नाम बोर्ड आफ कन्ट्रोल रक्खा गया। अब से कम्पनी की कार्रवाइयों की देख-रेख बोर्ड आफ कन्ट्रोल और कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स दोनों करने लगे। यह भी कहा जा सकता है कि एक प्रकार से कम्पनी के लिये दोहरा शासन स्थापित किया गया। यह दोहरा प्रबन्ध १८५८ ई० तक चलता रहा। वैसे तो यह कहा गया कि १७८४ के क़ानून का उद्देश्य हिन्दोस्तान में अच्छे शासन की नीव डालना है, परन्तु इसका उद्देश्य हिन्दोस्तान में अँगरेज़ी राज को और दृढ़ करना था। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स में थोड़े से सदस्यों की एक गुप्त सभा थी। हिन्दोस्तान के गहरे मामलों पर यही सभा विचार करती थी। शासन-प्रबन्ध का भार आने से कम्पनी की जिम्मे-

दारी हिन्दोस्तान में बढ़ती जा रही थी। गुप्त सभा के काम बड़ी ज़िम्मेवारी के थे और वे क्रमशः बढ़ रहे थे। बोर्ड आफ कन्ट्रोल को यह अधिकार दिया गया कि वह हिन्दोस्तान के राजनीतिक मामलों में गहराई के साथ विचार करे और अपनी राय गुप्त सभा को दे। कम्पनी के अधिकारी हिन्दोस्तान में किसी तरह की लड़ाई या सुलह तब तक नहीं कर सकते थे, जब तक वे बोर्ड आफ कन्ट्रोल से इसकी आज्ञा प्राप्त न कर लें। इस सभा में ६ सदस्य थे। सम्राट् ने इन्हें इसीलिये नियुक्त किया था कि वे हिन्दोस्तान के सारे मामलों की जानकारी रक्खें और उन पर अपनी उचित राय दें। यह पहला ऐक्ट था जिसने पार्लियामेंट को हिन्दोस्तान के राजनीतिक मामलों में हाथ डालने का अवसर दिया। यदि बोर्ड आफ कन्ट्रोल और कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स में कोई मतभेद उत्पन्न हो जाता तो सम्राट् इसका फैसला करता था। इस ऐक्ट के अनुसार सम्राट् को यह अधिकार दिया गया कि वह गवर्नर जनरल को जब चाहे हिन्दोस्तान से वापस बुला ले। गवर्नर-जनरल और उसकी सभा को बहुत से अधिकार प्रदान किय गये।

१८१३ का चार्टर ऐक्ट

१७९३ ई० में एक नया क़ानून पास किया गया। ईस्ट-इंडिया-कम्पनी को ही पूर्वीय देशों में व्यापार करने का अधिकार था। इस ऐक्ट में यह अधिकार कम्पनी को २० साल के लिये और दे दिया गया। गवर्नर-जनरल के अधिकारों में और वृद्धि की गई। वह अपनी कौन्सिल के फैसले को रद्द कर सकता था। सूबों के गवर्नर बिना उसकी आज्ञा के कोई लड़ाई या सन्धि नहीं कर सकते थे। १८०० ई० तक गवर्नर-जनरल और उसकी कौन्सिल जो कुछ नियम बनाते थे, अन्य प्रान्तों के गवर्नरों को उनका पालन करना पड़ता था। उन्हें कोई कानून बनाने का अधिकार न था। १८०० ई० में मद्रास प्रान्त के गवर्नर को यह अधिकार दिया गया कि वह शासन को चलाने के लिए एक छोटी सी कौन्सिल द्वारा कानून बना सकता है। इसी तरह का अधिकार बम्बई के गवर्नर को १८०७ में दिया गया। १८१३ ई० में एक दूसरा नियम पार्लियामेंट ने पास किया जिसके अनुसार यह निश्चय किया गया कि भारतवर्ष में कम्पनी जो कुछ राज्य स्थापित कर रही है उसकी राज-सत्ता सम्राट् के हाथ में रहेगी। सारी अँगरेज़-जाति को यह आज्ञा दी गई कि जो चाहे हिन्दोस्तान से व्यापार कर सकता है। लेकिन चाय की तिजारत हिन्दोस्तान में कम्पनी के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता था। कम्पनी

को छोड़कर चीन से तिजारत करने की आज्ञा किसी को न थी। इसी क़ानून के अनुसार पहले पहल हिन्दोस्तान में बड़े पादरी का एक स्थान बनाया गया। पार्लियामेंट ने यह निश्चित किया कि कम्पनी अपनी आमदनी में से एक लाख रुपया प्रतिवर्ष शिक्षा के लिए खर्च करे।

१८३३ का चार्टर ऐक्ट

१८३३ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को फिर बीस वर्ष के लिये अधिकार-पत्र दिये गए। कम्पनी से चीन के साथ व्यापार की बपौती छीन ली गई। अब चीन के साथ व्यापार करने की आज्ञा सभी इंगलैण्ड निवासियों को दे दी गई। टी० बी० मेकाले लिखता है, "कम्पनी से इस बपौती को तोड़कर यह आवश्यक कर दिया गया है कि उसके संगठन में परिवर्तन किया जाय।" इस ऐक्ट में यह भी निश्चित किया गया कि अब से कम्पनी केवल ठेकेदार संस्था की तरह रहेगी। लार्ड मेकाले का कहना है कि, "१७८४ और १८५८ ई० के बीच में जितने भी ऐक्ट पास किए गये उनमें १८३३ ई० का नियम भारतीय सरकार के लिए सब से महत्वपूर्ण है।" इसके अनुसार मुख्य ६ बातें निश्चित की गईं :—

(१) चीन के साथ व्यापार करने का अधिकार सभी अँगरेजों को एक समान दिया जाय।

(२) कम्पनी जितनी भी भूमि हिन्दोस्तान में अपने अधिकार में रक्खेगी उस पर एक मात्र अधिकार बृटेन के सम्राट् तथा उनकी सन्तान का होगा।

(३) बम्बई और मद्रास के गवर्नरों से क़ानून बनाने का अधिकार छीन लिया गया। केवल गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को यह अधिकार दिया गया कि वह सारे हिन्दोस्तान के लिये क़ानून बनाए।

(४) गवर्नर-जनरल की कौंसिल में एक सदस्य और बढ़ा दिया गया। तीन के बदले अब उसमें चार सदस्य हो गये। नये सदस्य का कार्य यह था कि वह गवर्नर-जनरल को क़ानून बनाने में मदद दे। इसका नाम क़ानूनी मेम्बर (Law Member) था। लार्ड मेकाले पहिला क़ानूनी मेम्बर बनाया गया।

(५) भारतीय क़ानूनों में संशोधन करने के लिये लार्ड मेकाले की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया गया।

(६) हिन्दोस्तानियों को यह आश्वासन दिया गया कि ईस्ट-इण्डिया

कम्पनी की नौकरी के लिये रूप, रंग, धर्म, जाति इत्यादि का भेद-भाव नहीं किया जायगा।

इङ्गलैण्ड से कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बीच में कोई भी पत्र-व्यवहार बिना बोर्ड आफ कन्ट्रोल की जानकारी के नहीं हो सकता था। बंगाल का गवर्नर सारे हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल बना दिया गया। एक नई प्रेसीडेन्सी क़ायम करने के लिये, जिसकी राजधानी आगरे में हो, एक योजना बनाई गई। परन्तु दो वर्ष बाद यह विचार स्थगित कर दिया गया। बंगाल के गवर्नर को, जो अब सारे हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल हो गया था, बंगाल के लिए एक सहायक गवर्नर नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। मद्रास और बम्बई के लिए दो पादरी नियुक्त किए गए। क़ानून बनाने का अधिकार केवल गवर्नर-जनरल और उसकी कौन्सिल को देकर कानूनी अधिकार केन्द्रित कर दिया गया। केन्द्रीय शासन की शक्ति धीरे-धीरे बढ़ने लगी।

१८५३ का चार्टर ऐक्ट

१८५३ ई० के ऐक्ट के अनुसार ईस्ट इण्डिया कम्पनी व्यापारी संस्था के बदले राज्य करने वाली शक्ति मान ली गई। इस ऐक्ट के अनुसार कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के १८ सदस्यों में से ६ सदस्यों को नियुक्त करने का अधिकार सम्राट् को दिया गया। गवर्नर-जनरल की कौन्सिल में एक सदस्य और बढ़ा दिया गया। इसके अतिरिक्त क़ानून बनाने के लिए ६ विशेष सदस्यों की नियुक्ति की गई। बङ्गाल में एक लेफ्टीनेन्ट गवर्नर नियुक्त किया गया। इङ्गलैण्ड में भारतीय क़ानूनों पर विचार करने के लिए एक कमीशन बनाया गया। सिविल सर्विस का दरवाजा सबके लिये मुक़ाबले की बुनियाद पर खोल दिया गया।

उपरोक्त ऐक्ट को व्यतीत हुए अभी पूरे पाँच साल भी न हुए थे कि हिन्दोस्तान में एक बड़ी क्रान्ति आरम्भ हुई। यह १८५७ ई० के ग़दर के नाम से प्रसिद्ध है। इसके विषय में ऐतिहासिकों के भिन्न भिन्न मत हैं। कुछ का कहना है कि यह एक सिपाही-विद्रोह था। लेकिन दूसरे लोग यह साबित करते हैं कि यह हिन्दोस्तान की आजादी की पहिली लड़ाई थी, जिसमें हिन्दोस्तानियों ने तलवार और बन्दूक़ की मदद से अपने मुल्क को आज़ाद करने का बीड़ा उठाया था। जो कुछ भी हो हिन्दोस्तानियों को हारना पड़ा। हज़ारों देश-वासिओं और विदेशियों की जानें गईं। ग़दर ने इङ्गलैण्ड की सरकार को चौकन्ना कर दिया। उसे यह विश्वास हो गया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन हिन्दोस्ता-

नियों के लिए उपयुक्त नहीं है। यहीं से भारतीय शासन का दूसरा युग आरम्भ होता है।

द्वितीय काल (१८५८—१९१८)

१८५८ ई० में पार्लियामेन्ट ने एक नया ऐक्ट पास किया। मुग़ल-राज्य का सितारा हमेशा के लिए डूब गया। मुग़ल-सम्राट वहिष्कृत कर दिया गया और उसकी सारी शक्ति बृटेन के सम्राट को दे दी गई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारतीय शासन से अलग कर दी गई। इङ्गलैण्ड की पार्लियामेन्ट ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। उसने यह घोषणा की कि अब से हिन्दोस्तान का राज्य साम्राट के हाथों में सुपुर्द कर दिया जाता है। एक भारत मन्त्री की नियुक्ति की गई। बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल और कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स के सारे अधिकार उसे दे दिए गये। १५ सदस्यों की कौन्सिल आफ़ इण्डिया नामक एक सभा बनाई गई जिसका कार्य भारतीय शासन को चलाना और भारत-मन्त्री को सभी प्रकार से सहायता देना था। पार्लियामेंट हिन्दोस्तान के लिए सर्वेसर्वा बन बैठी। १८५७ ई० में जब महारानी विक्टोरिया हिन्दोस्तान की सम्राज्ञी हुईं तो यह बात और भी स्पष्ट कर दी गई।

१८५८ का चार्टर ऐक्ट

वैसे तो पार्लियामेंट ने भारतीय शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली, परन्तु उसे भारतीय मामलों का अनुभव बिलकुल न था। उसे हिन्दोस्तान के मामलों में कोई खास दिलचस्पी न थी। इङ्गलैण्ड स्वयं अपने घरेलू मामलों में लगा हुआ था। पार्लियामेन्ट के सामने आयर-लैंड और योरप की समस्याएँ पड़ी हुई थीं। ऐसी दशा में यह सम्भव नहीं था कि वह ८००० मील दूर हिन्दोस्तान के शासन में दिलचस्पी लेती।* पार्लियामेन्ट के सदस्य भारतीय रहन-सहन से परिचित न थे। आवागमन की सुविधा भी आजकल जैसी न थी। हिन्दोस्तान में पाश्चात्य रहन-सहन अपना घर बना रही थी। इन्हीं सब बातों का विचार करते हुए पार्लियामेन्ट ने भारत-मन्त्री की नियुक्त की, और उसे यह आज्ञा दी कि वह प्रति वर्ष हिन्दोस्तान के आर्थिक तथा सामाजिक विषयों पर एक रिपोर्ट पार्लियामेन्ट के सामने पेश करे। उसे यह भी आदेश दिया गया कि वह हर साल हिन्दोस्तान की आय-व्यय का पूरा ब्योरा पार्लिया-

*स्वेज़ नहर का रास्ता खुलने के पहले यह दूरी ११००० मील थी।

मेन्ट के सामने रक्खे। भारत-मन्त्री की सहायता के लिए जो १५ सदस्यों की एक कौंसिल बनाई गई उसमें ८ सदस्यों को सम्राट ने और बाक़ी को कम्पनी के डाइरेक्टरों ने नियुक्त किया। यह भी तय किया गया कि यदि कौन्सिल (India Council) में कोई जगह ख़ाली हो तो उसकी भर्ती सम्राट करेगा। कौन्सिल के सदस्य तब तक नहीं हटाये जा सकते थे जब तक पार्लियामेन्ट को दोनों सभाएँ इसके लिए सम्राट् के सामने नम्र निवेदन पेश न करतीं। सदस्यों को राजनीतिक मामलों से अलग रखने के लिए यह आज्ञा दी गई कि वे पार्लियामेन्ट में नहीं बैठ सकते।

कौन्सिल का काम भारत मन्त्री को सलाह देना था। यदि वह चाहता तो कौन्सिल के फ़ैसले को रद्द कर सकता था। केवल भारतीय कर के मामले में वह कौन्सिल के फ़ैसले को नहीं बदल सकता था। असल बात यह थी कि कौन्सिल के सदस्यों को भारत-मन्त्री ही नियुक्त करता था। सम्राट् केवल नाममात्र के लिये था। इससे वे उसकी इच्छा के विरुद्ध नहीं जा सकते थे। गुप्त बातों में भारत-मन्त्री स्वयं हिन्दोस्तान से पत्र-व्यवहार करता था। इसमें कौन्सिल का कुछ भी हाथ न था। हिन्दोस्तान का कर्त्ता-धर्त्ता भारत-मन्त्री ही बनाया गया। १८५८ के ऐक्ट के अनुसार सारे प्रबन्ध उसके हाथ में दे दिए गए। देश की रक्षा तथा आमदनी और खर्च की पूरी जिम्मेवारी उसे सौंप दी गई।

हिन्दोस्तान के गवर्नर-जनरल को यह आज्ञा दी गई कि वह सभी मामलों में भारत-मन्त्री की आज्ञाओं का पालन करे। यह बात दोनों शासकों की योग्यता पर निर्भर थी। यदि गवर्नर-जनरल स्वयं इतना योग्य होता कि भारत-मन्त्री उसके ऊपर तरह-तरह का हुक्म लादना उचित नहीं समझता, तो वह अपने कार्य के लिए बहुत कुछ स्वतन्त्र था। शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से उसका स्थान भारत-मन्त्री से कहीं ऊँचा था। क़ानूनन गवर्नर-जनरल को भारत मन्त्री की आज्ञा मानना आवश्यक था। यदि दोनों की रायों में अन्तर पड़ता तो गवर्नर-जनरल को झुकना पड़ता था। इसके दो उदाहरण भारतीय इतिहास में मौजूद हैं। लार्ड मेयो तथा लार्ड नार्थब्रुक के समय में पार्लियामेंट ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय सरकार सभी तरह घरेलू सरकार की मातहती में है। फिर भी इन दोनों के सम्बन्ध के विषय में कहा गया है कि शिमला और पार्लियामेन्ट का सम्बन्ध निश्चत नहीं है।*

---

* In practice, however, the relations between Simla and Whitehall vary with the personal equation.

केन्द्रीय सरकार की वृद्धि.
Centralisation of power

शासन की बागडोर पार्लियामेन्ट के हाथ में जाने से गवर्नर-जनरल के पद में एक बहुत बड़ी तब्दीली हुई। अब वह हिन्दोस्तान का वाइसराय कहलाने लगा। उसकी ज़िम्मेवारी बढ़ा दी गई। इसलिये यह ज़रूरी था कि उसकी कौंसिल भी कुछ बड़ी कर दी जाय। १८३३ ई० में तीन के बदले चार सदस्य कर दिये गये थे। क़ानूनी मामले में नया सदस्य गवर्नर-जनरल को सलाह देता था। १८५३ ई० तक वह कौंसिल में केवल क़ानून बनाने के लिये उपस्थित हो सकता था। १८५३ ई० में उसे कौंसिल का एक साधारण सदस्य घोषित कर दिया गया। १८६१ ई० में पार्लियामेन्ट ने एक नया कौंसिल ऐक्ट पास किया, जिसके अनुसार एक अर्थ-सदस्य की नियुक्ति की गई। १८७४ ई० में कौंसिल में एक और सदस्य बढ़ा दिया गया जिसके ज़िम्मे सरकारी इमारतों की देख-रेख का काम सौंपा गया। कौंसिल का प्रत्येक सदस्य किसी विभाग का प्रधान होता था। गवर्नर-जनरल को यह अधिकार था कि वह कौंसिल के फैसले को रद्द कर सके।

१७७३ ई० के रेग्यूलेटिंग ऐक्ट से हिन्दोस्तान का शासन-प्रबन्ध केन्द्रित होने लगा था। शासन का भार धीरे धीरे केन्द्रीय सरकार के हाथों में आने लगा। प्रान्तीय सरकारों की शक्ति घटने लगी। प्रान्तों के गवर्नर केन्द्रीय सरकार के एजेन्ट मात्र रह गये। शासन-प्रबन्ध में प्रान्तीय सरकारों को यह आज्ञा थी कि वे गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल के हुक्म की तामील करते रहें। साथ ही उन्हें हर मामले की सूचना केन्द्रीय सरकार को देनी पड़ती थी। प्रान्त की सरकारें, केन्द्रीय सरकार की आज्ञा के बिना ऋण नहीं ले सकतीं थीं। नये टैक्स लगाने के लिये उन्हें केन्द्रीय सरकार से आज्ञा लेनी पड़ती थी। कोई भी बिल गवर्नर की कौंसिल में तब तक पेश नहीं हो सकता था जब तक गवर्नर-जनरल की आज्ञा न ले ली जाती। बिल पास हो जाने पर भी अन्तिम निर्णय गवर्नर-जनरल का ही होता था। एक राजनीतिज्ञ ने लिखा है, "आर्थिक राजनीतिक तथा क़ानूनी सभी दृष्टियों से १९०९ ई० के पहले केन्द्रीय सरकार की शक्ति बड़ी ही ज़ोरदार थी।" प्रान्तों के शासक उसी की आज्ञा पर चलते थे। वह किसी भी समय उनके अधिकार छीन सकती थी।

धारा सभाओं का विकास

शासन के द्वितीय काल (१८५८-१९१८) में धारा सभाओं का भी विकास हुआ। आरम्भ में कार्य-कारिणी और धारा-सभा में कोई अन्तर न था। जब कभी कोई क़ानून बनाना होता तो गवर्नर-जनरल या प्रान्तों के गवर्नर कुछ विशेष व्यक्तियों से सलाह ले लिया करते थे। १८३३ ई० में पहिली बार एक क़ानूनी मेम्बर गवर्नर-जनरल की कौंसिल में भर्ती किया गया। यहीं से क़ानून बनाने का कार्य कार्यकारिणी से अलग समझा जाने लगा। १८५३ ई० में ६ मेम्बर गवर्नर-जनरल की कौंसिल में और भर्ती किये गये। इनका एकमात्र कार्य क़ानून बनाने में उसकी मदद करना था। इनमें दो बंगाल की बड़ी कचहरी (Bengal Supreme Court) के जज थे और बाक़ी मद्रास, बम्बई, बंगाल और आगरा की सरकारों द्वारा नियुक्त किये गये थे। यही सभा बढ़ते बढ़ते केन्द्रीय सरकार की धारा सभा बन गई।

१८३३ का चार्टर ऐक्ट

१८६१ ई० के इंडियन कौंसिल ऐक्ट के अनुसार ६ सदस्य और भर्ती किये गये। अर्थात् क़ानूनी मामलों में गवर्नर-जनरल को सलाह देने के लिये सदस्यों की संख्या अब १२ कर दी गई। इनमें ६ सदस्य किसी सरकारी विभाग में काम नहीं कर सकते थे। कुछ हिन्दोस्तानियों को भी इसमें हिस्सा लेने का अवसर मिला। इस ऐक्ट के अनुसार मद्रास और बम्बई प्रान्तों की सरकारों को क़ानून बनाने का वह अधिकार, जो १८३३ ई० में उनसे छीन लिया गया था, पुनः प्रदान किया गया। लेकिन ये अधिकार नाममात्र के थे। उन्हें क़ानूनी मामलों में बिलकुल स्वतन्त्रता नहीं दीगई थी। गवर्नर-जनरल की आज्ञा लेकर वे कोई क़ानून धारा सभा में पेश कर सकते थे और फिर उसकी पुष्टि केन्द्रीय सरकार से कराते थे। लार्ड मेकडानल्ड के शब्दों में "प्रान्तीय धारा सभाएँ क़ानून बनाने के लिये छोटी-छोटी कमेटियाँ थीं।" उन्हें यह अधिकार न था कि वे कार्य-कारिणी के कामों में हस्तक्षेप करें।

१८६१ का चार्टर ऐक्ट

१८९२ ई० में फिर एक इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट पास किया गया। इसके अनुसार केन्द्रीय धारा सभा में सदस्यों की संख्या १२ से १६ कर दी गई। गैर सरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। बड़ी-बड़ी संस्थाओं को इस बात का अवसर दिया गया कि वे अपनी इच्छानुसार

१८९२ का चार्टर ऐक्ट

धारा सभाओं के लिये लोगों के नाम सरकार के सामने पेश करें। यद्यपि सरकार उन्हें स्थान देने के लिये वाध्य न थी, फिर भी उन्हीं में से लोग नियुक्त किये जाते थे। उस समय "चुनाव" की प्रथा न थी। अप्रत्यक्ष रूप से सदस्यों की भरती में प्रजा को राय ले ली जाती थी।

१६०६ का मार्ले मिन्टो सुधार

१६०६ ई० के मार्ले मिन्टो सुधार ने केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारा सभाओं में और भी परिवर्तन किया। सदस्यों की संख्या और उनकी ज़िम्मेवारी पहले से अधिक कर दी गई। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में गैर सरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। धारा-सभा के सदस्यों को अधिकार दिया गया कि वे सरकार से कोई भी प्रश्न पूछ सकते हैं, तथा बजेट के ऊपर वादाविवाद कर सकते हैं। लार्ड कर्जन की नीति से भारतीय प्रजा बहुत ही नाराज़ थी। १६०५ में बंगाल को दो टुकड़ों में बांटने का जो प्रश्न उठाया गया था, उससे न केवल बंगाल बल्कि सारे हिन्दोस्तान की प्रजा असन्तुष्ट थी। १९०५ में अखिल-भारतीय कॉंग्रेस कमेटी का २१ वाँ वार्षिकोत्सव काशी में हुआ। इसमें बंगाल के टुकड़े करने की नीति का बुरी तरह खंडन किया गया। १६०६ ई० में कॉंग्रेस ने अपने एक प्रस्ताव में यह पास किया कि सम्पूर्ण देश की आवाज बृटिश शासन की नीति के विरुद्ध है।*

असन्तोष को दूर करने के लिये १६०६ ई० में बृटिश सरकार को भारतीय शासन में सुधार की आवश्यकता महसूस हुई। चुनाव का सिद्धान्त भी इस समय स्वीकार किया गया। मुसलमानों को पृथक् निर्वाचन प्रदान किया गया। धारा-सभा के सदस्यों को यह अधिकार प्राप्त हुआ कि वे सरकार के कामों की उचित टीका-टिप्पणी कर सकते हैं। किन्तु अभी तक भारतीय प्रजा को शासन की वास्तविक ज़िम्मेवारी नहीं दी गई थी। सुधार का जन्मदाता लार्ड मार्ले स्वयं इस बात की ताईद करता है कि बृटिश सरकार की नियत बिलकुल नहीं थी कि भारतीय प्रजा को शासन की जिम्मेवारी दी जाय।

---

* यह देखते हुये कि देश के शासन में यहाँ के लोगों का कोई हाथ नहीं है और वे सरकार से जो प्रार्थनायें करते हैं उन पर उचित रूप से ध्यान नहीं दिया जाता है, इस कॉंग्रेस की राय है कि बंग-विच्छेद के विरोध में उस प्रान्त में जो वहिष्कार का आन्दोलन चलाया गया वह न्याय-संगत था और है।

इस सुधार के अनुसार वाइसराय की कार्यकारिणी सभा में एक हिन्दोस्तानी को भी स्थान दिया गया। सत्येन्द्रप्रसन्न सिनहा, जिन्हें आगे चल कर लार्ड की उपाधि दी गई, पहिले पहिल इसके सदस्य बनाये गये। प्रान्तों की कार्यकारिणी सभाओं में भी इसी प्रकार के स्थान निश्चित कर दिये गये। ऊपर कहा गया है कि भारतीय प्रजा के असन्तोष को दूर करने के लिये इस सुधार की योजना बनाई गई थी। परन्तु इसका परिणाम सन्तोष-जनक नहीं हुआ। कार्य-कारिणी पहिले की तरह कमजोर और विदेशी बनी रही। केन्द्रीय सरकार का दबदबा प्रान्तीय सरकारों पर कम न हुआ। भारत-मंत्री के अधिकारों में कोई कमी नहीं की गई। प्रान्तीय सरकारों को आर्थिक क्षेत्र में थोड़ा भी हक़ प्राप्त न हुआ। अपने खर्च के लिये उन्हें केन्द्रीय सरकार का मुँह ताकना पड़ता था।

भारत में राजनीतिक असन्तोष और सहयोग की नीति :—

बृटिश राज्य की जड़ धीरे-धीरे मज़बूत होती जा रही थी। शासन के सभी क्षेत्रों में केन्द्रीय सरकार की शक्ति दृढ़ हो रही थी। इसका प्रभाव देश की आम जनता पर बहुत ही बुरा पड़ रहा था। हिन्दोस्तानियों के दिलों में अँग्रेजी राज्य के प्रति अश्रद्धा के साथ देश में राष्ट्रीय भावना फैल रही थी। शासन की एकता, अँग्रेजी शिक्षा, अँग्रेजी साहित्य और इतिहास, आवागमन की सुविधा, तथा सबसे बढ़कर अँग्रेजी भाषा ने राष्ट्रीयता को आगे बढ़ाया। पाश्चात्य देशों की प्रजातन्त्र भावना तथा योरप और अमेरिका आदि स्वतंत्र देशों के इतिहासों ने हिन्दोस्तानियों के दिलों में वर्तमान राष्ट्रीय जीवन का संचार किया। आरम्भ में यह भावना एक छोटे से दायरे में सीमित थी, लेकिन अब उसका क्षेत्र धीरे धीरे बढ़ने लगा। जिस काँग्रेस की नींव अँग्रेजी सरकार से छोटी-छोटी बातों की माँग पेश करने के लिये डाली गई थी वही काँग्रेस अँग्रेज़ी सरकार से टक्कर लेने का दावा करने लगी।

अँग्रेज़ी शासन का प्रभाव हिन्दोस्तानियों पर क्या पड़ रहा था, इसका ज्ञान अँग्रेज़ों को पूरी तौर से न था। ज्यों ज्यों अँग्रेज़ी शासन दृढ़ होता जाता था, और शासन की मशीन शान्ति उत्पन्न करती जाती थी, त्यों-त्यों हिन्दोस्तान में राष्ट्रीयता की लहर बढ़ती जा रही थी। देश में नई-नई समस्यायें पैदा होने लगी थीं।

एक ओर देश में राष्ट्रीयता की लहर फैल रही थी, परन्तु दूसरी ओर बृटिश सरकार अपनी नीति को बदलने के लिये तैयार न थी। वह नहीं

चाहती थी कि शासन में अधिक से अधिक हिन्दोस्तानियों का हाथ हो। इसलिये उसने 'सहयोग' की एक नई नीति का आश्रय लिया। इसका तात्पर्य यह था कि कुछ थोड़े से हिन्दोस्तानियों को शासन-प्रबन्ध में शामिल कर लिया जाय। बड़ी-बड़ी सरकारी नौकरियों में इने गिने हिन्दोस्तानी भर्ती कर लिये गये। गवर्नरों तथा गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी सभाओं में हिन्दोस्तानियों की संख्या कुछ और बढ़ा दी गई। समय-समय पर धारा सभाओं में भी हिन्दोस्तानियों की संख्या बढ़ाई गई। परन्तु केवल 'सहयोग' की नीति से हिन्दोस्तानी संतुष्ट नहीं हो सकते थे। इस नीति की विफलता स्पष्ट भी होने लगी।

१९१७ का घोषणा पत्र

इसी बीच १९१४ में योरप में एक भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ। इस बड़ी लड़ाई ने सब का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। हिन्दोस्तानियों ने दिल खोल कर बृटिश सरकार की मदद की। राजा-महाराजाओं ने भी धन और जन दोनों से सरकार की मदद की। हिन्दोस्तानी सिपाहियों ने इङ्गलैण्ड और फ्रांस में जिस वीरता का परिचय दिया उसकी सराहना अंग्रेजों ने भी की है। बृटिश सरकार ने यह मान लिया कि हिन्दोस्तानियों ने ऐसे कठिन समय में उसकी सहायता की। बृटिश अधिकारी लड़ाई के जमाने में यह एलान कर चुके थे कि "यह लड़ाई संसार में एकता, स्वतन्त्रता और स्वावलम्बन के लिये लड़ी जा रही है।" इन शब्दों को सुन कर हिन्दोस्तानियों के दिलों में बड़ी-बड़ी आशायें पैदा हो रही थीं। मांटेगू साहब ने, जो उस समय भारत-मंत्री थे, अपनी सहानुभूति दिखलाने के लिये २० अगस्त सन् १९१७ ई० को एक घोषणा की। इसका आशय यह था कि हिन्दोस्तानियों को क्रमशः स्वतन्त्रता की ओर बढ़ने का अवसर मिलता जायेगा। घोषणा पत्र इस प्रकार था :—

"बृटिश सरकार की यह नीति है, और उससे भारत सरकार पूरी तरह सहमत है, कि भारतीय शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़े और उत्तरदायी शासन प्रणाली का धीरे-धीरे विकास हो, जिससे अधिकाधिक प्रगति करते हुये स्वशासन-प्रणाली भारत में स्थापित हो और वह बृटिश साम्राज्य के एक अंग के रूप में रहे। उसने यह तै कर लिया है कि इस दिशा में, जितना शीघ्र हो ठोस रूप से कुछ क़दम आगे बढ़ाया जाय। मैं इतना और कहूँगा कि इस नीति मेंप्रगति सीढ़ी दर सीढ़ी होगी। बृटिश सरकार और भारत सरकार ही

जिनके ऊपर भारतीयों के हित और उन्नति का भार है, इस बात के निर्णायक होंगे कि कब और कितना क़दम आगे बढ़ाना चाहिये। वे एक तो उन लोगों के सहयोग को देखकर ही आगे बढ़ाने का निश्चय करेंगे जिन्हें इस तरह सेवा का नया अवसर मिलेगा, और दूसरे यह देखा जायगा कि किस हद तक उन्होंने अपनी जिम्मेवारी को ठीक-ठीक अदा किया है और उन पर कितना विश्वास किया जा सकता है। पार्लियामेंट के सामने जो प्रस्ताव पेश होंगे उन पर सार्वजनिक रूप में वाद-विवाद करने के लिये पर्याप्त समय दिया जायगा।"

हिन्दोस्तान के राजनीतिक इतिहास में इस घोषणा पत्र को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। यहीं से भारतीय स्वतंत्रता का आरम्भ माना जाता है। यद्यपि इसका अक्षरशः पालन नहीं किया गया, फिर भी भारतीय प्रजा का एक वर्ग इससे काफ़ी सन्तुष्ट रहा। यहीं से शासन के विकास का तीसरा युग आरम्भ होता है।

तृतीय काल (१६१६—१६४६)

१६१६ ई० का शासन-सुधार

भारत-मंत्री मांटेग्यू साहब हिन्दोस्तान आये और वाइसराय लार्ड चेन्सफ़ोर्ड के साथ सारे हिन्दोस्तान का भ्रमण किया। इसके बाद दोनों ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की। इसी रिपोर्ट के आधार पर पार्लियामेंट ने १६१६ ई० में एक क़ानून पास किया, जिसके अनुसार भारतीय शासन में निम्नलिखित परिवर्तन किये गये :—

१—धारा-सभाओं में सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। प्रजा के प्रतिनिधियों की संख्या नामज़द सदस्यों से अधिक कर दी गई। मताधिकार का क्षेत्र और भी व्यापक कर दिया गया। केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों धारा सभाओं को सरकार की टीका-टिप्पणी करने का अधिकार दे दिया गया। बजेट के ऊपर विचार करने का अधिकार भी उन्हें प्रदान किया गया।

२—प्रान्तों में दोहरे शासन (Dyarchy) की नींव डाली गई। केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों को एक दूसरे से अलग कर दिया गया। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय विषयों को फिर दो हिस्सों में बाँटा गया। एक कोटि में (Transferred subjects) वे विषय थे जिनमें भारतीय मंत्रियों की पूरी ज़िम्मेवारी थी। वे इन विषयों में स्वतंत्रतापूर्वक कार्य कर सकते थे और अपने कार्य के लिये प्रान्तीय धारा-सभा के प्रति

उत्तरदायी थे। स्वायत्त शासन, स्वास्थ्य, शिक्षा, सफाई इत्यादि विषय इनके अधिकार में दिये गये थे। दूसरे प्रकार के विषय (Reserved subjects) वे थे जो गवर्नर की कार्यकारिणी को सौंपे गये थे। इनके लिये कार्यकारिणी के सदस्य धारा सभा की मातहती में न होकर गवर्नर के प्रति ज़िम्मेवार होते थे। शान्ति, क़ानून, भूमि-कर, आय-व्यय इत्यादि आवश्यक विषय कार्यकारिणी के हाथों में दिये गये थे। इस ऐक्ट के अनुसार केन्द्रीय शासन में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया। इसकी शक्ति पहले की तरह बनी रही।

विदेशी सरकार पर भी इस कानून का असर पड़ा। इंडिया कौंसिल के सदस्यों की संख्या ८ और १२ के बीच में निश्चित कर दी गई। इसके आधे सदस्य ऐसे होने चाहिये जो कम से कम १० वर्ष तक हिन्दोस्तान में रह चुके हों। कौंसिल की आयु ५ वर्ष निश्चित कर दी गई। अब तक भारत-मंत्री का वेतन भारतीय खजाने से दिया जाता था, परन्तु इस ऐक्ट के अनुसार यह निश्चित किया गया कि उसे अँग्रेजी खजाने से वेतन दिया जाय। उसके दफ्तर का बाकी खर्च भारतीय खजाने से ही दिया जाना निश्चित किया गया। ऐसा इसलिये किया गया कि पार्लियामेंट भारत-मंत्री की कार्रवाइयों पर कड़ी नजर रक्खे। इङ्गलैण्ड में एक नये अफसर की नियुक्ति की गई जिसे हाई कमिश्नर कहा जाता है। इस अफसर की जिम्मेवारी भारतीय सरकार के प्रति कर दी गई। इस ऐक्ट में यह भी बात साफ कर दी गई कि १० वर्ष बाद एक कमीशन नियुक्त किया जायेगा जो इस बात का पता लगायेगा कि अब हिन्दोस्तानियों को कितनी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये।

सत्याग्रह आन्दोलन

१९१९ ई० के सुधार से हिन्दोस्तानी संतुष्ट न थे। नरम दल वालों ने तो इसका स्वागत किया, परन्तु देश की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था, कॉंग्रेस ने इसका पूर्ण बहिष्कार किया। पिछली लड़ाई के कारण चीजों का दाम बढ़ने लगा। पानी न बरसने से फसल भी खराब हो गई थी। इधर हिन्दोस्तानी मुसलमानों को यह पूरी उम्मीद थी कि बड़ी लड़ाई में विजयी होने के पश्चात् मित्र सरकार (Allies) टर्की के सुल्तान को फिर वही दर्जा दे देगी जो लड़ाई के पहिले उसे प्राप्त था। तात्पर्य यह है कि हिन्दोस्तान में बृटिश सरकार के प्रति असन्तोष के सारे कारण इकट्ठे हो गये थे। १९२१ में महात्मा गाँधी ने मुहम्मद

अली और शौकत अली को साथ लेकर सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया। खिलाफत आन्दोलन काँग्रेस सत्याग्रह के साथ जोड़ दिया गया। नरम दल वाले कौंसिल के चुनाव में हिस्सा लिया और शासन को चलाना आरम्भ किया। परन्तु सितम्बर १९२१ ई० में उन्होंने भी एक प्रस्ताव द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय शासन में पुनः सुधार होना चाहिये।

अहिंसा की नीति पर सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया गया। देश भर में इस बात का प्रचार किया गया कि सरकार को कोई टैक्स न दे; सरकारी कानूनों का वहिष्कार किया जाय। इसका उद्देश्य यह था कि सरकार को हर प्रकार से असफल साबित कर दिया जाय। यद्यपि आन्दोलन की नीति में हिंसा का कोई स्थान न था, फिर भी परिणाम भंयकर हुआ। गोरखपुर ज़िले में चौरी-चौरा नामक स्थान पर सत्याग्रहियों ने २१ पुलिस के सिपाहियों को जान से मार डाला। काँग्रेस में एक ऐसा दल उठ खड़ा हुआ जो कौंसिल के चुनाव में हिस्सा लेना चाहता था। इसका नाम 'स्वराज दल' था। देशबन्धु चितरंजन दास और पंडित मोतीलाल नेहरू इसके नेता थे। यद्यपि केन्द्रीय धारा-सभा में इनका बहुमत न हो सका परन्तु प्रान्तीय धारासभाओं में इन्हें अच्छी सफलता मिली। बंगाल और मध्यप्रान्त में इनका बहुमत रहा। फिर भी शासन में रोड़े अटकाने की नीयत से इन्होंने मन्त्रिपद ग्रहण करने से इनकार कर दिया। एक ही प्रस्ताव में मन्त्रियों का वेतन घटा कर २ रुपया सालाना कर दिया गया। ऐसी दशा में शासन का कार्य रुक गया और विवश होकर गवर्नरों को १९१९ के द्वैध शासन प्रणाली का अन्त करना पड़ा।

पं० मोतीलाल नेहरू ने सरकार को इस बात की सलाह दी कि अँग्रेज और हिन्दोस्तानी दोनों प्रकार के कुछ राजनीतिज्ञ किसी गोलमेज़ सभा में बुलाये जाँय और उसमें इस बात का फैसला हो कि हिन्दोस्तानियों को किस प्रकार जिम्मेवार शासन दिया जाय। ब्रिटिश सरकार अभी हाल के बने हुए शासन-प्रबन्ध को बदलना नहीं चाहती थी। परन्तु वह इस बात के लिये तैयार थी कि एक कमेटी नियुक्त की जाय जो यह राय दे कि १९१९ के शासन-विधान के अन्दर कौन-कौन सी तब्दीलियाँ की जा सकती हैं। मुद्दिमान कमेटी (Mudiman committee) के बहुसंख्यक सदस्यों ने यह राय जाहिर की कि शासन-प्रबन्ध अच्छी तरह चल रहा है और अभी इसमें तब्दीली की कोई जरूरत नहीं है। इसके

विपरीत अल्पसंख्यक दल ने यह तै किया कि द्वैध शासन (Dyarchy) अत्यन्त दूषित है इसलिये सम्पूर्ण शासन विधान तब्दील होना चाहिये। १९२५ ई० के सितम्बर महीने में यह बात निश्चित की गई कि बृटिश सरकार एक गोलमेज सभा बुलायेगी।

साइमन कमीशन

देश में शासन के प्रति असंतोष बढ़ता जा रहा था। बृटिश सरकार ने भी यह तै कर लिया कि भारतीय शासन में सुधार होने चाहिये। इस स्थान पर हमें यह याद रखना चाहिये कि १९१९ ई० के ऐक्ट के अनुसार बृटिश सरकार १९२९ ई० में स्वयं इस बात की जाँच करती कि हिन्दोस्तानियों को और कौन-कौन से अधिकार देने चाहिये। परन्तु दो वर्ष पहले ही ८ नवम्बर सन् १९२७ ई० को हिन्दोस्तान के गवर्नर-जनरल लार्ड इरविन ने इस बात की घोषणा की कि पार्लियामेंट ने एक कमीशन नियुक्त किया है जो निम्नलिखित बातों की जाँच करेगा:—

१—१९१९ ई० का शासन विधान किस प्रकार काम कर रहा है ?

२—हिन्दुस्तान में शिक्षा की प्रगति कैसी है ?

३—किस हद तक हिन्दोस्तानी इस बात के योग्य हैं कि उन्हें एक जिम्मेवार शासन दिया जाय।

४—प्रान्तीय धारा सभाओं में बड़ी सभा का बनाना कहाँ तक अच्छा होगा।

५—भारतीय रियासतों और बृटिश प्रान्तों में सम्बन्ध कैसे स्थापित किया जाय।

कमीशन को इन्हीं बातों की जाँच करके अपनी राय जाहिर करनी थी। सर जान साइमन इस कमीशन के सभापति थे। जिस समय कमीशन की नियुक्ति हुई थी उसी समय १९२७ में काँग्रेस ने इस बातका एलान किया कि पूर्ण स्वराज्य इसका एक मात्र उद्देश्य है। देश के सभी राजनीतिक दलों ने यह निश्चय किया कि पूर्ण स्वतंत्रता हासिल करनी चाहिये। जिस समय देश में राष्ट्रीयता की लहर इतने जोरों पर थी उसी समय साइमन कमीशन ने अपना कार्य आरम्भ किया। सब से बड़े मार्के की बात तो यह थी कि इसमें एक भी हिन्दोस्तानी शरीक न किया गया था। एक सज्जन ने इसे "सफेद कमीशन" घोषित किया है। हिन्दोस्तानियों के इस तिरस्कार से देश में खलबली-सी मच गई। चारों ओर से इसका

बायकाट आरम्भ हुआ। काँग्रेस के नरम और गरम दोनों दलों ने एक स्वर से इसका बायकाट किया। सर जान साइमन ने इस बात का आश्वासन दिया कि वे केन्द्रीय और प्रान्तीय कमीटियों से पूरा सहयोग करेंगे, फिर भी काँग्रेस की नीति पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। लेजिस्लेटिव असेम्बली ने कमीशन के बायकाट का एक प्रस्ताव भी पास कर दिया।

इरविन की घोषणा

इस विकट राजनीतिक परिस्थिति को देखते हुये लार्ड इरविन ने ३१ अक्टूबर सन् १६२६ ई० को सम्राट् की ओर से एक घोषणा की। इसमें उन्होंने यह कहा कि पार्लियामेंट ने यह निश्चय किया है कि कमीशन की रिपोर्ट के बाद हिन्दोस्तान के राजनीतिक नेता एक गोलमेज़ सभा में बुलाये जायेंगे और वहाँ उनकी राय ली जायेगी। लिबरल दल वालों को इससे कुछ संतोष हुआ, परन्तु काँग्रेस सन्तुष्ट न रही। १६२६ ई० में दिसम्बर के महीने में काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लाहौर में हुआ। इसमें एक प्रस्ताव पास किया गया कि काँग्रेस गोलमेज़ सभा का बायकाट करती है और महात्मा गाँधी को इस बात का अधिकार देती है कि वे सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ कर दें। १६३० ई० के मार्च के महीने में सत्याग्रह की आग सारे देश में फैल गई। इसी वर्ष २६ जनवरी को पहले पहल देश भर में स्वतन्त्रता दिवस भी मनाया गया था। साल भर तक आन्दोलन बड़े ज़ोरों से चलता रहा। महात्मा गाँधी तथा और बड़े बड़े नेता जेलों में डाल दिये गये। इनके अतिरिक्त हज़ारों आदमी जेल भेजे गये।

साइमन कमीशन की रिपोर्ट

जिस समय सत्याग्रह आन्दोलन इतने जोरों पर था, उसी समय १६३० ई० के जून के महीने में साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। देश के किसी भी दल ने इसे पसन्द नहीं किया। कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में संघ-शासन की आवश्यकता को निरर्थक साबित किया था। उसका यह विचार था कि फिलहाल हिन्दोस्तान में संघ-शासन की कोई आवश्यकता नहीं है। उसने प्रान्तीय स्वराज्य (Provincial Autonomy) की एक योजना पेश की थी। केन्द्रीय शासन में परिवर्तन की चर्चा तक नहीं की गई। ६ जुलाई सन् १६३० ई० को वाइसराय लार्ड इरविन ने धारा-सभा के सामने यह घोषित

किया कि गोलमेज़ सभा एक बहुत ही उपयोगी चीज़ है और हिन्दोस्तानियों को उनमें हिस्सा लेना चाहिये।

पहली गोलमेज़ सभा

१२ नवम्बर सन् १६३० ई० को सम्राट् पंचम जार्ज ने गोलमेज़ सभा का उद्घाटन किया। रैम्जे मेकडानेल्ड, जो उस समय इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री थे, सभा के सभापति बनाये गये। पहली ही बैठक में भारतीय राजाओं ने इस बात की इच्छा प्रकट की कि वे सभी प्रकार से भारतीय-संघ-शासन के लिये तैयार हैं। सभा में बहुत सी कमेटियाँ बना दी गईं और अलग अलग मसलों पर उन्हें विचार करने का काम सौंपा गया। १६ जनवरी सन् १६३१ ई० को गोलमेज़ सभा का कार्य समाप्त किया गया। प्रधान मंत्री ने अपने अन्तिम व्याख्यान में यह कहा कि हिन्दोस्तान में एक संघ-शासन की स्थापना होनी चाहिये।

गाँधी इरविन समझौता

गोलमेज़ सभा के सदस्य राजी खुशी अपने घर लौटे। लोगों ने उनका सम्मान किया। कुछ सदस्यों ने काँग्रेस से यह इच्छा प्रकट की कि वह ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का विश्वास करे और आवश्यकता पड़ने पर इन्हें अपनी उचित सलाह दे। इस प्रकार की चर्चाओं का प्रभाव काँग्रेस पर अच्छा पड़ा। १६३१ ई० के मार्च के महीने में महात्मा गाँधी और लार्ड इरविन में एक सुलहनामा हुआ। सत्याग्रह आन्दोलन बन्द कर दिया गया। सारे राजनीतिक कैदी छोड़ दिये गये। काँग्रेस इस बात पर तैयार हो गई कि वह दूसरी गोलमेज़ सभा में हिस्सा लेगी।

दूसरी गोल मेज़ सभा

७ सितम्बर सन् १६३१ ई० को गोलमेज़ सभा की दूसरी बैठक लंदन में आरम्भ हुई। काँग्रेस की ओर से प्रतिनिधि बन कर महात्मा गाँधी स्वयं इस सभा में उपस्थित हुए थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि इङ्गलैण्ड की सरकार में सहसा परिवर्तन न हुआ होता तो वर्षों पहले हिन्दोस्तान का इतिहास बहुत कुछ बदल जाता और ब्रिटिश सरकार और काँग्रेस के बीच में तभी कोई न कोई समझौता हो गया होता। परन्तु इसी समय इगलैण्ड की सरकार बदल गई। मज़दूर दल ने इस्तीफ़ा दे दिया। नया चुनाव किया गया जिसमें सरकार की बागडोर अनुदार दल के हाथ में आ गई। मज़दूर दल के भारत-मंत्री हट गये और उनका स्थान अनुदार दल के भारत-मंत्री ने ले लिया। गोलमेज़ सभा पर इस परिवर्तन का गहरा असर पड़ा। सभा ने अपना कार्य आरम्भ किया। साम्प्रदायिक

मसले को सुलझाने का कोई मार्ग न निकल सका। प्रधान मंत्री ने यह घोषित किया कि उसी के हाथों में यह अधिकार दे दिया जाय कि वह इस मसले को हल कर दे। काँग्रेस बिलकुल ही असन्तुष्ट रही। महात्मा गाँधी लन्दन से हिन्दोस्तान के लिये रवाना हुये। अभी वे जहाज से उतरे भी नहीं थे कि रास्ते में ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। १६३२ ० के आरम्भ में फिर गिरफ्तारियाँ शुरू हो गई। मिस्टर बाल्डविन इस समय इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री थे। उनकी सरकार ने हिन्दोस्तान के सभी बड़े लीडरों को जेल में डाल दिया।

साम्प्रदायिक निर्णय (Communal Award)

१६ अगस्त सन् १६३२ ई० को इङ्गलैण्ड के प्रधान मंत्री ने साम्प्रदायिक निर्णय घोषित किया। इसके अनुसार मुसलमान, अँग्रेज, ईसाई, सिक्ख, अछूत तथा स्त्री—इन सब को अलग अलग निर्वाचन का अधिकार दिया गया। महात्मा गाँधी ने आमरण अनशन व्रत द्वारा इस साम्प्रदायिक निर्णय का विरोध किया। उनकी दृष्टि में अछूतों को अलग निर्वाचन देकर भारतीय समाज को टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया था। उन्होंने यहाँ तक फैसला कर लिया कि यदि ब्रिटिश सरकार इस साम्प्रदायिक निर्णय को तब्दील न करेगी तो वे अनशन द्वारा अपना प्राण दे देंगे। उनका अनशन आरम्भ हो गया। इंगलैण्ड और हिन्दोस्तान दोनों देशों में खलबली सी मच गई। शीघ्र ही सुलह की कारवाई आरम्भ की गई और पूना में एक सुलहनामा (Poona Pact) किया गया। इसमें अछूत वर्ग को धारा-सभाओं में पहले से दूने स्थान दिये गये और उन्हें हिन्दू जाति का एक घनिष्ठ अंग मान लिया गया। ब्रिटिश सरकार ने भी पूना के इस सुलहनामे को स्वीकार कर लिया।

तीसरी गोल मेज़ सभा

१६३२ ई० के सितम्बर महीने में हिन्दोस्तान के वाइसराय लार्ड विलिंग्टन ने यह घोषिय किया कि पार्लियामेंट हिन्दोस्तान के शासन-विधान में परिवर्तन करने को तैयार है। वह चाहती है कि हिन्दोस्तान में एक ऐसे संघ-शासन की स्थापना की जाय जिससे केन्द्र और प्रान्त दोनों जगह जिम्मेवार शासन स्थापित कर दिया जाय। इसी बुनियाद पर १७ नवम्बर सन् १६३२ ई० को तीसरी गोलमेज़ सभा का कार्य आरम्भ किया गया जो २४ दिसम्बर सन् १६३२ ई० को समाप्त हुआ।

सफेद पत्र (White Paper) और १९३५ का शासन-विधान

ब्रिटिश सरकार ने १९३३ ई० के मार्च के महीने में एक सफेद पत्र (White Paper) प्रकाशित किया जिसमें भारतीय शासन को सुधार को योजनायें घोषित की गई थीं। हिन्दोस्तान के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड लिनलिथ गो की अध्यक्षता में १९३३ के अप्रैल के महीने में एक ज्वाइंट पार्लियामेंटरी कमेटी बनाई गई। इसके ज़िम्मे यह काम सौंपा गया कि वह सफेद पत्र पर अपना विचार प्रकट करे। कुछ भारतीय भी इसमें सम्मिलित किये गये थे। बड़ी छान-बीन के बाद २२ नवम्बर सन् १९३४ ई० को इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट पार्लियामेंट को दे दी। पार्लियामेंट की दोनों सभाओं ने इसे मंजूर कर लिया। ५ फरवरी सन् १९३५ ई० को पहिली बार यह रिपोर्ट पार्लियामेंट में पढ़ी गई। ६ जून सन् १९३५ को लार्ड सभा में इसकी पेशी हुई। २४ जुलाई सन् १९३५ ई० को कुछ थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ लार्ड सभा ने इसे पास कर दिया। कामन सभा ने भी इन परिवर्तनों को मान लिया। २ अगस्त सन् १९३५ ई० को सम्राट् ने इस पर अपनी दस्तख़त किया और गवर्नमेंट इण्डिया ऐक्ट इतनी माथा-पच्ची के बाद पास किया गया। पार्लियामेंट के इतिहास में यह सबसे बड़ा ऐक्ट कहा जाता है। पूरे ऐक्ट में १६ बड़े बड़े हिस्से और ४७८ सुर्खियाँ थीं। इसके अन्दर बर्मा ऐक्ट भी शामिल था।

१९३५ ई० के नये शासन-विधान में मुख्य ४ बातें थीं:—

१—सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिये एक संघ-शासन विधान की योजना बनाई गई थी।

२—केन्द्रीय शासन में दोहरे शासन विधान (Dyarchy) का सिद्धान्त स्वीकार किया गया था।

३—प्रान्तीय स्वराज्य का जन्म दिया गया था।

४—गवर्नरों तथा गवर्नर जनरल को अनेक विशेषाधिकारों से सुसज्जित किया गया था।

संघ-शासन विधान का श्रीगणेश

१९३५ का शासन-विधान पहली अप्रैल सन् १९३७ ई० को प्रान्तों में कार्यान्वित किया गया। चुनाव में काँग्रेस ने दिल खोल कर हिस्सा लिया और ६ सूबों में इसका बहुमत रहा। जब मंत्रिपद ग्रहण करने का प्रश्न उठा तो काँग्रेस ने इसे इनकार कर दिया। इसका उद्देश्य शासन को चलाना न था बल्कि इसे तोड़ना था। काँग्रेस को यह डर था कि गवर्नरों के विशेषाधिकार के सामने उसका

बहुमत कोई काम नहीं कर सकता। जब तक मंत्रिपद सम्बन्धी झगड़ा चलता रहा तब तक शासन को चलाने के लिये गवर्नरों ने गुड़िया मंत्रिमंडल (Interim Ministries) बना कर अपना कार्य आरम्भ किया। १९३७ ई० में जुलाई के महीने में भारत-मंत्री और गवर्नर-जनरल के आश्वासन दिलाने पर काँग्रेस ने मंत्रिपद का भार स्वीकार कर लिया। बम्बई, मद्रास, संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, बरार, बिहार और उड़ीसा—इन सूबों में काँग्रेस सरकार क़ायम हो गई। बाद में पश्चिमोत्तर प्रदेश और आसाम में भी कांग्रेस ने संयुक्त मंत्रि-मंडल कायम कर लिया।

प्रान्तों में शासन का काम अच्छी तरह चलने लगा। काँग्रेस ने अपनी बुद्धि का अच्छा परिचय दिया। अनेक नये विभाग खोल कर उसने जनता के सामने यह सिद्ध कर दिया कि एक स्वतंत्र सरकार अपने देश की कहाँ तक भलाई कर सकती है। विदेशी-राज्य का पर्दा थोड़े समय के लिये जनता के सामने से दूर कर दिया गया। संयुक्तप्रांत तथा मध्यप्रांत में कुछ ऐसी घटनायें उपस्थित हुईं जिनसे शासन में फिर रुकावट पड़ने के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। संयागवश यह विपत्ति कुछ दिनों के लिये टल गई। प्रान्तीय शासन की सफलता को देखते हुए केन्द्रीय संघ-शासन का समय भी धीरे-धीरे निकट आ रहा था। परन्तु कोई वर्ग इस बात के लिये तैयार न था कि संघ-शासन अपने इसी रूप में जारी कर दिया जाय।

काँग्रेसी सरकारों का इस्तीफ़ा

१९३९ के आरम्भ में योरप में एक भयंकर लड़ाई के आसार नजर आने लगे। बृटिश सरकार की परिस्थिति नाज़ुक होने लगी। १९३९ के सितम्बर के महीने में लड़ाई आरंभ हो गई। हिन्दोस्तान पर भी इस लड़ाई का तात्कालिक असर पड़ा। ब्रिटिश सरकार ने जर्मनी के विरुद्ध लड़ाई का एलान किया और उसी में हिन्दोस्तान को भी अपना साथी करार दिया। जीवन-मरण की इतनी बड़ी लड़ाई में हिन्दोस्तान शरीक तो कर दिया गया परन्तु हिन्दोस्तानियों की राय बिलकुल न ली गई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतवासियों की सहानुभूति ब्रिटिश सरकार के प्रति थी। वे नहीं चाहते थे कि दुनिया में नाजी सरकार का दबदबा हो जाय। काँग्रेस ने बृटिश सरकार से इस बात की माँग पेश की कि लड़ाई के अन्त में वह हिन्दोस्तानियों को यह अधिकार दे दे कि वे विधान-सभा (Constituent Assembly) द्वारा अपनी शासन-पद्धति स्वयं बना सकें। इसको दूसरे शब्दों में यह

कह सकते हैं कि काँग्रेस से पूर्ण स्वतंत्रता की माँग पेश की थी। इस पर भारत-मंत्री ने घोषित किया कि हिन्दोस्तान में इतनी साम्प्रदायिक उलझनें हैं कि वह अभी स्वतन्त्रता के योग्य नहीं है। लड़ाई के समय शासन-विधान में किसी तरह का परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

इस कड़े जवाब को सुनते ही नवम्बर सन् १९३९ ई० में ८ प्रान्तों की काँग्रेस सरकार ने इस्तीफा दे दिया। गवर्नरों ने इस बात की कोशिश की कि दूसरी पार्टियाँ शासन का भार ले लें, परन्तु आसाम को छोड़कर और किसी सूबे में उन्हें सफलता न मिल सकी। अन्त में विवश होकर उन्हें घोषित करना पड़ा कि शासन की मशीन फेल कर गई। १९३५ के शासन-विधान की ९३ धारा के अनुसार गवर्नरों ने शासन की पूरी बागडोर अपने हाथों में ले ली। धारा-सभायें बर्खास्त कर दी गईं, और गवर्नरों ने दो-चार सरकारी अफसरों को अपना सलाहकार नियुक्त कर शासन को चलाना आरम्भ किया।

सत्याग्रह आन्दोलन

भारतीय जनता की अनुमति के बिना ही हिन्दोस्तान लड़ाई में शरीक कर दिया गया। बृटिश सरकार यह चाहती थी कि काँग्रेस पिछली लड़ाई की तरह इसमें भी बृटेन का पूरा सहयोग दे। काँग्रेस ने अपने एक प्रस्ताव में यह स्पष्ट कर दिया था कि जब तक हिन्दोस्तान स्वतन्त्र नहीं किया जाता, तब तक वह मित्र राष्ट्रों की अच्छी तरह मदद नहीं कर सकता। अप्रैल १९४० ई० में रामगढ़ के काँग्रेस अधिवेशन में यह बात फिर दुहराई गई कि पूर्ण स्वराज्य से कम किसी भी तरह की चीज़ स्वीकार न की जायगी। व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ हुआ और हजारों आदमी जेल में डाल दिये गये। एक साल से अधिक सत्याग्रह चलता रहा और सरकार तथा काँग्रेस में समझौते का कोई रास्ता न निकला। २१ जुलाई सन् १९४१ ई० को वाइसराय ने यह घोषणा की कि केन्द्रीय कार्यकारिणी सभा में सदस्यों की संख्या बढ़ाई जायेगी और एक 'राष्ट्रीय रक्षा-समिति' का निर्माण किया जायगा। काँग्रेस को इस घोषणा से सन्तोष न हुआ और वह अपनी नीति पर डटी रही।

सर स्टेफोर्ड क्रिप्स का आगमन

काँग्रेस के अपनी नीति पर डटे रहने के बावजूद बृटिश सरकार एक-एक करके सत्याग्रहियों को जेल से निकालने लगी। इसी बीच मार्च १९४२ में इंगलैंड के एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ सर स्टेफोर्ड क्रिप्स बृटेन के सम्राट् की ओर से सुलह का एक संदेश लेकर हिन्दोस्तान में आये।

भारतीय नेताओं को निमन्त्रित किया गया कि वे उनसे दिल्ली में मिलें। बड़ी बड़ी आशायें लेकर काँग्रेस तथा लीग के नेता दिल्ली को रवाना हुये। क्रिप्स ने एक लम्बी योजना उनके सामने पेश की और उन्हें आश्वासन दिलाया कि सब लोग इस पर विश्वास कर अमल करें। वैसे तो इस योजना में बहुत सी कमजोरियाँ थीं परन्तु सबसे बड़ी कमजोरी रक्षा का प्रश्न था। इसके अनुसार रक्षा का पूर्ण अधिकार कमाण्डर इन-चीफ को दिया गया था। काँग्रेस का कहना था कि, "रक्षा का पूरा भार किसी हिन्दुस्तानी को दिया जाय। हिन्दोस्तान इस समय खतरे में है और इसकी रक्षा का सवाल सबसे पहला सवाल है। हिन्दोस्तानियों को छोड़कर कोई और इसकी रक्षा नहीं कर सकता।" बात भी ठीक थी क्योंकि १५ फरवरी १६४२ ई० को सिंगापुर पर जापानियों का कब्जा हो गया था और वे लगातार बढ़ते आ रहे थे। हिन्दोस्तानी अपने देश की रक्षा के लिये अपना खून पानी की तरह बहा सकते थे। सुलह का पैगाम फेल कर गया। लोग और काँग्रेस दोनों ने इसे अस्वीकार कर दिया। क्रिप्स चुपचाप इंगलैण्ड को वापिस चले गये।

सर स्टेफोर्ड क्रिप्स हिन्दोस्तान के एक हितैषियों में गिने जाते थे, परन्तु सुलह के पैगाम ने उन्हें इतना बदनाम कर दिया कि उन पर तरह-तरह की बौछारें फेंकी जाने लगीं। काँग्रेस का कहना था कि क्रिप्स को ऐसी निस्सार योजना लेकर कभी नहीं आना चाहिये था। इस प्रस्ताव में केन्द्रीय सरकार के राष्ट्रीयकरण का कोई उल्लेख नहीं किया गया था। इससे हिन्दोस्तान के १३ या १४ छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जाने का डर था। महात्मा गाँधी का कहना था कि 'क्रिप्स साहब उस बैंक का एक चेक हिन्दोस्तान को देना चाहते थे जिसका दिवाला निकल चुका हो।' उनके प्रस्तावों का कुल निचोड़ यही था कि "अपनी वर्तमान स्थिति पर ही सन्तोष करो और युद्ध के बाद तुम्हें औपनिवेशिक पद प्रदान किया जायगा।" मुसलिम लीग के एक सदस्य का कहना है कि "यदि क्रिप्स के प्रस्ताव मान लिये गये होते तो दस करोड़ मुसलमानों की मिट्टी पलीद हो जाती।" हिन्दोस्तान से बिदा होते समय कराँची में क्रिप्स साहब ने कहा कि "काँग्रेस सब कुछ चाहती थी या कुछ नहीं, इसलिये उसे कुछ नहीं मिला।" उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि "महात्मा गाँधी अपने ही दल को सम्पूर्ण राजनीतिक अधिकार प्रदान करना चाहते थे।" इन बातों से हिन्दोस्तान में बृटेन के प्रति घृणा उत्पन्न होने लगी।

क्रिप्स के चले जाने के बाद हिन्दोस्तान के राजनीतिक आकाश में बादल सा छा गया। चारों ओर असन्तोष की ज्वाला बढ़ने लगी। काँग्रेस वर्किंग कमीटी ने यह प्रस्ताव पास किया कि "अंग्रेज हमारे देश को छोड़ दें" (Quit India)। इसी प्रस्ताव के समर्थन के लिये ६ अगस्त १६४२ को बम्बई में काँग्रेस कमीटी की बैठक हुई। कमीटी का कार्य अभी समाप्त भी नहीं हुआ था कि रात में ही बड़े बड़े नेता गिरफ्तार कर लिये गये। १० अगस्त १६४२ को भारत-मंत्री, लार्ड एमरी का वक्तव्य प्रकाशित हुआ कि काँग्रेस बृटिश सरकार का अंत करना चाहती थी और उसके कार्य-क्रम में तार तोड़ना, स्टेशन जलाना, दफ्तर फूँकना इत्यादि-इत्यादि बातें थीं। इस वक्तव्य ने मुल्क को चौकन्ना कर दिया और काँग्रेस तथा अन्य लोग जगह-जगह सरकारी सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाने लगे। किसी-किसी जिलों में तो रेल और तार के सारे खम्भे उखाड़कर फेंक दिये गए। अगस्त के महीने भर यही हाल रहा। सरकार ने भी अपना रुख बदला और बड़ी बेरहमी के साथ फौजी सिपाही इसे दबाने लगे। कितने घर जला दिये गये और सैकड़ों आदमी बन्दूक के निशाने बने। अक्टूबर के अन्त तक सब मामला ठंडा हो गया। काफी लोग जेलों में डाल दिये गये और शहर तथा गाँव दोनों से नुकसान की सारी रकम सामूहिक जुर्माने के रूप में वसूल की गई। कहा जाता है कि इस तोड़-फोड़ की ज़िम्मेवारी काँग्रेस के ऊपर थी। परन्तु जब उसके बड़े बड़े नेता पहले ही जेल में डाल दिये गये तो उसकी ज़िम्मेवारी कैसे हो सकती है। लार्ड एमरी के १० अगस्त के वक्तव्य ने इस कार्य-क्रम का प्रचार किया।

अगस्त की तोड़ फोड़ और बृटिश सरकार की ज़िम्मेवारी

१६४६ ई० तक बृटिश सरकार की नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। लड़ाई समाप्त हो जाने पर भारतीय राजनीति में फिर परिवर्तन की चर्चा होने लगी। मार्च १६४६ तक प्रान्तीय धारा-सभाओं के चुनाव समाप्त हो गए और कांग्रेस का काफी बहुमत रहा। काँग्रेस ने मंत्री पद स्वीकार कर शासन को चलाने का भार अपने ऊपर लिया। अप्रैल १६४६ में पार्लियामेन्ट ने एक मंत्रि दल इस आशय से हिन्दोस्तान में भेजा कि हिन्दोस्तान के साथ एक स्थायी सुलह कर ली जाय। बृटिश मंत्रि दल ने हिन्दोस्तान के सभी बड़े लीडरों से परामर्श करने के बाद १६ मई सन् १६४६ को पाँच हजार शब्दों की 'अखिल-

बृटिश मंत्रि-मण्डल का प्रस्ताव

भारतीय-यूनियन' बनाने की एक योजना प्रकाशित की। इसमें पाकिस्तान की योजना अस्वीकार कर दी गई थी। प्रान्तों को पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई थी और उन्हें समूह अथवा उपसङ्घ में संगठित होने की स्वतन्त्रता थी। इसके जवाब में २४ मई सन् ४६ को कॉंग्रेस वर्किंग कमेटी ने एक हज़ार शब्दों का एक प्रस्ताव पास कर यह घोषित किया कि बृटिश मंत्रिदल का प्रस्ताव तभी स्वीकार किया जायगा जब उसमें नीचे लिखी बातें स्पष्ट रूप से मान ली जायँ :—

१—भारत की स्वाधीनता।

२—यद्यपि सीमित किन्तु दृढ़ केन्द्रीय सरकार।

३—प्रान्तों को पूर्ण शासनाधिकार।

४—केन्द्र तथा प्रांतों में लोकतंत्रवादी व्यवस्था।

५—प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की रक्षा।

भारतीय संघ का निर्माण

हिन्दोस्तान के बड़े से बड़े नेता को यह विश्वास न था कि भारतीय स्वतंत्रता के साथ देश का दो हिस्सों में बटवारा होगा। मुसलिम लीग की यह माँग हवाई कल्पना समझी जाती थी। जब बृटिश पार्लियामेंट की बटवारे की योजना देश के नेताओं के सामने रक्खी गई तो लीग को छोड़कर किसी ने भी इसे स्वीकार न किया। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति से वशीभूत होकर बृटिश सरकार हिन्दोस्तान के प्रश्न को अब आगे नहीं टाल सकती थी। उसने स्पष्ट रूप से यह प्रश्न रख दिया कि कॉंग्रेस और मुसलिम लीग आपसी मतभेद पर विचार कर ले और भारतीय स्वतंत्रता को जिस रूप में चाहे ग्रहण करे। मुसलिम लीग ने पाकिस्तान के प्रश्न को और भी जटिल बनाया। देश में अनेक स्थलों पर साम्प्रदायिक दंगे हुये, जिनमें लाखों निर्दोष व्यक्तियो की हत्या हुई। अन्त में महात्मा गांधी तथा कुछ अन्य नेताओं ने पाकिस्तान की योजना को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार भारतीय स्वतन्त्रता के साथ भारतीय संघ (Indian Union) का जन्म हुआ। संघ ने १९३५ के शासन-विधान में कुछ संशोधन कर अपना कार्य तब तक चलाना निश्चित किया है, जब तब विधान परिषद् एक नया शासन विधान पूर्ण रूप से तैयार न कर ले।

विधान परिषद् का कार्य

भारतीय संघ का वर्तमान विधान अस्थायी है। पूर्व निर्णय के अनुसार ९ दिसम्बर १९४६ ई० में जो विधान परिषद् (Constituent Assembly) बनाई गई थी वह अभी तक अपने कार्य में व्यस्त है।

अभी अभी उसने विधान की एक रूप-रेखा प्रकाशित की है जिसके आधार पर अन्तिम रूप देने में कुछ और समय की आवश्यकता होगी। सम्भव है यह कार्य १९४९ के मध्य तक समाप्त हो जाय, परन्तु इसे क्रियात्मक रूप देने में कम से कम एक वर्ष का समय लगेगा। शासन-निर्माण के इस कठिन कार्य में देश के २९७ प्रमुख व्यक्ति संलग्न हैं। उनके सामने अनेक कठिनाइयाँ हैं, जिन्हें हल करना आवश्यक है।

वर्तमान स्थिति

वर्तमान स्थिति में देश कठिनाइयों के विकट मार्ग से गुजर रहा है। अनेक समस्यायें नेताओं की बुद्धि से टक्कर ले रही हैं। एक ओर देश में साम्प्रदायिकता का भय है और दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति गम्भीर है। स्वतन्त्रता के बाद देशवासियों की बड़ी बड़ी आशाओं को पूर्ण करने में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हैं। शिक्षा, व्यवसाय, उद्योग-धन्धों, राष्ट्रभाषा, आर्थिक स्थिति, गरीबी, बेकारी—आदि प्रश्न को हल करने में सरकार पूर्ण रूप से जागरूक है। देशी रियासतों, शरणार्थियों तथा पाकिस्तान सम्बन्धी उत्पन्न अनेक समस्याओं का हल निकालने में फूँक फूँक कर चलना पड़ता है। विदेशों से सम्बन्ध बनाये रखने का कार्य भी जारी है। देश की रक्षा के लिये सैनिक शिक्षा का प्रश्न भी हल किया जा रहा है। महात्मा गाँधी की मृत्यु के बाद इधर कॉंग्रेस से समाजवादी दल पृथक् होकर कार्य कर रहा है। कम्यूनिस्ट, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, हिन्दू महासभा तथा मुसलिम लीग की मनोवृत्ति के अन्य संगठन सरकार की दृष्टि में काँटे की तरह खटक रहे हैं। इन सब कठिनाइयों को पार करते हुये कांग्रेस सरकार कहाँ तक भारतीय राष्ट्र को सुख, समृद्धि और शान्ति के मार्ग पर ले जाने में समर्थ होगी—यह भविष्य का विषय है। प्रान्तीय सरकारों की नवीन योजनाओं को देखते हुये आशा की नदी बढ़ रही है। एक ओर घरेलू उद्योग-धन्धों के बढ़ने का प्रयत्न "सर्वोदय समाज" की ओर से हो रहा है तो दूसरी ओर विदेशी मशीनों का भी उपयोग किया जा रहा है। यदि वैधानिक स्थिति शान्त रही तो देश निकट भविष्य में होसदियों की गरीबी और मनोमालिन्य को दूर कर संसार में एक सम्मानित स्थान प्राप्त करेगा।

अध्याय २

शासन के गुण-दोष

संघ-शासन की आवश्यकता

प्रत्येक संघ-सरकार के लिये दो चीजें आवश्यक हैं। एक तो बहुत सी रियासतें अथवा सूबे एक दूसरे के पड़ोसी हों। इनके इतिहास, इनकी परम्परा और इनकी रहन-सहन में एकता की झलक हो। दूसरी आवश्यकता इन सूबों के अन्दर एक ऐसी भावना को है जो इन्हें मिलाने के लिये प्रेरित करती हो। इनके अन्दर यह प्रबल इच्छा हो कि वे स्वतन्त्र रहते हुये एक केन्द्रीय सरकार बनावें। संघ-सरकार की उत्पत्ति इन्हीं भावनाओं से होती है। भारतीय संघ-शासन में ये दोनों भावनायें पाई जाती हैं। इस देश में ६०० के लगभग छोटी-छोटी रियासतें और १७ सूबे हैं। बहुत दिनों से इनकी इच्छा रही है कि एक संघ-शासन बनाया जाय। १६३५ का शासन-विधान इसी का परिणाम था।

संघ-शासन क्या है?

संघ-शासन की परिभाषा राजनीतिज्ञों ने कई प्रकार से की है। यह राजनीतिक टुकड़ों का वह संगठन है जो सब की ओर से किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये बनाया जाता है। संघ शब्द ही यह सूचित करता है कि बहुत से छोटे-छोटे समूह इसमें सम्मिलित हैं। यदि किसी दबाव के कारण बहुत सी रियासतें एक सम्मिलित सरकार क़ायम कर लें तो उसे संघ नहीं कहा जा सकता। यद्यपि सबके लिये एक केन्द्रीय शासन की स्थापना हो जाती है, परन्तु इसमें उन्हें वह स्वतन्त्रता नहीं है जो एक संघ-शासन के अन्दर होनी चाहिये। संघ-शासन के लिये यह आवश्यक है कि छोटे-छोटे विभाग अपनी स्वतन्त्रता से एक सम्मिलित सरकार बनावें। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ४८ रियासतों ने अपनी इच्छा से एक केन्द्रीय शासन की स्थापना की है। इन्हें यह अधिकार है कि जब चाहें संघ से अपने को अलग कर लें। प्रत्येक रियासत को यह पूरी स्वतन्त्रता है कि वह अपनी शासन-पद्धति जैसी चाहे रक्खे। वास्तव में संघ-शासन एक प्रकार का सुलहनामा है, जो स्वतन्त्र रियासतें अपने लाभ की दृष्टि से करती हैं। वे अपना कर्त्तव्य अपने आप निश्चित करती हैं। प्रत्येक रियासत अपनी राजसत्ता को कायम रखती है। संघ-शासन से एक ऐसी शक्ति

उत्पन्न होती है जो सभी रियासतों की रक्षा और उन्नति को जिम्मेवार रहती है।

संघ-शासन के लिये तीन बातों का होना आवश्यक है। इनकी अनुपस्थिति में इस शासन-पद्धति का निर्माण नहीं हो सकता।

संघ-शासन की शर्तें

(१) प्रत्येक संघ-सरकार शासन से ही अपनी शक्ति प्राप्त करती है। शासन-विधान में यह बात स्पष्ट कर दी जाती है कि सुलह की कौन-कौन सी शर्तें हैं। संघ-सरकार की स्थापना के बाद रियासतें उन बातों को मानने के लिये बाध्य हैं जिनकी प्रतिज्ञा उन्होंने की है। संघ-सरकार और रियासतों की सरकारें दोनों के अधिकार की सीमा शासन विधान में निश्चित कर दी जाती है। इसीलिये ऐसे शासन-विधान के लिये यह आवश्यक है कि लिखित हो और सरकार की साधारण मशीन उसे बदल न सके। रियासत और संघ-सरकार किसी एक को यह अधिकार नहीं दिया जाता कि वह शासन-विधान में जैसा चाहे परिवर्तन कर दे। इसे बदलने का अधिकार केवल विशेष अधिकारियों को दिया जाता है। जब कभी इसमें परिवर्तन की आवश्यकता होती है तो अनेक शक्तियों से राय लेनी पड़ती है। संघ-शासन को बदलना उतना ही मुश्किल है, जितना किसी कानून को रद्द करना।

शासन की प्रधानता

(२) संघ-शासन के लिये दूसरी शर्त शक्तियों का विभाजन है। अर्थात् प्रत्येक रियासत को यह अच्छी तरह मालूम हो कि उसके क्या-क्या अधिकार हैं। केन्द्रीय सरकार और रियासती सरकारों के अधिकार एक दूसरे से अच्छी तरह अलग होने चाहिये। एक ऐसी सूची बननी चाहिये जिसमें विस्तार पूर्वक विषयों को बाँटा गया हो कि अमुक विषय केन्द्रीय सरकार के और शेष रियासतों के हाथ में हैं। इस विभाजन में कोई विशेष कठिनाई नहीं हो सकती। जो-जो विषय स्थानीय हों वे रियासतों को दे दिये जायँ और जिन विषयों का सम्बन्ध सम्पूर्ण देश तथा विदेशों से हो वे केन्द्रीय सरकार को दिये जायँ। इससे आपस में मतभेद के अवसर उत्पन्न नहीं हो सकते। इसलिये संघ-शासन-विधान बहुत ही स्पष्ट और सुलझा हुआ होना चाहिये।

शक्ति-विभाजन

संघ-न्यायालय

(३) यद्यपि संघ-शासन-विधान में सारी बातें लिखित होती हैं ; अधिकारों का विभाजन कर दिया जाता है ; फिर भी ऐसे अवसर पैदा हो जाते हैं जब शासन-विधान में कुछ कमी दिखलाई । कभी कभी दो रियासतें आपस में उलझ जाती हैं । केन्द्र और रियासती सरकार भी मतभेद उत्पन्न हो जाता है । शासन के कि धारा के दोहरे अर्थ पैदा कर दिये जाते हैं । अधिकारों के स्पष्टीकरण की आवश्यकता उत्पन्न होती रहती है। इस प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने के लिये यह आवश्यक है कि एक प्रधान शक्ति बना दी जाय । इसी का नाम संघ-न्यायालय कहा जाता है । यही न्यायालय शासन-विधान सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर करता है । जैसे वकील कचहरियों में कानून के अर्थ को स्पष्ट करता है, उसी तरह संघ-न्यायालय शासन को व्यक्त करता है । इस मशीन से सबसे बड़ा लाभ यह है कि किन्हीं भी दो शक्तियों में असन्तोष उत्पन्न नहीं हो पाता । संघ-न्यायालय को शासन का संरक्षक कहा गया है । सबसे प्रवीण राजनीतिज्ञ और कानून के ज्ञाता इस संघ-न्यायालय के न्यायाधीश बनाये जाते हैं । इन्हें सभी प्रकार से निष्पक्ष और स्वतन्त्र रक्खा जाता है ।

भारतीय संघ-शासन का विकास

भौगोलिक दृष्टि से भारतवर्ष अब तक एक ही प्रदेश रहा है । इसका क्षेत्रफल लगभग १६ लाख वर्गमील और जनसंख्या ४० करोड़ के लगभग थी । राजनीतिक दृष्टि से यह देश दो टुकड़ों में विभाजित था—भारतीय रियासतें और अंग्रेजी सूबे । सूबों का क्षेत्रफल ८ लाख ६२ हज़ार वर्गमील और जनसंख्या ३० करोड़ के लगभग । रियासतों का क्षेत्रफल ७ लाख वर्गमील और जनसंख्या ६ करोड़ से कुछ ऊपर रही है । सारे हिन्दोस्तान में ६०० के लगभग रियासतें थीं । इन रियासतों को अधिकार की दृष्टि से दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता था । पहिली श्रेणी में वे रियासतें रही हैं जो सभी प्रकार से स्वतन्त्र थीं । केवल बाहरी मामलों में वे बृटिश सरकार की मातहत रही हैं । बाकी रियासतें भीतरी और बाहरी दोनों दृष्टियों से परतन्त्र रही हैं ।

रियासतों का संबंध सीधे सम्राट् से होता रहा है । सम्राट् ने अपनी शक्ति गवर्नर-जनरल को वाइसराय के रूप में दे रक्खी थी । इस शक्ति को सर्वोच्च शक्ति (Paramount Power) कहा जाता था । यह अधिकार सम्राट् को विभिन्न संधियों और सुलहनामें में प्राप्त हुये थे । यद्यपि इस संबंध को स्थापित हुये लगभग १०० वर्ष व्यतीत हो चुके थे परन्तु इसका स्पष्टीकरण

ठीक नहीं था। बटलर कमेटी ने इसे स्पष्ट करने में अपनी असमर्थता प्रकट की थी। यह सम्बन्ध समय-समय पर बदलते रहे हैं। कभी-कभी बृटिश सरकार इनमें हस्तक्षेप की नीति चलाती रही है और कभी इन्हें स्वतन्त्र भी रक्खा है। इन रियासतों को वाह्य रक्षा का पूरा आश्वासन दिया गया था। वाइसराय को यह अधिकार रहा है कि वह जब चाहे इनके भीतरी मामलों में हस्तक्षेप करे। रियासत को यह अधिकार नहीं था कि वह किसी विदेशी राज्य से अपना सम्बन्ध जोड़े। समय पड़ने पर बृटिश सरकार उनसे मनमानी सहायता लेती रही। अपने राज्य में शान्ति रखने के लिये ये रियासतें बाध्य थीं। आर्थिक, और राजनीतिक दृष्टि से भी इनमें बड़ा मतभेद था। ३० रियासतों में धारा सभायें थीं। ४० रियासतों में अंगरेजी ढंग के न्यायालय स्थापित किये गये थे।

भीतरी मामलों में शासन चलाने के लिये इन रियासतों को काफी स्वतन्त्रता रही है। ये अपने तरीके पर अपना धन खर्च कर सकती थीं। बाहरी सम्बन्ध सम्राट् के हाथों में था। केन्द्रीय सरकार में एक राजनीतिक विभाग (Political Department) स्थापित किया गया था, जो इन रियासतों की देख-रेख करता था। प्रत्येक रियासत में एक अंगरेज रेजीडेन्ट रहता था। पहिली अप्रैल सन् १९३७ ई० से सम्राट् वाइसराय द्वारा अपनी शक्तियों का प्रयोग करता रहा है। बृटिश प्रान्तों में सम्राट् का अधिकार पहले से ही कायम था। इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से हिन्दोस्तान के दोनों विभाग एक ही राजसत्ता के अन्तर्गत रहे हैं। बृटिश परम्परा तथा स्वार्थ ने इन्हें एक दूसरे से अलग कर रक्खा था।

रियासतों और सूबों में चाहे जितना भी अन्तर रहा हो, दोनों का हित एक दूसरे से मिला हुआ था। दोनों एक ही पेड़ की दो शाखायें थीं। एक की उन्नति-अवनति का प्रभाव दूसरे पर पड़े बिना नहीं रह सकता था। नक़शे पर नजर डालने से लाल और पीले रंग एक दूसरे से भिन्न मालूम पड़ते थे, परन्तु उनके घनिष्ठ सम्बन्ध की छाया हमारी आँखों के सामने आ जाती थी। भौगोलिक दृष्टि से रियासतों और सूबों में कोई भेद नहीं रहा है। स्थान की दृष्टि से ये दोनों एक दूसरे से लिपटे हुये थे। इनकी आबादी भी लगभग एक सी थी। दोनों ही ग्रामीण और उपजाऊ प्रदेश रहे हैं। ऊपर कहा गया है कि दोनों की राजसत्ता सम्राट् के हाथों में थी। आर्थिक दृष्टि से समूचा हिन्दोस्तान एक रहा है। देश की भलाई के सारे साधन एक दूसरे से मिले-जुले थे। राष्ट्रीयता की दृष्टि से सम्पूर्ण भारतवर्ष एक ही राष्ट्र रहा है। दोनों की संस्कृति भी एक रही है

धार्मिक आचार-विचार सूबे और रियासतों दोनों में एक से थे। इतनी एकता होते हुये यदि संघ शासन की स्थापना की गई तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। सभी दृष्टियों से यह देश संघ-शासन के योग्य रहा है और आज भी है।

इधर कुछ वर्षों से भारतीय रियासतें इस बात की माँग पेश कर रही थीं कि बृटिश प्रान्तों के साथ उनका व्यावहारिक सहयोग स्थापित हो जाय। बटलर कमेटी ने इस बात पर विचार किया था कि किस प्रकार रियासतें और सूबे एक प्लेटफार्म पर आ सकते हैं। मान्टेग्यू और चेम्सफोर्ड के दिमाग में यह बात पूरी तरह आई थी कि सारे हिन्दोस्तान के लिये एक शासन-विधान बनना चाहिये। यह बात मान ली गई थी कि हिन्दोस्तान में शासन-सम्बन्धी कठिनाइयाँ तभी दूर हो सकती हैं जब इस देश का शासन-विधान संघ-शासन के आधार पर बना दिया जाय। जब तक ऐसा नहीं किया जाता तब तक सूबों और रियासतों में सहयोग उत्पन्न नहीं हो सकता। जिस समय मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुई उस समय रियासतें संघशासन के प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के लिये तैयार न थीं। साइमन कमीशन की रिपोर्ट भी ठुकरा दी गई थी। कारण यह था कि उपरोक्त किसी भी सुधार में केन्द्रीय शासन में परिवर्तन की कोई चर्चा न थी। केवल प्रान्तों में थोड़े बहुत अधिकार देकर बृटिश सरकार हिन्दोस्तानियों को सन्तुष्ट करना चाहती थी। ऐसी दशा में संघ-शासन की बातें करना अधिकार की एक हँसी उड़ाना था।

देशी राजाओं के मन में यह बात आने लगी कि बृटिश प्रान्तों का प्रभाव उन पर पड़े बिना नहीं रह सकता। उन्हें यह ध्यान आया कि प्रान्तों के निवासी उनके भाई हैं। साथ ही उन्हें यह भय था कि वे हिन्दोस्तान की वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति से अपने को अलग नहीं रख सकते। राष्ट्रीय भावनायें रियासतों में भी काम कर रही थीं। उनकी जनता सूबों की देखा देखी जिम्मेवार शासन की माँग पेश कर रही थी। इन बातों ने राजाओं को इस बात के लिये सचेत कर दिया कि उनका राजनीतिक भविष्य प्रान्तों से अलग नहीं है। इसलिये उन्होंने यह फैसला किया कि वे संघ-शासन में प्रवेश करने के लिये तैयार हैं। पहली गोलमेज़ सभा में राजाओं ने अपने इस विचार को बृटिश सरकार के सामने रक्खा। काँग्रेस ने पहली सभा की कार्रवाइयों को स्वीकार कर लिया और १६३१ ई० की दूसरी गोलमेज़ सभा में महात्मा गाँधी को अपना प्रतिनिधि चुन कर भेजा। तीनों गोलमेज़ सभायें समाप्त हो जाने के बाद २ अगस्त सन्

१९३५ ई० को संघ-शासन-विधान पास किया गया। इसके अनुसार हिन्दोस्तान में एक संघ-शासन की स्थापना की गई। १५ अगस्त १९४७ ई० के स्वतन्त्रता ऐक्ट के अनुसार कुछ रियासतें पाकिस्तान में सम्मिलित कर दी गईं। शेष, जो भारतीय संघ (Indian Union) में हैं क्रमशः अपनी रूप रेखा को बदल रही हैं। कुछ तो प्रान्तों में सम्मिलित होने लगी हैं और शेष छोटे-छोटे संघ के रूप में मिलती जा रही हैं। उनके शासक, जो अब तक निरंकुश रहे हैं, उत्तरदायी शासन बनाने में संलग्न हैं। प्रजामंडल की मान्यता बढ़ रही है। तात्पर्य यह है कि भविष्य में प्रान्तों और रियासतों का भेद-भाव समाप्त हो जायगा। १९४८ के भारतीय सम्विधान के प्रस्ताव को देखते हुये स्पष्ट है कि इस भेद-भाव की कोई आवश्यकता नहीं है। एक सुदृढ़ राष्ट्र के निर्माण में यह अन्तर घातक होता है।

भारतीय संघ-शासन के गुण-दोष

भारतीय संघ-शासन-विधान संघ-शासन की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। सम्पूर्ण शासन-विधान लिखित कर दिया गया था। इसमें परिवर्तन करना आसान नहीं था। केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों का विभाजन भी कर दिया गया था। एक संघ-न्यायालय की भी स्थापना की गई थी। फिर भी भारतीय संघ-शासन-विधान अपनी एक विशेषता रखता था। इस विशेषता का बहुत कुछ कारण इस देश की राजनीतिक परिस्थिति रही है। इस शासन-विधान में कुछ ऐसे दोष थे जो इसकी उपयोगिता को कम कर देते थे।

(१) संघ-शासन में यह आवश्यक है कि इसमें शामिल होने वाले सूबे या रियासतें पूर्ण स्वतंत्र हों। उनकी राजसत्ता उन्हीं के अन्दर मौजूद हों। किसी विशेष सामूहिक हित की दृष्टि से वे एक संघ की स्थापना करते हैं। भारतीय संघ-शासन में इन दोनों बातों का अभाव था। रियासतें और सूबे दोनों ही परतन्त्र थे। दोनों की राजसत्ता सम्राट् के हाथों में थी। अँग्रेजी सूबे संघ-शासन में आने के लिये बाध्य थे। ये दोनों बातें इस बात को सिद्ध करती थीं कि यह संघ-शासन उनकी इच्छा के विरुद्ध था। इसकी स्थापना होने पर भी इस देश की राजसत्ता सम्राट् और पार्लियामेंट के हाथों में थी। शासन के निर्माण में जनता की राय नहीं ली गई थी। सारी कार्रवाई स्वयं पार्लियामेंट ने की। इसीलिये कहा जाता था कि भारतीय संघ-शासन-विधान हिन्दोस्तानियों पर 'जबरदस्ती लादा गया है।'

(२) शासन की मशीन को देखते हुये यह स्पष्ट है कि संघ-शासन एक ऊपरी ढोंग था। बृटिश सरकार की पुरानी नीति उसी प्रकार बनी हुई थी। केन्द्रीय शासन की बागडोर ढीली नहीं की गई थी। प्रान्तों के गवर्नरों तथा गवर्नर-जनरल को तरह-तरह के विशेष अधिकार देकर पार्लियामेंट ने अपने अधिकारों को कम नहीं किया था। जिस लाभ की दृष्टि से सूबे और रियासतें एक स्थान पर आना चाहती थीं वह लाभ ही गायब था। इसका फैसला पार्लियामेंट के हाथों में छोड़ दिया गया था।

(३) संघ-शासन में यह आवश्यक है कि जो इकाइयाँ इसमें शरीक हों उनमें काफी समानता हो। उनके पद और अधिकार एक से हों। भारतीय संघ-शासन में इस नियम का अभाव था। रियासतें पद और अधिकार में सूबों से इतनी भिन्न रही हैं कि उनमें समानता का कोई भाव नहीं था। राजाओं की पुरानी निरंकुशता वैसी ही बनी रही। उनका शासन प्रजा के ऊपर इतना कड़ा था कि वह राजनीतिक अधिकारों का स्वप्न भी नहीं देखती। रियासतों में प्रजा की दशा गिरी हुई रही है। उन्हें छोटे-छोटे अधिकारों के लिये तरसना पड़ता था। कुछ रियासतों में प्रजा की दशा अच्छी रही, परन्तु प्रश्न तो ६०० रियासतों का था। इसके विपरीत सूबे किसी हद तक शासन के लिये स्वतन्त्र थे। वहाँ प्रजा को कुछ राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे। प्रान्तों को यह अधिकार दिया गया था कि वे अपना प्रतिनिधि चुन कर संघ-धारा-सभाओं में भेजें। चुनाव में केवल प्रान्तीय धारा-सभाओं के सदस्य वोट देने के अधिकारी थे। रियासतों में प्रजा को इतना भी अधिकार नहीं दिया गया था। वहाँ से जो सदस्य संघ-धारा-सभाओं में जाते वे राजाओं द्वारा मनोनीत रहते। इस प्रकार के भेद-भाव से बृटिश सरकार ने संघ-शासन के महत्व को बिगाड़ दिया था। जनता को सामान नागरिक अधिकार नहीं दिये गये थे।

(४) संघ-धारा-सभाओं द्वारा जो कानून पास किये जाते वे हिन्दुस्तान पर एक से लागू न होते। प्रान्तों में वे समान रूप से अवश्य बर्ते जाते, परन्तु रियासतों में उनका प्रभाव भिन्न-भिन्न होता। प्रत्येक रियासत के साथ बृटिश सरकार की जैसी शर्त थी, कानूनों का वैसा ही असर उस पर पड़ता। यह बात राजाओं की इच्छा पर छोड़ दी गई थी कि वे कुछ विषयों में संघ-धारा-सभाओं की बातें मानें। इस प्रकार का भेद-भाव एकता के स्थान पर कटुता उत्पन्न करता। जो शक्ति सारे हिन्दोस्तान के लिये बनाई गई थी उसकी नीति सब जगह एक सी न बर्ती जाय, यह बात कुछ समझ में नहीं आती।

(५) संघ-सरकार को यह अधिकार नहीं था कि वह शासन-विधान में परिवर्तन करे। यह अधिकार केवल पार्लियामेंट को दिया गया था।

(६) ऊपर कहा गया है कि संघ-धारा-सभाओं में रियासतों के सदस्य राजाओं द्वारा मनोनीत किये जाते। इसके विपरीत प्रान्तों के सदस्य प्रजा के प्रतिनिधि होते। लेकिन प्रजा को यह अधिकार नहीं था कि प्रत्यक्ष रूप से वह अपना प्रतिनिधि चुने। प्रान्तीय धारा-सभाओं के सदस्य इन्हें निर्वाचित करते*। निर्वाचन क्षेत्र साम्प्रदायिकता के आधार पर बनाये गये थे। प्रत्येक सम्प्रदाय को पृथक्-पृथक् निर्वाचन का अधिकार दिया गया था। इससे देश में साम्प्रदायिक भावनाओं का प्रचार होता और राष्ट्रीयता में बाधा पड़ती। प्रजा और धारा सभा के सदस्यों में सीधा सम्पर्क न होने में धारा-सभा की ज़िम्मेवारी कम हो जाती थी। संघ-शासनों में प्रायः छोटी धारा-सभाओं के सदस्य जनता के प्रतिनिधि होते हैं और बड़ी सभायें प्रत्येक रियासत के प्रतिनिधित्व की प्रतीक होती हैं। अर्थात् बड़ी सभा में रियासतें अपने आपको औरों के बराबर समझती हैं। क्षेत्रफल या जनसंख्या में कोई छोटी हो अथवा बड़ी, परन्तु उनका दर्जा बराबर होता है। भारतीय संघ में ऐसा नहीं किया गया था।

(७) संघ-शासन-विधान जनता को कोई अधिकार प्रदान नहीं करता था। संघ-धारा-सभाओं की बनावट दोषपूर्ण थी। उनके अधिकार बहुत ही सीमित थे। क़ानून के क्षेत्र में धारा-सभा के अधिकार नाम मात्र के लिये थे। आय-व्यय में भी उसके अधिकार कम थे। पग-पग पर गवर्नर-जनरल के विशेष अधिकारों से वह दबी हुई थी। धारा-सभा की इच्छा के विरुद्ध वह फरमान जारी कर सकता था। उसकी अनुमति के बिना उसे क़ानून बनाने का अधिकार प्राप्त था। यदि धारा सभा किसी मद के ख़र्चे को बन्द कर देती तो गवर्नर-जनरल उसे जारी कर सकता था। तात्पर्य यह है कि प्रजा के धन को उसके प्रतिनिधियों को खर्च करने का अधिकार नहीं था। शासन-प्रबन्ध में संघ-सरकार की आधी शक्ति एक मात्र गवर्नर-जनरल के हाथ में रक्खी गई थी। बाकी मामलों में भी वह जब चाहे हाथ डाल सकता था। उसकी व्यक्तिगत ज़िम्मेवारियाँ (Special Responsibilities) इतनी अधिक थीं कि उनको कोई

---

* १९३५ ई० के संघ-शासन-विधान के पूरी तरह कार्यान्वित न होने के कारण वे सब बातें पुस्तकों में ही रह गईं।

सीमा न थी। उनके सामने भारतीय मन्त्रियों के अधिकार सूर्य के सामने दीपक के समान थे।

इन तमाम कमजोरियों को एकत्र करने पर यह पता चलता है कि भारतीय संघ-शासन-विधान में 'संघ' शब्द उपयुक्त न था। पार्लियामेंट के अधिकार वैसे ही थे जैसे १९१९ के पहिले थे। रियासतों में राजाओं के अत्याचार वैसे ही होते रहते जैसे पहले होते आये थे। संघ-शासन-विधान में इसकी कोई दवा नहीं की गई थी। इस शासन-विधान में प्रजा के अधिकारों की घोषणा तक नहीं की गई थी। संयुक्तराज्य अमेरिका अथवा रूस से इसकी तुलना नहीं की जा सकती थी। शासन विधान में यह बात बार-बार कही गई थी कि हिन्दोस्तान की राजसत्ता बृटिश सम्राट् के हाथ में है। संघ-शासन की मशीन को चलाने का अधिकार भारत मन्त्री के हाथ में दिया गया था। वह इंजिन के ड्राइवर की तरह जैसे चाहता चलाता। गवर्नर-जनरल के अधिकार इतने अधिक थे कि आवश्यकता पड़ने पर वह सम्पूर्ण शासन-विधान को रद्द कर सकता था। उसे अधिकार था कि स्वतन्त्र रूप से हिन्दोस्तान पर राज्य करे। सरकार की आमदनी का ८० प्रतिशत उसे खर्च करने का अधिकार था। संघ-सरकार के बजट में ⅘ हिस्से पर धारा सभा का कोई अधिकार नहीं था।

सूबों तथा रियासतों को यह अधिकार नहीं था कि वे जब चाहें संघ से अलग हो जायँ। रियासतों को सूबों से कहीं अधिक स्वतन्त्रता दी गई थी। संघ में आना और न आना उनकी इच्छा पर था। एक ऐसी संख्या निश्चित कर दी गई थी जिससे कम रियासतों के सम्मिलित होने पर संघ-शासन आरम्भ नहीं किया जा सकता। संघ-धारा-सभा की बड़ी सभा में जब तक रियासतों के ५२ प्रतिनिधि न होते तब तक संघ की कारवाई आरम्भ नहीं की जाती। रियासतों के सम्राट् के साथ जो शर्तें हुई थीं वे उसी तरह बनी रहतीं। संघ की आमदनी में ९० प्रतिशत प्रान्तों से लिया जाता और केवल १० प्रतिशत रियासतें देतीं। प्रत्येक राजा को यह अधिकार था कि वह जब जैसे चाहता संघ शासन में सम्मिलित होता।

रेलवे तथा बैंक की कारवाइयाँ संघ-शासन की मातहती से अलग रक्खी गई थीं। संघ-धारा-सभा को यह अधिकार नहीं था कि वह मंत्रियों को भर्ती करे तथा उन्हें निकाल सके। यह अधिकार गवर्नर-जनरल को दिया गया था। वही विभागों को बाँटता और जब चाहता मंत्रियों को

निकाल सकता था। इससे स्पष्ट है कि मन्त्री अपनी कार्रवाइयों के लिए धारा-सभा के प्रति ज़िम्मेदार न होते। सुरक्षित विभाग (Reserved Department) गवर्नर-जनरल को मातहती में रहता। इसके लिये उसे मन्त्रियों और धारा-सभा के सलाह की कोई जरूरत न होती। धारा-सभा को बुलाने और स्थगित करने का अधिकार उसी को था।

शासन-विधान की १२वीं धारा में यह स्पष्ट कहा गया था कि गवर्नर-जनरल प्रान्तीय मामलों में हाथ डाल सकता है।* उसके विशेष अधिकार प्रान्तों में भी लागू होते। किसी भी संघ में संघ न्यायालय का फैसला अन्तिम माना जाता है। लेकिन भारतीय संघ-शासन-विधान इससे वंचित रक्खा गया था। संघ-न्यायालय के फैसले के बाद कुछ मुकदमों की अपील प्रिवी कौंसिल में होती। बड़ी-बड़ी सरकारी नौकरियाँ भारत मंत्री की इच्छा से दी जातीं। कहा जाता है कि संसार के इतिहास में इस प्रकार का संघ-शासन कहीं नहीं मिलता। इसके अन्दर अनेक वर्गों के स्वार्थ सुरक्षित रक्खे गये थे। ब्रिटिश साम्राज्य, भारतीय रियासतें धनी वर्ग आदि के हितों का विशेष ध्यान रक्खा गया था। लार्ड लोथियन लिखते हैं†, "नया शासन विधान तमाम बुराइयों के बावजूद हिन्दोस्तान की वर्तमान दशा के इतने अनुकूल है कि इसकी समालोचना करने वाले इसे अस्वीकार नहीं कर सकते।" हिन्दोस्तानियों की राष्ट्रीय भावनाओं के विकास और उसकी रक्षा पर थोड़ा भी ध्यान नहीं दिया गया था। एक सज्जन लिखते हैं‡ शासन के बनाने वालों ने एक ऐसा गलत रास्ता इख्तियार किया कि वे ठीक रास्ते से सही उद्देश्य पर नहीं पहुँच सके।" डाक्टर अम्बेदकर के शब्दों में§ "शासन-विधान का सर और पैर दोनों गलत था।"

---

* यह धारा १९४७ के संशोधित विधान से निकाल दी गई।

† The new Act, with all its defects and anomalies corresponds far more closely to the present day realities in India than its Indian critics are willing to admit.

‡ The framers, therefore, started wrongly and could not go on the right road to reach the right goal.

§ The federal constitution is wrong in its conception and wrong in its basis.

एक विद्वान् ने संघ-शासन विधान की समालोचना करते हुए लिखा था "राजनीतिक आवश्यकताओं ने दो अजनबी आदमियों को एक ही चारपाई पर सुला दिया है। अब यह देखना है कि कितने दिन तक इन दोनों की बनती है।" समालोचक का उद्देश्य प्रान्तों और रियासतों से था। इसकी समालोचना करते हुए श्रीयुत सुबास चन्द्र बोस ने लिखा था, 'भारतीय सरकारी ऐक्ट में जिस संघ-शासन की कल्पना की गई है वह एक धोखे की टट्टी है। इसमें बृटिश राजनीतिज्ञों ने हिन्दोस्तान को गुलाम रखने की तरकीबें सोची हैं। यह शासन एक प्रकार से प्रजातन्त्रवाद और फ्यूडल प्रथा दोनों को एक सूत्र में बाँधने की कोशिश करता है।"

१६१६ में बृटिश प्रान्तों में जो दोहरे शासन की नींव डाली गई थी वह सर्वथा असफल रही, हिन्दोस्तान का कोई वर्ग इससे संतुष्ट न रहा। १६३५ के संघ-शासन-विधान में प्रान्तों का दोहरा शासन दूर कर दिया गया, परन्तु केन्द्र में फिर यही स्थापित किया गया था। केन्द्रीय सरकार के कुछ विषय गवर्नर-जनरल के हाथ में और कुछ मन्त्रियों के हाथ में रक्खे गये थे। अपनी विशेष जिम्मेवारियों को चलाने के लिये उसे यह अधिकार था कि वह तीन व्यक्तियों को नियुक्त कर ले। धन सम्बन्धी मामलों में राय देने के लिए वह एक आर्थिक सलाहकार (Financial Adviser) भी नियुक्त कर सकता था। शासन-विधान में मन्त्रियों के आर्थिक अधिकारों को देखते हुए यह स्पष्ट है कि हिन्दोस्तानियों को आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं थी !*

१६१६ के शासन-विधान में बृटिश सरकार ने यह वादा किया था कि १० वर्ष बाद एक कमीशन नियुक्त करके यह जाँच की जायेगी कि सुधार की योजना कहाँ तक ठीक है। इससे स्पष्ट है कि शासन के बनाने वालों ने अपनी ईमानदारी में कोई कसर बाकी न रक्खी थी। परन्तु संघ-शासन-विधान में कोई ऐसा मार्ग नहीं था। सभी चीजें भविष्य पर छोड़ दी गई थीं। उपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion Status) की इस विधान में चर्चा तक नहीं थी। यह जिक्र कहीं नहीं था कि

---

* The political swaraj will be an empty husk without the economic swaraj. India, therefore, wants economic swaraj with the political swaraj. The Government of India Act, 1935, however, does not grant that.

हिन्दोस्तान का उपनिवेशिक स्वराज्य कब दिया जाता। सर सेमुअल होर ने जो उस समय भारतमन्त्री थे, कामन सभा में कहा था, हिन्दोस्तान को अगली बार भी इसे मिलने की सम्भावना नहीं है। श्री सत्यमूर्ति ने इस शासन-विधान पर राय प्रगट करते हुए कहा था* "हिन्दोस्तान की बढ़ती हुई राष्ट्रीय भावनाओं को देखते हुए यह शासन-विधान स्वीकार नहीं किया जा सकता।" भारत के राजनीतिक दलों में केवल हिन्दू सभा ने इसका समर्थन किया था। वह भी इसलिये कि इससे "अखंड हिन्दोस्तान" का समर्थन होता था।† काँग्रेस ने इसे विदेशी कह कर ठुकरा दिया था।

१९३५ का संघ-शासन अपनी निजी विशेषता रखता था। न तो हम इसे सच्चा संघ-शासन कह सकते थे और न इसमें प्रजातन्त्रवाद की कोई झलक थी। इस देश की परिस्थिति को देखते हुए इस तरह का शासन-विधान उपयोगी नहीं हो सकता था। प्रान्तों और रियासतों में इतना राजनीतिक भेद था कि दोनों एक सूत्र में नहीं बाँधे जा सकते थे। संघ-शासन का स्वरूप ऐसा विचित्र था जो कहीं सुना भी नहीं गया होगा। कारण यह है कि एक तरफ सूबों को और दूसरी तरफ रियासतों को बाँधा जाता है। एक की सरकार प्रजातन्त्रवाद के आधार पर होती और दूसरे में पूर्वी एकतन्त्रवाद होता।

मुस्लिम लीग ने संघ-शासन की कड़े शब्दों में आलोचना की थी। २० दिसम्बर सन् १९३८ ई० को बम्बई से एक वक्तव्य देते हुये मि० जिन्ना ने कहा था "संघ-शासन-विधान उस पौदे की तरह है जिसे लगाने की आशा हमें एक रेगिस्तान में दी गई है। मेरी समझ में बृटिश सरकार ने इस शासन-विधान को बनाकर एक बहुत बड़ी विपत्ति हमारे सर पर वैसे ही लाद दी है जैसे वर्साइल की सन्धि ने योरप के ऊपर।" साम्प्रदायिक दृष्टि से हिन्दुओं का यह कहना था कि संघ-धारा सभा में किसी भी प्रकार से उनका बहुमत नहीं होता। यही डर मुसलमानों

---

* Such a constitution cannot be accepted by India as suitable dwelling-place for new consciousness of nationhood.

† The Indian National Congress has rejected it because it is not a 'Swadeshi' constitution, having been forged in London by the combined efforts of the British Imperialists.

को भी था। काँग्रेस स्वयं डरी हुई थी कि वह बहुमत नहीं प्राप्त कर सकती। एक वक्तव्य देते हुए सर ए०एच० ग़ज़नवी ने कहा था "छोटी सभा में काँग्रेस अधिक से अधिक ४० सीट प्राप्त कर सकती है।" अल्पसंख्यक वर्ग सभी प्रकार से असन्तुष्ट थे।

संघ शासन के भयंकर परिणाम

संघ-शासन की योजना कुछ प्रान्तों में किसी तरह २७ महीने तक चली। अन्त में काँग्रेस को त्याग पत्र देना पड़ा। इस २७ महीने के शासन का प्रभाव राजनीतिक दृष्टि से देश पर बहुत ही बुरा पड़ा। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि काँग्रेस सरकार बुरी थी, बल्कि संघ-शासन की कमजोरियाँ देश में भली भाँति स्पष्ट हो गई थीं। साम्प्रदायिक प्रश्न बढ़ने लगे थे। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे को शत्रु समझने लगे। हिन्दू महासभा अपनी एक अलग राग अलापने लगी। स्वयं काँग्रेस में ३ दल बन गये। गाँधी जी के विचार वाले मंत्रिपद से सन्तुष्ट रहे। काँग्रेस-समाजवादी धारा सभाओं में चले तो गये किन्तु मंत्रिपद ग्रहण नहीं किया। अग्रगामी दल प्रान्तीय स्वराज्य का विरोध करता रहा। तात्पर्य यह है कि संघ शासन पूरी तरह लागू न होने पर भी इसके भयंकर परिणाम दिखाई पड़ने लगे थे। जो प्रश्न राष्ट्रीय उत्थान में दबे हुये थे और जिनके उभड़ने की आशा निकट भविष्य में न थी, वे इतने भयंकर रूप धारण कर लिये थे कि उन्हें हल किये बिना हमारी राष्ट्रीय उन्नति नहीं हो सकती थी। यदि संघ-शासन-विधान से यही परिणाम निकलना था तो उसे हम दूर से ही नमस्कार करते। जो शासन-विधान हमें थोड़ा भी अधिकार प्रदान नहीं करता, और जिससे देश में अनेक दल पैदा होते, उसके चलाने की चेष्टा हमें भूल कर भी नहीं करनी चाहिये थी। इसका बुरा प्रभाव यहाँ तक पड़ा कि मुसलमान हिन्दोस्तान को दो राष्ट्रों में बाटने की राग अलापने लगे। उनकी पाकिस्तान योजना देश के लिये घातक नहीं तो और क्या है?

"The Indian Federal System," writes Mr. H. B. Lees Smith, "Will be of a kind hitherto unknown, for there will be one set of federal powers for the provinces and another for each of the Indian Native States. The government of one part of the Federation will be based upon Parliamentary principles, that of the other upon oriental absolutism."

१९४७ का अस्थाई विधान

जब तक विधान परिषद देश के लिये शासन-विधान का निर्माण नहीं कर लेती, तब तक वर्तमान काँग्रेस सरकार १९३५ ई० के संघ-शासन-विधान में कुछ परिवर्तन कर कार्य का संचालन कर रही है। ऐसी दशा में शासन के गुण-दोष का प्रश्न ही नहीं उठता। काँग्रेस सरकार ने केवल कार्य चलाने के लिये पिछले विधान को स्वीकार किया है वरन् वह पर्लियामेंट द्वारा निर्मित विधान को कब स्वीकार कर सकती थी। आशा है १९४९ के मध्य तक भारतीय संघ का नया शासन विधान तैयार हो जायगा। वही इस देश का पहला विधान होगा, जिसमें राष्ट्रीयता की वास्तविक झलक होगी। फिर भी त्रुटियों का रहना अनिवार्य है। कोई ऐसा विधान नहीं बन सकता जिसमें थोड़ी-बहुत कमज़ोरियाँ न हों। विधान परिषद द्वारा निर्मित विधान की रूप रेखा को देखते हुये स्पष्ट है कि इसकी कुछ बातों से राजनीति के विद्वान् सहमत नहीं हो सकते। परन्तु जब तक यह विधान पूर्ण रूप से तैयार नहीं हो जाता तब तक इसके गुण दोष पर एक शब्द भी कहना अनुचित है।

केन्द्रीय सरकार
(CENTRAL GOVERNMENT)
अध्याय ३
गवर्नर-जनरल

पद का स्पष्टीकरण

अब तक भारत सरकार के अन्दर सबसे प्रधान व्यक्ति गवर्नर-जनरल और वाइसराय रहा है। १७७४ ई० में वारेन हेस्टिंग्स पहिला गवर्नर-जनरल हुआ। तबसे १८५८ ई० तक कुल १७ गवर्नर जनरल हुए। जब हिन्दोस्तान का शासन प्रबन्ध कम्पनी से पार्लियामेंट के हाथ में चला गया तो गवर्नर-जनरल वाइसराय कहलाने लगा। १८५८ से १९४८ तक कुल ३६ वाइसराय हुये हैं। गवर्नर-जनरल और वाइसराय के पद अलग-अलग नहीं थे। पार्लियामेंट ने १९३५ तक अपने किसी विधान में वाइसराय शब्द का प्रयोग नहीं किया था। वह गवर्नर-जनरल शब्द का ही प्रयोग करती रही है। सम्राट् का प्रतिनिध होने के नाते वह वाइसराय कहलाता था, वर्ना क़ानून में वह गवर्नर-जनरल के नाम से घोषित किया जाता था। १९३५ के शासन-विधान में गवर्नर-जनरल और वाइसराय के अलग-अलग दो पद बना दिये गये थे। सम्राट् को यह अधिकार था कि वह दो व्यक्तियों को इन पदों पर नियुक्त करे। यह बात कुछ समझ में नहीं आती कि दो प्रधान शासक साथ-साथ किस प्रकार कार्य करते। १९४८ ई० के जून तक एक ही व्यक्ति दोनों पदों पर कार्य करता था। अन्तिम गवर्नर-जनरल के चले जाने के बाद राजगोपालाचारी पहले भारतीय गवर्नर-जनरल बनाये गये हैं।*

गवर्नर-जनरल के पद का संक्षिप्त इतिहास

१७७३ ई० तक हिन्दोस्तान में केवल गवर्नर होते थे। एक कौंसिल की मदद से ये अपना काम स्वतन्त्रता-पूर्वक करते थे। प्लासी की लड़ाई के बाद जब कम्पनी की ज़िम्मेवारी बढ़ने लगी तो उसने व्यापार को बढ़ाने की नीयत से कुछ छोटे-मोटे क़ानूनों को बनाने तथा नौकरों की देख-रेख करने का काम इन्हें सौंप दिया। कुछ सदस्यों

*लार्ड माउन्ट बेटेन हिन्दुस्तान के अन्तिम अंग्रेज़ गवर्नर-जनरल थे जो २१ जून १९४८ ई० को इस देश से विदा कर दिये गये।

की एक सभा उसकी सहायता के लिये बना दी गई। सभी गवर्नर अधिकारों में समान समझे जाते थे और बोर्ड आफ़ डाइरेक्टर्स से सीधा सम्बन्ध रखते थे। अभी तक कम्पनी को इस बात की जरूरत न थी कि गवर्नर के ऊपर वह कोई नया शासक बनाये। मुगल राज्य की कमजोरियों के कारण उसके मुनाफे बढ़ रहे थे। नई-नई फैक्ट्रियाँ बढ़ने लगीं और उनकी रक्षा के लिये छोटे-मोटे क़िले बनाये जाने लगे। इनकी देख-रेख के लिए कम्पनी ने फौज़ का भी इन्तज़ाम किया। कुछ तो योरप के अन्य व्यापारियों का मुक़ाबिला करने और कुछ अपने राज्य को बढ़ाने के लिये इसकी संख्या बढ़ा दी गई।

अहातों के गवर्नरों का उत्तरदायित्व काफी बढ़ गया था। व्यापारिक कामों की देख-भाल के अतिरिक्त उन्हें शासन का भी कार्य देखना पड़ता था। अतएव यह डर था कि वे भिन्न-भिन्न स्थानों में अपने तरीके पर कोई ऐसा काम न करें जिससे कम्पनी को हानि हो। उसे सारे हिन्दोस्तान में एक वसूल वर्तना था। व्यापार और राज्य के एकीकरण के लिये एक नये पद की जरूरत महसूस हुई। इन गवर्नरों के ऊपर एक ऐसा शासक चाहिये था जो इनमें मेल रखने के अतिरिक्त कम्पनी के डाइरेक्टरों से सीधा सम्बन्ध रखता। १७७३ ई० में रेग्यूलेटिंग ऐक्ट पास करके इस कमी को पूरा किया गया। बंगाल का गवर्नर गवर्नर-जनरल बना दिया गया। उसे और उसकी कौंसिल को यह अधिकार दिया गया कि मद्रास, बम्बई और बंगाल अहातों के गवर्नरों की देख-रेख करे। गवर्नरों को उसकी सलाह के बिना लड़ाई और सुलह करने का अधिकार नहीं रह गया। हिन्दोस्तान में कम्पनी की आमदनी और खर्च की ज़िम्मेवारी उसे दे दी गई। फिर भी अहातों के गवर्नर उसकी आज्ञाओं की अवहेलना करते रहे। इसीलिये वारेनहेस्टिंग्स को, जो हिन्दोस्तान का पहला गवर्नर-जनरल था, बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था।

गवर्नर-जनरल के कामों में परिवर्तन की आवश्यकता थी। अभी तक उसके अधिकार अधूरे थे। १७८४ ई० में पिट का इंडिया बिल पास करके यह कमी किसी हद तक दूर की गई। उसकी शक्ति और बढ़ा दी गई। लड़ाई और सुलह करने का एक मात्र अधिकार इसे दे दिया गया। कार्नवालिस और लार्ड वेलेजली के व्यक्तित्व ने इस पद के महत्व को और भी बढ़ाया। गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को कम्पनी के राज्यों का सर्वप्रधान घोषित किया गया। १८३३ ई० के ऐक्ट के

अनुसार बंगाल का गवर्नर-जनरल सारे हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल घोषित कर दिया गया। कम्पनी के फौज़ी और दिवानी अधिकार उसे दे दिये गये। परन्तु सारे हिन्दोस्तान की ज़िम्मेवारी के साथ उसे बंगाल का शासन-प्रबन्ध भी चलाना पड़ता था। ऐसी दशा में वह देख-रेख का काम अच्छी तरह नहीं कर सकता था।

१८५४ ई० में बंगाल के शासन के लिये एक लेफ्टिनेंट गवर्नर की नियुक्ति की गई। इससे गवर्नर-जनरल का भार कुछ हलका हो गया। अब उसे देख-रेख का अधिक अवसर मिलने लगा। उसे चीफ कमिश्नर की नियुक्ति का भी अधिकार दिया गया। इसी के अनुसार मध्य-प्रान्त, ब्रह्मा तथा आसाम आदि प्रान्तों में चीफ कमिश्नर नियुक्त किये गये। नये जीते हुये राज्यों का भार सीधे गवर्नर-जनरल के सिर पर आता था। चीफ कमिश्नरों की भर्ती के बाद भी वह उसके लिये ज़िम्मेवार था। चूँकि कम्पनी का राज्य काफी बढ़ रहा था इसलिये उसकी जिम्मेवारी इस मामले में कम नहीं की जा सकती थी। लार्ड डलहौज़ी इन दिनों हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल था। उसकी नीति ने कम्पनी के राज्य को इतना बढ़ाया कि छोटे छोटे कितने ही राज्य अपनी स्वतन्त्रता सदैव के लिये खो बैठे। इसी का परिणाम था कि १८५७ ई० में एक महान् क्रान्ति हुई। पार्लियामेंट ने भारतीय शासन का भार अपने हाथों में ले लिया। महारानी विक्टोरिया ने लार्ड कैनिङ्ग को, जो उस समय हिन्दोस्तान के गवर्नर-जमरल थे, वाइसराय घोषित किया।

गवर्नर-जनरल की नियुक्ति, इसका काल और वेतन

गवर्नर-जनरल की नियुक्ति बृटिश सम्राट् इंगलैंड के प्रधान मंत्री की सलाह से करता था। यह व्यक्ति बृटेन के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों में होता था। व्यक्ति की योग्यता ही इस स्थान के लिये काफी नहीं थी। इसके लिये किसी ऊँचे खानदान का होना आवश्यक था। जितने गवर्नर-जनरल और वाइसराय हुये हैं वे सब लार्ड खानदान के थे। यद्यपि इस पद के लिये किसी निश्चत उपाधि की आवश्यकता नहीं थी, परन्तु प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ तथा योग्य शासक ही इस पर नियुक्त किये जाते थे। आमतौर से ये इङ्गलैण्ड के चुने हुये चन्द कुटुम्बों से भर्ती किये जाते थे। नियुक्ति के पहले यह आवश्यक था कि वह कहीं शासन का कार्य कर चुका हो। यह आवश्यक नहीं था कि वह हिन्दोस्तान के सम्बन्ध में विशेषज्ञ हो। अधिकतर वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल कैबिनेट के मंत्री रहे हैं। लार्ड कर्जन,

लार्ड चेम्सफोर्ड, लार्ड रीडिंग तथा लार्ड इर्विन बृटिश कैबिनेट के मंत्री थे। गवर्नर-जनरल का स्थान किसी पार्टी से सम्बन्ध नहीं रखता था। यद्यपि वह व्यक्ति बृटेन के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों में से होता था, परन्तु इस पद पर उसे निष्पक्ष भाव से काम करना पड़ता था। बृटेन की सरकार और भारत-मंत्री बदल जाते थे, परन्तु वह अपनी अवधि तक कार्य करता था। ऐसा भी देखा गया है कि दलबन्दी के कारण उसमें और भारत-मंत्री में मतभेद हो जाय। ऐसी हालत में उसे अपने पद से इस्तीफा देना पड़ता था। यह प्रथा राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त सराहनीय थी। हिन्दोस्तान के लिये यह सौभाग्य का विषय था कि यहाँ के प्रश्न बृटिश दलबन्दियों से अलग समझे जाते थे। परन्तु कार्य रूप में ऐसा कम होता था।

गवर्नर-जनरल ५ वर्ष के लिये नियुक्त किये जाते थे। पहले इन्हें इस अवधि के अन्दर छुट्टी लेकर हिन्दुस्तान से बाहर जाने की आज्ञा न थी। यदि किसी कारण विशेष से ये बाहर जाना चाहते, तो इन्हें अपना पद छोड़ देना पड़ता था। १९२४ ई० में इस नियम में परिवर्तन किया गया। उस समय से उन्हें छुट्टी देने का विधान बनाया गया। भारत-मंत्री को यह अधिकार दिया गया कि अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर वह उन्हें अधिक से अधिक ४ महीने की छुट्टी दे सकता था। यह केवल एक बार और एक ही साथ ली जा सकती थी। आवश्यकता पड़ने पर पार्लियामेंट उसके समय को बढ़ा सकती थी। लार्ड लिन लिथगो की अवधि ५ वर्ष से बढ़ा कर ७ वर्ष कर दी गई थी। लार्ड डलहौजी ८ वर्ष तक हिन्दोतान का गवर्नर-जनरल था। लार्ड कार्नवालिस ने ७ वर्ष तक इस पद पर कार्य किया। जितने गवर्नर-जनरल और वाइसराय हुये हैं इनमें लार्ड डलहौजी का समय सबसे बड़ा रहा है। सर एल्फ्रेड क्लार्क, जान स्ट्रेची और लार्ड नेपियर सबसे कम दिन तक इस पद पर काम कर सके। प्रत्येक का समय एक साल के अन्दर ही समाप्त हो गया।

गवर्नर-जनरल संसार में सबसे अधिक वेतन पाने वाले व्यक्ति रहा है। जितनी तनख्वाह इसे दी जाती थी उतनी अमेरिका का प्रेसीडेंट भी नहीं पाता था। गवर्नर-जनरल को २,५०,८०० रुपया सालाना वेतन दिया जाता था, जो २,५६,००० रुपया सालाना तक किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त उसे एक लम्बा भत्ता दिया जाता था। उसका अधिकतर समय एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में आने जाने में व्यतीत होता था। ये

सब खर्चे भारतीय सरकारी खजाने से दिये जाते थे। वेतन और भत्ता सब जोड़ने पर उसे हर साल लगभग १८ लाख रुपया मिलता था। इतनी लम्बी रकम इंगलैण्ड का प्रधान मंत्री भी नहीं पाता था। हिन्दोस्तान संसार के सबसे गरीब देशों में गिना जाता है। ऐसी दशा में यहाँ के प्रधान शासक को इतनी लम्बी तनख्वाह देना उचित नहीं था। आज भी गवर्नर-जनरल का वेतन कम नहीं है। यद्यपि देश स्वतन्त्र है और इसकी आर्थिक स्थिति के अनुकूल इसमें जैसा चाहे परिवर्तन कर सकता है, परन्तु अभी तक इसमें कोई सुधार नहीं किया गया है। हमारे वर्तमान गवर्नर-जनरल को २१,९०० रुपया मासिक वेतन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त ३७५० रुपया व्यय विषयक भत्ता, २९१६६ रुपया कन्ट्रैक्ट सम्बन्धी खर्च, ५२५० रुपया मोटर खर्च तथा ५०५०० रुपया संस्थापन व्यय दिया जाता है। काँग्रेस की नीति के अनुसार यह वेतन आवश्यकता से कहीं अधिक है।

गवर्नर-जनरल के अधिकार

गवर्नर-जनरल के अधिकार के विषय में हमें एक बात का ध्यान रखना होगा। १९३५ ई० तक इसके अधिकार कुछ कम थे परन्तु संघ-शासन-विधान में काफी वृद्धि कर दी गई थी। इसलिये पहिले हम उसके अधिकारों का वर्णन संघ-शासन-विधान का ध्यान छोड़ कर करेंगे। ये अधिकार हाल तक उसे प्राप्त रहे हैं। १९३५ में जो अधिकार बढ़ा दिये गये थे उनका वर्णन इसी अध्याय के अन्त में किया गया है।

गवर्नर-जनरल की ज़िम्मेवारी के विषय में यह कहा जाता था कि इतने बड़े रुतबे का दर्जा बृटिश साम्राज्य में कोई दूसरा नहीं था।*

रैम्जेमेकडानेल्ड लिखते हैं—"यह हिन्दोस्तान में एक सम्राट् से कम नहीं है; शासन की ज़िम्मेवारी इसी को दी गई है; यही सब कुछ है।†

जिस समय वह हिन्दोस्तान में पदार्पण करता था अथवा यहाँ से विदा होता था उस समय बड़ी शान शौकत के साथ उसका स्वागत और

* He occupies the most responsible as it is the most picturesque and distinguished office in the overseas service of the British Crown.

† He is the crown visible in India, the ceremonial head of the sovereignty, the great lord.

विदाई होती थी। हाईकोर्ट तक उस पर मुक़दमा नहीं चला सकती थी। वह हिन्दोस्तान में गिरफ्तार नहीं किया जा सकता था। अमेरिका का प्रेसीडेन्ट लावेल लिखता है 'रूस का ज़ार और हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल दोनों अपने समय के बहुत बड़े स्वच्छन्द शासकों (autocrats) में से थे" ‡ यही वजह है कि बृटेन के अच्छे से अच्छे लोग इस पद के लिये लालायित रहते थे।

गवर्नर-जनरल के अधिकारों को दो श्रेणियों में बाँटा गया था। पहिली श्रेणी में वे अधिकार थे जिन्हें वह स्वयं कार्यान्वित करता था। दूसरी श्रेणी के अधिकारों को वह अपनी कौंसिल के साथ प्रयोग में लाता था। पहले हम उन अधिकारों का वर्णन करेंगे जिन्हें वह अपनी इच्छानुसार प्रयोग में लाता था।

गवर्नर-जनरल के निजी अधिकार

१९३५ के शासन-विधान में गवर्नर-जनरल के निजी अधिकार इतने अधिक थे कि इसकी शक्ति पहले से दूनी हो गई थी। आवश्यकता पड़ने पर शान्ति और भारतीय हित की दृष्टि से वह अपनी इच्छानुसार फ़रमान जारी कर सकता था। इसका प्रभाव अधिक से अधिक ६ महीने तक रहता था। इसे जारी करने के पहले वह भारत-मन्त्री से इसकी सलाह लेता था। ६ महीने बाद वह इसी फ़रमान को फिर ६ महीने के लिये जारी कर सकता था। १९२४ ई० में लार्ड रीडिंग ने बंगाल में फ़रमान जारी किया था। असहयोग आन्दोलनों के समय कितनी ही बार ये फ़रमान जारी किये गये थे। पिछली लड़ाई के जमाने में दर्जनों फ़रमान जारी किये गये थे। गवर्नर-जनरल को अधिकार था कि वह अपनी कौंसिल के बहुमत को रद्द कर सके। उसके हाथ में तीन शब्दों के हथियार (Safety, Tranquility and interests of British India) ऐसे दिये गये थे कि वह सब कुछ कर सकता था। १८७९ ई० में लार्ड लिटन ने अपनी कौंसिल के बहुमत को ठुकरा दिया था।

१७८६ ई० से गवर्नर-जनरल को निजी अधिकारों से सुसज्जित करने का ताँता आरम्भ हुआ। तब से यह अन्त समय तक जारी था।

‡ The Governor-General or Viceroy of India, and The Czar of Russia were said to be the two great autocrats of the modern world.

जब वह दौरे पर रहता था और उसकी कौंसिल उसके साथ नहीं थी, उस समय वह अपनी निजी शक्ति का प्रयोग करता था। इस दशा में वह उन सारे कामों को करने का अधिकारी था जिन्हें वह अपनी कौंसिल के साथ करता था। प्रान्तीय गवर्नरों तथा सरकारी कर्मचारियों को वह कोई भी हुक्म दे सकता था। इस प्रकार के हुक्मों की एक प्रति उसे भारत-मंत्री को भेजनी पड़ती थी। वाह्य और राजनीतिक विभाग उसी के हाथो में दिये गये थे। हिन्दोस्तान से बाहर सरकारी पत्र-व्यवहार उसी के अधिकार से होते थे। चेज्नी का कहना है कि "यह विभाग सबसे महत्वपूर्ण और कठिन था।" भारतीय रियासतों में उसे दखल देने का पूरा अधिकार था। लार्ड कर्जन लिखता है 'संसार में भारत-सरकार के राजनीतिक विभाग से बढ़ कर कोई दूसरा जिम्मेवार महकमा नहीं था।"* इन दोनों विभागों को चलाने के लिये गवर्नर-जनरल दो सहायक मन्त्रियों से काम लेता था। इनके अतिरिक्त सात और मंत्री इसमें काम करते थे। इस विभाग का विस्तृत वर्णन गवर्नर-जनरल की कौंसिल के साथ किया जायेगा।

गवर्नर-जनरल को बडे से बड़ा अपराध क्षमा करने का अधिकार आज भी प्राप्त है। यदि किसी को फाँसी की सजा दी गई है तो वह अपने निजी अधिकार से उसे मुक्त कर सकता है। बंगाल, मद्रास और बम्बई अहातों के गवर्नरों को छोड़ कर बाकी सूबों के गवर्नर सम्राट् द्वारा गवर्नर-जनरल की सलाह से नियुक्त किये जाते थे। उसे अधिकार था कि किसी सूबे के एक हिस्से पर शासन करने के लिये डिप्टी-गवर्नर नियुक्त कर सके। सम्राट् की सलाह से लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और उनकी कौंसिल के सदस्यों को वह भर्ती करता था। अपनी कौंसिल की सहायता के लिये लेजिस्लेटिव असेम्बली से कौंसिल सेक्रेटरी नियुक्त करने का अधिकार उसे प्राप्त था। नई-नई पदवियाँ—महाराजा, नवाब, राजा, महामहोपाध्याय, अगमपण्डिता, दीवान बहादुर, सरदार बहादुर, राय साहेब, खाँ साहेब, शमशुल उल्मा—प्रदान करने का उसे अधिकार था। वह इन्हें खान्दानी अधिकार के रूप में किसी को प्रदान कर सकता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार ने यह निर्णय किया

* There is no more varied or responsible service in the world than the Political Department of the Government of India.

है कि पदवी प्रदान करने का नीति समाप्त कर दी जाय। कोई भारतीय नागरिक विदेशों तक से पदवी स्वीकार नहीं कर सकता।

कहने के लिये वह सारा काम अपनी कौंसिल की सहायता से करता था, परन्तु वह जब चाहता इसकी अवहेलना कर सकता था। केन्द्रीय धारा सभा की अवधि वह बढ़ा सकता था। उसे जब चाहता बर्खास्त भी कर सकता था। धारा-सभा द्वारा पास किये गये कानूनों को वह रद्द कर सकता था। यदि कोई कानून-धारा सभा द्वारा पास करने से इनकार कर दिया जाता था तो वह अपने निजी अधिकारों से उसे पास कर सकता था। केन्द्रीय आय का बहुत बड़ा हिस्सा वह अपनी इच्छानुसार खर्च कर सकता था। धारा सभा किसी मद में रुपया खर्च करने से इनकार कर दे तो गवर्नर-जनरल अपने अधिकार से उस मद में खर्च कर सकता था। केन्द्रीय धारा-सभा में कुछ बिल तब तक पेश नहीं किये जा सकते थे जब तक गवर्नर-जनरल की आज्ञा प्राप्त न कर ली जाती। प्रान्तों के गवर्नर उसकी मर्ज़ी के बिना अपनी नीति में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते थे।

भारतीय रियासतों में हाथ डालने का अधिकार गवर्नर-जनरल और वाइसराय को दिया गया था। इन कामों के लिये वह भारत-मन्त्री से सलाह लेता था। प्रति सप्ताह उसके तथा भारत-मन्त्री के बीच में हिन्दोस्तान की छोटी-छोटी घटनाएँ लिखी जाती थीं। भारत-मन्त्री एक गुप्त पत्र द्वारा हर सप्ताह उसे नई नई बातों की सूचना देता था। इन्हीं पत्रों द्वारा गवर्नर-जनरल को अपनी नीति निर्धारित करनी पड़ती थी। कहने के लिए वह भारत-मन्त्री की मातहती में कार्य करता था, परन्तु ८००० मील की दूरी से किस मात्रा में भारत-मन्त्री उन पर अपना अधिकार रख सकता था, यह हम अच्छी तरह समझ सकते हैं। जो सुविधाएँ और अधिकार उसे प्राप्त थे वे किसी को शायद ही नसीब होते हों। यह कथन सर्वथा ठीक है कि अमेरिका का प्रेसीडैन्ट केवल शासन करता है, राज्य नहीं; इसके विपरीत इंगलैंड का सम्राट् केवल राज्य करता है, शासन नहीं; परन्तु फ्राँस का प्रेसीडेन्ट राज्य और शासन कुछ भी नहीं करता।* हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल शासन और राज्य दोनों करता था।

---

*The constitutional monarch of the United Kingdom reigns but does not rule, the President of

१६३५ के शासन-विधान में गवर्नर-जनरल के अधिकार

१६३५ के संघ-शासन-विधान में गवर्नर-जनरल के अधिकार और बढ़ा दिये गये थे। इस शासन-विधान में उसकी शक्ति की कोई सीमा नहीं रक्खी गई थी। निजी अधिकारों के अतिरिक्त उसे बहुत से विशेष अधिकार दिये गये थे। उसकी शक्ति का विश्लेषण करने पर उसके अधिकार ७ कोटि में रक्खे जा सकते हैं।

१—वे अधिकार जो संरक्षित विभागों (Reserved Departments) में काम में लाये जाते थे।

२—वे अधिकार जिन्हें वह मनमाना प्रयोग में ला सकता था।

३—वे अधिकार जो उसके निजी फैसले पर काम में लाये जा सकते थे।

४—वे अधिकार जिन्हें मंत्रियों की सलाह द्वारा वह काम में लाता था।

५—प्रान्तीय शासन में उसके विशेषाधिकार।

६—रक्षा, वाह्य विभाग, तथा पिछड़े हुए भागों (Excluded Areas) में उसके अधिकार।

७—वे अधिकार जिन्हें वह वाइसराय की हैसियत से देशी रियासतों में प्रयोग में लाता था।

इससे स्पष्ट है कि वह उन सभी अधिकारों से सुसज्जित किया गया था जिनके सामने सरकारी क़ानून तुच्छ जान पड़ते थे। केन्द्रीय सरकार की आमदनी का ८० प्रतिशत ख़र्च उसके हाथों में दिया गया था। बाक़ी २० प्रतिशत में भी वह अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग कर सकता था। संघ-शासन-विधान की १२६ धारा के अनुसार प्रान्तीय धारा सभाओं पर उसका पूरा अधिकार था*। संघ-शासन-विधान में उसके अधिकार दो प्रकार के थे। एक को वह अपनी इच्छानुसार प्रयोग में लाता था और दूसरे प्रकार के अधिकार वे थे जिनका वह

---

the United States of America rules, but does not reign; the President of the French Republic neither reigns nor rules; The Governor-General of India both reigns as well as rules.

*१६४७ के संशोधित स्वतन्त्र शासन-विधान में १२६ धारा पूर्ववत् रक्खी गई है।

मन्त्रियों की सलाह से प्रयोग करता था। वाह्य सम्बन्ध, रक्षा, धार्मिक विषय तथा पिछड़े हुए विभागों में उसके अधिकार स्वतन्त्र रूप से बरते जाते थे। मन्त्रियों को उनमें दखल देने का कोई अधिकार न था। शासन-विधान में वह अपने कुछ अधिकारों का प्रयोग गवर्नर-जनरल की हैसियत से करता था और कुछ का प्रयोग वाइसराय की हैसियत से। १९१९ के शासन-विधान के अनुसार बृटिश प्रान्तों में दोहरा शासन स्थापित किया गया था। इसके अन्तर्गत गवर्नर को शक्ति इतनी अधिक थी कि प्रान्तों का शासन बहुत ही दोष-पूर्ण साबित हुआ। १९३५ के शासन-विधान में प्रान्तों का दोहरा शासन तोड़कर केन्द्रीय शासन में लागू कर दिया गया था। इससे गवर्नर-जनरल की शक्ति दूनी कर दी गई थी। अपने कौंसिल के सदस्यों को भर्ती करने का उसे पूर्ण अधिकार था। उनकी ज़िम्मेदारी धारा सभा के प्रति न होकर उसके प्रति थी। कौंसिल सम्बन्धी बातों का विशेष वर्णन अगले अध्याय में किया गया है।

गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकारों के सामने और अधिकार फीके पड़ जाते थे। ये विशेषाधिकार ८ प्रकार के थे :—

१—यदि हिन्दुस्तान के किसी हिस्से में अमन चैन में कमी पड़ जाय तो वह अपने विशेषाधिकारों द्वारा उसे शान्त कर सकता था।

२—यदि संघ सरकार की आर्थिक शक्ति डाँवाडोल हो जाती तो वह अपने विशेषाधिकारों द्वारा उसे ठीक कर सकता था।

३—अल्पसंख्यक वर्गों की रक्षा के लिये वह अपने विशेष अधिकारों को काम में ला सकता था।

४—सरकारी नौकरों तथा अफ़सरों के अधिकारों की रक्षा के लिये विधान बनाने का उसे अधिकार दिया गया था।

५—अँग्रेज़ी व्यापार की रक्षा के लिये वह अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग कर सकता था।

६—यदि बृटेन की बनी हुई चीज़ों पर हिन्दुस्तान में कोई प्रतिबन्ध लगा दिया जाता, तो उनकी रक्षा के लिये वह अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग करता था।

७—देशी रियासतों तथा राजाओं के अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिये वह अपने विशेष अधिकारों को काम में ला सकता था।

८—यदि किसी प्रकार से शासन में कोई बाधा उत्पन्न हो जाती तो उसे दूर करने का उसे विशेष अधिकार दिया गया था।

इन विशेष अधिकारों से स्पष्ट है कि गवर्नर-जनरल संघ शासन में एकतन्त्र राज्य करता था। इन अधिकारों के शब्द इतने गोलमाल थे कि हम इन्हें स्पष्ट नहीं कर सकते। गवर्नर-जनरल जब और जहाँ चाहता दख़ल दे सकता था। अशान्ति, आर्थिक डाँवाडोल, कुप्रबन्ध, शान्ति इत्यादि ऐसे गोल शब्द हैं कि इनका अर्थ मनमाना लगाया जा सकता था। इनके लिये कोई कोष नहीं था। गवर्नर-जनरल इनका जो अर्थ चाहता, निकाल लेता। यह बात विचारणीय है कि संघ-शासन-विधान में गवर्नर-जनरल को इतने अधिकार क्यों दिये गये थे। इस शासन-विधान में थोड़े बहुत अधिकार हिन्दुस्तानियों को भी प्राप्त थे। वे इन अधिकारों का प्रयोग किसी सीमा के अन्दर करते रहें, इसलिये विशेषाधिकारों की रचना की गई थी। कीथ का कहना सर्वथा ठीक है कि, "गवर्नर-जनरल के विशेष अधिकार मन्त्रियों की ज़िम्मेवारी को कुचल सकते थे।"

फौज पर एकमात्र अधिकार गवर्नर-जनरल का था। हिन्दोस्तान की आमदनी का ५७ फीसदी केवल फौज़ पर खर्च किया जाता था। १९३८ ई० में भारत-सरकार की कुल आमदनी ७७ करोड़ रुपये थी। इसमें ४१ करोड़ फौज पर खर्च किया गया था। यह फौज गवर्नर-जनरल के हाथों में थी। वह अपनी इच्छानुसार इसे हिन्दोस्तान से बाहर भेज सकता था। यद्यपि इसके लिये उसे मन्त्रियों से सलाह लेनी पड़ती थी, परन्तु वह अपने विशेष अधिकारों द्वारा इसका मनमाना उपयोग कर सकता था। अपने विशेषाधिकारों में वह मन्त्रियों से सलाह ले सकता था, परन्तु इससे वह वाध्य नहीं था। उसके तथा गवर्नर के विशेष अधिकार पूरी तरह प्रयोग में लाये जाते, तो राजनीतिक स्वतन्त्रता का कोई अर्थ नहीं रह जाता। १९३५ के ऐक्ट की १५ वीं धारा के अनुसार गवर्नर-जनरल अपनी इच्छानुसार एक ऐसे व्यक्ति को नियुक्त कर सकता था जो उसे आर्थिक विषयों में सलाह देता। उसका समय और वेतन वही निश्चित करता*। यह व्यक्ति अपने कार्यों के लिये उसी के प्रति ज़िम्मेवारी होता। संघ न्यायालय के जजों में से वह किसी को भी ऐडवोकेट जनरल नियुक्त कर सकता था। उसका वेतन निश्चित करने का अधिकार उसी को दिया गया था। उसका कार्य संघ सरकार को

---

* In safeguarding the financial stability of the Federal Government the Governer-General was the supreme authority.

कानूनी मामलों में सलाह देना था, लेकिन वह सभी प्रकार से गवर्नर-जनरल के अधिकार में था। ऐडवोकेट जनरल दोनों धारा सभाओं में बैठने तथा बोलने का अधिकारी था, परन्तु वोट नहीं दे सकता था।

डिप्टी-गवर्नरों, लेफ्टिनेंट गवर्नरों, कौंसिल आव् स्टेट के सभापति तथा अपनी कौंसिल का उपसभापति—इन्हें नियुक्त करने का अधिकार गवर्नर-जनरल को दिया गया था। धारा सभा के सदस्यों के चुनाव की आज्ञा वही देता था। बैठक तथा विदाई उसी की आज्ञा से होती थी। वह अपनी कौंसिल के बहुमत को ठुकरा सकता था तथा बड़े से बड़े अपराध को क्षमा कर सकता था। सरकारी आय व्यय के सम्बन्ध में उसकी आज्ञा के बिना कोई सभा विचार नहीं कर सकती थी। धारा-सभा के विरोध करने पर भी वह जनता के ऊपर टैक्स लगा सकता था। आवश्यकता पड़ने पर वह सरकारी आमदनी को जैसे चाहे खर्च कर सकता था। खर्च के सम्बन्ध में धारा सभा के सदस्यों में कोई मतभेद उत्पन्न हो जाता तो उसका फैसला सब को मानना पड़ता था। श्रीमान् डेविड ग्रेनफाल लिखते हैं, "संघ सरकार की आर्थिक स्थिति की रक्षा के लिये गवर्नर-जनरल सर्व-प्रधान था।"* यह निश्चित नहीं था कि गवर्नर-जनरल आर्थिक विषयों में एक विशेषज्ञ होता। ऐसी दशा में ८० प्रतिशत खर्च की ज़िम्मेवारी उसके हाथ में दे देना उचित नहीं था।

गवर्नर-जनरल कोई कानून पास कराना चाहता तो वह इस आशय का बिल एक पत्र के साथ धारा-सभा में भेज देता। यह बिल एक महीने बाद कानून का रूप धारण कर लेता। यह कानून 'गवर्नर-जनरल के कानून' के नाम से पुकारा जाता था। ऐसे कानून की सूचना वह तुरन्त भारत मंत्री को देता, जो उसे पार्लियामेंट के सामने पेश करता। यदि पार्लियामेंट चाहती तो उस कानून को रद्द कर सकती थी। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारा-सभाओं द्वारा पास किये गये कानून तब तक पक्के न समझे जाते, जब तक गवर्नर-जनरल उस पर अपना हस्ताक्षर न कर देता। ऐसे बिलों को गवर्नर-जनरल ६ महीने तक अपने पास रोक सकता था। किसी भी बिल को, जो धारा-सभाओं में पेश रहता और जिस पर वादविवाद होता रहता था, वह अपने अधिकार से रोक सकता था।

भारतीय रियासतों में गवर्नर-जनरल वाइसराय की हैसियत से हस्तक्षेप करता था। हिन्दोस्तान की २३ प्रतिशत जनता देशी रियासतों में निवास

* यह धारा १९४७ के संशोधित शासन-विधान से निकाल दी गई है।

करती थी। प्रत्येक रियासत के साथ बृटिश सरकार ने सम्राट् के नाम पर एक सुलहनामा किया था। राजाओं के अधिकारों की रक्षा की ज़िम्मेदारी उसी के ऊपर थी। वाइसराय को उसके प्रतिनिधि की हैसियत से यह अधिकार था कि वह रियासतों में जब चाहे दखल दे। यदि कोई राजा सम्राट् की शर्तों के विरुद्ध काम करता तो वाइसराय उसे दंड दे सकता था। किसी रियासत की प्रजा राजा के विरुद्ध आवाज़ उठाती तो वह राजा को निकाल बाहर कर सकता था। कहा जाता है कि देशी रियासतों के साथ सम्राट् की जो शर्तें वाइसराय काम में लाता था उसके समानान्तर इतिहास में कोई दूसरा अधिकार नहीं था।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि गवर्नर-जनरल के अधिकार अनन्त और असीमित थे। उनके सामने प्रान्तीय-स्वराज्य एक धोखे की टट्टी थी। १९३९ में प्रान्तीय काँग्रेस मन्त्रि-मंडलों के इस्तीफे के समय यह और भी स्पष्ट हो गया था। गवर्नर-जनरल को यहाँ तक अधिकार दिया गया था कि वह शासन की मशीन के फेल होने पर एक घोषणा द्वारा संघ सरकार की सारी शक्ति अपने हाथों में ले ले। ३ वर्ष तक बिना किसी कौंसिल तथा धारा सभा के वह अकेले शासन कर सकता था। उस बीच में जिन जिन कानूनों की ज़रूरत पड़ती उन्हें वह स्वयं बना सकता था। जे० एच० मार्बन लिखता है "इस बीच में गवर्नर-जनरल का अधिकार हिन्दोस्तान के ऊपर किसी तानाशाह से कम न होता।"* भारत के नये शासन विधान में राष्ट्रपति वैधानिक रीति से राष्ट्र का सर्व प्रधान नागरिक होगा और उसके अधिकार सीमित होंगे।

---

* During this period the whole of India be subject to the dictatorial power of the Governor-General.

अध्याय ४

केन्द्रीय कार्यकारिणी

(Central Executive)

कार्यकारिणी की आवश्यकता

पिछले पाठ में गवर्नर-जनरल और वाइसराय को ज़िम्मेदारियों का वर्णन किया गया है। यह सम्भव नहीं था कि वह इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी को अकेले निबाहता। इसके लिये आवश्यक था कि उसे कुछ ऐसे सहायक दिये जायँ जो सरकारी कामों को आपस में बाँट कर करें और वह केवल उनकी देख-रेख रक्खे। उसे आरम्भ से ही एक छोटी सी कौंसिल सहायता के लिये दी गई थी। इसी को केन्द्रीय कार्यकारिणी कहते हैं। वास्तव में यही सभा गवर्नर-जनरल की सलाह से भारतीय शासन को चलाती थी। परन्तु इसमें तथा बृटेन की कैबिनेट में अन्तर था। यद्यपि कार्य की दृष्टि से दोनों का स्थान एक था, परन्तु इनके अधिकारों की कोई तुलना नहीं हो सकती। कैबिनेट के सदस्य सरकारी नौकर नहीं होते। वे जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों में से होते हैं। वे वकील, डाक्टर, व्यापारी, मज़दूर, किसान तथा इसी प्रकार के अनेक पेशे वाले होते हैं। न केवल पार्लियामेंट, बल्कि समूचे राष्ट्र के वे नेता होते हैं। इसके विपरीत गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में अधिकतर संख्या सरकारी नौकरों की होती थी। कुछ सरकारी नौकर जब पेंशन के करीब होते थे तो उन्हें इस सभा में स्थान दे दिया जाता था। बड़ा से बड़ा सरकारी अफसर इस पद के लिये लालायित रहता था। इन्हें अभिलाषा रहती थी कि सरकार के किसी खास महकमों को हाथ में लेकर अपने यश का प्रदर्शन करें। भारतीय जनता के लिये उनके कार्य उतने लाभदायक नहीं थे जितने सरकारी मशीन को चलाने के लिये। बृटिश कैबिनेट की शक्ति इससे अधिक है। गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी उसके हाथ की एक कठपुतली थी। भारतीय राजनीति में गवर्नर-जनरल का स्थान वह नहीं था जो बृटिश राजनीति में प्रधानमंत्री का है। गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के सदस्यों को वह स्वतन्त्रता और समानता प्राप्त नहीं थी जो कैबिनेट के सदस्यों को है। इसीलिये केन्द्रीय कार्यकारिणी और बृटिश कैबिनेट की तुलना नहीं की जा सकती।

पिछली केन्द्रीय कार्यकारिणी

१९१६ ई० में लार्ड हार्डिंज के चले जाने के बाद लार्ड चेम्सफोर्ड हिन्दोस्तान के वाइसराय नियुक्त किये गये। जर्मनी की लड़ाई जोरों पर चल रही थी। हिन्दोस्तान ने बृटिश सरकार की काफी मदद की थी। इसी के फलस्वरूप मान्टेग्यू, जो उन दिनों भारत-मंत्री थे, १९१७ ई० में हिन्दोस्तान आये। यहाँ के वाइसराय चेम्सफोर्ड के साथ उन्होंने सारे हिन्दोस्तान का भ्रमण किया और इस बात की जाँच की कि हिन्दोस्तानियों को कहाँ तक शासन में अधिकार दिया जा सकता है। उनकी रिपोर्ट के आधार पर १९१९ ई० में भारतीय शासन विधान में कुछ परिवर्तन किये गये। यह तै किया गया कि गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी सभा में सदस्यों की संख्या निर्धारित न की जाय। हाई-कोर्ट के उन वकीलों के लिये जो कम से कम १० वर्ष तक वकालत कर चुके हों, कौंसिल का दरवाज़ा खोल दिया गया। पहिले प्रान्तीय गवर्नरों को यह अधिकार था कि जब कभी कौंसिल की बैठक उनके सूबों में होती तो वे असाधारण सदस्य की हैसियत से उसकी बैठक में हिस्सा लेते थे। १९१९ के कानून के अनुसार उनका यह अधिकार छीन लिया लिया गया। सम्राट् को यह अधिकार दिया गया कि वह जितने सदस्यों को उचित समझे नियुक्त करे। इनमें ३ सदस्य ऐसे होने चाहिये जो कम से कम १० वर्ष तक हिन्दोस्तान में कोई सरकारी नौकरी किए हों। १ सदस्य या तो इंगलैंड या आयरलैण्ड में १० वर्ष तक बैरिस्टरी, या स्काटलैंड अथवा किसी हिन्दोस्तानी हाईकोर्ट में १० वर्ष तक वकालत किया हो। यदि कमान्डर-इनचीफ कौंसिल का सदस्य हो तो उसका दरजा अन्य सदस्यों से ऊँचा समझा जाता।

कुछ समय बाद सदस्यों में साधारण और असाधारण का भेद हटा दिया गया। वाइसराय को यह अधिकार दिया गया कि वह धारा-सभा के गैर सरकारी सदस्यों में से कुछ कौंसिल-सेक्रेटरीज़ अपनी कार्यकारिणी सभा के लिये चुन ले। इन सेक्रेटरीज़ की तनख्वाह धारा-सभा निश्चित करती। जब तक वाइसराय चाहता इन्हें सदस्य रख सकता था। कार्य-कारिणी सभा में हिन्दोस्तानी सदस्यों की संख्या बढ़ाने का विधान बनाया गया। १९२१ ई० से हिन्दोस्तानी सदस्यों की संख्या एक से बढ़ाकर ३ कर दी गई। कौंसिल के सभी सदस्य भारतीय हो सकते थे। इसमें कोई कानूनी रुकावट नहीं थी। परन्तु ऐसा कभी नहीं किया गया।

गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में आमतौर से ८ सदस्य होते थे।

विभाजन प्रणाली द्वारा ये सरकारी कामों को आपस में बाँटकर चलाते थे। गत महायुद्ध आरम्भ होने पर शासन की कारवाइयाँ कुछ विशेष नियम के अनुसार चलाई गई थीं, इसलिये सदस्यों की संख्या १५ तक बढ़ा दी गई थी। युद्ध को संचालित करने के लिये नये सदस्यों की आवश्यकता ज्यों ज्यों बढ़ती गई उसी प्रकार नये विभाग* खोल कर सरकार एक एक को इनका प्रधान नियुक्त करती गई। युद्धकालीन कार्यकारिणी में ५ अँग्रेज और १० भारतीय सदस्य रक्खे गये थे। साधारणतया सदस्यों की संख्या इतनी नहीं रहती थी।

कार्यकारिणी सभा की कार्य-पद्धति

१८६१ ई० के पहले कार्यकारिणी सभा सम्मिलित रूप से कार्य करती है। कार्य विभाजन की प्रणाली अभी तक निर्धारित नहीं की गई थी। गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिल के सभी मेम्बर एक साथ बैठ कर हर बात का फैसला बहुमत से करते थे। इससे कार्य में बहुत देर होती थी। विभाजन प्रणाली (Departmental System) न होने से काम में उलझन रहती थी। १८३३ ई० में ला मेम्बर तथा १८६१ ई० में फिनान्स मेम्बर नियुक्त करके पिछली प्रणाली को दोषपूर्ण सिद्ध किया गया। लार्ड कैनिंग के जमाने में वर्तमान कार्य-पद्धति का श्रीगणेश हुआ। उसने यह निश्चित किया कि कार्य कारिणी के सदस्य अपना अपना काम बाँट कर करें। केवल आवश्यक कार्यों पर वे एकत्र होकर विचार करें। यह प्रथा आज भी प्रचलित है। प्रत्येक सदस्य के जिम्मे एक या दो विभाग दे दिये गये हैं। सरकार का पूरा काम चन्द विभागों में बाँट दिया गया है। केवल आवश्यक विषयों पर उसे पूरी कौंसिल की सलाह लेनी पड़ती है। यदि एक ही बात दो विभागों में आ जाती है तो इसका विचार कौंसिल की पूरी बैठक में किया जाता है।

---

* (1) Political (2) War Department, (3) Defence, (4) Law, (5) Home, (6) Labour, (7) War Transport, (8) Finance (9) Post and Air, (10) Civil Defence, (11). Education, Health and Lands, (12) Commerce, (13) Indians Overseas ? (14) Supply (15) India's Information and Broadcasting Department.

कार्य-कारिणी की नियुक्ति ५ वर्ष के लिये की जाती थी। प्रत्येक सदस्य को ८०,००० रुपया सालाना वेतन दिया जाता था। कमान्डर-इन-चीफ को, जो इसी सभा का एक सदस्य होता था, १००.००० रुपया सालाना वेतन दिया जाता था। यह खर्च भारतीय खजाने से दिया जाता था। भारत-मंत्री और उसकी कौंसिल को अधिकार था कि वह गवर्नर-जनरल, उसकी कार्यकारिणी के सदस्यों तथा कमान्डर-इन-चीफ को आवश्यकता पड़ने पर छुट्टी दे सके। ऊपर कहा गया है कि यह छुट्टी अधिक से अधिक ४ महीने तक केवल एक बार दी जा सकती थी। यदि भारत-मन्त्री चाहता तो छुट्टी की अवधि बढ़ा सकता था, परन्तु पार्लियामेन्ट के सामने उसे इसका कारण बतलाना पड़ता था। गवर्नर-जनरल कार्यकारणी का सभापति होता था। इसका उपसभापति वही नियुक्त करता था। सभा की कार्रवाई और उसका स्थान् वही निश्चित करता था।

कौंसिल की बैठक सप्ताह में एक बार होती थी। सभापति को निर्णायक मत (Casting Vote) देने का अधिकार था। गवर्नर-जनरल अपनी ज़िम्मेवारी से उसके फैसले को रद्द कर सकता था। ऐसी हालत में कौंसिल के कोई भी दो सदस्य उससे इस बात की माँग पेश कर सकते थे कि वह मतभेद वाले मामले को भारत-मन्त्री के सामने भेज दे। गवर्नर-जनरल ऐसा करने के लिये बाध्य था। कौंसिल को जो अधिकार दिये गये थे उनमें वह दख़ल नहीं दे सकता था। उसकी तथा उपसभापति की अनुपस्थिति में कौंसिल का कोई भी मेम्बर सभापति का आसन ग्रहण कर सकता था। इस पद पर उसे सभापति का सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त होते थे। कमान्डर-इन-चीफ सभापति का आसन नहीं ग्रहण कर सकता था।

ऊपर कहा गया है कि कार्यकारिणी के काम ८ विभागों में बाँटे गये थे। वास्तव में ये विभाग समूचे केन्द्रीय सरकार के कामों के विभाग थे। कौंसिल का प्रत्येक सदस्य एक या दो विभागों का प्रधान होता था। ये विभाग निम्नलिखित थे :—

१—वाह्य तथा राजनीतिक विभाग, और भारतीय रियासतें। इन विभागों को गवर्नर-जनरल स्वयं अपने हाथों में रखता था।

२—सेना तथा रक्षा-विभाग। कमान्डर-इन-चीफ इसका प्रधान होता था।

३—सरकारी नौकरियों, पुलीस, जेल, कानून, न्याय तथा भीतरी राजनीति—इन विभागों की ज़िम्मेवारी होम-मेम्बर के हाथ में थी।

४—अर्थ तथा बजेट विभाग। फिनान्स मेम्बर इसका प्रधान होता था।

५—रेलवे, सड़कें, पोस्ट, टेलीग्राफ, ब्राडकास्ट, हवाई जहाज, बन्दरगाह इत्यादि की ज़िम्मेवारी एक सदस्य के ज़िम्मे होती थी। इसे यातायात सदस्य कहते थे।

६—धारा विभाग। ला मेम्बर इसका प्रधान होता था।

७—शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमि विभाग एक सदस्य के ज़िम्मे किये गये थे।

८—व्यापार, उद्योग-धन्धे, उद्योगसम्बंधी सम्पत्ति, बीमा, मज़दूर, इमारत, सिंचाई, खनिज पदार्थ तथा लिखने पढ़ने की चीज़ें—ये विभाग एक सदस्य के जिम्में किये गये थे।

प्रत्येक विभाग का एक प्रधान मन्त्री होता था, जिसका दर्जा कार्य-कारणी के सदस्य से, जो उस विभाग का प्रधान था, छोटा होता था। इस मन्त्री का स्थान इंगलैंड में भारत-मन्त्री की कौंसिल के सहायक मंत्री के समान कहा जाता था। परन्तु इसमें कुछ अन्तर था। हिन्दोस्तान में कार्यकारिणी की बैठक में मन्त्री को हिस्सा लेने का अधिकार दिया गया था। हर सप्ताह प्रत्येक मन्त्री गवर्नर-जनरल से मिल कर अपने विभाग की पूरी कारवाई का दास्तान उसके सामने पेश करता था। उसे यह अधिकार था कि वह गवर्नर-जनरल का ध्यान किसी बात की ओर, जो उसके विभाग से सम्बन्ध रखती हो, विशेष रूप से दिला सके। इसके विपरीत भारत-मन्त्री के सहायक-मन्त्री को इंडिया कौंसिल की बैठक में हिस्सा लेने का अधिकार नहीं है। केन्द्रीय कार्यकारिणी सभा के प्रत्येक विभाग का मंत्री ३ वर्ष के लिये नियुक्त किया जाता था। कहने के लिये वह कार्यकारिणी सभा के सदस्य की मातहती में कार्य करता था, परन्तु वह वाइसराय को उन बातों में भी प्रभावित कर सकता था जिनका सदस्य को पता तक नहीं था। यह चीज इसलिये बनाई गई थी कि कौंसिल के सदस्य अपनी आजादी की सीमा को पार न कर जायँ। मंत्रियों की सलाह से गवर्नर-जनरल प्रत्येक विभाग के कामों की जानकारी रखता था। राष्ट्रीय सरकार की दृष्टि से यह प्रबन्ध

दोषपूर्ण था। इसके मानी यह थे कि कौंसिल के सदस्यों का विश्वास नहीं किया जाता था।

ऊपर कहा गया है कि लार्ड कैनिंग के जमाने से कार्यकारिणी सभा का काम कई विभागो में बाँट दिया गया था। प्रत्येक सदस्य एक या दो विभागों का प्रधान होता था। अच्छा होगा कि प्रत्येक की जिम्मेवारी का संक्षिप्त विवरण कर दिया जाय। इससे यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि प्रत्येक विभाग में किस प्रकार का कार्य किया जाता था।

विभाग प्रणाली Depart-mental System

वाह्य और राजनीतिक विभाग

१—गवर्नर-जनरल स्वयं इन विभागों का प्रधान था। यह विभाग सब से महत्वपूर्ण माना जाता था। भारत-सरकार का विदेशों से क्या सम्बन्ध है तथा भारतीय रियासतों में कैसा प्रबन्ध हो रहा है, इनकी देख-रेख इसी विभाग द्वारा की जाती थी। गवर्नर-जनरल ७ मन्त्रियों के साथ इस विभाग को सँभालता था।

सेना विभाग

२—इस विभाग का कार्य फौज का प्रबन्ध करना था। फौज सम्बन्धी क्या नीति हो इसकी जिम्मेवारी इस विभाग के प्रधान पर रहती थी। स्थल सेना, तथा हवाई जहाज सब इस विभाग के अन्दर शामिल थे। कमान्डर-इन-चीफ इसका प्रधान था। यह अपना कार्य ५ मन्त्रियों की सहायता से करता था।

होम विभाग

३—इस विभाग के अन्दर देश की भीतरी राजनीति का कार्य किया जाता था। आजन्म कारावास के कैदियों की देख-रेख यही विभाग करता था।

कानून विभाग

४—इस विभाग का प्रधान ला मेम्बर कहलाता था। किसी कानूनी मामले पर विचार करने के लिये धारा-सभा जब कोई कमेटी बनाती तो यह उसमें हिस्सा लेने का अधिकारी था। धारा-सभाओं में पेश होने वाले सरकारी बिलों का मसौदा यही बनाता था। प्रान्तीय धारा-सभायें जो कानून पास करतीं उन पर केन्द्रीय सरकार की राय देने का अधिकार इसी को था।

५—यह विभाग हिन्दोस्तान की रेलों पर अधिकार रखता था।

रेलवे और व्यापार विभाग रेल तथा जहाज द्वारा इस देश में तथा विदेशों से जो व्यापार होता था उसकी देख-रेख यही करता था। बीमा करने वाली कम्पनियाँ इसी के अधीन होती थीं।

६—यह विभाग मजदूरों के संगठन, फैक्ट्रियों के कानून, अन्तर्राष्ट्रीय-मजदूर-संगठन, बिजली, पोस्ट और टेलीग्राफ, सिंचाई, सरकारी इमारतें—इन बातों पर अधिकार रखता था।

उद्योग-धन्धे तथा मजदूर विभाग

७—यह विभाग शिक्षा, भूमि कर, खेती, जंगल तथा भूमि सम्बन्धी नई-नई खोजें, अकाल, खान पान की चीजें, विदेश यात्रा, देश की नाप पड़ताल, अस्पताल, स्वास्थ्य, स्वायत्तशासन, लाइब्रेरी, अजायबघर तथा सरकार के खोदाई विभाग पर अधिकार रखता था।

शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमि विभाग

८—इस विभाग का प्रधान फिनान्स मेम्बर कहलाता था। यह केन्द्रीय सरकार की आय-व्यय का व्यौरा रखता था। प्रान्तीय सरकार के आय-व्यय इसी की मातहती में होते थे। सरकारी कर्मचारियों की तनखाहें, पेन्शन तथा उनकी छुट्टियाँ इसी के अधिकार में रक्खी गई थीं। सिक्के ढालना बैंक, टकसाल-घर तथा भारतीय ऋण पर इसी का अधिकार था। इसकी एक शाखा फौज सम्बन्धी खर्च का हिसाब रखती थी। दूसरी शाखा, चुंगी, नमक-कर, अफीम-कर, तथा नशे के सम्बन्ध के अन्य कर और रसीदी टिकट—इनकी देख-रेख करती थी। फिनान्स मेम्बर का कर्त्तव्य था कि वह खर्चे को आमदनी से बढ़ने न दे। जब कभी गवर्नर-जनरल के सामने आमदनी और खर्च सम्बन्धी कोई बात आती तो वह फिनान्स मेम्बर से सलाह लेता था। प्रति वर्ष वह बजट को पेश करते समय अपना एक वक्तव्य देता था, जिसे सुनने के लिये लोग लालायित रहते थे।*

अर्थ विभाग

वास्तव में कार्यकारिणी सभा स्वयं कोई अधिकार नहीं रखती थी। गवर्नर-जनरल से अलग उसका कोई अस्तित्व नहीं था। यह

*वर्तमान केन्द्रीय कार्यकारिणी का रूप बहुत कुछ इसी प्रकार का है।

केन्द्रीय कार्यकारिणी के अधिकार

सभा उसी की सहायता के लिये बनाई गई थी। जो कुछ थोड़े बहुत अधिकार इसे प्राप्त थे वे तभी तक थे जब तक गवर्नर-जनरल उन्हें चुपचाप मान लेता था। गवर्नर-जनरल को यह अधिकार था कि वह कौंसिल के बहुमत को रद्द कर सके। चन्द विषय ऐसे थे जिनमें उसे इसकी राय माननी पड़ती थी, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर इनमें भी वह मनमानी कर सकता था। जब कोई लड़ाई अथवा सुलह करनी होती तो कौंसिल से राय लेता था। प्रान्तीय सरकारों को यह आज्ञा थी कि वे अपने कार्यों की सूचना कौंसिल को देते रहें। उसकी राय से गवर्नर-जनरल हिन्दोस्तान के लिये कर्ज ले सकता था, नई जमीन खरीद सकता था, तथा कोई सम्पत्ति बेच या धरोहर रख सकता था। इसकी सलाह से वह कोई नया सूबा कायम कर सकता था। किसी सूबे के एक हिस्से को वह पिछड़ा हुआ विभाग घोषित कर सकता था। इसकी सलाह से वह प्रान्तीय गवर्नरों की कार्यकारिणी सभा बना सकता था। इसी की राय से वह किसी सूबे की सीमा बदलता था।

गवर्नर-जनरल चाहता तो अपनी कौंसिल की सलाह से गवर्नरों अथवा कमिश्नरों के सूबों में धारा-सभा का निर्माण कर सकता था। हाईकोर्ट के अधिकारों का क्षेत्र उसे कम करने का अधिकार था। यदि किसी हाईकोर्ट में नये जज को आवश्यकता होती तो कौंसिल की सलाह से वह अधिक से अधिक २ वर्ष के लिये उसे नियुक्त कर सकता था। किसी जज को वह प्रधान जज के स्थान पर कुछ अवधि के लिये रख सकता था। एशिया महाद्वीपों में स्थित देशों के साथ वह कौंसिल की सलाह से कोई सुलह अथवा सम्बन्ध कायम कर सकता था। तात्पर्य यह है कि लगभग सभी आवश्यक विषयों में गवर्नर-जनरल कौंसिल की सलाह लेता था। परन्तु विशेष परिस्थिति में वह इससे बाध्य नहीं था।

१९३५ के शासन-विधान में संघ-कार्यकारिणी

१९३५ के संघ-शासन-विधान में केन्द्रीय सरकार में दोहरा शासन (Dyarchy) स्थापित किया गया था। गवर्नर-जनरल को दो प्रकार के अधिकार दिये गये थे। कुछ तो वे जिन्हें वह थोड़े से मन्त्रियों की सलाह से करता था। इनके अतिरिक्त उसे बहुत से विशेषाधिकार दिये गये थे जिनके लिये वह कुछ

सहायक रख सकता था। इन दोनों प्रकार के सहायकों की सभायें अलग अलग होतीं और इसका निर्माण भी दो प्रकार से किया जाता।* इनके अधिकारों में काफी अन्तर था। तात्पर्य यह है कि संघ-शासन-विधान में केन्द्रीय कार्यकारिणी की वही शकल होती जो १९३९ के शासन-विधान में प्रान्तीय कार्यकारिणी की थी। इनका अलग अलग वर्णन करना अच्छा होगा। संघ-शासन में केन्द्रीय सरकार के विषय दो भागों में बाँटे गये थे। एक भाग में वे विषय थे जिन पर एक मात्र अधिकार गवर्नर-जनरल का था। दूसरे भाग में वे विषय थे जो मन्त्रियों के हाथ में रक्खे गये थे। रक्षा, वाह्य विषय, धार्मिक विषय, तथा पिछड़े हुये भागों का शासन-प्रबन्ध, गवर्नर-जनरल के हाथ में दिया गया था। इन्हें वह अपनी इच्छानुसार चला सकता था। बाक़ी विषय मन्त्रियों की एक सभा के हाथ में थे। परन्तु इसमें भी उसे दख़ल देने का अधिकार था।

मंत्रियों की सभा Council of Ministers

जो ४ विभाग गवर्नर-जनरल के विशेष अधिकार के अन्तर्गत रक्खे गये थे उन्हें छोड़कर बाकी विषयों में सलाह देने के लिये जो सभा होती उसका नाम मन्त्रियों की सभा (Council of Ministers) था। ये मंत्री गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त किये जाते। इन्हें तब तक कार्य करने का अधिकार था, जब तक उसकी इच्छा होती। सभी मन्त्री संघ धारा-सभा (Federal Legislature) के सदस्य होते। यदि गवर्नर-जनरल चाहता तो वह किसी बाहरी आदमी को मन्त्री नियुक्त कर सकता था परन्तु उसे ६ महीने के अन्दर धारा-सभा का सदस्य बन जाना आवश्यक था। यदि वह न बन पाता तो मन्त्रियों की सभा से हटा दिया जाता। मंत्रियों की सभा में अधिक से अधिक १० मन्त्री होते। इनका वेतन संघ-धारा-सभा निश्चित करती; परन्तु वह घटाया-बढ़ाया नहीं जाता। गवर्नर-जनरल को अधिकार था कि वह जब चाहता इन्हें निकाल देता। जब तक धारा-सभा इनका वेतन निश्चित न करती तब तक गवर्नर-जनरल इसे निश्चित करता।

मंत्रियों को भर्ती करने के लिये गवर्नर-जनरल संघ-धारा-सभा की

* १९३५ का शासन-विधान पूरी तरह कार्यान्वित न होने के कारण बातें पुस्तकों में ही रह गईं।

बहुमत पार्टी से सलाह लेता। सभी प्रकार से मन्त्रिगण उसकी मुट्ठी में होते। कुछ विषयों में वह इनसे कोई सलाह न लेता। इनका काम थोड़े से विषयों में गवर्नर-जनरल को सलाह देना था। रक्षा, वाह्य कार्य, धार्मिक विषय तथा पिछड़े हुये विभागों का प्रबन्ध—इन्हें छोड़ कर बाकी विषयों को गवर्नर-जनरल भिन्न-भिन्न विभागों में बाँट देता। प्रत्येक मन्त्री के जिम्मे एक या दो विभाग कर दिये जाते। इसकी बैठक में वह स्वयं सभापति का आसन ग्रहण करता। इसकी कार्य पद्धति वही निश्चित करता।

सलाहकार Counsellors

रक्षा, वाह्य विभाग, धार्मिक विषय, तथा पिछड़े हुये विभागों का प्रबन्ध—ये विषय एकमात्र गवर्नर-जनरल के हाथ में रक्खे गये थे। इनमें सलाह लेने के लिये उसे अधिकार था कि वह अधिक से अधिक ३ व्यक्तियों को नियुक्त कर ले। ये व्यक्ति सलाहकार (Counsellors) कहलाते। उपरोक्त चारों विषयों के लिये गवर्नर-जनरल भारत-मन्त्री तथा पार्लियामेंट के प्रति ज़िम्मेवार था। इन सलाहकारों का वेतन तथा इनकी अवधि सम्राट् निश्चित करता। इन्हें संघ-धारा-सभाओं में बैठने का अधिकार था, परन्तु ये वोट न दे सकते थे। धारा-सभाओं के वादविवाद में ये अच्छी तरह हिस्सा ले सकते थे। सलाहकार धारा-सभा के प्रति उत्तरदायी न होते। गवर्नर-जनरल इनकी सलाहों से वाध्य न था।

संघ-कार्य-कारिणी के गुण-दोष

१९३५ के शासन-विधान के अनुसार प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना की गई थी। इससे केन्द्रीय सरकार की शक्ति में स्वभावतः कमी होती। जो कुछ अधिकार उसके पास शेष रहे, उन्हें गवर्नर-जनरल के विशेष अधिकारों से दबा दिया गया था। कुछ विषयों में वह मनमाने करता और बाकी में अपने सलाहकारों तथा मंत्रियों से सहायता लेता जो उसकी स्वतंत्रता में बाधा नहीं डाल सकते थे। यद्यपि सलाहकारों तथा मंत्रियों के कार्य अलग-अलग थे, परंतु यह दोहरा प्रबंध दोष से खाली न था। सलाहकार और मंत्री एक दूसरे को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकते थे। वास्तव में केंद्रीय कार्यकारिणी को कोई विशेष अधिकार न था। एक प्रकार के सलाहकार धारा-सभा के प्रति और दूसरे प्रकार के भारत मंत्री तथा सम्राट् के प्रति जिम्मेवार थे। विभाजित कार्यकारिणी सभी प्रकार दोषपूर्ण मानी गई है। जो कठिनाई १९३५ के पहिले भारतीय सूबों

में उपस्थित हुई थी वही केन्द्रीय कार्यकारिणी में उपस्थित होती। साइमन कमीशन अपनी रिपोर्ट में इस ख़तरे की चेतावनी दे दी थी। कोई राजनीतिज्ञ संघ कार्यकारिणी को ज़िम्मेवार कार्यकारिणी नहीं कह सकता था। देश के लिये यह हितकर सिद्ध नहीं हो सकती थी।

राष्ट्रीय सरकार

राष्ट्रीय सरकार का तात्पर्य कार्यकारिणी के भारतीयकरण से है। अर्थात् इसके सभी सदस्य भारतीय होने चाहिये। लेकिन यदि वे सरकारी पदों से नियुक्त किये जाते हैं तो इसे राष्ट्रीय नहीं कहा जा सकता। सच्ची राष्ट्रीय सरकार वह है जिसकी कार्यकारिणी के सदस्य गैर सरकारी व्यक्ति हों और जो धारा-सभा के प्रति उत्तरदायी हो। वर्तमान कार्यकारिणी, जिसके सभी सदस्य भारत के प्रमुख राष्ट्रीय नेता हैं, राष्ट्रीय सरकार का प्रतीक है।

कैबिनेट मिशन ने केन्द्र में जिस अस्थायी कार्यकारिणी की स्थापना की थी वह भी भारतीय न थी। उसमें ८ स्थानों में ६ स्थान अंग्रेज़ों को दिये गये थे। लगभग सभी सदस्य आई० सी० यस० थे। इसे तो नौकरशाही कार्यकारिणी कहना अधिक उचित है। जिस राष्ट्रीय सरकार की माँग भारतवासी कर रहे थे वह इससे भिन्न थी। विधान-सम्मेलन के प्रतिनिधियों के चुनाव के बाद जो केन्द्रीय कार्यकारिणी बनाई गई है वह राष्ट्रीय कहलाने की हक़दार है। काँग्रेस के प्रमुख नेता इसके सदस्य हैं। पं० जवाहर लाल नेहरू के प्रधान मन्त्रित्व में यह कार्य कर रही है। जब तक नया शासन-विधान कार्यान्वित नहीं किया जाता तब तक यही व्यवस्था रहेगी

अध्याय ५

केन्द्रीय धारा-सभा

(Central Legislature)

धारा-सभा की आवश्यकता

किसी देश के शासन-विधान में धारा-सभा का स्थान महत्वपूर्ण है। यहीं से शासन की मशीन आरम्भ होती है। कार्यकारिणी विभाग इसी के बनायेहु ए क़ानूनों की देख-रेख करता है। न्यायालयों में फ़ैसले के सिद्धान्त इसी के बनाये हुये हैं। धारा-सभा का मुख्य कार्य क़ानून बनाना है। क़ानून के बिना कोई शासन नहीं चल सकता। जब तक समाज अपनी शैशव अवस्था में था तब तक रसम-रवाज़ काम दे देते थे। सभी सम्प्रदाय अपने रसम-रवाज़ रखते थे। सामाजिक विकास के साथ राजनीतिक संगठन की आवश्यकता हुई और क़ानून आदि बनाये गये। आरम्भ में राजा अपने थोड़े से सलाहकारों के साथ कुछ नियम बना कर राज्य का कारोबार चला लेता था। राज्यों का विस्तार छोटा होता था। इनमें जो देश अधिक उन्नतिशील होता, और जहाँ के निवासी अधिक सभ्य और सुशिक्षित होते, वह सम्पूर्ण प्रजा की सम्मति द्वारा शासन का कार्य चलाता था। यूनान के प्रजातंत्र राज्य इसी प्रकार के थे। हमारे देश में हिन्दू काल में प्रजातंत्र अपनी चरम सीमा को पहुँच गये थे। चाणक्य ने अपने कौटिल्य-शास्त्र में इनका वर्णन किया है। राज्यों का विस्तार बढ़ने से इनकी व्यवस्था में परिवर्तन करना पड़ा। क़ानून बनाने के लिए अलग यिभाग बना। आज प्रजा के चुने हुए प्रतिनिधि धारा-संभाओं में आकर सम्पूर्ण देश के लिये क़ानून बनाते हैं।

धारा-सभा के अधिकार और कर्त्तव्य

क़ानून बनाने के अतिरिक्त धारा-सभायें और भी कार्य करती हैं। राज्य की आमदनी और खर्च पर इसका अधिकार होता है। विभिन्न मदों में सहायता यही सभा देती है। मंत्रियों को नियुक्त करने, उन्हें निकालने तथा उनकी नीति निर्धारित करने का अधिकार इसी को है। यद्यपि यह सभा शासन के छोटे छोटे कार्यों को नहीं चलाती, परन्तु सरकारी नीति यही निर्धारित करती

है। यह सरकार को अपने अधिकार में रखती है। एक जिम्मेवार सरकार का तात्पर्य यह है कि कार्यकारिणी धारा-सभा की मातहती में कार्य करे। धारा-सभा के कार्यों को हम ३ श्रेणी में बाँट सकते हैं :—

१—कानून बनाना।

२—शासन की नीति निर्धारित करना।

३—सरकारी आय-व्यय पर अधिकार रखना।

जहाँ तक पहिले प्रकार के कर्त्तव्य का सम्बन्ध है, यह बात स्पष्ट है कि कानून बनाने की जिम्मेवारी धारा-सभा को दी गई है। राज्य में कोई नियम तब तक वैधानिक नहीं समझा जा सकता, जब तक धारा-सभा उसकी मंजूरी न दे दे। कचहरियाँ उन उसूलों का प्रयोग नहीं कर सकतीं जिनकी आज्ञा धारा-सभा की ओर से उन्हें प्राप्त नहीं है। दूसरे प्रकार का कर्त्तव्य शासन की नीति निर्धारित करना है। इसी के द्वारा धारा-सभा सरकार को अपने अधिकार में रखती है। इस कर्त्तव्य को पूरा करने के लिये उसे ४ प्रकार के अधिकार दिये गये हैं :—

प्रस्ताव (Resolutions.)

१—धारा-सभा को अधिकार है कि वह राज्य में घटित होने वाली सारी घटनाओं पर अपनी राय जाहिर करे। उसके सदस्य किसी घटना पर अपना विचार प्रगट कर सकते हैं। इसका प्रत्येक सदस्य सरकार से शासन-सम्बन्धी प्रश्न पूछ सकता है। यद्यपि इससे सरकार बँध नहीं जाती, फिर भी वह इसके महत्व को मानती है। जनता के प्रतिनिधियों की राय को ठुकरा कर वह अपना काम सुचारु रूप से नहीं कर सकती। धारा-सभा जब सरकार को किसी बात की चेतावनी देना चाहती है तो वह उसी विषय का कोई प्रस्ताव पास करती है। इससे सरकार का कर्त्तव्य होता है कि वह इस प्रकार के प्रस्तावों पर विचार करे। वास्तव त में प्रस्ताव जनता के विचार होते हैं।

अविश्वास का प्रस्ताव

२—कार्यरूप में देश को कार्यकारिणी शासन को चलाती है। धारा-सभा केवल नीति निर्धारित करती है। ऐसी दशा में उसे अधिकार है कि वह कार्यकारिणी को अपने वश में रक्खे। यदि वह धारा-सभा की इच्छा के विरुद्ध कार्य करे और उसकी टीका-टिप्पणी पर कुछ ध्यान न दे, तो धारा-सभा को अधिकार है कि वह उसके विरुद्ध अवि-श्वास का प्रस्ताव पास करे। अर्थात् वह जनता में इस बात की घोषणा कर दे कि मौजूदा शासन-प्रबन्ध उसकी इच्छा के विरुद्ध है। इसक

असर तात्कालिक होता है। या तो कार्यकारिणी भंग कर दी जाती है, अथवा धारा-सभा का नये सिरे से निर्माण होता है।

स्थगित प्रस्ताव (Adjournments)

३—धारा-सभा की कार्रवाइयों में कुछ विशेष घटनाएँ पेश की जाती हैं। अर्थात् जिस समय धारा-सभा की बैठक हो रही हो उस समय भूचाल आ जाय, कोई ट्रेन गिर जाय अथवा किसी व्यक्ति विशेष की मृत्यु हो जाय, इत्यादि-इत्यादि, तो धारा-सभा का कोई सदस्य उठकर सरकार से प्रार्थना कर सकता है कि सब काम बन्द कर विशेष घटना पर ही विचार किया जाय। हो सकता है सरकार इसको मंजूरी न दे। ऐसी दशा में यह कहा जायेगा कि स्थगित प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया। यदि यह इसे मंजूर कर लेती है तो वर्तमान सभी कार्रवाइयों को कुछ घन्टों के लिये स्थगित कर दिया जाता है और उतनी देर तक उसी विशेष घटना पर विचार किया जाता है। ऐसा इसलिये किया जाता है कि बड़ी-बड़ी घटनाओं पर सरकार का ध्यान तुरन्त आकर्षित करा दिया जाय। इससे उस घटना का महत्व बढ़ जाता है और सरकार की जिम्मेवारी उसके प्रति अधिक हो जाती है।

प्रश्नोत्तर Interpellation

४—धारा-सभा की बैठक में सदस्यों को इस बात की आजादी है कि ये किसी विषय पर सरकार से प्रश्न पूछ सकें। इससे वे इस बात का अनुमान करते हैं कि सरकार कहाँ तक शासन-सम्बन्धी जानकारी रखती है। इसके अतिरिक्त प्रश्नों से सरकार का ध्यान शासन की कमजोरियों की ओर आकर्षित कराया जाता है। जिस विषय पर कोई प्रश्न पूछ दिया जाता है उससे सम्बन्ध रखने वाला विभाग अपने कार्यों में अधिक सावधान हो जाता है। यदि धारा-सभा के किसी सदस्य ने किसी सरकारी अफसर की नाजायज हरकतों के विषय में सरकार से कोई प्रश्न पूछ दिया तो उस अफसर को या तो अपने को पाक-साफ साबित करना होगा, अन्यथा नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा। इन प्रश्नों का इतना महत्व है कि सरकारी कर्मचारी इससे डरते हैं। इसीलिये धारा-सभा की बैठक में पहला घन्टा केवल प्रश्न पूछने के लिये निर्धारित किया गया है।

शासन की नीति निर्धारित करने के लिये धारा-सभा ऊपर लिखे किसी भी अधिकार का प्रयोग कर सकती है। उसका महान कर्त्तव्य सरकारी आय-व्यय को सँभालना है। वास्तव में यह उसके हाथों में एक ऐसी कुञ्जी दी गई है जिससे सरकार के सभी विभाग उसकी मुट्ठी में रहते हैं।

यह एक साधारण कहावत है कि जिसके हाथ में धन है उसी का नियम मानना होगा। धारा-सभा को वह अधिकार देकर उसे ऐसी अवस्था में रख दिया गया है कि राज्य का कोई कर्मचारी उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य न करे। नागरिकों पर तब तक कोई टैक्स नहीं लगाया जा सकता जब तक धारा-सभा इसकी अनुमति न दे। उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई सरकारी कर्मचारी प्रजा से एक कौड़ी वसूल नहीं कर सकता। किसी देश को ऋण लेने और देने का अधिकार धारा-सभा द्वारा दिया जाता है। साल भर की आमदनी और खर्च का ब्यौरा वही मंजूर करती है। जिस देश में उसे यह अधिकार नहीं है, वह प्रजातंत्रवादी कहलाने का दावा नहीं कर सकता। जनता का धन उसके प्रतिनिधियों को ख़र्च करने का अधिकार होना चाहिये। इसी के लिये इंगलैण्ड में कई वर्ष तक राजा और पार्लियामेंट में लड़ाई चलती रही जिसमें राजा को अपने प्राण से हाथ धोना पड़ा और पार्लियामेंट की विजय हुई।

हमें देखना चाहिये कि भारतीय धारा-सभा कहाँ तक जनता की प्रतिनिधि रही है। हिन्दोस्तान १९४७ ई० तक एक स्वतंत्र राष्ट्र नहीं रहा है। इस देश की धारा-सभा बृटिश पार्लियामेंट की मातहती में काम करती थी। इसके अतिरिक्त गवर्नर-जनरल को इतने अधिकार दिये गये थे कि वह इसे उपेक्षा की दृष्टि से देख सकता था। उसे स्वयं बहुत से सदस्यों को नामजद करने का अधिकार था। सदस्यों का निर्वाचन साम्प्रदायिक आधार पर किया जाता था। इससे भारत की राष्ट्रीयता विभाजित हो जाती थी। निर्वाचन की कोई एक पद्धति ऐसी नहीं थी जिससे साम्प्रदायिक भाव पैदा न हो। चुनाव संबंधी प्रश्नों पर एक सम्प्रदाय दूसरे को अपना शत्रु समझता था। १९३७ ई० के बाद जब प्रांतीय शासन की बागडोर हिन्दोस्तानियों के हाथ में आई तो हिंदू और मुसलमानों की समस्या और उलझनें और भी स्पष्ट हो गईं। कोई भी राजनीतिज्ञ साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति को अच्छा नहीं समझता। धार्मिक और जाती प्रश्न राजनीति को गन्दा कर देते हैं। भारतीय धारा-सभा के निर्वाचक तथा सदस्य दोनों के लिये सम्पत्ति की रुकावट लगाई गई थी। नागरिकता का क्षेत्र इतना संकुचित था कि धारा-सभाओं में प्रजा के सच्चे प्रतिनिधि जाने से वंचित रह जाते थे। अधिकतर संख्या ज़मींदारों, तालुकेदारों तथा धनी-मानी लोगों की होती थी। भारतीय धारा-सभा कार्यकारिणी को अपने अधिकार में उस प्रकार नहीं रखती थी जैसे योरप

भारतीय धारा-सभा का स्वरूप

तथा अमेरिका के प्रजातंत्र राज्यों में रखती हैं। कार्यकारिणी विभाग का प्रधान, अर्थात् गवर्नर-जनरल अनेक अधिकारों से विभूषित किया गया था।

कौंसिल आफ़ स्टेट
Council of State

बड़ी धारा-सभा अर्थात्—कौंसिल आफ स्टेट में कुल ६० सदस्य होते थे। इनमें ३३ जनता द्वारा चुने जाते थे और बाकी को गवर्नर-जनरल नामजद करता था। नामज़द मेम्बरों में सरकारी सदस्यों की संख्या २० से अधिक नहीं रहती थी। सिक्ख, मुसलमान तथा अँग्रेज—इनके लिये विशेष स्थान सुरक्षित रक्खे गये थे। गैरसरकारी सदस्य कौंसिल की पूरी अवधि तक काम करते थे। सरकारी सदस्यों के लिये भी यही नियम था। परंतु गवर्नर-जनरल चाहता तो उन्हें थोड़े समय के लिये इसका सदस्य बना सकता था। नामज़द मेम्बरों की जगहें जब खाली होतीं तो वे गवर्नर-जनरल द्वारा भरी जातीं थीं। लगभग सभी प्रजातंत्रवादी देशों में बड़ी धारा-सभा कभी बर्ख़ास्त नहीं कि जाती। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, फ्रान्स, इङ्गलैण्ड आदि देशों में इसकी अवधि की कोई सीमा नहीं है। परन्तु हमारे देश में कौंसिल आफ़ स्टेट की अवधि ५ वर्ष रक्खी गई थी। इतने में भी गवर्नर-जनरल को अधिकार था कि वह जब चाहता इसे बर्ख़ास्त कर सकता था। किसी विशेष परिस्थित में वह इसकी अवधि को बढ़ा भी सकता था।

कौंसिल आफ स्टेट का सभापति इसी के सदस्यों में से गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त किया जाता था। जब इसकी बैठक आरम्भ होती तो गवर्नर-जनरल इसके सदस्यों में से ४ आदमियों को नामजद करता था। सभापति की अनुपस्थिति में इन चारों में से कोई भी उसका स्थान ग्रहण करता था। आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफरीका में बड़ी धारा-सभा का सभापति सदस्यों द्वारा निर्वाचित किया जाता है; परन्तु हमारे देश में बड़ी सभा को यह अधिकार नहीं दिया गया था। सरकारी ऐक्ट में कौंसिल आफ स्टेट के सभापति का वेतन निश्चित नहीं था। परन्तु कामन सभा के एक जिम्मेवार व्यक्ति के वक्तव्य से यह मालूम पड़ता है कि उसका वेतन ५२,००० रुपया सालाना था। कौंसिल आफ स्टेट का मंत्री तथा उसके सहायक गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त किये जाते थे।

केन्द्रीय धारा-सभा की छोटी सभा का नाम लेजिस्लेटिव असेम्बली

लेजिस्लेटिव असेम्बली

था। इसमें कुल १४५ सदस्य होते थे। इनमें १०४ जनता द्वारा चुने जाते थे और शेष गवर्नर-जनरल द्वारा नामजद किये जाते थे। नामजद मेम्बरों में २६ सरकारी सदस्यों का होना आवश्यक था। असेम्बली की अवधि ३ वर्ष थी। गवर्नर-जनरल को अधिकार था कि वह इसकी अवधि घटा-बढ़ा सके। अधिकतर प्रजातन्त्र राज्यों में छोटी धारा-सभा की अवधि ५ वर्ष रक्खी गई है। यदि हम अन्य देशों की छोटी धारा-सभा से असेम्बली का मुकाबिला करें तो देखेंगे कि शायद ही कोई देश ऐसा मिले जहाँ इसके सदस्य नामजद किये जाते हों। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका, इंगलैंड, फ्रांस, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका आदि देशों में छोटी सभा के सभी सदस्य जनता द्वारा चुने जाते हैं। हिन्दोस्तान ही एक ऐसा देश था, जहाँ इस सभा के एक तिहाई से अधिक सदस्य नामजद किये जाते थे। इससे नागरिक की राजनीतिक स्वतन्त्रता में बाधा पड़ती थी। चुने हुए सदस्य विभिन्न सूबों से आते थे। उनकी संख्या निम्नलिखित प्रकार से विभाजित की गई थी:—मद्रास १६; बम्बई १६; संयुक्तप्रान्त, १६; बंगाल, १७; पंजाब, १२; बिहार या उड़ीसा, १२; मध्यप्रान्त, ५; आसाम, ४; ब्रह्मा, ४; दिल्ली, १; अजमेर मारवाड़ा, १; संयुक्तप्रान्त से १६ सदस्यों में ८ हिन्दू, ६ मुसलमान, १ अँग्रेज और १ जमींदार था। इससे स्पष्ट है कि बड़ी सभा की तरह असेम्बली में भी साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति थी।

नामजद सदस्य दो प्रकार के होते थे, सरकारी अफसर और गैर-सरकारी व्यक्ति। गैर-सरकारी सदस्य असेम्बली की पूरी अवधि तक इसका सदस्य रहता था। परन्तु सरकारी सदस्य को गवर्नर-जनरल जब चाहे हटा सकता था। गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी सभा के सदस्य लेजिस्लेटिव असेम्बली या कौंसिल आफ स्टेट के सदस्य होते थे। वे जिस धारा-सभा के सदस्य होते उसी में वोट दे सकते थे। परन्तु उन्हें यह अधिकार था कि छोटी और बड़ी दोनों सभाओं में जब चाहें बैठें और बोलें। यद्यपि गवर्नर-जनरल असेम्बली का सदस्य नहीं होता, फिर भी वह इसकी कार्रवाइयों में हिस्सा ले सकता था। असेम्बली का सभापति इसके सदस्यों द्वारा उन्हीं में से चुना जाता था। परन्तु गवर्नर-जनरल से उसकी मंजूरी लेनी पड़ती थी। इसी तरह एक उपसभापति भी गवर्नर-जनरल की स्वीकृति से चुना जाता था। सभापति को आसन ग्रहण करने पर निष्पक्ष भाव से काम करना पड़ता था। जब तक वह

इस पद पर रहता तब तक किसी राजनीतिक दल से उसका सम्बन्ध नहीं होता था। उसका स्थान उसी प्रकार का था जैसे इंगलैंड में कामन सभा के सभापति का है। मत बराबर होने पर उसे निर्णायक मत देने का अधिकार था। इससे जाहिर है कि असेम्बली में सभापति के स्थान की नकल इंगलैंड की कामन सभा से की गई थी। सभापति को ४००० रुपया मासिक वेतन दिया जाता था। इङ्गलैंड में कामन सभा के सभापति को ६२५० रुपया मासिक वेतन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त उसे एक सुन्दर बंगला और मुफ्त रोशनी प्रदान की जाती है। उसके वेतन पर किसी प्रकार का टैक्स नहीं लिया जाता। भारतीय असेम्बली के सभापति को वेतन के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिया जाता था। लेजिस्लेटिव असेम्बली का मन्त्री तथा उसके सहायक गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त किये जाते थे। वे तब तक कार्य कर सकते थे जब तक गवर्नर-जनरल की इच्छा होती थी।

केन्द्रीय धारा-सभा के सदस्यों की योग्यता

छोटी और बड़ी दोनों धारा-सभाओं के सदस्यों की योग्यता अलग अलग ठहराई गई थी। परन्तु कुछ बातें ऐसी थीं जो दोनों के लिये एक समान लागू थीं। प्रान्तीय धारा-सभा के सदस्यों पर भी ये लागू होती थीं। सदस्यों के लिये बृटिश भारत का नागरिक होना आवश्यक था। स्त्रियाँ इसकी सदस्या नहीं हो सकती थीं। कोई व्यक्ति दोनों धारा-सभाओं का सदस्य नहीं हो सकता था। किसी कचहरी से निकला हुआ वकील इसका सदस्य नहीं बन सकता था। पागल तथा दिवालिये भी इसके सदस्य नहीं बन सकते थे। २५ वर्ष से नीचे की आयु का कोई व्यक्ति इसका सदस्य नहीं बन सकता था। रियासतों के राजा तथा प्रजा इसके सदस्य नहीं बन सकते थे। जिस व्यक्ति को कालेपानी अथवा १ वर्ष से अधिक जेल की सजा हुई होती वह अपनी सजा की पूर्ति से ५ वर्ष तक इसका सदस्य नहीं हो सकता था। सरकारी कर्मचारी इसके सदस्य नहीं बन सकते थे। यदि नामज़द गैर सरकारी सदस्यों में से अपनी अवधि के बीच में कोई सरकारी पद प्राप्त कर लेता तो वह धारा-सभा से हटा दिया जाता था। परन्तु मन्त्रियों पर यह नियम लागू नहीं था। उपरोक्त बाधाओं में से कुछ तो हटाने का अधिकार गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिल और प्रान्तीय गवर्नरों को दिया गया था।

उपरोक्त योग्यता के अतिरिक्त कौंसिल आफ स्टेट तथा लेजिस्लेटिव

असेम्बली के सदस्यों के लिये कुछ अलग अलग शर्तें थीं। ये शर्तें निर्वाचन पद्धति के अनुसार लगाई गई थीं। साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति होने के कारण निर्वाचन क्षेत्रों से सभी व्यक्ति चुनाव के लिये खड़े नहीं हो सकते थे। धारा-सभाओं का सदस्य वही व्यक्ति हो सकता था जो अपने निर्वाचन क्षेत्र में वोट देने का अधिकारी था।

इनके निर्वाचकों की योग्यता

केन्द्रीय धारा-सभा के सदस्यों को चुनने का अधिकार सभी व्यक्तियों को नहीं था। इनके चुनाव में वह व्यक्ति वोट नहीं दे सकता जो बृटिश भारत का नागरिक नहीं था। कोई स्त्री वोट नहीं दे सकती थी। पागल अथवा दिवालिये वोट देने के अधिकारी नहीं थे। २१ वर्ष से नीचे की आयु के व्यक्तियों को वोट देने का अधिकार नहीं था। कोई व्यक्ति दो निर्वाचन क्षेत्रों में वोट नहीं दे सकता था। इनके अतिरिक्त कौंसिल आफ स्टेट तथा लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्यों के चुनाव में मत देने वालों के लिये अलग-अलग शर्तें थीं। प्रत्येक सूबे की शर्तें भिन्न-भिन्न प्रकार की थीं। जो व्यक्ति संयुक्तप्रान्त में कौंसिल आफ स्टेट के सदस्यों के लिये मत देने का अधिकारी था उसके लिये निम्न-लिखित योग्यतायें रखना आवश्यक था :—

१—सदस्य के निर्वाचन क्षेत्र में वह निवास करता हो।

२—कम से कम ५,००० रुपया सरकारी मालगुजारी देता हो।

३—अथवा उसे कम से कम ५,००० रुपये तक की मालगुजारी की जमीन माफी में दी गई हो।

४—कम से कम १०,००० रुपये सालाना की उसे आमदनी हो।

५—वह भारतीय धारा-सभा का सदस्य रहा हो।

६—किसी यूनिवर्सिटी की कोर्ट या सीनेट का सदस्य हो। अथवा किसी यूनिवर्सिटी का फेलो या अवैतनिक फेलो रहा हो।

७—उसे महामहोपाध्याय या शमशुलउल्मा की उपाधि दी गई हो।

८—डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या म्युनिसिपल बोर्ड का चेयरमैन या वाइस चेयरमैन रह चुका हो।

९—संयुक्तप्रान्त में चैम्बर आफ कामर्स का सभापति हो या रहा हो।

१०—कोआपरेटिव सेन्ट्रल सोसाइटी का सभापति या उप-सभापति हो।

११—इनके अतिरिक्त मुसलमानी निर्वाचन क्षेत्र में केवल मुसलमान वोट दे सकते थे।

लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्यों के चुनाव में वोट देने के लिये मतदाताओं की योग्यता विभिन्न सूबों में भिन्न-भिन्न प्रकार की थी। संयुक्तप्रान्त में दो प्रकार के निर्वाचन क्षेत्र बनाये गये थे। आम और खास। आम निर्वाचन क्षेत्र के अन्तर्गत शहरी और ग्रामीण दो विभाग किये गये थे। शहरी निर्वाचन क्षेत्र में उसी व्यक्ति को मत देने का अधिकार था जो शहर के २ मील के घेरे में निवास करता हो; अथवा १८० रुपया सालाना मकान का किराया या उसका टैक्स देता हो; अथवा कम से कम १००० रुपया म्युनिसिपैलिटी को आय-कर देता हो। ग्रामीण-निर्वाचन-क्षेत्र में मत देने का अधिकार उसी को था जो १८० रुपया सालाना किसी शहर में, जो उस निर्वाचन क्षेत्र के अन्दर हो टैक्स देता हो; अथवा १५० रुपये का मालगुजार हो। खास निर्वाचन क्षेत्र में वही व्यक्ति मत देने का अधिकारी था जो कम से कम ५००० रुपया सालाना सरकारी मालगुजारी देता हो अथवा इतनी ही लगान की भूमि माफी में जोतता हो।

केन्द्रीय धारा-सभा की कार्य-पद्धति और कानून का बनाना

धारा-सभा के सदस्यों का चुनाव हो जाने के पश्चात् गवर्नर-जनरल इस बात की घोषणा करता था कि कब और कहाँ इसकी पहली बैठक होगी। प्रत्येक धारा-सभा का मन्त्री हर एक सदस्य के पास इसकी सूचना भेज देता था। सभापति की आज्ञा से इसकी बैठक समाप्त की जाती थी। आमतौर से छोटी और बड़ी दोनों धारा-सभाओं की बैठक ११ बजे दिन से ४ बजे शाम तक होती थी। कार्यवाही आरम्भ करने के लिये छोटी सभा (Legislative-Assembly) में कम से कम २५ सदस्य और बड़ी सभा (Council of State) में १५ सदस्य अवश्य उपस्थित होने चाहिये। यदि इतने सदस्य उपस्थित न होते तो बैठक दूसरे दिन के लिये स्थगित कर दी जाती थी। दोनों धारा-सभाओं की पहली बैठक के आरम्भ में प्रत्येक सदस्य को एक प्रकार की शपथ लेनी पड़ती थी। धारा-सभा का कार्य अँग्रेजी भाषा में होता था; परन्तु सभापति को अधिकार था कि वह किसी सदस्य को हिन्दी या उर्दू में बोलने की आज्ञा दे सके। सभापति की आज्ञा सबको माननी पड़ती थी। बाहरी लोग उसकी आज्ञा से सदस्यों से अलग बैठकर इसकी कार्यवाही सुन सकते थे।

प्रत्येक बैठक (Session) आमतौर से ३ या ४ महीने चलती थी। बैठक के आरम्भ में कार्यवाही का पूरा ब्यौरा बना लिया जाता था। किस

कार्यवाही के लिये कितने दिन खर्च किये जायेंगे यह भी तय कर लिया जाता था। प्रत्येक धारा-सभा का मंत्री रोज कार्यवाही का ब्यौरा तैयार करता था और इसकी नक़ल हरेक सदस्य के पास भेज देता था। सारी कार्यवाही दो भागों में बाँट दी जाती थी—सरकारी और गैर सरकारी (Official and Nonofficial)। रोज की बैठक का पहला घन्टा प्रश्न पूछने के लिये निश्चित रहता था। हर सदस्य सरकार से प्रश्न पूछ सकता था। सरकार का तात्पर्य गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी सभा के सदस्यों से है। प्रश्न पूछने के लिये प्रत्येक सदस्य को १० दिन पहले इसकी सूचना सभा के सभापति को देनी पड़ती थी। इससे कार्यकारिणी सभा के सदस्य ठीक समय पर उत्तर देने के लिये तैयार रहते थे। इंगलैंड की कामन सभा में सदस्यों को प्रश्न पूछने की सूचना केवल एक दिन पहले देनी पड़ती है। सभापति को अधिकार था कि वह किसी प्रश्न को नामंजूर कर दे। कुछ विषय ऐसे थे, जिन पर कोई प्रश्न नहीं पूछ सकता था। भारतीय सरकार का विदेशों से सम्बन्ध, भारतीय रियासतें हाईकोर्ट में किसी मुक़द्दमे की सुनाई आदि विषय इस कोटि में गिने जाते थे। किसी सरकारी पदाधिकारी के चरित्र के विषय में भी कोई प्रश्न नहीं पूछ सकता था।

यह सम्भव नहीं था कि धारा-सभा अपनी सभी कार्यवाही पूरी बैठक के सामने कर सके। न तो इसके लिये समय था और न सभी सदस्य इन पर राय देने की योग्यता रखते थे। इसलिये विभिन्न कार्य के लिये धारा-सभा की प्रत्येक सभा में अनेक कमीटियाँ होती थीं। सेलेक्ट कमीटी, सम्मिलित कमीटी, बिल के लिये दर्ख़ास्त सम्बन्धी कमीटी, सरकारी हिसाब-किताब सम्बन्धी कमीटी, इत्यादि कमीटियाँ थीं। प्रत्येक कमीटी में सदस्यों की संख्या कम-बेश होती थी। जब कभी धारा-सभा किसी विषय पर विचार करना चाहती तो वह कुछ सदस्यों की एक कमीटी उसके लिये बना देती थी। जो सदस्य जिस विषय का जानकार होता वह उससे संबंध रखने वाली कमीटी में रक्खा जाता था। छोटी या बड़ी धारा-सभा इस विषय का प्रस्ताव पास करती थी कि अमुक बिल सम्मिलित कमीटी (Joint Committee) को सुपुर्द कर दिया जाय। यदि यह प्रस्ताव दूसरी सभा को मंजूर होता तो दोनों धारा-सभायें बराबर सदस्यों को चुन कर एक सम्मिलित कमीटी बना देती थीं। कमीटी स्वयं अपना सभापति चुनती थी। कार्य करने का स्थान तथा समय, सब कुछ बड़ी धारा-सभा (Council of State) का सभापति निश्चित करता था।

क़ानून किस प्रकार बनते थे इस पर भी थोड़ा विचार करना चाहिये।* इसके बनने का तरीका बहुत ही पेचीदा था। यह कई सीढ़ियों से होकर गुजरता था। ये सीढ़ियाँ दोनों सभाओं में एक-सी थीं। जब कोई कानून धारा-सभा में पेश किया जाता तो इसे बिल कहते थे। जब दोनों धारा सभायें इसे पास कर देतीं तो यह ऐक्ट कहलाने लगता। जब गवर्नर-जनरल इस पर अपना हस्ताक्षर कर देता तो यह कानून कहलाता था। अब प्रश्न यह है कि बिल कैसे पेश होते थे और किस प्रकार वे कानून बन जाया करते थे। बिलों को दो कोटि में बाँट सकते थे—सरकारी और गैर सरकारी। जब सरकार स्वयं कोई कानून पास कराना चाहती तो अपने सदस्यों द्वारा उस आशय का कोई बिल पेश करवाती थी। इसे सरकारी बिल कहते थे। जो बिल धारा-सभा के अन्य सदस्य पेश करते वे गैर सरकारी बिल कहे जाते थे।

बिल दोनों धारा-सभाओं में आरम्भ किया जा सकता था। धारा-सभा का कोई सदस्य इसे पेश कर सकता था। जो सदस्य बिल पेश करना चाहता उसे इसकी सूचना एक महीना पहिले अपनी धारा-सभा के सभापति को देनी पड़ती थी। साथ ही उसे बिल का उद्देश्य भी पेश करना पड़ता था। जब सभापति इसकी आज्ञा दे देता तो सदस्य एक निश्चित तिथि पर धारा-सभा की बैठक में इसे पेश करता था। इसके बाद वह सरकारी गजट में प्रकाशित कर दिया जाता। यदि गवर्नर-जनरल की राय में बिल भारतीय नियम और शान्ति को भंग करता, तो वह अपने अधिकार से इसे उसी जगह रोक सकता था। यदि ऐसा न होता तो बिल की कार्यवाही आगे को चलती थी। बिल पेश करते समय सदस्य धारा-सभा से अनुरोध करता था कि निकट भविष्य में इस पर विचार करने के लिये कोई दिन निश्चित कर दिया जाय। यदि धारा-सभा के पास समय होता तो वह उसी दिन से उस पर विचार करना प्रारम्भ कर सकती थी। जैसा निश्चित होता पहिली बार बिल पर मोटे तौर से विचार किया जाता था। इस अवस्था में उसमें कोई संशोधन नहीं किया जाता। उसकी अथवा अन्य सदस्यों के राय से उसे सेलेक्ट कमीटी को सुपुर्द कर दिया जाता था।

सेलेक्ट कमीटी इस पर अच्छी तरह विचार कर इसकी रिपोर्ट धारा-सभा को देती थी। तीन महीने के अन्दर वह अपनी रिपोर्ट नहीं दे सकती थी। धारा-सभा चाहती तो तीन महीने के अंदर इसकी रिपोर्ट ले सकती

* भारतीय नये शासन-विधान में भी इसी प्रकार की व्यवस्था की जाती है।

थी। टैक्स सम्बन्धी बिलों पर यह ३ महीने वाला नियम लागू न था। रिपोर्ट मिल जाने पर बिल पेश करने वाला सदस्य उसे धारा-सभा की बैठक में पेश करता था। परन्तु उस पर किसी तरह के बहस-मुबाहिसे नहीं किये जा सकते थे। सिलेक्ट कमीटी के संशोधन और उसकी रिपोर्ट सरकारी गजट में प्रकाशित कर दी जाती थी। इसकी छपी हुई एक एक प्रति धारा-सभा के प्रत्येक सदस्य के पास भेज दी जाती थी। इसके बाद बिल पेश करने वाला सदस्य धारा-सभा से अनुरोध करता था कि वह इस पर विचार करे। संशोधन पेश करने के लिये सदस्यों को दो दिन पहिले से सभापति को सूचित करना पड़ता था। सभी संशोधनों पर क्रम-पूर्वक विचार किया जाता था। बिल की एक एक धारा पर अलग अलग विचार होता था। कोई संशोधन न हुआ तो बिल पेश करनेवाला इसे पास करने का प्रस्ताव कर सकता था। बिल पास हो जाने पर सभापति उस पर अपनी दस्तखत करता था। जब यह क्रिया एक सभा में समाप्त हो जाती तो बिल दूसरी सभा में भेज दिया जाता था। वहाँ भी इसी क्रम से होकर उसे गुजरना पड़ता था।

दूसरी सभा में बिना किसी संशोधन के बिल पास हो जाने पर गवर्नर-जनरल के हस्ताक्षर के लिये भेज दिया जाता था। परन्तु दूसरी धारा-सभा में अक्सर कुछ संशोधन किये जाते थे। यदि ये पहली धारा-सभा को मंजूर होते तो बिल पास समझा जाता और वह गवर्नर-जनरल के हस्ताक्षर के लिये भेज दिया जाता था। गवर्नर-जनरल को अधिकार था कि वह उसे नामंजूर कर दे। उसके मन्जूर कर देने पर वह बिल कानून कहलाता था।

बजट को पेश करने और उसे पास कराने का तरीका निम्नलिखित था। हमारे देश में सरकारी आमदनी और खर्च का साल पहिली अप्रैल से ३१ मार्च तक माना जाता है। हर साल जाड़े के महीने में केन्द्रीय सरकार अपनी आमदनी और खर्च का ब्योरा तैयार करती थी। धारा-सभा के सामने यह चिट्ठा पेश किया जाता था। इसी को बजट कहते थे। इस पर विचार करने के लिये धारा-सभा कोई दिन तय करती थी। कम से कम ७ दिन पहिले इसकी सूचना सदस्यों को दे दी जाती थी। बड़ी धारा-सभा (Council of State) बजट पर विचार तो करती थी परन्तु वह इससे आगे कुछ नहीं कर सकती थी। उसे बजट में संशोधन करने का कोई अधिकार न था। इसकी पूरी कार्यवाही छोटी धारा-सभा के हाथों में रक्खी गई थी। बजट के पास होने

की दो अवस्थायें थीं। पहली अवस्था में छोटी सभा (Legislative Assembly) इस पर विचार करती थी और दूसरी अवस्था में वह विभिन्न मदों को पास करती थी। अर्थमन्त्री (Finance Member) अन्त में बजट पर अपना एक वक्तव्य और इस पर किये गये प्रश्नों का उत्तर देता था।

सरकारी विभागों के लिये अलग-अलग रुपया मंजूर किया जाता था। अर्थ-मन्त्री चाहता तो २ या ३ विभागों का रुपया एक में मंजूर करा सकता था। गवर्नर-जनरल मंजूरी पर वाद-विवाद करने के लिये अधिक से अधिक १५ दिन का समय निर्धारित कर सकता था। एक मद पर दो दिन से अधिक बहस नहीं की जा सकती थी। पन्द्रहवें दिन पाँच बजे शाम तक इसकी सारी कार्यवाही समाप्त कर देनी पड़ती थी। छोटी धारा-सभा इमदाद को काटने या कम करने का प्रस्ताव पेश कर सकती थी परन्तु वह इसे बढ़ाने का प्रस्ताव नहीं कर सकती थी।

जब कोई बिल एक धारा-सभा से पास होकर दूसरी सभा में भेजा जाता तो बहुधा एक सभा के संशोधन दूसरी सभा को मंजूर नहीं होते थे। दोनों सभाओं में मतभेद होता था। इसे दूर करने के लिये ४ तरीके बनाये गये थे।

सम्मिलित महासभा
Joint Conference

१—दोनों सभाओं से बराबर बराबर सदस्य चुन लिये जाते थे। उनकी एक कमेटी बना दी जाती थी। वह अपने में से किसी को सभापति चुन लेती थी। यदि सदस्यों के मत बराबर होते तो सभापति अपना वोट किसी को नहीं देता था। बड़ी सभा (Council of State) का सभापति कमेटी का स्थान और समय निश्चित करता था। कमीटी का फैसला दोनों सभाओं को मानना पड़ता था।

सम्मिलित बैठक
Joint Sitting

२—मतभेद को दूर करने का दूसरा तरीका सम्मिलित बैठक थी। इसकी सूचना गवर्नर-जनरल को दे दी जाती थी। वह सरकारी गजट में इसे प्रकाशित करने की आज्ञा देता था कि दोनों धारा-सभाओं की एक साथ बैठक की जाय। सभी सदस्य एक साथ बैठ कर प्रस्तुत बिल पर विचार करते थे। जो बात बहुमत से तै होती वह दोनों सभाओं को माननी पड़ती थी। बड़ी सभा का सभापति इसका सभापति होता था।

सम्मिलित निर्वाचित कमीटी
Joint Select Committee

३—जब कोई बिल धारा-सभा में पेश होता तो कुछ सदस्य इस बात का प्रस्ताव पेश कर सकते थे कि दूसरी धारा-सभा के सदस्य अपने कुछ प्रतिनिधि सिलेक्ट कमीटी में भेज दें। इससे दूसरी सभा को बिल की प्रगति मालूम होती रहती। उसके प्रतिनिधियों को इस पर राय देने का मौका मिलता। इससे दोनों सभाओं में मतभेद उत्पन्न होने की सम्भावना कम होती। बिल पर विचार करने के लिये पहिली सभा में जो ज्वायेंट कमीटी बनाई जाती उसमें दोनों सभाओं के बराबर सदस्य होते थे। इसका सभापति इसी कमीटी द्वारा चुना जाता था, और उसे केवल एक वोट का अधिकार था। कमीटी का फ़ैसला दोनों सभाओं को मान्य होता था।

इसके अलावा एक और तरीका मतभेद को दूर करने के लिये बनाया गया था। दोनों सभाओं में मतभेद होने पर गवर्नर-जनरल अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग करता था। वह बिल को तसदीक (Certify) कर सकता था। इससे वह बिल अपने आप पास समझा जाता था। १९२४ ई० में लार्ड रीडिंग ने नमक-कर पर अपने इसी अधिकार का प्रयोग किया था।

केन्द्रीय धारा सभा के अधिकार

धारा-सभा के सदस्यों को कौंसिल चैम्बर के भीतर बोलने की पूरी स्वतंत्रता दी गई थी। कोई कचहरी इसके लिये उस पर मुक़दमा नहीं चला सकती थी। परन्तु उन्हें सभा की कार्य-पद्धति का ध्यान रखना पड़ता था। हरेक सदस्य को बैठक की पूरी अवधि तक लगभग २६) रोजाना भत्ता तथा अपने स्थान से दिल्ली तक आने-जाने का रेल का किराया दिया जाता था। बैठक के बीच में कोई सदस्य किसी अपराध के लिये गिरफ्तार नहीं किया जा सकता था।

हिन्दोस्तान की राजसत्ता पार्लियामेंट के हाथ में होने से केन्द्रीय धारा-सभा की सारी कार्रवाई अंतिम नहीं समझी जाती थी। इसके द्वारा पास किये गये क़ानून गवर्नर-जनरल अथवा पार्लियामेंट द्वारा रद्द किए जा सकते थे। फिर भी किसी एक दायरे के अन्दर केन्द्रीय धारा-सभा को कुछ अधिकार प्राप्त थे। हिन्दोस्तान की सीमा के अन्दर जितने व्यक्ति अथवा संस्थायें थीं, उनके लिये वह क़ानून बनाने की अधिकारिणी थी। आवश्यकतानुसार नये क़ानूनों को बनाने तथा पुराने क़ानूनों को हटाने का उसे अधिकार प्राप्त था। लेकिन इसके लिये उसे पार्लियामेंट की

अनुमति लेनी पड़ती थी। पार्लियामेंट के विरुद्ध उसे कोई कार्य करने का अधिकार न था। भारत-मंत्री की आज्ञा के बिना केन्द्रीय धारा-सभा किसी न्यायालय को यह अधिकार नहीं दे सकती थी कि वह किसी योरप निवासी को प्राणदंड दे सके। गवर्नर-जनरल की इच्छा के विरुद्ध आर्थिक विषयों से सम्बन्ध रखता हुआ कोई बिल पेश नहीं किया जा सकता था। धारा-सभा धार्मिक विषयों पर तब तक विचार नहीं कर सकती थी जब तक गवर्नर-जनरल की आज्ञा प्राप्त न हो जाय। फौज सम्बन्धी नियम बनाने का अधिकार उसे उसी हालत में था जब गवर्नर-जनरल इसकी आज्ञा दे देता। देशी रियासतों के मामलों में वह गवर्नर-जनरल की आज्ञा के बिना हाथ नहीं डाल सकती थी। गवर्नर-जनरल के आर्डिनेन्स को समाप्त करने का अधिकार उसे प्राप्त न था।

यदि कोई बिल केन्द्रीय धारा-सभा में पेश था तो गवर्नर-जनरल अपने अधिकार से उसे रोक सकता था। परन्तु उसे यह सिद्ध करना पड़ता था कि उपरोक्त बिल शान्ति में बाधक होता। कोई क़ानून धारा-सभा द्वारा तब तक पास नहीं समझा जाता जब तक गवर्नर-जनरल उस पर अपनी अनुमति न दे देता। गवर्नर-जनरल की अनुमति प्राप्त होने पर भी पार्लियामेंट उसे रद्द कर सकती थी। इस अधिकार से भारतीय धारा-सभा का स्थान एक कठपुतली की तरह था। उसे पार्लियामेंट और गवर्नर-जनरल की इच्छा पर नाचना पड़ता था। इंगलैंड के इतिहास में ऐसे अवसर बहुत कम मिलेंगे जब कि सम्राट् ने पार्लियामेंट की कार्यवाहियों को रद्द कर दिया हो। इसके विपरीत हिन्दोस्तान का इतिहास इस प्रकार के उदाहरणों से भरा पड़ा है। गवर्नर-जनरल को अधिकार था कि वह बने हुये क़ानूनों को रद्द तथा नये क़ानून पास कर सके। वह जब चाहता एलान कर सकता था कि अमुक क़ानून हिन्दोस्तान की बेहतरी के लिये ज़रूरी है। धारा-सभा इससे सहमत न हो, लेकिन वह क़ानून पास समझा जाता। १९२२ ई० में लार्ड रीडिंग ने अपने विशेष अधिकारों द्वारा ऐसा क़ानून पास किया था। धारा-सभा की इच्छा के विरुद्ध बिल (Princes Protection Bill) पास कर दिया गया। १९२३ ई० में उन्होंने दूसरा बिल भी अपने अधिकार से पास कराया। धारा-सभा विरोध करती रही लेकिन नमक-कर १ रुपया ४ आने से बढ़ा कर २ रुपये ८ आना फी मन कर दिया गया था।

प्रजातंत्रवादी देशों में सरकार की आमदनी और खर्च का अधिकार धारा-सभा को दिया गया है। यह अधिकार छोटी सभा के हाथों में

इसलिये रक्खा जाता है कि वही प्रजा की सच्ची प्रतिनिधि है। परन्तु हिन्दोस्तान में उसे इस अधिकार से वञ्चित रक्खा गया था। यहाँ किसी सदस्य को गवर्नर-जनरल की आज्ञा के बिना बजट में कोई रद्दोबदल का प्रस्ताव पेश करने का अधिकार न था। केन्द्रीय सरकार में खर्च के कुछ ऐसे मद् बनाये गये थे, जिन पर धारा-सभा अपना मत प्रकट नहीं कर सकती थी। भारतीय सरकार के कर्जे की सूद, बड़े बड़े सरकारी अफसरों का वेतन, वे खर्च जो राजनीतिक प्रबन्ध, सेना तथा धार्मिक मद में किये जाते थे—इन पर केन्द्रीय धारा-सभा की राय की कोई जरूरत न थी। इन्हीं मदों में लगभग एक चौथाई रकम खर्च की जाती थी, परन्तु धारा-सभा इसमें हाथ नहीं डाल सकती थी। यदि वह अपने अधिकार से किसी मद का खर्च घटा-बढ़ा देती तो उसे रद्द करने का अधिकार गवर्नर-जनरल को दिया गया था। बृटिश साम्राज्य के अन्तर्गत कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा दक्खिनी अफ्रीका में गवर्नर-जनरल को इस प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं हैं। इसलिये कहा गया है कि १६१६ के शासन-विधान में आर्थिक तथा शासन सम्बन्धी अधिकार की दृष्टि से केन्द्रीय धारा-सभा अत्यन्त कमजोर थी। कहने के लिये शासन के सभी क्षेत्रों में उसे अधिकार प्राप्त थे परन्तु वे दिखलाने के लिये थे।

१६३५ के संघ शासन-विधान में केन्द्रीय धारा-सभा का स्वरूप

संघ-शासन-विधान में केन्द्रीय धारा-सभा का नाम संघ-धारा-सभा था। पहिले की तरह इसमें छोटी और बड़ी दो सभायें होतीं। बड़ी सभा का नाम कौंसिल आफ स्टेट और छोटी का फेडरल असेम्बली था। बड़ी सभा (Council of State) में अधिक से अधिक २६० सदस्य होते। इनमें १५६ बृटिश प्रान्तों से चुनकर और बाकी १०४ सदस्य देशी रियासतों से राजाओं द्वारा नामजद होकर आते।*

कौंसिल आफ स्टेट

सदस्यों की ठीक ठीक संख्या इसलिये नहीं बताई जा सकती कि वह मालूम नहीं था कि कितनी देशी रियासतें संघ-शासन में शामिल होवीं। जो १५६ सदस्य बृटिश प्रान्तों से चुनकर आते उनमें केवल १४० जगहें प्रान्तों को दी गई थीं। बाकी १६ सदस्य के लिये

* १६३५ का संघ-शासन-विधान पूरी तरह कार्यान्वित न होने के कारण यह अंश भी सिद्धान्त रूप में ही रह गया।

प्रान्तीयता का बन्धन न था। इन १६ सदस्यों में ७ अंग्रेज, १ अंग्रेजी ईसाई, २ भारतीय ईसाई तथा ६ गवर्नर-जनरल द्वारा नामजद किये जाते। नामजद सदस्यों में अछूत और स्त्रियाँ होतीं। १४० सीटें निम्न-लिखित प्रकार से बाँटी गई थीं :—

मद्रास	...२०	पश्चिमोत्तर प्रदेश	...५
बम्बई	...१६	उड़ीसा	...५
बंगाल	...२०	सिन्ध	...५
यू० पी०	...२०	बृटिश बिलोचिस्तान	...१
पंजाब	...१६	दिल्ली	...१
बिहार	... १६	अजमेर मारवाड़ा	...१
सी० पी० और बरार	...८	कुर्ग	...१
आसाम	...५	जोड़	१४०

जो १०४ सीटें देशी रियासतों को दी गई थीं उनका ठीक ठीक ब्योरा तब तक मालूम नहीं होता जब तक संघ धारा सभा बन कर तैयार न हो जाती। कुछ बड़ी बड़ी रियासतों को जो निश्चित सीटें दी गई थीं उनका ब्यौरा इस प्रकार है :—हैदराबाद ५, मैसूर ३, काश्मीर ३, ग्वालियर ३, बड़ौदा ३, और ट्रावनकोर २ †।

कौंसिल आफ स्टेट में जो १४० सदस्य सूबों से चुन कर आते, उनका चुनाव प्रत्यक्ष (Direct) रूप से होता। नागरिक उन्हें स्वयं चुनकर भेजते। इस बड़ी सभा की कोई निश्चित अवधि नहीं थी। यदि गवर्नर-जनरल इसे बर्खास्त न करता तो यह सभा स्थाई रूप से काम करती। हर तीसरे साल एक तिहाई सदस्य बदलते रहते। इस प्रकार प्रत्येक ६ वर्ष पर सभा के सभी सदस्य बदल जाया करते। इस सभा को एक सभापति तथा एक उपसभापति चुनने का अधिकार था। १४ दिन की इत्तला देकर इसके सदस्य इन्हें बहुमत से हटा सकते थे। संघ धारा-सभा उपरोक्त दोनों पदाधिकारियों का वेतन निश्चित करती। सदस्यों का वेतन अथवा भत्ता वही तै करती।

फेडरल असेम्बली

फेडरल असेम्बली संघ-धारा-सभा की छोटी सभा होती इसमें अधिक से अधिक ३७५ सदस्य होते। इसमें २५० सूबों से चुन कर और शेष १२५ देशी रियासतों से राजाओं द्वारा नामजद होकर आते। यद्यपि देशी

† – देशी रियासतों की विलियन नीति के कारण इनका वैधानिक स्वरूप बदल रहा है।

रियासतों की जन-संख्या हिन्दोस्तान की जनसंख्या का एक चौथाई थी, लेकिन उन्हें फेडरल असेम्बली में एक तिहाई सीटें दी गई थीं। जो २५० सदस्य बृटिश प्रान्तों से चुनकर आते उनमें ४ का स्थान प्रान्तीयता के आधार पर नहीं था। इन ४ सदस्यों में ३ व्यापार मंडल के प्रतिनिध होते, और १ मज़दूरों का प्रतिनिधि होता। असेम्बली के सदस्य जनता द्वारा नही चुने जाते। इनका चुनाव अप्रत्यक्ष (Indirect) रूप से होता। प्रान्तीय धारा-सभाओं के सदस्य इन्हें चुन कर भेजते। इस सभा की बनावट में यह सबसे बड़ा दोष माना गया था जो २४६ सीटे विभिन्न प्रान्तों में विभाजित की गई थीं उनका ब्यौरा निम्नलिखित है :—

मद्रास	...३७	पश्चिमोत्तर प्रदेश	...५
बम्बई	...३०	उड़ीसा	...५
बंगाल	...३७	सिन्ध	...५
यु० पी०	...३७	बृटिश बिलोचिस्तान	...१
पंजाब	...३०	दिल्ली	...२
बिहार	...३०	अजमेर मारवाड़ा	..१
सी० पी० और बरार	...१५	कुर्ग	...१
आसाम	...१०	जोड़	२४६

जो १२५ सीटें देशी रियासतों को दी गई थीं उनकी ठीक ठीक संख्या तभी मालूम होती जब संघ-शासन-विधान कार्यान्वित होता। कुछ बड़ी बड़ी रियासतों को निम्नलिखित प्रकार से सीटें दी गई थीं :—

हैदराबाद १६, मैसूर ७, ट्राविनकोर ५, ग्वालियर ४, काश्मीर ४ और बड़ौदा ३। जो रियासतें बहुत छोटी थीं उन्हें दो-दो या तीन-तीन को सम्मिलित रूप में एक सदस्य भेजने का अधिकार दिया गया था।

१९१९ के शासन-विधान में केन्द्रीय धारा-सभा की छोटी सभा की अवधि ३ वर्ष रक्खी गई थी। संघ शासन-विधान में छोटी धारा-सभा की अवधि ५ वर्ष रक्खी गई थी। गवर्नर-जनरल को अधिकार था कि वह जब चाहे इसे बर्खास्त कर दे। परन्तु ५ वर्ष से अधिक, वह इसका समय नहीं बढ़ा सकता था। इसका सभापति स्पीकर और उसका सहायक डिप्टी-स्पीकर होता। यदि किसी कारणवश ५ वर्ष से पहिले यह बर्खास्त कर दी जाती तो स्पीकर अपने पद पर तब तक बना रहता जब तक दूसरी फेडरल असेम्बली की पहली बैठक न होती।

कोई व्यक्ति कौंसिल आफ़-स्टेट का तब तक सदस्य न होता जब तक

क्षेत्रफल वेल्स से भी बड़ा था। ऐसी दशा में किसी सदस्य के लिये यह सम्भव नहीं था कि वह अपने निर्वाचन क्षेत्र का पूरा पूरा अध्ययन करता। किसी भारतीय राजनीतिज्ञ ने यह सलाह दी थी कि ये बुराइयाँ फेडरल असेम्बली में चुने हुए सदस्यों की संख्या बढ़ा देने से बहुत कुछ कम हो सकती थी। उनका कहना था कि इसके सदस्यों की संख्या कम से कम ६०० होनी चाहिये। बृटेन की जन-संख्या हिन्दोस्तान की $\frac{1}{8}$ है, फिर भी कामन सभा में ६२१ सदस्य हैं। केवल संघ-धारा-सभा के चन्द सुधारों से तब तक काम नहीं चल सकता था जब तक समूचे संघ शासन-विधान में परिवर्तन न किया जाता।

कार्य-पद्धति और अधिकार

संघ-धारा-सभा की कार्यपद्धति उसी प्रकार की होती जो वर्तमान धारा-सभा की है। जब तक दोनों सभाओं से कम से कम $\frac{1}{6}$ सदस्य उपस्थित न होते, तब तक कोई कार्यवाही शुरू नहीं हो सकती थी। संघ-धारा-सभा को यह अधिकार प्राप्त था कि वह बृटिश भारत तथा संघ में आने वाली देशी रियासतों के लिये क़ानून बनाती। परन्तु बृटिश पार्लियामेंट की मातहती में वह कार्य करती। इसके अतिरिक्त गवनर-जनरल को अधिकार था कि वह इसके पास किये क़ानूनों को रद्द कर देता। गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकारों तथा व्यक्तिगत जिम्मेवारियों के सामने इसके अधिकार नाममात्र को रह जाते। सरकारी आय की ८० प्रतिशत ज़िम्मेवारी धारा-सभा के हाथों से बाहर रक्खी गई थी। आवश्यकता पड़ने पर संघ-धारा-सभा प्रान्तों के लिये क़ानून बना सकती थी। क़ानून बनाने के सभी विषय ३ भागों में बाँट गये थ। कुछ विषय केन्द्रीय धारा-सभा को, कुछ प्रान्तीय धारा-सभा को और कुछ दोनों को सम्मिलित रूप से दिये गये थे। सारांश यह है कि भारतीय संघ धारा-सभा को वे अधिकार प्राप्त नहीं थे, जो दुनिया और संघ-शासन के अन्दर उसे दिये गये हैं।

स्थानों का ख़ाका

कौंसिल आफ़ स्टेट

बृटिश भारत के प्रतिनिधि

१	२	३	४	५	६	७
सूबा या सम्प्रदाय	कुल स्थान	साधारण स्थान	हरिजनों के स्थान	सिक्खों के स्थान	मुसलमानों के स्थान	स्त्रियों के स्थान
मद्रास	२०	१४	१	—	४	१
बम्बई	१६	१०	१	—	४	१
बंगाल	२०	८	१	—	१०	१
संयुक्त प्रान्त	२०	११	१	—	७	१
पंजाब	१६	३	—	४	८	१
बिहार	१६	१०	१	—	४	१
मध्य प्रान्त और बरार	८	६	१	—	१	—
आसाम	५	३	—	—	२	—
पश्चिमोत्तर प्रदेश	५	१	—	—	४	—
उड़ीसा	५	४	—	—	१	—
सिन्ध	५	२	—	—	३	—
बृटिश बिलोचिस्तान	१	—	—	—	१	—
दिल्ली	१	१	—	—	—	—
अजमेर मेरवाड़ा	१	१	—	—	—	—
कुर्ग	१	१	—	—	—	—
अँग्रेज़ी ईसाई	१	—	—	—	—	—
योरोपियन	७	—	—	—	—	—
देशी ईसाई	२	—	—	—	—	—
कुल जोड़	१५०	७५	६	४	४९	६

स्थानों का ख़ाका

फ़ेडरल असेम्बली

बृटिश भारत के प्रतिनिधि

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
प्रान्त	कुल स्थान	साधारण स्थानों का जोड़	हरिजनों के सुरक्षित साधारण स्थान	सिक्खों के स्थान	मुसलमानों के स्थान	अँग्रेज़ी ईसाइयों के स्थान	यूरोपियन के स्थान	भारतीय ईसाइयों के स्थान	व्यापार और व्यवसाय के स्थान	ज़मींदारों के स्थान	मज़दूरों के स्थान	स्त्रियों के स्थान
मद्रास	३७	१९	४	—	८	१	१	२	२	१	१	२
बम्बई	३०	१३	२	—	६	१	१	१	३	१	२	२
बंगाल	३७	१०	३	—	१७	१	१	१	३	१	२	१
संयुक्त प्रान्त	३७	१९	३	६	१२	१	१	१	—	१	१	१
पंजाब	३०	६	०	—	१४	—	१	१	—	१	—	१
बिहार	३०	१	२	—	९	—	१	१	—	१	१	१
मध्य प्रान्त बरार	१५	९	०	—	३	—	—	—	—	१	१	१
आसाम	१०	४	१	—	३	—	१	१	—	—	१	—
पश्चिमोत्तर प्रदेश	५	१	—	—	४	—	—	—	—	—	—	—
उड़ीसा	५	४	१	—	१	—	—	—	—	—	—	—
सिन्ध	५	१	—	—	३	—	१	—	—	—	—	—
बृटिश बिलोचिस्तान	१	—	—	—	१	—	—	—	—	—	—	—
दिल्ली	२	१	—	—	१	—	—	—	—	—	—	—
अजमेर मेरवाड़ा	१	१	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
कुर्ग	१	१	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
प्रान्तीयता से भिन्न स्थान	४	—	—	—	—	—	—	—	३	—	१	—
कुल जोड़	२५०	१०५	१९	६	८२	४	८	८	११	७	१०	९

केन्द्रीय धारा सभा और केंद्रीय कार्य-कारिणी सभा का सम्बन्ध

यह बात निर्विवाद है कि १९४७ तक हिन्दोस्तान में एक उत्तरदायी शासन (Responsible Government) की स्थापना नहीं हुई थी। इस देश का राजनीतिक इतिहास इस बात का प्रमाण कि यहाँ की सरकार जनता की आवाज की परवाह कम करती थी। सर सुरेन्द्रना बनर्जी के शब्दों में, "कार्य-कारिणी सभा उस पत्थर की चट्टान की तरह थी जिस पर कोई भी अपना सर तोड़ सकता था।" १९१९ के शासन-विधान में कार्यकारिणी सभा और धारा-सभा के सम्बन्ध में कोई खास अन्तर नहीं पड़ा। कार्यकारिणी पहले की तरह गैर जिम्मेदार बनी रही। १९३५ के संघ शासन-विधान में भी इसकी गैर जिम्मेवारी वैसी ही बनी रही।

गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल अपने कामों के लिये पूरी तरह स्वतन्त्र थी। धारा-सभा उन अविश्वास का प्रस्ताव पास करती तो भी वे अपने पद से हटाये नहीं जा सकते थे। उसे यह अधिकार नहीं था कि वह उनके वेतन तथा भत्ते के विषय में कोई परिवर्तन करती। कार्यकारिणी सभा की सलाहों को मानने के लिये वह बाध्य थी। अपनी गलतियों के लिये इस देश की कार्यकारिणी बृटिश पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी थी। पार्लियामेंट की इच्छा से असीम काल तक वह अपने स्थान पर बनी रहती। धारा-सभा की इच्छा विरुद्ध गवर्नर-जनरल कानून बना सकता था, आर्डिनेन्स जारी कर सकता था, बने हुए कानूनों को रद्द कर सकता था तथा उसे बर्खास्त भी कर सकता था। इससे स्पष्ट है, कि इस देश की केन्द्रीय सरकार धारा-सभा के अधिकार में नहीं थी या दूसरे शब्दों में इस देश की सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं थी। जब तक जनता के प्रतिनिधि शासन में पूरा अधिकार नहीं रखते तब तक एक उत्तरदायी शासन की स्थापना नहीं हो सकती।

संसार में प्रजातन्त्र की भावना बढ़ रही है। धारा-सभा में चुने हुए सदस्यों की संख्या अधिक कर दी गई थी। इसके आर्थिक अधिकार भी पहले से बढ़ा दिये गये थे। कार्य-रूप में यह सम्भव नहीं था कि गवर्नर-जनरल और वाइसराय बार बार उसके बनाये हुए कानूनों को रद्द करते। सरकार जनता की आवाज को अधिक काल तक नहीं ठुकरा सकती थी। यह बात ठीक है कि हमारे देश की धारा-सभा को यह अधिकार नहीं था कि वह कार्यकारिणी को भंग करती, परन्तु उसका प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र में कम नहीं था। साधारण परिस्थिति में वह सब कुछ

कर सकती थी, परन्तु असाधारण परिस्थिति उत्पन्न होने पर उसके अधिकारों की अवहेलना की जाती थी। कानूनी दृष्टि से भारत-सरकार धारा-सभा से पूर्णतया स्वतंत्र थी, परन्तु कार्य रूप में वह जनता के विचारों से बँधी हुई थी। सर मलकम हेली ने अपना विचार प्रगट करते हुए कहा था कि, "यद्यपि भारत-सरकार जनता के प्रति जिम्मेवार नहीं है फिर भी वह उसकी आवाज पर विचार करती है।" धारा-सभा में जो प्रश्न पूछे जाते थे, अथवा प्रस्ताव पेश होते थे, उनका प्रभाव कार्यकारिणी विभाग पर कम नहीं पड़ता था।

धारा सभा का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से कार्यकारिणी सभा के ऊपर अधिक पड़ता था। १९१९ के मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में इस बात का जिक्र किया गया है कि अप्रत्यक्ष प्रभाव महत्वपूर्ण है। कार्यकारिणी सभा धारा-सभा के प्रति जिम्मेवार न होते हुए भी मनुष्यत्व से दूर नहीं जा सकती थी। जनता के प्रतिनिधियों के विचारों को ठुकराने में उसे वहीं तक सफलता मिलती जहाँ तक जनता इसे सहन कर सकती थी। २०वीं सदी प्रजातन्त्र वाद का युग है। स्वतंत्रता और समानता के शब्द चारों ओर गूँज रहे हैं। ऐसी दशा में जनता की आवाज को ठुकराना खतरे से खाली नहीं है।

देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने के पश्चात् विधान परिषद धारा-सभा के रूप में कार्य कर रही है। वह लोकमत का ध्यान रखते हुए अपने कार्य का सम्पादन करती है। भारतीय संघ (Indian Union) के सम्विधान, धारा-सभा के स्वरूप और केन्द्रीय कार्यकारिणी से इसका सम्बन्ध, इनमें पहिले से महान अन्तर होगा। उत्तरदायी शासन की स्थापना में जिन जिन बातों की आवश्यकता है उनका पूरा ध्यान रक्खा जायगा।

अध्याय ६

केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार का सम्बन्ध

दोनों सरकारों का दरजा

बृटिश सरकार की यह नीति थी कि केन्द्रीय सरकार की शक्ति अधिक से अधिक बढ़ाई जाय। बृटेन को राजनीतिक शक्ति केन्द्रित करने में सबसे बड़ी सुविधा यह थी कि जनता के अधिकार नाममात्र को शेष रह जावेंगे। प्रान्तीय सरकारों को छोटे-मोटे अधिकार देकर केन्द्रीय सरकार उन्हें अपनी इच्छानुसार चलाती रही है। बृटिश सरकार की दूसरी नीति हिन्दोस्तान को अधिक से अधिक टुकड़ों में बाँटने की रही है। १६०५ ई० में जब बंगाल को २ टुकड़ों में बाँटने की व्यवस्था की गई तो यह बात और भी स्पष्ट हो गई थी। लोगों ने इसका पूरी तरह विरोध किया और बंगाल विभाजित न हो सका। केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों का सम्बन्ध एक सा नहीं था। इनके सम्बन्ध को अच्छी तरह समझने के लिये हम इसे ४ भागों में बाँट सकते हैं। इनका वर्णन आगे चलकर किया जायगा। एक बात हमें स्मरण रखनी चाहिये कि केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकारों को कम से कम शक्ति प्रदान करती थी। जिस वैज्ञानिक ढङ्ग पर और स्वतन्त्र देशों में शक्ति विभाजन किया गया है, उस ढंग पर हमारे देश में इसे नहीं बाँटा गया था। भारतीय जनता और बृटिश सरकार में इस विषय पर बहुत बड़ा मतभेद था। जनता बृटिश प्रान्तों को अधिक से अधिक स्वतंत्रता प्रदान करना चाहती थी, परन्तु बृटिश सरकार केन्द्रीय सरकार की शक्ति को किसी भी तरह कम करने पर तैयार न थी।

ऐतिहासिक सम्बन्ध

ऊपर कहा गया है कि केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकार का सम्बन्ध एक-सा नहीं रहता। वह समय समय पर बदलता रहता है। यह सम्बन्ध ४ कालों में बाँटा जा सकता है :—

१—शक्ति संचय काल (१७७२—१८७०)
२—शक्ति वितरण काल (१८७०—१६३७)
३—प्रान्तीय स्वराज (१६३७—१६४७)
४—स्वतन्त्र भारत (१६४७ से आरम्भ)

शक्ति संचय काल १७७२ से १८७० तक

१ —बृटिश सरकार की योजना राजनीतिक शक्तियों को एक सूत्र बाँधकर एकात्मक राज्य स्थापित करने की रही है। प्रजा के विरोध के कारण यह नीति बहुत कुछ बदल गई थी, परंतु इसका सर्वथा परित्याग नहीं किया गया था। इस देश का राजनीतिक विभाजन किसी वैज्ञानिक ढंग पर न कर शासन की सुविधा का ध्यान रख कर इसे चन्द टुकड़ों में बाँट दिया गया है। सूबों की संख्या घटाने बढ़ाने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को दिया गया था। प्रान्तीय सरकारों को सब काम गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल से पूछ कर करना पड़ता था। केन्द्रीय सरकार सारे हिन्दोस्तान के लिये कानून बनाती थी। इसके लिये वह बृटिश पार्लियामेंट के प्रति जिम्मेवार थी। १७७४ के पहले बंगाल, मद्रास और बम्बई तीनों अहातों को अपना-अपना शासन कार्य चलाने का अधिकार दिया गया था। वारेन हेस्टिंग्स के जमाने में १७७३ ई० में रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के पास होने पर केन्द्रीय सरकार की शक्ति बढ़ी। कम्पनी ने धीरे धीरे राजनीतिक शक्ति गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को सौंप दिया। कुछ दिनों तक प्रान्तों के गवर्नर मनमानी करते रहे, लेकिन उनकी ताकत घटती गई। १७९८ ई० में जब लार्ड वेलेजली हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल हुआ, तो केन्द्रीय सरकार का रुतबा और भी बढ़ा। उसने स्पष्ट कर दिया कि हिन्दोस्तान की रक्षा, टैक्स, लड़ाई और सन्धि, शासन, फौज—इन मामलों में एक मात्र अधिकार गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को है।

वेलेजली की नीति बृटिश साम्राज्य को बढ़ाने की थी। उसके समय में संयुक्तप्रांत, कर्नाटक, कनारा, बुन्देलखंड, दिल्ली, उड़ीसा आदि सूबे बृटिश राज्य में शामिल किये गये। नये सूबे सीधे केन्द्रीय सरकार की मातहती में आते थे। वह अपनी मर्जी से शासन की सुविधा के लिये लेफ्टिनेन्ट गवर्नरों तथा चीफ कमिश्नरों को नियुक्त करती थी। १८५४ ई० में बंगाल के शासन के लिये एक अलग गवर्नर की नियुक्ति की गई। शासन की बड़ी बड़ी बातें जैसे, रक्षा, वाह्य सम्बन्ध, देशी रियासतों से सम्बन्ध इत्यादि विषय केन्द्रीय सरकार के हाथों में रक्खे गये। इनके अतिरिक्त टकसाल, विनिमय, पोस्टआफिस, रेल, तार, डाक भी उसे सुपुर्द किये गये। बाकी विषय प्रान्तीय सरकारों को इस शर्त पर दिये गये थे कि गवर्नर-जनरल जब चाहता उनमें हाथ डाल सकता था। कानून न्याय, पुलीस, जेल, घरेलू राजनीति, स्वास्थ्य, सफाई, नौकरी इत्यादि विषय प्रान्तीय सरकारों को दिये गये। शासन को सुव्यवस्थिति रूप

चलाने का बहाना लेकर केन्द्रीय सरकार जब चाहती प्रान्तीय विषयों में हाथ डाल सकती थी। कहा जाता था कि छोटे-छोटे कामों में लगे रहने के कारण प्रान्तीय सरकारों का ध्यान उन बातों की ओर नहीं जा सकता था जिन्हें केन्द्रीय सरकार आसानी से सोच सकती थी। वह प्रान्तीय सरकारों का निरीक्षण भली भाँति कर सकती थी। इन्हीं कारणों से प्रान्तीय मामलों में उसका हस्तक्षेप बुरा नहीं माना जाता था। आज भी इन्हीं कारणों को लेकर वह प्रान्तीय मामलों में हाथ डाल सकती है, परंतु इस हस्तक्षेप को जनता अच्छा नहीं समझती।

कानूनी मामलों में भी शक्ति संचय की नीति बर्ती गई। १८०७ ई० के नियम के अनुसार बम्बई तथा मद्रास के गवर्नरों को कानून बनाने का अधिकार दे दिया गया। बृटिश सरकार ने शक्ति संचय की नीति में इसे बाधक समझ कर उनसे १८३३ ई० में इस अधिकार को वापिस ले लिया, गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को अधिकार दिया गया कि वे सारे सूबों के लिये कानून बनावें। प्रान्तीय सरकारें अपने लिये कोई कानून नहीं बना सकती थीं। यद्यपि १८६१ ई० में कानून बनाने का अधिकार प्रान्तों को पुनः प्रदान कर दिया गया, फिर भी केन्द्रीय सरकार की शक्ति कम न की गई। स्थानीय मामलों में प्रान्तीय सरकारों को थोड़ी स्वतंत्रता मिली। किन्तु वह सब शक्ति वितरण की दृष्टि से नहीं किया गया। केन्द्रीय सरकार के भार को हलका करने के लिये उसे ऐसा करना पड़ा। प्रान्तीय धारा-सभाओं को इस प्रकार के कोई अधिकार नहीं दिये गये जिनसे वे केन्द्रीय सरकार की आज्ञा के बिना कोई बड़ा काम कर सकें। १९१९ के पहले ये धारा-सभायें गवर्नर की कार्यकारिणी सभा की एक बृहत् रूप मात्र थीं।

केन्द्रीय सरकार के लिये यह सम्भव नहीं था कि वह हिन्दोस्तान के शासन का प्रबन्ध को एक स्थान से चला सके। उसे प्रान्तीय सरकारों की आवश्यकतायें पूरी तरह मालूम नहीं होती थीं। स्थानीय विषयों में जितनी जानकारी प्रान्तीय सरकारों को थी उतनी उसे नहीं हो सकती थी। इसीलिये उसने कानून बनाने के छोटे-मोटे अधिकार प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिया। प्रान्तीय धारा-सभाओं को* यह अधिकार न था कि वे पार्लियामेंट तथा केन्द्रीय धारा-सभा के बनाये हुए कानूनों में कोई उलट-फेर कर सकें। जब कभी प्रान्तीय धारा-सभायें धार्मिक तथा देशी रियासतों संबंधी

*बहुत ही साधारण अर्थ में इन्हें धारा-सभा कहा जा सकता है।

क़ानून बनाना चाहतीं तो उन्हें गवर्नर-जनरल से इसकी आज्ञा लेनी पड़ती थी। कार्यरूप में ये आज्ञायें हर समय प्राप्त हो जाती थीं, परन्तु केन्द्रीय सरकार ने इन बातों को अपने ही हाथ में रख रक्खा था।

केन्द्रीय सरकार ने पहले से ही इतने क़ानून बना रक्खे थे कि प्रान्तीय सरकारों को इसका अवसर बहुत कम मिलता था। अधिकार रखते हुए भी प्रान्तीय धारा-सभायें कुछ नहीं कर सकती थीं। जेल, विवाह-शादी, ठेके, सुलहनामे, व्यवसाय, नापतौल, बीमा, दिवाला, खदानें, मिल, बिजली, मजदूर, आवागमन, स्वास्थ्य, ज़हर, कोढ़, पागलपन, सफ़ाई, धर्म, दान देने वाली संस्थायें, खेल-कूद, सिनेमा-थियेटर, मोटर, प्राचीन स्मारक—इन सबके लिये वह क़ानून बना चुकी थी। प्रांतीय सरकारों को इन्हें चुपचाप मानना पड़ता था। इनके अतिरिक्त सारे हिन्दोस्तान से सम्बन्ध रखने वाले विषयों पर उसका एकमात्र अधिकार था। जिन छोटी छोटी बातों का ऊपर जिक्र किया गया है उनमें प्रान्तीय और केन्द्रीय दोनों सरकारें हाथ डालने की अधिकारिणी थीं।

प्रान्तीय सरकारों के ऊपर केवल केन्द्रीय सरकार का हुक्म चलता तो भी कुछ उत्तम था, लेकिन यहाँ तो भारत-मन्त्री की भी आज्ञा माननी पड़ती थी। क़ानून बनाने के पहिले दोनों से आज्ञा लेनी पड़ती थी। कार्यकारिणी विभाग का अधिकार इतना अधिक था कि छोटे से छोटा बिल प्रान्तीय धारा-सभाओं में पेश नहीं हो सकता था। यदि किसी प्रान्तीय धारा सभा में कोई बिल पेश रहता और केन्द्रीय सरकार उसे पसंद न करती तो वह प्रान्तीय सरकार को इस बात के लिये बाध्य करती थी कि वह धारा-सभा की अमुक कार्रवाई को रोक दे। कर सम्बन्धी बिल धारा-सभाओं में केन्द्रीय सरकार की आज्ञा के बिना पेश नहीं हो सकते थे। प्रान्तीय धारा-सभा द्वारा पास किये गये क़ानूनों की अन्तिम स्वीकृति गवर्नर-जनरल से लेनी पड़ती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रांतीय सरकार स्थानीय बातों का ज्ञान रखते हुये भी जनता की भलाई के लिये कुछ नहीं कर सकती थी।

शासन और क़ानून के मामले में प्रांतीय सरकारों को स्वतंत्रता न थी। सरकारी आय-व्यय पर एकमात्र अधिकार केन्द्रीय सरकार का था। ईस्ट-इंडिया-कम्पनी के समय से ही रुपये-पैसे के मामले में वह सब कुछ समझी जाती थी। हिन्दोस्तान के जितने टैक्स वसूल किये जाते वे सब केंद्रीय सरकार के ख़ज़ाने में आकर जमा होते थे। इसके बाद उसकी

आज्ञा से खर्च किये जाते थे। कुछ समय तक प्रांतीय सरकारों को टैक्स वसूल करने का अधिकार न था। लेकिन बाद में उन्हें यह अधिकार दिया गया कि चंद छोटे-मोटे टैक्स वे वसूल करके केंद्रीय सरकार में भेज दें। इसके लिये एक कौड़ी भी वे खर्च नहीं कर सकती थीं। तात्पर्य यह है कि प्रांतीय सरकारें नौकर की भाँति सब कुछ वसूल करके केंद्रीय सरकार को दे देती थीं। वह जितना चाहती प्रांतीय सरकारों से वसूल कराकर माँग लेती। प्रांतीय सरकारों को न इसमें कोई घाटा था और न मुनाफा। शासन संबंधी खर्च के लिये केंद्रीय सरकार अपनी ओर से प्रांतीय सरकारों को सहायता देती थी। इस सहायता में इस बात का ख्याल नहीं रक्खा जाता था कि किस प्रांत से कितने रुपये की आमदनी हुई है। केंद्रीय सरकार जितनी जरूरत समझती उतनी प्रांतीय सरकारों को अलग अलग दे देती थी। सभी विषयों की तरह आर्थिक विषय में भी शक्ति संचय अपनी चरम सीमा को पहुँच चुका था।

इतने बड़े देश में शक्ति का इतना अधिक संचय जनता के लिये हानिकारक सिद्ध हुआ। प्रजा से मनमाना धन वसूल तो किया जाता लेकिन इसके बदले में उसे बहुत कम लाभ होता था। कारण यह है कि प्रांतीय सरकार के कर्मचारी केंद्रीय सरकार की आज्ञा मात्र मानते थे। आर्थिक शक्ति-संचय की हानियाँ कुछ ही दिनों में प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ने लगीं। प्रजा की शारीरिक, मानसिक और विचार संबंधी शक्तियाँ कमजोर होतीं गईं। केंद्रीय सरकार की आज्ञा मानने के कारण प्रान्तीय सरकारें जनता की भलाई की ओर से आँख चुराने लगीं। उसका बोल-बाला इतना अधिक था कि प्रांतीय सरकारी कर्मचारी उसे चुपचाप मान लेते थे। १८७० ई० तक इस नीति के दुष्परिणाम ज़ाहिर होने लगे थे। शासन के सूत्र को एक के हाथ में देकर बृटिश सरकार हिन्दोस्तान की तरफ से निर्द्वन्द्व अवश्य हो गई थी, लेकिन शक्ति-संचय की इतनी कड़ी नीति बहुत दिनों तक काम में नहीं लाई जा सकती थी। १८५७ ई० का गदर बहुत कुछ इसी का परिणाम था।

शक्ति वितरण-काल १८७० से १९३७ तक

२—१८६९ ई० में लार्ड मेयो वाइसराय के पद पर नियुक्त किये गये। शक्ति संचय के दुष्परिणाम उन्हें खटकने लगे। उन्होंने देखा कि न तो इसमें कोई आर्थिक लाभ है और न शासन में ही कोई विशेष सुविधा होती है। इसके विपरीत प्रान्तीय सरकारें

केन्द्रीय सरकार से असंतुष्ट रहती हैं। उन्हें इतना भी अधिकार नहीं है कि केंद्रीय सरकार की आज्ञा के बिना थोड़ा भी धन ख़र्च कर सकें। लार्ड मेयो के प्रयत्न से प्रांतीय सरकारों को कुछ आर्थिक अधिकार सौंप दिये गये। शिक्षा, पुलिस, जेल, स्वास्थ्य, सफाई, कुछ नौकरियाँ, छापाखाना, रजिस्ट्री, सड़कें, आवागमन, इमारतें, इत्यादि विषयों का प्रबंध कुछ शर्तों के साथ उन्हें दे दिया गया। इनकी आय को वे अपने सूबों में ख़र्च कर सकती थीं। इनके अतिरिक्त कुल सूबों को मिलाकर ४६८८७११० रुपये की सहायता केंद्रीय सरकार से निश्चित की गई। इस रुपये को वे अपनी इच्छानुसार उपरोक्त मदों में ख़र्च कर सकते थे। इनके अतिरिक्त वे अपने ख़र्च के लिये नये नये टैक्स भी लगा सकते थे। शेष मदों की आमदनी केंद्रीय सरकार को भेजनी पड़ती थी।

लार्ड मेयो की योजना का यह तात्पर्य नहीं था कि बृटिश प्रान्तों को आर्थिक मामलों में स्वतंत्र कर दिया जाय। शासन की सुविधा के लिये कुछ थोड़े से अधिकार इसलिये दे दिये गये कि केंद्रीय सरकार की कठिनाइयाँ थोड़ी हलकी हो जायँ। जिन विभागों का प्रबंध प्रांतीय सरकारों को दिया गया वे केंद्रीय सरकार की मातहती से एकदम अलग न थे। गवर्नर-जनरल को यह अधिकार था कि वह प्रांतीय विषयों में हाथ डाल सके। यद्यपि थोड़ी सी शक्ति वितरण से प्रांतीय सरकारों की आज़ादी पूरी नहीं हुई, परंतु किसी हद तक उनके अधिकारों में वृद्धि अवश्य हो गई। केंद्रीय सरकार से उनका नाता बराबरी के दर्जे की ओर बढ़ने लगा। प्रांतीय सरकारें स्थानीय विषयों में दिलचस्पी लेने लगीं। उन्हें यह धीरे-धीरे विश्वास होने लगा कि यदि वे शासन में योग्यता दिखलायेंगी तो उन्हें और भी अधिकतर मिलते जायेंगे।

लार्ड लिटन के समय में (१८७७ ई०) प्रांतीय सरकारों को कुछ और अधिकार प्रदान किये गये। १८७० ई० में जो विषय उन्हें प्रबंध करने के लिये दिये गये थे, उनमें वृद्धि कर दी गई। आबकारी, टिकट, कानून और न्याय तथा कुछ और नये विषय उनकी मातहती में दे दिये गये। ये अधिकार सभी प्रांतों में एक से नहीं थे। नये विभागों के प्रबंध के लिये केन्द्रीय सरकार ने प्रांतीय सरकारों की सहायता में कोई वृद्धि नहीं की। उसने उन्हें यह अधिकार दे दिया कि इन मदों से जो आय हो उसे वह ख़र्च करे। कमी पड़ने पर केन्द्रीय सरकार कुछ रुपये उन्हें मंजूर कर देती। लेकिन एक निश्चित आय से ऊपर यदि प्रांतीय सरकारों की

आमदनी होती तो उसका आधा हिस्सा केंद्रीय सरकार के पास भेज देना पड़ता था। वास्तव में प्रांतीय सरकारों को यह कोई अधिकार न था। बजाय इसके कि केंद्रीय सरकार सीधे अपने कर्मचारियों से इन महकमों का प्रबंध कराते, उसने इन्हें प्रांतीय सरकारों की देख-रेख में छोड़ दिया। केंद्रीय सरकार के अधिकार बहुत कुछ उसी के हाथों में थे। उपरोक्त नये विभागों की आमदनी के लिये प्रत्येक सूबे के साथ हर ५ वर्ष के लिये एक ठेका होता था। यदि ठेके की रकम से अधिक आय होती तो वह केन्द्रीय सरकार की आय समझी जाती थी। आसाम और बर्मा के ऊपर ये नियम लागू न थे। ये दोनों सूबे पिछड़े हुये समझे जाते थे। आसाम में भूमि-कर से जो आय होती उसका कुछ हिस्से उसके ख़र्च के लिये दे दिया जाता था। इसी तरह बर्मा में भूमि-कर के हिस्सा के अतिरिक्त जंगल-आय, चावल का निर्यात-कर तथा नमक-कर की आमदनी का एक हिस्सा उसे दे दिया जाता था। केंद्रीय सरकार ने यह निश्चय किया कि प्रांतीय सरकारों को सहायता न देकर उन्हें यह अधिकार दे दिया जाय कि चंद विभागों की आमदनी वे स्वयं ख़र्च कर सकें। लार्ड लिटन तथा जान स्टे्ची के ये विचार क्रमशः लागू किये गये।

लार्ड रिपन जो सबसे नेक वाइसराय गिने जाते हैं, प्रांतीय सरकारों की स्वतंत्रता के पूर्ण पक्षपाती थे। अब तक प्रांतीय सरकारों से केन्द्रीय सरकार का संबंध विभिन्न सिद्धांतों पर कायम था। लार्ड रिपन को यह इच्छा हुई कि इस प्रकार का भेद-भाव हटा देना चाहिये। लार्ड मेयो के समय से जो सहायता देने की रकम चली आ रही थी वह बंद कर दी गई। प्रांतीय सरकारों को अधिकार दिया गया कि वे कुछ विभागों की आमदनी केन्द्रीय सरकार को न भेज कर स्वयं ख़र्च करें। यदि इस पर भी कुछ कमी पड़े तो वह प्रांतीय सरकारों को आमदनी का कुछ और हिस्सा उनके ख़र्च के लिये छोड़ देती। लार्ड रिपन के समय में (१८८२ ई०) एक नई योजना बनाई गई। सरकारी महकमे ३ श्रेणियों में बाँट दिये गये। रक्षा, वाह्य संबंध, चुङ्गी, टकसाल इत्यादि केंद्रीय सरकार के हाथों में दे दिये गये। इनका पूरा प्रबंध, आमदनी और ख़र्च सब कुछ केंद्रीय सरकार के ज़िम्मे किया गया। भूमि-कर, रजिष्ट्री तथा जंगल— इनकी आमदनी केन्द्रीय और प्रांतीय दोनों सरकारों में बाँट दी जाती थी। इन विभागों का प्रबंध दोनों सरकारों को करना पड़ता था। कुछ छोटे-मोटे विभाग एकमात्र प्रांतीय सरकारों के ज़िम्मे छोड़ दिये गये। प्रांतीय सरकारें उन ज़िम्मेदारियों से मुक्त कर दी गईं जो उनकी सीमा से बाहर

थीं। स्थानीय विषयों में रुचि बढ़ाने का अवसर उन्हें अच्छी तरह दे दिया। फिर भी उनको अवस्था स्थाई न थी।

१९०४ ई० में लार्ड कर्ज़न ने इसकी ओर ध्यान दिया। उनके दिल में यह बात आई कि जब तक प्रान्तीय सरकारों को काफी रकम खर्च करने का मौका न मिले तब तक वे बड़े पैमाने पर कोई काम नहीं कर सकतीं। विषयों की विभाजन प्रणाली में उलट-फेर किया गया। केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों सरकारों की आमदनी और खर्च के विषय फिर से निश्चित किये गये। उन्हें आश्वासन दिया गया कि इस प्रबन्ध में किसी विशेष परिस्थिति के अतिरिक्त कोई उलट फेर नहीं किया जायेगा। आर्थिक मामलों में प्रांतीय सरकारें किसी हद तक स्वतंत्र कर दी गईं, लेकिन और मामलों में केन्द्रीय सरकार की शक्ति बनी रही। १९१० ई० में जब लार्ड हार्डिङ्ग हिन्दोस्तान के वाइसराय हुये तो बृटिश प्रांतों को कुछ और अधिकार प्रदान किये गये। १९०४ ई० के प्रबन्ध को १९१२ में स्थाई कर दिया गया। प्रांतीय सरकारें अपनी आमदनी और खर्च का जो ब्योरा तैयार करतीं उनमें केन्द्रीय सरकार को हस्तक्षेप का अधिकार न था। दोनों सरकारों में संघर्ष के अवसर कम कर दिये गये। १९१९ ई० के पहिले केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारों का सम्बन्ध निम्नलिखित प्रकार का था :—

जिन विषयों का सम्बन्ध सारे हिन्दोस्तान से था वे केन्द्रीय सरकार के हाथों में रक्खे गये। रक्षा, वाह्य सम्बंध, चुङ्गी, तार, डाक, टकसाल, अकाल, रेलवे तथा आबपाशी—ये विषय उसके जिम्मे रक्खे गये। इनकी आमदनी और खर्च की जिम्मेदारी उसी पर थी। वह जैसे चाहती इन विभागों पर शासन करती। शिक्षा, पुलिस, जेल, छापाखाना, सड़कें, इमारत, स्वास्थ्य और सफाई—ये विषय प्रांतीय सरकारों को दिये गये। इनकी आमदनी और खर्च उसके जिम्मे की गई। जब कभी कोई नीति चलानी होती अथवा प्रांतीय सरकारों की गलतियों को सुधारना होता तो वह उनमें हस्तक्षेप कर सकती थी। इन दोनों प्रकार के विषयों से परे कुछ ऐसे भी विषय थे जिनमें दोनों सरकारों को सम्मिलित अधिकार दिये गये। भूमि-कर, टिकट, आबकारी, आय-कर, जङ्गल, रजिस्ट्री, सिंचाई—ये विषय दोनों की मातहती में सम्मिलित रूप से रक्खे गये। इन मदों की आमदनी दोनों सरकारों में अनुपात से बाँट दी जाती थी। इनके खर्च दोनों सरकारों को देने पड़ते थे। स्थानीय प्रबंध में प्रांतीय सरकारें हिस्सा लेती थीं। शेष बातें केन्द्रीय सरकार के हाथों में थीं। इससे स्पष्ट

है कि १८७० से १९१९ तक अर्थात् लगभग ५० वर्षों में प्रांतीय सरकारों को बहुत थोड़ी शक्ति प्रदान की गई। नये-नये टैक्स लगाने का अधिकार केन्द्रीय सरकार के हाथों में था। प्रांतीय सरकारें अपनी आमदनी को नहीं बढ़ा सकती थीं। उन्हें टैक्स सम्बन्धी बिल पर विचार करने का अधिकार न था। इसके लिये गवर्नर-जनरल की आज्ञा लेनी पड़ती थी। सलाह देने की इच्छा से केन्द्रीय सरकार जब चाहती दखल दे सकती थी। प्रांतीय सरकारों को अपनी आमदनी और खर्च की सूची पहिले केंद्रीय सरकार को भेजनी पड़ती थी, इसके बाद प्रांतीय धारा-सभाओं में इस पर विचार किया जाता था।

प्रांतीय सरकारें केन्द्रीय सरकार की इच्छा से काम करती थीं। अपनी उन्नति के लिये वे उधार या कर्ज नहीं ले सकती थीं। यदि प्रांतीय सरकारों को इस प्रकार का अधिकार दे दिया जाता तो इससे हानि के बदले लाभ की सम्भावना अधिक थी। केन्द्रीय सरकार को भय था कि ऐसा करने से प्रांतीय सरकारों की शक्ति बढ़ जायेगी। प्रांतीय नौकरियाँ केन्द्रीय सरकार के हाथों में रक्खी गई थीं। सूबे के बड़े-बड़े कर्मचारी केन्द्रीय सरकार की सलाह से काम करते थे। जनता प्रांतीय सरकारों से संतुष्ट न थी। आर्थिक कमी के कारण उनको संतुष्ट रखना असम्भव था। आमदनी और खर्च के मामलों उनके हाथ इतने बाँध दिये गये थे कि वे इच्छा रखते हुये भी कोई योजना कार्यान्वित नहीं कर सकती थीं। शासन, आय-व्यय तथा कानून—इन तीनों मामलों में प्रांतीय सरकारों को बहुत थोड़े अधिकार दिये गये थे।

जर्मनी की बड़ी लड़ाई में हिन्दुस्तानियों ने ब्रिटिश सरकार की इतनी सहायता की कि उसके बदले में उन्हें कुछ राजनीतिक अधिकार मिलना आवश्यक था। भारत-मंत्री की घोषणा के अनुसार यह बात निश्चित ठहराई गई कि "जहाँ तक हो सके स्थानिक संस्थाओं में जनता का पूर्ण अधिकार हो। उनका नियंत्रण उन्हीं के द्वारा हो और वाह्य नियंत्रण से उनको अधिकाधिक स्वाधीनता प्राप्त हो। प्रांत ही वह क्षेत्र है जहाँ से उत्तरदायी शासन की ओर क्रमशः पद रखना आरम्भ किया जा सकता है। कुछ उत्तरदायित्व के काम जनता को तुरंत दे दिये जाने चाहिये और हमारा उद्देश्य यह है कि राज्यकार्य में शीघ्र ही जनता को पूर्ण उत्तरदायित्व दे दिया जाय। इसका अर्थ यह है कि भारत-सरकार प्रांतों को अपने धर्म निर्माण, शासन, तथा अर्थ सम्बंधी अधिकारों का उतना अंश दे दे जिससे इसको अपनी जिम्मेदारियों के पालन में

किसी प्रकार की बाधा न पड़े।" राष्ट्रीय भावनाओं के उद्गार इतने बढ़ रहे थे कि बृटिश सरकार को कोई ऐसा बहाना नहीं था जो हिन्दोस्तानियों को बहुत दिनों तक चकमे में डालता। काँग्रेस इस बात पर तुली हुई थी कि स्थानिय क्षेत्रों में जनता को राजनीतिक अधिकार अधिक से अधिक मिलने चाहिये। स्वयं बृटेन में कितने ही अंग्रेज़ हिन्दोस्तान के राजनीतिक स्वतंत्रता के पक्ष में थे। इसी के फल स्वरूप १६१६ ई० में भारतीय शासन में परिवर्तन किया गया। इससे केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के सम्बन्ध में भी अन्तर पड़ा।

केन्द्रीय सरकार का दबाव प्रान्तीय सरकारों पर कम कर दिया गया। इनके बजट एक दूसरे से अलग कर दिये गये। जिस आधार पर दोनों सरकारों में विषय-विभाजन किया गया था वह बदल दिया गया। संयुक्त ज़िम्मेदारी के विषय तोड़ दिये गये। रक्षा, वाह्य सम्बन्ध, देशी रियासतों से सम्बन्ध, रेलवे, जहाज़, तार, डाक, चूँगी आबकारी, नमक-कर, आय-कर, टकसाल, ऋण, अफीम, लेखन अधिकार, आवागमन, अन्वेषण, अनुसन्धान, धर्म, सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति, आबादी की गड़ना इत्यादि विषय केन्द्रीय सरकार के ज़िम्मे रक्खे गये। शिक्षा, स्वयत्त शासन, स्वास्थ्य और सफाई, दवा, सिंचाई, भूमि-कर, अकाल, खेती, जंगल, व्यवसाय, पुलीस और न्याय, तोल बाँट आदि विषय प्रान्तीय सरकारों को दिये गये। प्रान्तों में दोहरे शासन (Dyarchy) का विधान जारी किया गया। अर्थात् कुछ विषय गवर्नर और उनके सलाहकारों के हाथ में रक्खे गये और बाकी भारतीय मन्त्रियों को दे दिये गये। जो विषय भारतीय मन्त्रियों को दिये गये उनमें केन्द्रीय सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी। यद्यपि केन्द्रीय सरकार देश को शान्ति-रक्षा तथा सुव्यवस्थित शासन प्रबन्ध के लिये जिम्मेदार थी, फिर भी शासन की सुविधा का ध्यान रखते हुए वह भारतीय मन्त्रियों के कामों में दख़ल देना पसन्द न करती। जो विषय गवर्नरों के हाथ में रक्खे गये थे उनमें वह हाथ डाल सकती थी।

१६१६ के शासन-सुधार में भारतवासियों को कुछ राजनीतिक अधिकार दिये गये। जनता को प्रान्तीय शासन में हिस्सा लेने का अवसर प्राप्त हुआ। यह स्वाभाविक था कि केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय विषयों के ज़िम्मेदारी से बहुत कुछ हाथ खींच लेती। प्रान्तीय धारा-सभाओं में चुने हुए सदस्यों का बहुमत हुआ। ये धारा-सभायें जो क़ानून बनातीं उन्हें केन्द्रीय सरकार ठुकरा नहीं सकती थी। जनता में

अधिकार और कर्त्तव्य की भावना बढ़ रही थी। कॉंग्रेस के प्रयत्न से लोग स्वतन्त्रता के मूल्य को समझने लगे थे। जनता की मनोवृत्ति का ध्यान रखते हुए प्रान्तीय सरकारों की कार्रवाहियों का आदर करना पड़ता था। लोकमत के विरुद्ध केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय मामलों में हस्तक्षेप करती रही, लेकिन इसके विरुद्ध देश में जो आन्दोलन हुआ उसका महत्व राजनीतिक दृष्टि से कम नहीं रहा। यह कहना बुरा न होगा कि १९१९ के बाद भारतीय जनता को जो राजनीतिक अधिकार मिला वह उसके गाढ़े पसीने की कमाई थी।

प्रान्तीय सरकारों को कर वसूल करने के कितने ही अधिकार दे दिये गये कुछ विषयों पर टैक्स लगाने के लिए उन्हें गवर्नर-जनरल से आज्ञा लेने की जरूरत न थी। कचहरियों में टिकट की फीस बढ़ा दी गई। कुछ नये टैक्स जारी किये गये। इससे प्रान्तीय सरकारों को शासन में उन्नति करने का अवसर प्राप्त हुआ। लेकिन केन्द्रीय सरकार के दबाव अब भी कम न थे। खर्च के मामले में वह बहुत बड़ा हाथ रखती थी। केन्द्रीय मदों से जो आमदनी होती वह उसके खर्च के लिये काफी न थी। इसे पूरा करने के लिये वह प्रान्तीय सरकारों से धन माँगती थी। प्रान्तीय सरकारों को अपनी आमदनी का कुछ हिस्सा उसे देना पड़ता था। आमतौर से लगभग १० करोड़ रुपया प्रतिवर्ष केन्द्रीय सरकार प्रान्तों से लेती थी। यदि यह लम्बी रकम प्रान्तीय सरकारें जनता की भलाई के लिये अपने अपने क्षेत्र में खर्च करती तो शासन की व्यवस्था अधिक सुव्यवस्थित होती। परन्तु केन्द्रीय सरकार इस रुपये को लिये बिना नहीं रह सकती थी। प्रत्येक प्रान्त के हैसियत के अनुसार यह धन वसूल किया जाता था। लार्ड मेस्टन के सभापतित्व में एक कमेटी ने इस बात का फैसला किया कि किसे प्रान्त से कितना धन लिया जाय। संयुक्तप्रान्त को २४० लाख रुपया देने के लिये निश्चित किया गया। सभी प्रान्तों ने लार्ड मेस्टन की इस योजना का विरोध किया। अन्त में १९२९ ई० में यह योजना बदल दी गई।

१९१९ के शासन विधान में जिस हद तक प्रान्तों को राजनीतिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई वहाँ तक केन्द्रीय सरकार का अधिकार उनके ऊपर कम हो गया। आर्थिक और शासन प्रबंध में उन्हें कुछ निश्चित अधिकार दिये गये। यद्यपि प्रांतों को पूर्ण स्वतंत्रता हासिल न हुई लेकिन उनका झुकाव उस ओर कर दिया गया। केंद्रीय सरकार

किसी न किसी रूप में प्रान्तीय सरकार की कार्यवाइयों पर कड़ी नज़र रखने लगी। दोनों सरकारों के इस सम्बन्ध से भारतीय जनता सन्तुष्ट न थी।

प्रान्तीय स्वराज १९३७-४७

३—काँग्रेस की राजनीतिक माँगों को पूरा किये बिना बृटिश सरकार शान्ति से काम नहीं कर सकती थी। सत्याग्रह आन्दोलन के कारण देश के कोने कोने में एक ऐसी लहर फैली कि उसकी माँगें ठुकराई नहीं जा सकती थीं। इन्हें पूरा करने के लिये १९३५ ई० में संघ-शासन-विधान का निर्माण किया गया। इस शासन-विधान के अन्दर कहाँ तक काँग्रेस की पूर्ण आज़ादी की माँग पूरी की गई यह एक दूसरा प्रश्न है। प्रान्तीय स्वतन्त्रता (Provincial-Autonomy) का जन्म हुआ। यह प्रान्तीय स्वतन्त्रता क्या थी और कहाँ तक अपने नाम को सार्थक करती थी, इन दोनों बातों का विचार अगले अध्याय में किया गया है। २७ महीने इसे अमल में लाने के बाद इसकी सारी भीतरी कमजोरियाँ ज़ाहिर होने लगीं। इसका विस्तृत वर्णन एक स्वतन्त्र अध्याय में किया गया है। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के सम्बन्ध में परिवर्तन किये गये। यद्यपि प्रान्तीय सरकारों को आज़ादी दे दी गई लेकिन शासन-विधान की बारीकियों को देखते हुए यह मानना पड़ता है कि केन्द्रीय सरकार के अधिकार कम नहीं थे। दोनों सरकारों में मालिक और सेवक का सम्बन्ध बना रहा। यदि ऐसा न होता और स्वतन्त्रता का तथ्य रहता तो काँग्रेस सरकारों को इस्तीफ़ा देने की नौबत न आती। गवर्नर-जनरल तथा केन्द्रीय कार्यकारिणी सभा के अधिकारों को देखते हुए प्रान्तीय स्वराज की बात व्यर्थ थी।

स्वतन्त्र भारत

१५ अगस्त १९४७ ई० को भारतवर्ष पूर्णरूपेण स्वतन्त्र घोषित कर दिया गया। स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार ने सभी क्षेत्रों में नई नीति का अनुसरण किया, जिसके परिणाम स्वरूप राजनीतिक संगठन में अनेक परिवर्तन हुये और होते जा रहे हैं। भारतीय रियासतों का प्रान्तों में विलियन होना केन्द्रीय सरकार की सत्ता को बहुत कुछ कम करने का संकेत है। इसी प्रकार की अन्य तब्दीलियों से केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के सम्बन्ध में समानता का भाव बढ़ रहा है। प्रान्तों को वे सारे अधिकार प्रदान किये जा रहे हैं, जिनसे जनता की वास्तविक उन्नति में सहायता हो। नई नई योजनाओं का आश्रय लेकर प्रान्तीय

सरकारें यह सिद्ध कर रही हैं कि राष्ट्र का कल्याण तभी होगा जब स्थानीय संस्थायें अपनी सत्ता का उपयोग स्वयं करेंगी। राष्ट्रीय भावना की वृद्धि के साथ राष्ट्रीय सरकार लोकमत का आदर करने के लिये बाध्य है। ऐसी स्थिति में कोई भी केन्द्रीय सत्ता सीमित एवं युद्ध क्षेत्र में ही स्वीकार की जा सकती है। प्रान्तीय सरकार ही जनता की आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति में सहायक होगी—यह भारतीय लोकमत सनातन है और भविष्य में भी रहेगा।

प्रान्तीय सरकार
(PROVINCIAL GOVERNMENT)
अध्याय ७
गवर्नर

बृटिश काल में हिन्दोस्तान राजनीतिक दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया गया था। एक भाग में देशी रियासतें थीं, जिनकी संख्या ६०० के लगभग थी। दूसरे भाग में अँग्रेज़ी सूबे थे जिन्हें बृटिश भारत कहते थे। सूबों की संख्या कुल १७ थी, जिनमें ११ गवर्नरों के सूबे और ६ चीफ़ कमिश्नर के सूबे थे। बंगाल, मद्रास, बम्बई, संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और बरार, पंजाब, बिहार, उड़ीसा आसाम, सिन्ध तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश गवर्नर के सूबे कहलाते थे। इनमें प्रधान शासक गवर्नर होता था। दिल्ली, अजमेर, मेरवाड़ा, कुर्ग, बृटिश बिलोचिस्तान, अंडमन और निकोबार तथा पंथ पिपलोदा चीफ़ कमिश्नर के सूबे कहलाते थे। इन दोनों प्रकार के सूबों में राजनीतिक भेद था। १९३५ के शासन-विधान में गवर्नर के सूबों को प्रान्तीय स्वराज्य दिया गया था, परन्तु चीफ़ कमिश्नर के सूबे स्वतन्त्र नहीं थे। चीफ़ कमिश्नर द्वारा गवर्नर-जनरल उन पर शासन करता था। चूँकि गवर्नर-जनरल चीफ़ कमिश्नरों की नियुक्ति करता था इसलिये वे सभी प्रकार से उनकी मातहती में रहते थे। पाकिस्तान की स्थापना के बाद सूबों की संख्या, उनकी आबादी तथा क्षेत्रफल में परिवर्तन किये गये हैं। भारतीय संघ (Indian Union) में सूबों की संख्या कितनी है और देश के विभाजन का उनपर शासन सम्बन्धी क्या प्रभाव पड़ा है, इसका वर्णन उचित स्थान पर किया गया है।

हिन्दोस्तान के राजनीतिक विभाग

गवर्नर के सूबों में छोटी और बड़ी दो धारा-सभाएँ हैं। शेष सूबों में एक ही धारा-सभा है। प्रान्तों का विभाजन वैज्ञानिक नहीं है। उनकी सीमा निर्धारित करते समय भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा भाषा सम्बन्धी परिस्थिति का ध्यान नहीं रक्खा गया है। बृटिश सरकार को हिन्दोस्तान जीतने में लगभग एक शताब्दी व्यतीत करने पड़े। जो जो स्थान उसकी मातहती में आते गये वे प्रान्तों में सम्मिलित होते गये। लड़ाई के ज़माने में बृटिश सरकार को इतना अवसर न था कि वह शान्तिपूर्वक बैठ कर इनका वैज्ञानिक विभाजन करती। कई वर्षों में टुकड़े-टुकड़े करके

बनाया हुआ मकान उतना अच्छा नहीं होता जितना एक निश्चित अवधि के अन्दर, एक खास नक्शे के आधार पर, बनाया हुआ होता है। यदि बृटिश सरकार हिन्दोस्तान को एक बार फ़तह कर लिये होती तो प्रान्तों का विभाजन आज किसी और तरह पर किया गया होता। परन्तु वह ऐसा न कर सकी। जो ज़िले किसी एक सूबे में शरीक होने चाहिये वे आज दूसरे सूबे में इसलिये शामिल किये गये हैं कि वे बाद में फ़तह किये गये। शासन की सुविधा का ध्यान रखते हुए सरकार को ऐसा करना पड़ा। परन्तु विजय समाप्त होने के पश्चात् बृटिश सरकार उनका विभाजन नये सिरे से कर सकती थी। सिद्धान्त के विरुद्ध केवल शासन की सुविधा का ध्यान रखते हुए किसी देश का विभाजन करना उसकी राष्ट्रीयता को नष्ट करना है।

कुछ सूबे भाषा और समाज की दृष्टि से इतने उलझे हुए हैं कि वहाँ लोकमत का अभाव है। सिन्ध प्रान्त, जो १८३६ ई० में फ़तह किया गया बम्बई में इसलिये शामिल कर लिया गया कि वह उसके करीब पड़ता था। विजय की धुन में बृटिश सरकार को उन्नति-अवनति का ध्यान न था। सरकार की नीति बहुत दिनों तक "बाँटो और राज्य करो" (Divide and Rule) का रही है। राष्ट्रीयता को कमज़ोर बनाने के लिये ये अधूरे विभाजन बहुत कुछ ज़िम्मेवार हैं। कितने ही सूबों में एकता का अभाव है। यह प्रश्न कई बार उठाया गया है कि प्रांतों का विभाजन नये सिरे से किया जाय। आन्ध्र को एक स्वतन्त्र प्रांत बनाने की माँग बहुत ही प्राचीन है। काँग्रेस ने भाषा प्रयुक्त विभाजन को सबसे उत्तम ठहराया है, परंतु बृटिश सरकार ने इसे स्वीकार नहीं किया। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि १० की जगह हिंदोस्तान के ४० टुकड़े कर दिये जाँय। सूबों की संख्या बढ़ाने से कोई लाभ नहीं है। राजनीतिक भावना के प्रचार के साथ प्रांतीय विभाजन का प्रश्न बढ़ रहा है। जो व्यक्ति भाषा, जाति, संस्कृति, तथा रहन-सहन में किसी दूसरे प्रांत के निवासियों से मिलते जुलते हैं वे उसी प्रांत से राजनीतिक सम्बंध रखना चाहते हैं। उनका विश्वास है कि उनकी आर्थिक तथा मानसिक अवनति का कारण राजनीतिक विभाजन है।

भाषा और जातीयता के आधार पर सूबों का विभाजन अनुचित ठहराया जा रहा है। इससे प्रांतीयता और साम्प्रदायिकता के बढ़ने का भय है। विभाजन इस प्रकार होना चाहिये जिससे राष्ट्रीयता की वृद्धि हो। कांग्रेस इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर रही है। सूबों की

वृद्धि से राष्ट्रीय एकता में बाधा होगी और सरकारी खर्च बढ़ेगा। राजनीतिक विभाजन वहीं तक बढ़ना चाहिये जहाँ तक शासन को उपयोगिता हो। यदि प्रांत की सीमा छोटी और वह स्वावलम्बी नहीं है तो इससे देश को हानि होगी। इसके विपरीत यदि एक ही प्रांत के अंदर ऐसे विभाग मौजूद हैं, जो स्वावलम्बी होने के अतिरिक्त अपनी अलग संस्कृति रखते हैं तो उसे २ या ३ टुकड़ों में बाँट देना चाहिये। १९१७ ई० में कलकत्ता काँग्रेस के अवसर पर लोकमान्य तिलक ने कहा था कि "भाषा के उसूल पर देश का राजनीतिक विभाजन प्रांतीय स्वराज्य से कहीं आवश्यक है।" वहां काँग्रेस ने यह भी फैसला किया कि सिंध एक अलग सूबा बना दिया जाय। काँग्रेस की भूतपूर्व नीति के अनुसार हिंदोस्तान के २१ राजनीतिक विभाग होने चाहिये। अर्थात् हिंदोस्तान में कुल २१ सूबों की आवश्यकता है। अस्वावलम्बी जगहों को स्वतंत्र सूबा करार देने से उसका सारा खर्च केंद्रीय सरकार को बर्दाश्त करना पड़ता है। १९३५ के संघ शासन-विधान के अनुसार सिंध और उड़ीसा दोनों ऐसे स्वतंत्र सूबे बनाये गये हैं जो स्वावलम्बी नहीं हैं। केंद्रीय सरकार सिंध को प्रतिवर्ष लगभग १ करोड़ रुपया और उड़ीसा को ५० लाख रुपया देती रहा है।

कुछ लोगों की धारणा है कि देश का वर्तमान राजनीतिक विभाजन उपयोगी है। किसी भी उसूल को लेकर हम देश के टुकड़े करें तो अनगिनत हिस्से करने पड़ेंगे। ऐसा करने से वे उन लाभों से वंचित हो जावेंगे जो उन्हें आज मिल रहे हैं। अधिक प्रांतों से प्रांतीय भावना बढ़ेगी। राष्ट्रहित की दृष्टि से प्रांतीयता का भाव हानिकर है। प्रांतों के विभाजन में इस बात का ध्यान रखना होगा कि उनमें राजनीतिक एकता के साथ सहयोग की और बातें बनी रहें। दो प्रांतों के बीच दीवाल खड़ा करना निरी मूर्खता है।

१९३५ के शासन-विधान में प्रान्तीय विभाजन

१९३५ के शासन-विधान के पहिले हिंदोस्तान में कुल १५ सूबे थे। परंतु १९३५ के शासन-विधान के अनुसार कुल १७ सूबे बनाये गये हैं। सिंध को बम्बई से अलग करके एक नया सूबा मान लिया गया है। इसी तरह मद्रास, मध्यप्रांत तथा बिहार उड़ीसा के कुछ हिस्सों को लेकर एक नया उड़ीसा प्रांत बनाया गया है। १९३५ के ऐक्ट के अनुसार सम्राट् नये सूबे बना सकता था। उसे यह भी अधिकार था कि सूबे की सीमा घटा बढ़ा

सके। इस परिवर्तन से संघ धारा-सभा के प्रतिनिधियों में उलट-फेर होतो। चीफ कमिश्नरों के सूबों की सीमा भी इसी तरह बदली जा सकती थी। सूबों में बंगाल प्रांत की जनसंख्या सबसे अधिक थी।*
इसमें ५ करोड़ से कुछ अधिक मनुष्य निवास करते थे। आबादी में दूसरा नम्बर संयुक्तप्रांत का है। लगभग ५ करोड़ व्यक्ति इस प्रांत में रहते हैं। गवर्नर के सूबों में सबसे कम जनसंख्या पश्चिमोत्तर प्रदेश की है जो पाकिस्तान में शामिल किया गया है। २४२५००३ मनुष्य इस प्रांत में निवास करते हैं। क्षेत्रफल में मद्रास प्रांत सबसे बड़ा है। इसका क्षेत्रफल १२६६६३ वर्ग मील है। क्षेत्रफल में दूसरा दर्जा संयुक्तप्रांत का है। गवर्नरों के सूबों में सबसे कम क्षेत्रफल पश्चिमोत्तर प्रदेश का है जो केवल १३५१८ वर्ग मील के घिराव में बसा हुआ है। चीफ कमिश्नरों के सूबों में दिल्ली का क्षेत्रफल सबसे कम है, परन्तु इसकी आबादी सबसे अधिक है। इसका क्षेत्रफल केवल ५७३ वर्ग मील और जनसंख्या सवा ३ लाख के करीब है। बिलोचिस्तान का क्षेत्रफल सबसे अधिक है। इसका क्षेत्रफल ५४ हजार वर्ग मील और जनसंख्या साढ़े चार लाख की है। पंजाब की जनसंख्या संयुक्तप्रांत की आधी है और इसका क्षेत्रफल ग्रेट ब्रिटेन के बराबर है।† मध्यप्रांत और बरार भी इतना ही लम्बा चौड़ा है। बिहार की भी जनसंख्या ग्रेट ब्रिटेन के बराबर है।

गवर्नर

गवर्नर का पद गवर्नर-जनरल से प्राचीन है। यह पद ३०० वर्षों से चला आ रहा है। आरम्भ में गवर्नरों के कार्य थोड़े थे। वे कम्पनी के व्यापार की देख-रेख के लिये सूबों में नियुक्त किये जाते थे। लेकिन इनकी जिम्मेवारियाँ बढ़ती गईं। इसकी जिम्मेवारी अपने प्रांतों में उतनी ही थी जितनी गवर्नर-जनरल तथा वाइसराय की सारे हिन्दोस्तान में रही है। गवर्नर की नियुक्ति सम्राट् द्वारा ५ वर्ष के लिये की जाती थी।‡ सम्राट् भारत मन्त्री से इसकी सलाह लेता था। उपनिवेशों के गवर्नरों की नियुक्ति वहाँ की कैबिनेट की सलाह से की जाती थी। सिविल सर्विस के सदस्य आमतौर से इस पद के लिये चुने जाते थे। हिन्दोस्तानियों

---

* पाकिस्तान की स्थापना से वह प्रांत पूर्वी और पश्चिमी दो हिस्सों में बाँट दिया गया है।

† पंजाब भी अब दो हिस्सों में बाँट दिया गया है।

‡ अब इसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है।

को यह पद बहुत कम दिया जाता था। बंगाल, मद्रास और बम्बई अहातों के गवर्नरों का दर्जा और सूबों के गवर्नरों से ऊँचा समझा जाता था। ये बृटेन की राजनीति में काफी हिस्सा लिये हुये रहते थे। इनके वेतन अन्य प्रांतीय गवनरों से अधिक होते थे। जब कभी गवर्नर-जनरल अवकाश ग्रहण करता था तो इन्हीं अहातों के गवर्नरों में से किसी को उसके स्थान पर कार्य करने का अवसर दिया जाता था।

बृटश काल में हिन्दोस्तानियों में केवल लार्ड सिनहा को यह पद दिया गया था। वे थोड़े समय के लिये बिहार प्रांत के गवर्नर नियुक्त किये गये थे। किसी गवर्नर के छुट्टी लेने पर अस्थायी रूप से कार्य करने का अवसर कई भारतीयों को प्राप्त हुआ था। स्वतन्त्र भारत में आज सभी सूबों के गवर्नर भारतीय हैं, जो भारतीय राजनीति में अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। उनकी नियुक्ति में इस बात का ध्यान रक्खा जाता था कि वे शासन सम्बंधी कार्यों में अनुभव शील हों। कुछ व्यक्ति कलेक्टर के पद से उन्नति करके गवर्नर हो जाते थे। नियुक्ति के समय इन्हें कुछ खास सलाहें दी जाती थीं कि वे शांति तथा प्रजा की भलाई के साथ बृटेन के हित का ध्यान रक्खें। उन्हें नेकनयती तथा आज्ञापालन की शपथ लेनी पड़ती थी। यह शपथ गवर्नर-जनरल और गवर्नर दोनों के लिये एक-सी होती थी।

ऊपर कहा गया है कि अहातों तथा अन्य सूबों के गवर्नरों के वेतन में अन्तर होता था। संयुक्तप्रांत, मद्रास, बम्बई और बंगाल प्रांत के गवर्नरों में १२०००० रु० हरेक को सालाना वेतन दिया जाता था। पंजाब तथा बिहार के गवर्नरों को ७००००० रुपया तथा मध्यप्रांत और उड़ीसा के गवर्नर को ७२००० रुपया सालाना वेतन दिया जाता था। इसके अतिरिक्त बाकी सूबों के गवर्नरों का सालाना वेतन ६६००० रुपया था। वेतन के अतिरिक्त प्रत्येक गवर्नर को भत्ते दिये जाते थे। भारत-मंत्री इस भत्ते को निश्चित करता था। ये भत्ते कई शकल में दिये जाते थे। रहने के लिये बंगला, यात्रा के लिये अव्वल दर्जे की गाड़ी अथवा हवाई जहाज, मोटरकार तथा अपने बंगले को सजाने के लिये उसे जिन जिन सामानों की जरूरत होती थी वे सब उन्हें दिये जाते थे। लेकिन इसकी एक सीमा थी। पंजाब प्रांत के गवर्नर को ३०००० रुपये से अधिक भत्ता नहीं दिया जा सकता था। नियुक्ति के समय यदि वह इङ्गलेंड में होता तो वहाँ से हिंदोस्तान आने का उसे पूरा खर्च दिया जाता था। जब एक सूबे से दूसरे सूबे को उसकी

बदली होती उस समय भी उसे आने जाने का खर्च दिया जाता था। यह सारा खर्च प्रांतीय खजाने से होता था। वेतन और भत्तों के अलावा कुछ और भी सुविधायें उन्हें दी जाती थीं। भत्ते सहित संयुक्तप्रांत के गवर्नर को कुल ३२८५०० रुपया प्रतिवर्ष दिया जाता था। राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के बाद गवर्नरों के वेतन में विशेष कमी कर दी गई है।

गवर्नर के अधिकार

गवर्नर के अधिकार ३ कोटि में बाँटे गये थे:—

१—विशेष अधिकार
२—निजी अधिकार
३—मंत्रियों से सम्मिलित अधिकार

अपने सूबे में शांति तथा रक्षा की पूरी ज़िम्मेवारी गवर्नर को दी गई थी। प्रांतीय शासन का कोई विषय ऐसा नहीं था जिसमें उसे हाथ डालने का अधिकार न हो। जिन विषयों में वह अपनी विशेष इच्छा से कार्य करने का अधिकारी था उनमें मंत्रियों से सलाह लेने की उसे आवश्यकता नहीं थी। ये विशेष अधिकार प्रांतीय स्वराज के भाव को बिगाड़ देते थे। मंत्रिगण इसमें कुछ नहीं बोल सकते थे। कुछ विषय ऐसे थे जिनमें वह मंत्रियों से सलाह लेते हुए भी उनसे बाध्य नहीं था। उनके विरोध करने पर भी वह मनमानी कर सकता था। उसके विशेष अधिकारों की संख्या १६ के लगभग थी। प्रांत में शांति की रक्षा के बहाने वह जब चाहे मंत्रियों के कार्यों में हस्तक्षेप कर सकता था। अल्पसंख्यक वर्ग की रक्षा के लिये उसे विशेष अधिकार दिये गये थे।

प्रांतीय सरकारी कर्मचारियों की रक्षा का भार उसे दिया गया था। प्रांत में स्थित देशी रियासतों के शासक और शासित दोनों के अधिकारों की रक्षा करना उसका कर्त्तव्य था। इन विशेश अधिकरों के अतिरिक्त मध्य-प्रांत और बरार के गवर्नर को एक और अधिकार दिया गया था कि वह इस बात का ध्यान रक्खे कि प्रांत का पूरा कर बरार की भलाई के लिये ठीक ठीक खर्च हो रहा है अथवा नहीं। इसी तरह शक्कर में कनाल स्कीम तथा लाडबैरेज के प्रबंध का अधिकार सिंध प्रांत के गवर्नर को दिया गया था। प्रांत के जो विभाग पिछड़े हुए करार दिये गये थे उनकी देख-रेख उसे सुपुर्द की गई थी। इन विषयों में वह अपने मंत्रियों से सलाह ले सकता था परंतु

उसे मानने के लिये वाध्य नहीं था। इन विशेष अधिकारों में जो बुराइयाँ थीं उनका वर्णन गवर्नर-जनरल के विशेष अधिकारों में किया गया है। जिस समय १९६७ ई० में प्रान्तों में मंत्रिपद ग्रहण का प्रश्न उठा था उस समय काँग्रेस का भय ठीक था कि गवर्नर मंत्रियों की सलाह को ठुकरा सकता था। संयुक्त प्रान्त तथा बिहार में राजनैतिक कैदियों के प्रश्न पर गवर्नरों और मंत्रियों में मतभेद उत्पन्न हुआ। गवर्नर-जनरल की आज्ञानुसार गवर्नरों ने कुछ कैदियों को छोड़ने से इनकार कर दिया। दोनों प्रान्तों के मंत्रिमंडलों ने त्याग-पत्र दे दिया। अन्त में सुलह की बात तै हो गई और मंत्रियों ने इस्तीफा वापिस ले लिया।

बृटिश काल में गवर्नर अपने सूबे का प्रधान शासक होता था। प्रांतीय स्वराज्य उसके हाथ की कठपुतली थी। लोगों का यह अनुमान था कि गवर्नर जनता के बहुमत को ठुकराने का साहस न करेंगे। लेकिन यह आशा बेकार सिद्ध हुई। मंत्रियों के चुनने, उन्हें बुलाने तथा बर्खास्त करने कर अधिकार गवर्नर को दिया गया था। यद्यपि इसके लिये वह बहुमत पार्टी के प्रधान से सलाह लेता था, परन्तु फिर भी मंत्रियों के चुनाव में उसकी राय सबसे ऊपर समझी जाती थी। मंत्रियों की सभा में सभापति का आसन वह ग्रहण कर सकता था। मंत्रियों के जिम्मे विभिन्न विभागों को वही करता था। मंत्री तथा उसके सहायक मंत्री के लिये यह आवश्यक था कि वे अपने विभाग की पूरी सूचना समय समय पर गवर्नर को देते रहें। इसका तात्पर्य यह था कि शासन का प्रत्येक विभाग उसके प्रभाव से खाली नहीं रह सकता था। सभी प्रजातंत्रवादी देशों में कैबिनेट की बैठक का प्रधान प्रधान मंत्री होता है। यदि हमारे देश में भी इस प्रथा को लाना है तो गवर्नरों को मंत्रिमंडल के वादविवाद में हिस्सा नहीं लेना चाहिये। १९३५ के शासन-विधान में यह बात गवर्नरों की इच्छा पर छोड़ दी गई थी कि वे मंत्रिमंडलों में बैठें अथवा न बैठें। यदि वे उपस्थित नहीं होते तो प्रत्येक सूबे का प्रधान मंत्री मंत्रिमंडल का सभापति होता। प्रान्तीय स्वराज के अन्दर क़ानून और व्यवस्था विभाग एक मंत्री को सुपुर्द किये गये थे। पार्लियामेंट भारतीयों को यह अधिकार देने के पक्ष में न थी। वह यह कैसे बर्दाश्त कर सकती थी कि पुलिस विभाग की इतनी बड़ी जिम्मेवारी भारतीय मंत्रियों को दे दी जाय। इस कठिनाई को दूर करने के लिये गवर्नर को यह विशेष अधिकार दिया गया था कि वह पुलिस विभाग के नियमों में उलट-फेर कर सके। विशेष अवसरों पर अपने अधिकार से वह इस विभाग में

दखल दे सकता था। इस विभाग की कार्रवाइयों की जानकारी के लिये वह जैसा चाहे नियम बना सकता था।

संघ-शासन-विधान में बड़ी-बड़ी नौकरियाँ हिन्दोस्तानियों के हाथों से बाहर रक्खी गई थीं। यहाँ तक कि स्वयं प्रांत के बड़े-बड़े कर्मचारी मंत्रियों के अधिकार से अलग रक्खे गये थे। वे भारत-मंत्री की मातहती में कार्य करते थे। यद्यपि इन कर्मचारियों का वेतन प्रांतीय खजाने से दिया जाता था फिर भी इनकी जिम्मेवारी मंत्रियों से अलग रक्खी गई थी। गवर्नर को विशेष अधिकार था कि वह इन कर्मचारियों की भर्ती, इनके तबादिले तथा इनके वेतनवृद्धि का फैसला करे। जिले के न्यायाधीश उसी व्यक्तिगत अधिकार द्वारा नियुक्त किये जाते थे। प्रांत में पब्लिक सर्विस कमीशन के प्रधान को वही नियुक्त करता था। कमीशन के सदस्यों की संख्या, समय तथा उसकी शर्तें वही निश्चित करता था। इन उदाहरणों से यह भली-भाँति स्पष्ट है कि गवर्नर के अधिकार स्वच्छन्द और सर्वप्रधान थे। भारतीय नवीन शासन-विधान में गवर्नर के अधिकार बहुत कुछ बदल जायेंगे। वह एक वैधानिक प्रधान अधिकारी के अतिरिक्त और कुछ न होगा। फिर भी उसके पद की महत्ता कम न होगी।

कानूनी अधिकार

अपने प्रांत की धारा-सभा को बुलाने का अधिकार गवर्नर को दिया गया था। वह जब चाहे उसे स्थगित तथा भंग कर सकता था। प्रांतीय स्वतंत्रता के विधान में वह प्रधान-मन्त्री से सलाह ले सकता था। उसे दोनों धारा-सभाओं में भाषण देने का अधिकार था। किसी बिल के सम्बन्ध में अथवा अपनी स्वतन्त्र इच्छा से वह कोई सूचना धारा-सभा को दे सकता था। जिन प्रान्तों में दो धारा-सभाओं का विधान बनाया गया है उनमें यदि दोनों सभाओं में कोई मतभेद हो जाता तो गवर्नर को अधिकार था कि वह उनकी सम्मिलित बैठक बुला सके। प्रांतीय धारा-सभाओं में जितने भी बिल पास होते थे उनकी स्वीकृति गवर्नर से लेनी पड़ती थी। वह उसे मंजूर या नामंजूर कर सकता था। यदि वह चाहे तो किसी बिल को पुनः विचार करने के लिये धारा-सभा को वापिस कर सकता था। स्पीकर अथवा सभापति की सलाह से धारा-सभा की कार्रवाइयों का नियम बनाने का अधिकार उसी को था। जब दोनों धारा-सभाओं की सम्मिलित बैठक होती थी तो उसकी कार्रवाई का नियम वही निर्धारित करता था।

गवर्नर को विशेष अवसरों पर कानून बनाने के अधिकार दिये गये थे। जिन विषयों की जिम्मेवारी उसे दी गई थी उनके लिये वह अपनी इच्छानुसार कानून बना सकता था। इस प्रकार के कानून के दो तरीके थे। या तो वह बिना किसी की सलाह के स्वयं कानून बनाता; अथवा कानून का आशय लिख कर धारा-सभा में भेज देता। एक महीने के अन्दर धारा-सभा उसके पास इस प्रकार के बिल पर अपनी राय पेश करती। इसके पश्चात् वह इसे कानून का रूप दे सकता था। उसके बनाये हुये कानून उसी प्रकार लागू समझे जाते जैसे धारा-सभा के। अंतर इतना ही था कि उसे अपने बनाये हुये कानूनों की सूचना गवर्नर-जनरल द्वारा भारत-मंत्री को देनी पड़ती। भारत-मंत्री इन्हें पार्लियामेंट की दोनों सभाओं में पेश करता। यदि धारा-सभा उसके बनाये हुए कानूनों में कुछ परिवर्तन करना चाहती तो नहीं कर सकती थी। गवर्नर की आज्ञा के बिना वह इन पर विचार भी नहीं कर सकती थी। १९३५ ई० तक गवर्नर का आर्डिनेंस जारी करने का अधिकार न था। केवल गवर्नर-जनरल इसे जारी कर सकता था। परंतु १९३५ के शासन-विधान के अनुसार उन्हें आर्डिनेंस जारी करने का अधिकार दे दिया गया था। ये आर्डिनेंस दो प्रकार के होते थे। एक को वह अपने मंत्रियों की सलाह से जारी करता था और दूसरे अपने अधिकार से। जिस समय धारा-सभा की बैठक नहीं होती और गवर्नर कोई आर्डिनेंस जारी कर देता था तो उसे धारा-सभा की बैठक आरम्भ होते ही उस आर्डिनेंस को उसके सामने रखना पड़ता था। धारा-सभा की बैठक के ६ सप्ताह बाद आर्डिनेंस की शक्ति समाप्त समझी जाती थी। गवर्नर को एक प्रकार का और भी आर्डिनेंस जारी करने का अधिकार था, जिसे धारा-सभा के सामने रखने की आवश्यकता नहीं थी। ६ महीने के लिये वह इन्हें जारी कर सकता था और फिर अगले ६ महीने के लिये बढ़ा सकता था।

धारा-सभा द्वारा पास किये गये कानूनों को गवर्नर रद्द कर सकता था। यह अधिकार उसे १९१९ ई० से दिया गया था। १९३५ के शासन-विधान में यह और भी सरल बना दिया गया था। बिना किसी रोक-टोक के वह ऐसे कानूनों को रद्द कर सकता था। आर्थिक क्षेत्र में उसे बहुत से अधिकार दिये गये थे। प्रति वर्ष आय-व्यय का चिट्ठा प्रांतीय धारा-सभा के सामने पेश किया जाता है। धारा-सभा को खर्चों के घटाने बढ़ाने का अधिकार तभी तक था जब तक गवर्नर

शान्त रहता था। धारा-सभा द्वारा इनकार की गई रकम को भी वह स्वीकार कर सकता था किसी मद के लिये तब तक सहायता नहीं माँगी जा सकती थी जब तक गवर्नर की स्वीकृति प्राप्त न कर ली जाती। बजेट में कुछ ऐसे मद रक्खे गये थे जिन पर धारा-सभा को वोट देने का अधिकार नहीं था। वह अपने प्रांत में गवर्नर की आज्ञा के बिना कोई नया टैक्स नहीं लगा सकती थी। पहले के टैक्सों को बढ़ाने का भी उसे अधिकार नहीं था। कोई प्रान्त गवर्नर की आज्ञा के बिना कर्ज नहीं ले सकता था।

गवर्नरों को अपने प्रान्त में कुछ सरकारी कर्मचारियों को नियुक्त करने का अधिकार दिया गया था। वह अपने प्राँत में एक ऐडवोकेट-जनरल नियुक्त करता था। इसकी योग्यता इतनी ज़रूरी होनी चाहिये थी कि वह हाइकोर्ट का न्यायाधीश बनाया जा सके। यह अपने पद पर तब तक काम कर सकता था जब तक गवर्नर की इच्छा होती थी। इसका वेतन भी वही निश्चित करता था। गवर्नर जब चाहता इसे निकाल सकता था। ऐडवोकेट-जनरल का काम क़ानूनी मामलों में प्रांतीय सरकार को सलाह देना था। प्रांतीय धारा-सभा में बैठने तथा बहस में भाग लेने का इसे पूरा अधिकार था। परन्तु वह धारा-सभा में किसी विषय पर वोट नहीं दे सकता था। इसके कामों को गवर्नर स्वयं निश्चित करता था। ब्रिटेन में जो स्थान अटार्नी जनरल का है वही प्रांत में ऐडवोकेट जनरल का था। मंत्री-मंडल से इसका कोई राजनीतिक सम्बन्ध नहीं था। ऐडवोकेट जनरल को अधिकार था कि वह प्रांत की दोनों धारा-सभाओं में भाषण दे सके। आज भी इन्हीं अधिकारों से वह कार्य कर रहा है।

अपने प्राँत में शांति की व्यवस्था के लिये गवर्नर अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग करता था। यदि वह आवश्यक समझता तो सरकारी पदाधिकारी को अधिकार दे सकता था कि वह प्रांतीय धारा-सभाओं तथा इनकी किसी कमेटियों में भाग ले सके। लेकिन उसे वोट देने का अधिकार न था। यदि कोई व्यक्ति क्रान्ति द्वारा अथवा किसी दूसरे तरीके से प्रांतीय सरकार के अस्तित्व को मिटाना चाहता तो उससे बचने को कार्रवाई करने का अधिकार गवर्नर को था। वह पुलिस विभाग के अफसरों को यह सूचित कर सकता था कि यह समाचार गोपनीय रक्खी जाय। केवल इन्सपेक्टर जनरल या पुलिस कमिश्नर या कोई दूसरा पदाधिकारी जिसे गवर्नर-जनरल आज्ञा दे, ऐसा कर सकता था। ऐसे

अधिकार यह सूचित करते हैं कि सरकार जनता में कितना कम विश्वास रखती थी। अपने दफ्तर में कर्मचारियों को नियुक्त करने का अधिकार गवर्नर को दिया गया था। उनका वेतन वही निश्चित करता था। प्रांतीय धारा-सभा इस खर्चे पर वोट नहीं दे सकती थी।

इन अधिकारों से स्पष्ट है कि गवर्नर का स्थान १६३५ के संघ-शासन-विधान में बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। शासन बनाने वालों का वसूल यह भली भाँति व्यक्त करता है कि वे कार्यकारिणी विभाग को पूर्ण स्वतंत्र रखना चाहते थे। इसीलिये गवर्नर को इतने अधिक अधिकार दिये गये थे। शासन की पूरी बागडोर इसके हाथ में रक्खी गई थी। आर्थिक, क़ानूनी तथा शासन सम्बन्धी सभी विषयों में वह हाथ डाल सकता था। मंत्रियों के होते हुए भी वह अपने विशेष अधिकारों द्वारा पूर्ण स्वतंत्र था। उसके इन अधिकारों के सामने प्रान्तीय स्वराज कोई अर्थ नहीं रखता था। काँग्रेस ने जब मंत्रिपद ग्रहण किया तो उसे यह आशा थी कि गवर्नर इन अधिकारों का प्रयोग जल्दी नहीं करेंगे। योरप की लड़ाई छिड़ते ही केन्द्रीय सरकार के हुक्म गवर्नरों को अपने अधिकारों का प्रयोग करने के लिये बाध्य करने लगे। ऐसी दशा में काँग्रेस ने उचित समझ कर त्याग-पत्र दे दिया। गवर्नर और गवर्नर-जनरल के स्थान अपने अपने क्षेत्र में एक-से थे। दोनों विशेषाधिकारों से सुसज्जित थे। केन्द्रीय सरकार में एक सुरक्षित विभाग बनाया गया था। जिस पर एक मात्र अधिकार गवर्नर-जनरल का था। प्रान्तीय सरकार में पिछड़े हुए विभागों (Excluded Areas) को छोड़ कर ऐसा कोई भी विभाग नहीं था। प्रांतों में गवर्नर को धन सम्बंधी मामले में वे सभी विशेष अधिकार दिये गये थे, जो केन्द्र में गवर्नर-जनरल को थे। दोनों ही प्रजा के अधिकारों से ऊपर रक्खे गये थे। आवश्यकता पड़ने पर दोनों अपने स्वतंत्र विचारों से शासन का कार्य चलाते थे। वर्तमान समय में गवर्नर के अधिकार कम नहीं हैं, परन्तु राष्ट्रीय दृष्टिकोण रखने के कारण वह कोई कार्य ऐसा नहीं कर सकता जो प्रान्तीय हित के विरुद्ध हो। स्वतंत्र भारत के नवीन शासन-विधान में गवर्नर की क्या स्थिति है इस पर पुस्तक के अंतिम अध्याय में विचार किया गया है। जब तक नया शासन-विधान कार्यान्वित न होगा तब तक उसकी क्रियात्मक उपयोगिता पर प्रकाश नहीं डाला जा सकता।

अध्याय ८

प्रान्तीय मंत्रि-मंडल

मंत्रियों की आवश्यकता

यद्यपि गवर्नर अपने प्रांत का सर्वप्रधान शासक है, फिर भी उसे सलाह देने के लिये मंत्रियों की एक सभा बनाई गई है। शासन को चलाने के लिये केवल एक व्यक्ति समर्थ नहीं होता। केन्द्रीय और प्रांतीय शासन में केवल दर्जे का अंतर है सिद्धांत दोनों के एक हैं। जो आवश्यकता गवर्नर-जनरल को अपने सलाहकारों की है वही आवश्यकता गवर्नर को मंत्रियों की है। शासन में कोई सरकार जनता के विचारों को बहुत दिनों तक नहीं ठुकरा सकती। कुछ समय तक वह इसकी अवलेहना भले ही कर ले; लेकिन यह शासन सर्वप्रिय तभी बन सकता है जब जनता के प्रतिनिधियों की राय मान ली जाय। यद्यपि यह सुविधा प्रांतीय जनता को अभी तक प्राप्त नहीं थी परन्तु शासन के ऐतिहासिक विकास को देखते हुए इसकी उन्नति क्रमशः इसी मार्ग पर होती रही है। संघ-शासन-विधान में प्रांतीय स्वराज अधूरा रहा है, फिर भी इसकी असलियत में किसी को संदेह नहीं होना चाहिये। जब हम वर्तमान प्रांतीय शासन की तुलना १९०९ अथवा १९१९ के शासन-विधानों से करते हैं तो हमें यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जनता के अधिकार किस प्रकार क्रमशः बढ़ते गये हैं। इस वृद्धि का माप दंड धारा-सभाओं में जनता के प्रतिनिधियों की संख्या है। दो प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि प्रान्तीय शासन में कहाँ तक हमें अधिकार दिये गये हैं। एक तो यह कि धारा-सभाओं में जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों की संख्या कितनी है। दूसरे यह कि इन प्रतिनिधियों को शासन में कहाँ तक हाथ डालने का अधिकार है।

प्रान्तीय शासन की उपयोगिता वहीं तक है जहाँ तक वह स्थानीय समस्याओं को दूर कर सके। इसके लिये यह आवश्यक है कि स्थानीय जनता की पूरी पूरी राय ली जाय। प्रांतीय शासन को चलाने के लिये गवर्नरों को एक एक मन्त्रि-मंडल दिये गये हैं। कुछ तो शासन-प्रबन्ध में उसे सहायता पहुँचाने के लिये और कुछ जनता के अधिकारों को

रक्षा के लिये ऐसा किया गया है। मंत्री धारा-सभाओं के सदस्य होते हैं। प्रजा का उनमें पूर्ण विश्वास होता है। वे अपने कार्यों के लिये सरकार तथा जनता दोनों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। जिस देश की प्रांतीय कार्यकारिणी सभा धारा-सभा के प्रति जिम्मेवार नहीं होती वह प्रजातंत्रवादी होने का दावा नहीं कर सकता। यदि मन्त्री न हों तो एकतंत्रवाद की स्थापना हुए बिना नहीं रह सकती। गवर्नर के स्वतन्त्र कार्यों में कोई रुकावट नहीं हो सकती। मंत्री शासन का पूरा भार अपने ऊपर लेकर जनता की भलाई की चिन्ता करते हैं। एक ओर वे गवर्नर की निरंकुशता को रोकते हैं और दूसरी ओर उत्तरदायी शासन को दृढ़ करते हैं। यदि प्रांतीय धारा-सभाओं के सदस्य जनता के प्रतिनिधि हों किन्तु कार्यकारिणी सभा से उनका कोई सम्बंध न हो तो जनता का निर्वाचन अधिकार निरर्थक सिद्ध होगा। इन्हीं कारणों से हर एक प्रांत में एक ऐसे मंत्री-मंडल की आवश्यकता पड़ती है जो सभी प्रकार से शासन-प्रबंध के लिये जिम्मेवार हो।

मंत्रियों की सभा
Council of Min,sters

१९१९ के पहले सम्पूर्ण भारत १५ प्रांतों में विभक्त था। बंगाल, मद्रास और बम्बई अहातों के गवर्नर को तीन तीन सदस्यों की एक कौंसिल उनकी सहायता के लिये दी गई थो। ये सदस्य सरकारी कर्मचारियों में से चुन लिये जाते थे। शासन के प्रत्येक काम में गवर्नर इनसे सलाह लेता था, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर वह मनमानी भी कर सकता था। इन तीनों प्रांतों के अतिरिक्त ४ प्रान्तों के प्रधान लेटिनेंट गवर्नर कहलाते थे। ये अपने सूबे का प्रबन्ध बिना कौंसिल के भी कर सकते थे। तीन प्रांत ऐसे थे जिनका प्रधान कमिश्नर कहलाता था। ये पूर्णतया भारत-सरकार के आधीन कार्य करते थे। शेष प्रान्तों का प्रबन्ध भारत-सरकार की देख-रेख में होता था। इनमें जनता के अधिकार शून्य के बराबर थे। १९१९ ई० के शासन-विधान के अनुसार गवर्नर के प्रान्तों की संख्या ६ कर दी गई। शेष प्रांतों का दर्जा वही बना रहा। इस शासन-विधान में प्रांतों में दोहरे शासन (Dyarchy) की नीव डाली गई। प्रांतीय विषय दो श्रेणियों में विभाजित कर कुछ विषय भारतीय मंत्रियों को दे दिये और शेष गवर्नर और उसकी कौंसिल के हाथों में छोड़ दिये गये। गवर्नर की कौंसिल में ४ सदस्य होते थे। इनकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती थी इसके आधे सदस्य भारतीय होते थे। इनमें एक ऐसे सदस्य का होना

आवश्यक था जो कम से कम ११ वर्ष तक सरकारी नौकरी में रहा हो। कौंसिल की बैठक में गवर्नर सभापति का आसन ग्रहण करता था। आमतौर से उसे बहुमत का फैसला मानना पड़ता था। परन्तु वोट बराबर होने पर अथवा किसी विशेष परिस्थिति में वह इसके विरुद्ध भी कार्य कर सकता था।

कौंसिल के सदस्यों के अतिरिक्त गवर्नर के प्रान्तों में एक मन्त्रिमंडल होता था। जो विषय जनता की जिम्मेवरी पर दिये गये थे, उनका प्रबन्ध इन्हीं मन्त्रियों के ज़िम्मे था। मन्त्री गवर्नर द्वारा चुने जाते थे। ये प्रान्तीय धारा-सभा के चुने हुए सदस्यों में से होते थे। यद्यपि ये कार्यकारिणी सभा (Executive Council) के सदस्य नहीं होते थे परन्तु शासन की सुविधा के लिये कुछ विषयों में कौंसिल के सदस्यों के साथ बैठकर विचार करते थे। मन्त्रियों तथा कौंसिल के सदस्यों की सम्मिलित बैठक में गवर्नर सभापति होता था। सम्मिलित बैठक का फैसला कौंसिल तथा मंत्रि-मण्डल दोनों को मानना पड़ता था। दोनों विषयों के प्रबन्ध के लिये एक सम्मिलित रक़म रक्खी गई थी परन्तु सुरक्षित विषयों पर अधिक ध्यान दिया जाता था। गवर्नर को यह अधिकार था कि वह मन्त्रियों की सलाह को माने या ठुकरा दे। मन्त्री उसकी इच्छानुसार कार्य करने के लिये बाध्य थे। वह जब चाहता उन्हें हटा सकता था। उनका वेतन धारा-सभा द्वारा निश्चित किया जाता था। कौंसिल के सदस्य धारा-सभा के सदस्य नहीं होते थे, लेकिन उन्हें यह अधिकार था कि वे उसकी बैठक में शरीक हो सकें। ये ५ वर्ष के लिये नियुक्त किये जाते थे। उनका वेतन सभी प्रान्तों में एक सा नहीं था। बंगाल, मद्रास, बंबई तथा संयुक्तप्रांत में प्रत्येक सदस्य को ६४००० रुपये सालाना; पंजाब, बर्मा, बिहार, उड़ीसा, में ६०००० रुपये सालाना; तथा अन्य प्रांतों में ४२००० रूपये सालाना दिये जाते है।

प्रांतीय सरकार केन्द्रीय सरकार की मातहती में काम करती थी। कुछ विषयों में प्रत्यक्ष रूप से और कुछ में अप्रत्यक्ष रूप से वह हाथ डाल सकती थी। प्रांतीय कार्यकारिणी के दो हिस्से करने से शासन-प्रबन्ध की ज़िम्मेवारी दो जगह बँट गई थी। अर्थात् कौंसिल के सदस्य और मन्त्री किसी को भी पूरा उत्तरदायित्व प्राप्त न था। साथ ही एक की ज़िम्मेवारी धारा-सभा के प्रति और दूसरे की गवर्नर के प्रति थी।

यह दोहरा प्रबन्ध सर्वथा दूषित था। १६ वर्ष तक किसी तरह यह शासन-प्रबन्ध चलता रहा। जिन मन्त्रियों को कुछ विषयों की ज़िम्मेवारी दी गई थी उन्हें निकालने और भर्ती करने का अधिकार गवर्नर को था। ऐसी दशा में वे उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकते थे। यही वजह है कि १६१६ के शासन-विधान से भारतीय-समाज का कोई वर्ग संतुष्ट न था। शासन-विधान में यह बात स्पष्ट कर दी गई थी कि १० वर्ष बाद अर्थात् १६२६ ई० में शासन की सफलता और असफलता पर विचार किया जायेगा। किसी तरह ८ वर्ष व्यतीत हुए थे कि १६२७ ई० में इसकी जाँच-पड़ताल आरम्भ हो गई। इसके पश्चात् १६३५ ई० में एक संघ-शासन की योजना बनाई गई। प्रांतों की संख्या में उलट-फेर किया गया और उन्हें प्रांतीय स्वराज अर्पण कर दिया गया। यह प्रांतीय स्वराज कहाँ तक भारतीय जनता को राजनीतिक अधिकार प्रदान करता था, इसका वर्णन अगले अध्याय में किया गया है। प्रांतों से दोहरा शासन तोड़ कर एक मंत्रि-मण्डल की स्थापना की गई है।

१६३५ के शासन-विधान में प्रान्तीय मंत्रि-मंडल

१६३५ का शासन-विधान हमारे देश के लिये एक नई देन थी। जिस संघ-शासन की योजना पर हम वर्षों से विचार कर रहे थे वह हमें दी गई। इसके गुण दोषों पर हम पिछले अध्याय में विचार कर चुके हैं। प्रांतीय शासन पर इसका क्या प्रभाव पड़ा इस पर विचार करना है। संघ-शासन-विधान में प्रजातंत्रवाद की नकल की गई थी। प्रांतीय स्वराज्य इसका पहला क़दम था। अब प्रश्न यह है कि क्या प्रांतों में एक निर्वाचित धारा-सभा बनाई गई थी तथा प्रांतीय मंत्रि-मंडल इस सभा के प्रति उत्तरदायी था? यदि ये दोनों बातें ठीक हैं तो हमें प्रांतीय स्वराज की असलियत में कोई संदेह नहीं है। प्रांतीय मंत्रि-मंडल का अध्ययन करने पर ये दोनों प्रश्न हल हो जायेंगे।

संघ-शासन-विधान में गवर्नर को सलाह देने के लिये मंत्रियों की एक सभा बनाई गई थी। दोहरा शासन दूर कर दिया गया। कुछ विषयों में उसकी इच्छा सर्वप्रधान थी, परन्तु बाकी के लिये यह मंत्रियों से सलाह ले सकता था। परन्तु उस सलाह से वह बाध्य नहीं था। प्रांत की रक्षा और शासन को चलाने की ज़िम्मेवारी के नाते वह सब कुछ करने का अधिकारी था। दोनों विषय एक दूसरे से सर्वथा अलग कर

दिये गये थे कि किन विषयों में मंत्री सलाह दे सकते थे और किन में नहीं। दूसरे प्रकार के विषयों में वह जो उसूल चाहता बर्तता। इसलिए मंत्रियों की सलाह का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

संघ-शासन-विधान में मंत्रियों को चुनने का अधिकार गवर्नर को दिया गया था। कार्य रूप में वह छोटी धारा सभा (Legislative Assembly) की बहुमत पार्टी के नेता को बुलाता था। एक जिम्मेवार शासन की दृष्टि से यह प्रथा सराहनीय है। लगभग सभी प्रजातंत्रवादी देश के इस सिद्धांत को काम में लाते हैं। धारा-सभा में अनेक राजनीतिक दल होते हैं। सबके अलग-अलग उसूल और कार्य-क्रम रहते हैं। इस उलझन को दूर करने का सरल मार्ग यही है कि प्रधान राजनीतिक दल के हाथों में सरकार का कार्य दिया जाय। यदि यह दल अन्य दलों के साथ सहयोग प्राप्त करके शासन को चलाये तो और भी अच्छा है। गवर्नर प्रधान दल के नेता को बुलाकर यह आज्ञा देता था कि वह कुछ सदस्यों का एक मंत्रिमंडल बना ले। नेता आमतौर से अधिक से अधिक मंत्री अपने दल से चुनता था। मंत्रियों के लिये यह आवश्यक था कि वे छोटी या बड़ी धारा-सभा के सदस्य हों। यदि नेता चाहता तो अन्य दलों को सन्तुष्ट रखने के लिए उनमें से भी एक या दो मत्री चुन सकता था। मन्त्रियों की संख्या निश्चित नहीं थी। केन्द्रीय कार्यकारिणी सभा में अधिक से अधिक १० मंत्री हो सकते थे, परन्तु प्रान्तों में इनकी संख्या पर कोई रोक नहीं थी। नेता द्वारा इस प्रकार जो सदस्य चुने जाते थे उनसे जो सभा बनती थी उसे मन्त्रि-मण्डल कहते थे। थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ प्रान्तों में आज इसी प्रकार से मन्त्रि-मण्डल कार्य कर रहे हैं।

मन्त्रियों के चुनाव में नेता को अधिकार था कि वह किसी ऐसे व्यक्ति को मंत्रि-मंडल में शामिल करे जो धारा-सभा का सदस्य नहीं था। परन्तु ६ महीने के अन्दर उसे प्रांतीय धारा-सभा का सदस्य बन जाना आवश्यक था। ये मंत्री ऐसे होने चाहिये थे जिनमें धारा-सभा का पूर्ण विश्वास हो। गवर्नर को इस बात का ध्यान रखना पड़ता था कि अल्पसंख्यक दल को मंत्रिमंडल में उचित स्थान प्राप्त हो। यह हो सकता था कि मंत्रि-मंडल में उसे कोई स्थान न दिया जाय। ऐसी दशा में यह सम्भव नहीं था कि गवर्नर प्रधान दल की इच्छा के विरुद्ध अल्पसंख्यक वर्ग के किसी सदस्य को मंत्रि-मण्डल में शामिल कर सके।

ऐसा करने से वह अनेक कठिनाइयों में पड़ सकता था। जो दल शासन को चलाता उसके विरुद्ध कोई कार्य करके वह शान्तिपूर्वक शासन नहीं कर सकता था। इतनी छोटी-सी बात के लिये वह अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग नहीं करता। यदि किसी दल का बहुमत इतना प्रभावशाली नहीं था कि वह उसे प्रसन्न रखने की चिन्ता करता तो एक सम्मिलित मन्त्रि-मण्डल बनाया जा सकता था। २ या ३ दलों के सदस्य मन्त्रिमण्डल में शरीक किये जा सकते थे। यहाँ पर गवर्नर अपने प्रभाव का उपयोग कर सकता था। कोई भी एक दल उसका विरोध नहीं कर सकता था। अल्पसंख्यक वर्गों की सहायता से वह साधारण बहुमत दल के विरोध से बच सकता था।

शासन-विधान में मंत्रियों की योग्यता का कोई विधान नहीं बनाया गया था। इतनी शर्त जरूर थी कि उन्हें प्रान्तीय धारा-सभा का सदस्य होना चाहिये। ये मंत्री धारा-सभा के चुने हुए अथवा नामजद सदस्यों में से होते यह भी स्पष्ट नहीं किया गया था। प्रांतीय धारा-सभा की छोटी अथवा बड़ी सभा से ये चुने जाते थे। इनका व्यक्तित्व साधारण सदस्यों से ऊँचा समझा जाता था। जनता पर प्रभाव डालने के लिये यह आवश्यक था कि वे प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और अपने दल के प्रमुख नेताओं में से हों। चरित्र और बुद्धि दोनों में उन्हें ऊँचा होना आवश्यक था। तभी वे अपने जिम्मेवारी को निबाह सकते थे। पुस्तक से बढ़कर सामाजिक विषयों का ज्ञान आवश्यक था। इंगलैंड की कैबिनेट में कितने ही मंत्रियों का वर्णन मिलता है जो कालेज तथा यूनिवर्सिटी का मुँह भी नहीं देखे हुए थे। परन्तु उन्हें अपने समय की राजनीतिक परिस्थिति का इतना अधिक ज्ञान था कि वे बड़ी योग्यतापूर्वक अपने कार्य को सँभालते रहे। मन्त्री को किसी विषय का विशेष ज्ञान भले ही न हो किन्तु उसकी बुद्धि सर्वव्यापी और विस्तृत होनी चाहिये। उसका दृष्टिकोण इतना व्यापक हो कि वह विषयों को तुरन्त समझ जाय। उसमें विचार करने की प्रचुर शक्ति होनी आवश्यक है।

प्रांतों में मंत्रियों की संख्या निश्चित नहीं थी। उन्हें अपनी सुविधानुसार मंत्री नियुक्त करने का अधिकार था। आमतौर से बड़े सूबों में इनकी संख्या ७ और १० के बीच में तथा छोटे सूबों में ३ और ६ के बीच में रक्खी गई थी। जब तक प्रजा के प्रतिनिधियों का

उनमें विश्वास रहता तब तक वे अपने पद पर काय करत। यदि छोटी सभा भंग न की जाती तो मंत्री ५ वर्ष तक अपने स्थान पर बने रहते। १६१६ के शासन-विधान में इनके वेतन का नियम १६३५ के तरीके से भिन्न था। जब सालाना आय-व्यय का चिट्ठा प्रान्तों में पास किया जाता तो प्रत्येक मन्त्री का वेतन भी निश्चित कर दिया जाता था। प्रान्तीय धारा-सभा को यह अधिकार था कि वह इसे घटा-बढ़ा सके। यहाँ तक कि वह उसे बिलकुल बन्द कर सकती थी। धारा-सभा और मन्त्रिमण्डल में भेद-भाव उत्पन्न होने पर मंत्रियों के वेतन पर आघात किया जाता था। एक प्रकार से धारा-सभा के सदस्य मंत्रियों को जब चाहें हटा सकते थे; क्योंकि कोई मंत्री अपना वेतन बन्द होने पर कार्य नहीं कर सकता था। संघ-शासन-विधान में वेतन का ढंग बदल दिया गया था। वह प्रांतीय धारा-सभा के ऐक्ट के अनुसार निश्चित किया जाता था। जनता के प्रतिनिधियों को अधिकार था कि वे जब चाहें इस ऐक्ट में संशोधन करें। इससे जनता को प्रान्त के सब से बड़े पदाधिकारियों का वेतन निश्चित करने का अधिकार प्राप्त था।

संघ-शासन-विधान के अनुसार मंत्रियों का वेतन प्रति वर्ष निश्चित नहीं किया जाता था। धारा-सभा उसके पूरे समय के लिये एक बार इसे निश्चित कर देती थी। जब तक मंत्री अपने पद पर कार्य करते तब तक उन्हें यह वेतन एक सा मिलता रहता। यद्यपि प्रति वर्ष धारा-सभा के सामने यह खर्च पेश किया जाता था लेकिन इस पर किसी प्रकार का वोट नहीं लिया जाता। धारा-सभा मंत्रियों के वेतन को घटाने-बढ़ाने पर विचार नहीं कर सकती थी। उसे यह अधिकार नहीं था कि वह उसका वेतन कम करके उन्हें अपने पद से हटा दे। यदि वह मंत्रि-मण्डल में विश्वास नहीं करती तो अविश्वास का प्रस्ताव करके उसे जब चाहे हटा देती। इस प्रस्ताव के पास होने पर मंत्रियों को स्वयं अपने पद से हट जाना पड़ता था। यह नियम सभी प्रजातन्त्रवादी देशों में एक-सा पाया जाता है। यह इसीलिये बनाया गया है कि जनता अपनी इच्छानुसार अपना राजनीतिक प्रबन्ध करे। संघ शासन-विधान में प्रान्तीय जनता यह इतराज नहीं कर सकती थी कि सरकार उनकी इच्छा के विरुद्ध कार्य कर रही है। साधारण परिस्थिति में उसे यह कहने का अवसर नहीं दिया गया था।

प्रान्तीय शासन के कार्य कई विभागों में बाँट दिये जाते थे। प्रत्येक

मंत्री एक या दो विभाग का प्रधान होता था। गवर्नर को यह अधिकार था कि वह मन्त्रियों का कार्य विभाजन करे। मन्त्रिमण्डल की सभा का सभापति गवर्नर-जनरल होता था। उसे यह अधिकार था कि वह इसकी कार्य-प्रणाली को जैसा चाहे बनाये। आमतौर से वह मंत्रियों की सलाह को मान लेता था, परन्तु उसे स्वतन्त्रा थी कि वह जब चाहे अपने व्यक्तिगति अधिकारों का प्रयोग करे। उसकी अनुपस्थिति में प्रधान मन्त्री (Prime Minister) सभापति का आसन ग्रहण करता था। साधारणतया कार्य-पद्धति आदि यही निश्चित करता था। मन्त्री अपने विभाग का प्रबन्ध अपनी इच्छानुसार करते थे। कोई गम्भीर बात आ जाने पर पूरे मन्त्रिमण्डल से सलाह लेनी पड़ती थी। जहाँ तक शासन की नीति का सम्बन्ध है, कोई भी मन्त्री पूरे मन्त्रिमंडल की सलाह के बिना मनमानी नहीं कर सकता था। सभी विभागों की नीति मन्त्रिमंडल की बैठक में अच्छी तरह विचार की जाती थी। उसी के अनुसार विभागों का प्रबन्ध करना पड़ता था। इससे शासन की नीति एक समान बनी रहती थी। किसी एक विभाग का मन्त्री इस बात के लिये दोषी नहीं ठहराया जा सकता था कि उसकी नीति हानिकर सिद्ध हुई। पूरा मन्त्रिमंडल इसके लिये उत्तरदायी होता था। प्रधान मन्त्री इस बात का ध्यान रखता था कि सभी विभागों में एक ऐसी नीति बर्ती जाय जिससे प्रान्तीय शासन की एकता दृढ़ बनी रहे। विभागों का उत्तरदायित्व देते समय मन्त्रियों की योग्यता का ध्यान रक्खा जाता था। जिस विभाग को चलाने की योग्यता जो सबसे अधिक रखता उसे वही सुपुर्द किया जाता था। यदि प्रधान मन्त्री इस बात का ध्यान न रक्खे तो शासन का कार्य ठीक तरह नहीं चल सकता। इसकी तुलना बृटिश कैबिनेट से भी की जा सकती है। अन्तर इतना ही है कि बृटिश कैबिनेट को जो शक्ति प्राप्त है वह प्रांतीय मंत्रिमंडल को नहीं थी।

मन्त्रिमण्डल की कार्य-पद्धति

मंत्रिमंडल की सबसे बड़ी विशेषता इसका सम्मिलित उत्तरदायित्व था, जो आज भी है। यदि प्रत्येक मंत्री अपने विभाग का शासन प्रबन्ध किसी ऐसे ढंग से करे जो और मंत्रियों को पसंद न हो तो यह निश्चित है कि मंत्रिमंडल में एकता नहीं रह सकती। इसके साथ ही शासन प्रबन्ध ढीला पड़ जायेगा। इसीलिये प्रजातंत्रवादी देशों में सम्मिलित उत्तरदायित्व की प्रथा प्रचलित है। सभी मंत्री एक दूसरे के कार्य के लिये उत्तरदायी समझे जाते हैं। ब्रिटेन की कैबिनेट में २१ के लगभग

मंत्री हैं। इनमें से यदि एक कोई भूल करता है तो इसकी ज़िम्मेवारी पूरे मंत्रि-मंडल पर रक्खी जाती है। एक की ग़लती के कारण सारा मंत्रि-मंडल भंग कर दिया जाता है। ऐसा इसलिये किया गया है कि सारा मंत्रि-मंडल सरकार को एक इकाई मान कर शासन का कार्य करे। मंत्रियों की एकता से शासन के सभी विभाग एक दूसरे से मिले हुए कार्य करते हैं। इससे जनता को अधिक लाभ पहुँचता है। किसी देश की सरकार कई नीति नहीं रख सकती। यही बात सूबों में भी पाई जाती है। यदि सभी मंत्री मनमानी करने लगें और मंत्रिमंडल की नीति एक न हो तो प्रांतीय व्यवस्था शान्तिपूर्वक नहीं चल सकती। मंत्रि-मंडल के सदस्य धारा-सभा की बहुमत पार्टी से इसीलिये नियुक्त किये जाते हैं कि उनकी नीति को दूसरे दल वाले विफल न कर सकें। लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मंत्री अपने कार्यों के लिए चारों ओर से बँधा रहता है। इतनी रुकावटें होने पर भी उसे काफी स्वतंत्रा प्राप्त है। कभी-कभी मंत्रियों में भेद-भाव उत्पन्न हो जाने पर आसानी से दूर कर दिया जाता है। यदि कोई मंत्री मंत्रि-मंडल की नीति से सहमत नहीं है तो वह त्याग-पत्र देकर उससे अलग हो जाता है।

साधारणतया मंत्री अपने स्थान से तभी पदच्युत किये जाते हैं जब धारा-सभा उनमें अविश्वास का प्रस्ताव पास कर देती है। परन्तु गवर्नर को अधिकार था कि वह जब चाहे मंत्रि-मंडल को तोड़ दे। साधारण परिस्थित में वह ऐसा नहीं करता। जब प्रान्तीय शासन प्रजातंत्रवाद के सिद्धांत पर बनाया गया था तो यह आवश्यक था कि मंत्रि-मंडल अपने कार्यों के लिये धारा-सभा के प्रति ज़िम्मेवार हो। जब धारा सभा पूरे मंत्रि-मंडल अथवा किसी एक मंत्री के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पास कर देती और वे अपने स्थान पर बने रहना चाहते तो गवर्नर विवश होकर उस मंत्रि-मंडल अथवा मंत्री को अलग कर देता था। मध्य प्रांत और बरार में इसी प्रकार की एक घटना काँग्रेस मंत्रि-मंडल के समय घटी थी। डाक्टर खरे इस प्रान्त के प्रधान मन्त्री थे। उन्होंने अपने सहकारी मंत्रियों को यह सलाह दी कि वे मंत्रिमण्डल से त्याग-पत्र दे दें। साथ ही वे स्वयं त्याग-पत्र दे देना चाहते थे। उनका विचार एक दूसरा मंत्रि-मंडल बनाने का था। दो मंत्रियों ने त्याग-पत्र देने से इनकार कर दिया। उनका कहना था कि काँग्रेस के जिन महाप्रभुओं ने उन्हें यह स्थान दिया है उनकी आज्ञा

के बिना वे त्याग-पत्र नहीं दे सकते। डाक्टर खरे ने त्याग-पत्र दे दिया। ऐसी परिस्थित उपस्थित होने पर गवर्नर ने इन दोनों मंत्रियों को बर्खास्त कर दिया और डाक्टर खरे को यह अधिकार दिया कि वे दूसरा मंत्रि-मंडल बना लें। इस पर कॉंग्रेस का रुख कुछ अच्छा न रहा। डाक्टर खरे के विरुद्ध कॉंग्रेस ने अनुशासन भंग करने का दोष लगा कर उन्हें मंत्रि-मंडल से निकाल दिया। साथ ही उन्हें यह भी आज्ञा दी गई कि वे ३ वर्ष तक कॉंग्रेस के सदस्य नहीं बन सकते। वहाँ के गवर्नर को भी इस मामले में कॉंग्रेस ने दोषी ठहराया।

यदि शासन की दृष्टि से "खरे की घटना" (Khare Episode) का अवलोकन करें तो हम गवर्नर को दोषी नहीं ठहरा सकते। जब कि मंत्रि-मंडल के सभी सदस्य त्याग-पत्र दे देते हैं तो एक या दो सदस्य प्रधान मंत्री की इच्छा के विरुद्ध अपने स्थान पर कैसे बने रह सकते हैं। गवर्नर का यह कर्त्तव्य था कि वह उन्हें हटा दे। वह बहुमत पार्टी को, चाहे वह कॉंग्रेस हो या कोई और, अपने ध्यान में रखते हुए मंत्रि-मंडल के कार्यों को देखता था। डाक्टर खरे के कॉंग्रेस पार्टी का लीडर होने में कोई भी सन्देह नहीं कर सकता। यदि गवर्नर ने उन्हें ऐसा मान कर दोबारा मंत्रि-मंडल बनाने का अधिकार दिया तो कोई बुरा नहीं किया। इसमें उसने शासन की अवहेलना न की। जहाँ तक डाक्टर खरे के कामों का सम्बंध है उन्हें भी हम दोषी नहीं ठहरा सकते। शासन का कार्य और अच्छी तरह चलाने के लिये यदि वे कोई नया मंत्रि-मंडल बनाना चाहते थे तो उनका ऐसा करना सर्वदा उचित था। अपनी पार्टी के एक नेता की हैसियत से मंत्रि-मण्डल बनाने का उहें पूरा अधिकार था। परंतु उन्हें यह कार्य कॉंग्रेस की आज्ञा से करना चाहिये था। कॉंग्रेस के सभी मंत्रि-मडल उसकी एक कमीटी (Congress Parliamentary Sub-Committee) के अधिकार में रक्खे गये थे। उन्हें यह मुनासिब था कि उस कमीटी की राय से सब कुछ करें। डाक्टर खरे ने इस आज्ञा का पालन नहीं किया इसलिये उनके ऊपर लगाया गया दोष सर्वथा उचित था।

इसी प्रकार की एक दूसरी घटना बंगाल में हुई। वहाँ के प्रधान मंत्री मिस्टर फ़ज़लुलहक़ ने मिस्टर नवसेर अली को आज्ञा दी कि वे मंत्रि-मंडल से इस्तीफा दे दें। प्रधान-मंत्री की आज्ञा मानने से उन्होंने इनकार कर दिया। गवर्नर ने भी इस मामले में हाथ

डालना मुनासिब न समझा। इस पर प्रधान मंत्री ने पूरे मंत्रिमंडल का त्यागपत्र पेश कर दिया। धारा-सभा की बहुमत पार्टी का फ़ज़लुलहक़ में विश्वास था। उसने उन्हें दूसरा मंत्रिमंडल बनाने की आज्ञा दे दी। नये मंत्रिमण्डल में मिस्टर नवशेर अली शामिल नहीं किये गये।

यह हो सकता है कि धारा-सभा मंत्रिमंडल में विश्वास करे, लेकिन गवर्नर का उससे मतभेद हो। ऐसी दशा में वह मंत्रिमंडल को भंग कर सकता था। संयुक्तप्रांत और बिहार में राजनीतिक कैदियों को छोड़ने के विषय में उसमें तथा मंत्रियों में कुछ मतभेद हुआ था। मंत्री यह चाहते थे कि सभी राजनीतिक कैदी एक साथ छोड़ दिये जायँ परन्तु वह ऐसा नहीं करना चाहता था। काँग्रेस के मंत्रियों ने इस पर त्याग-पत्र दे दिया। अन्त में सुलह का एक रास्ता निकाला गया। गवर्नरों ने यह वादा किया कि धीरे-धीरे राजनीतिक कैदी छोड़ दिये जायेंगे।

मन्त्रियों के अधिकार और कर्त्तव्य का बहुत कुछ आभास उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है। फिर भी इसका विस्तृत वर्णन 'प्रांतीय स्वराज्य' नामक अध्याय में किया गया है। यदि काँग्रेस मंत्रियों को सूबों में कुछ दिन और शासन करने का अवसर मिलता तो यह बात और स्पष्ट हो जाती कि उनके अधिकारों की सीमा क्या थी। यह बात निर्विवाद है कि गवर्नर मंत्रियों के कामों में जल्दी दखल नहीं डाल सकता था। मंत्री अपने क्षेत्र में काफ़ी अंश तक स्वतंत्र रक्खे गये थे। लेकिन इस कमी की पूर्ति उसके विशेषाधिकारों से कर दी गई थी। बड़े हौसले के साथ काँग्रेस ने मन्त्रिपद स्वीकार किया था, परन्तु अंत में उसे निराश होकर इससे त्यागपत्र देना पड़ा। उसे यह भी अनुभव हुआ कि उनके पद और अधिकार तभी तक सुरक्षित थे जब तक वे शासन के छोटे छोटे कामों में लगे हुए थे। अपनी चाल को कम करते ही तथा कोई लम्बा क़दम बढ़ाते ही उन्हें रोकने की व्यवस्था बनी हुई थी। यही सोच-विचार कर गत महायुद्ध के आरम्भ होने पर काँग्रेस ने शासन से अपने को अलग कर लिया था।

वर्तमान मंत्रिमंडल

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रांतीय शासन व्यवस्था में कोई महत्वपूर्ण वैधानिक परिवर्तन नहीं हुआ है। इतना अवश्य है कि सभी प्रान्तों में भारतीय गवर्नर

नियुक्त किये गये हैं। सरकारी पदों पर भारतीय कर्मचारी तेज़ी के साथ नियुक्त किये जा रहे हैं। जनता के अन्दर राष्ट्रीयता की नई लहर बढ़ रही है। विधान परिषद जिस नये सम्विधान का निर्माण कर रही है उसकी रूप-रेखा को देखते हुए यह स्पष्ट है कि प्रांतों को शासन में पूर्ण स्वतन्त्रता होगी। प्रान्तीय सरकार जनता के हित का अधिक से अधिक ध्यान रक्खे—इसका पूर्ण समावेश होगा। सरकारी कर्मचारी कम वेतन लेकर जनता के सेवक होंगे। देशी रियासतों की समाप्ति के कारण प्रांतों के क्षेत्रफल और उनके अधिकार भी बढ़ जायेंगे। वर्तमान मंत्रिमंडल प्रान्तीय उन्नति और विकास की नई नई योजनाओं के निर्माण में संलग्न हैं।

अध्याय ६

प्रान्तीय धारा-सभा

ऊपर कहा गया है कि बृटिश सरकार की नीति आरम्भ से ही शासन का केन्द्रीभूत करने की थी। प्रांतीय गवर्नरों तथा धारा-सभाओं को बहुत थोड़े से अधिकार दिये गये थे। हर मामले में उन्हें केन्द्रीय सरकार से आज्ञा प्राप्त करनी पड़ती थी। प्रांतीय धारा-सभाओं के पिछले इतिहास से यह जाहिर होता है कि वे केवल बड़े-बड़े लोगों की एक दल विशेष रही हैं। १८०७ ई० के पहले प्रांतीय सरकार को कानून बनाने का अधिकार न था। किसी भी प्रांत में धारा-सभा न थी। १८०७ ई० में मद्रास तथा बम्बई अहातों के गवर्नर और उसकी कौंसिल को यह अधिकार दिया गया कि वे अपने शासन की सुविधा के लिये छोटे-मोटे कानून बना सकते हैं। १८३३ ई० में यह अधिकार उनसे छीन लिया गया। जब गवर्नरों को किसी कानून की जरूरत महसूस होती तो वे गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को इसकी सूचना देते थे। केन्द्रीय सरकार उसके लिये कानून बना कर भेज देती थी। इसके उपरांत ३० वर्ष तक प्रांतीय सरकारों को कानून बनाने का किसी तरह का अधिकार नहीं दिया गया। १८६१ ई० में इंडिया कौंसिल ऐक्ट के अनुसार मद्रास तथा बम्बई प्रांतों को कानून बनाने का अधिकार फिर दे दिया गया। लेकिन यह शर्त लगाई गई कि इसकी आज्ञा वे गवर्नर-जनरल से ले लें। उपरोक्त प्रांतों में धारा-सभाओं की स्थापना नहीं की गई थी। प्रांतीय कार्यकारिणी सभाएँ (Provincial Executive Council) कानून बनाने का कार्य करती थीं। इन्हीं में कुछ सदस्यों की संख्या बढ़ा कर उनसे यह कार्य ले लिया जाता था।

ऐतिहासिक विकास

१८६२ ई० में इण्डिया कौंसिल्स ऐक्ट के अनुसार प्रांतीय धारा-सभाएँ कुछ और बढ़ा दी गईं। परन्तु सरकारी सदस्यों का बहुमत रक्खा गया। मार्ले मिंटो-सुधार के अनुसार १६०६ ई० में प्रांतीय धारा-सभाओं में सदस्यों की संख्या और बढ़ाई गई। यह निश्चित किया गया कि बड़े प्रांतो में ५० तथा छोटे प्रांतों में ३० सदस्य और बढ़ा दिये जायँ।

गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत रक्खा गया। अभी तक धारा-सभाओं के सदस्यों का चुनाव नहीं होता था। प्रांतों के गवर्नर जिन्हें चाहते नामजद कर देते। माल मिंटो-सुधार में अप्रत्यक्ष निर्वाचन स्वीकार कर लिया गया। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व पहिले पहल जारी किया गया। प्रांतों के गवर्नर इन धारा-सभाओं के सभापति होते थे। कानून बनाने में इनका विशेष प्रभाव पड़ता था। गवर्नर तथा उसकी कार्यकारिणी की सलाह से ही कोई कानून बन सकता था। एक प्रकार से कार्यकारिणी ही कानून बनाने का कार्य करती थी। एक ही सभा कानून बनाने और उसे कार्यान्वित करने का काम बहुत समय तक नहीं कर सकती थी। देश में राष्ट्रीय भावना का प्रचार इतने जोरों से हो रहा था कि जनता पर किये गये इस राजनीतिक कुठाराघात की योजना आगे को नहीं चल सकती थी।

१९१८ ई० में मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में यह बात स्वीकार की गई कि प्रांतीय कौंसिल अपने दिमाग को खाली कर चुकी है। अब उनसे लाभ की आशा रत्ती भर नहीं है। १९१९ ई० में हिन्दोस्तान के लिये एक नया शासन-विधान बनाया गया। प्रांतीय धारा-सभाओं की बनावट तथा उनके कर्तव्यों में महान् परिवर्तन किये गये। सम्पूर्ण बृटिश भारत १७ प्रांतों में बाँटा गया। मद्रास, बम्बई, बंगाल, संयुक्त-प्रांत, पंजाब, ब्रह्मा, बिहार और उड़ीसा, बरार तथा मध्य प्रांत बड़े-बड़े सूबे ठहराये गये। इन सूबों को गवर्नर का सूबा कहा गया। १९१९ के शासन-विधान के अनुसार बर्मा प्रांत गवर्नरों के सूबों में शामिल नहीं किया गया था। लेकिन २ जनवरी सन् १९२३ ई० से वह एक गवर्नर का सूबा मान लिया गया। उपरोक्त ९ गवर्नरों के सूबों के अतिरिक्त बृटिश बिलोचिस्तान, दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा, कुर्ग, मानपुर का परगना, पन्त पिपलौदा, अदन तथा अंडमन और नीकोबार ८ चीफ कमिश्नरों के सूबे ठहराये गये। प्रत्येक गवर्नर के सूबे में एक धारा-सभा (Legislative Council) बनाई गई। प्रांतीय कार्यकारिणी सभा के सभा सदस्य कौंसिल के सदस्य होते थे। गवर्नर को यह अधिकार था कि वह इसमें उपस्थित हो और व्याख्यान दे सके। धारा-सभा के सदस्य स्वयं अपना सभापति चुनते थे परन्तु उसे स्वीकार करने का अधिकार गवर्नर को था। ७० प्रतिशत सदस्य जनता द्वारा चुने हुये होते थे। सरकारी सदस्यों की संख्या २० प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती थी। संयुक्त प्रांत में धारा-सभा के सदस्यों की संख्या १२३ ठहराई गई। इनमें

१०० सदस्य जनता द्वारा चुने हुए होते थे और २३ गवर्नर द्वारा नामजद किये जाते थे। प्रांतीय धारा-सभा की अवधि ३ वर्ष रक्खी गई लेकिन गवर्नर को यह अधिकार था कि वह इसकी अवधि घटा-बढ़ा सके। मताधिकार बढ़ा दिया गया। साम्प्रदायिक निर्वाचन भी पहले से अधिक कर दिया गया था। मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में साम्प्रदायिक निर्वाचन दूषित ठहराया गया था। उनका कहना था कि इससे राष्ट्रीयता में बाधा पड़ेगी और विभिन्न सम्प्रदाय एक दूसरे को अपना शत्रु समझने लगेंगे। किन्तु रिपोर्ट में पंजाब प्रांत में सिक्खों के लिये अलग निर्वाचन दिया गया था।

१६१६ के शासन-विधान के अनुसार सभी प्रांतों में निर्वाचन क्षेत्र हिन्दू और मुसलमान दो भागों में बाँट दिये गये। कुछ वर्गों के लिये धारा-सभाओं में स्थान सुरक्षित कर दिये गये। अछूतों को यह अधिकार दिया गया कि वे मुसलमान निर्वाचन क्षेत्र के अतिरिक्त दूसरे क्षेत्र में वोट दे सकते हैं। उनके अधिकारों की रक्षा के लिये गवर्नर उन्हें नामजद भी कर सकता था। मजदूरों को नामजद करने का विधान बनाया गया। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य वर्गों तथा संस्थाओं को पृथक् निर्वाचन के अधिकार दिये गये। प्रांतीय धारा-सभाओं के अधिकार पहले से अधिक कर दिये। अपने प्रांत की रक्षा तथा उसमें शांति रखने के लिये उन्हें बहुत से अधिकार प्रदान किये गये। परंतु चन्द विषयों की एक ऐसी सूची बनाई गई जिनमें गवर्नर-जनरल की आज्ञा के बिना वे हाथ नहीं डाल सकते थे। इनके विषय में कानून बनाने का उन्हें कोई अधिकार न था। प्रांतीय धारा-सभायें जो बिल पास करतीं उसकी स्वीकृति गवर्नर तथा गवर्नर-जनरल दोनों से लेनी पड़ती थी। जो बिल धर्म, भूमिकर आदि से सम्बन्ध रखते थे उन्हें गवर्नर-जनरल को विचार करने के लिये रोका जा सकता था। गवर्नर को किसी कानून के रद्द करने का पूरा अधिकार था। यदि धारा-सभा कानून को बनाने से इनकार कर देती तो वह अपने अधिकार से उसे पास कर सकता था। इस प्रकार के कानूनों तथा धारा-सभा द्वारा पास किये कानूनों का प्रभाव एक सा होता था। सम्पूर्ण प्रांतीय व्यय मतदायक और मतनिषेध (Votable and Non-votable) दो भागों में बाँट दिया गया था। ७५ प्रतिशत व्यय पर प्रान्तीय धारा-सभा को मत देने का अधिकार न था। प्रान्त की रक्षा और शान्ति आदि के लिये गवर्नर मनमाना धन व्यय कर सकता था। इससे यह स्पष्ट है कि गवर्नरों के प्रान्तों में धारा-सभायें तो थीं लेकिन

उनके अधिकार नहीं के बराबर थे। उन्हें गवर्नर की इच्छानुसार चलना पड़ता था।

चीफ कमिश्नरों के आठों सूबों में केवल कुर्ग में धारा-सभा बनाई गयी थी। इसमें कुल २० सदस्य रक्खे गये थे। १५ सदस्य जनता द्वारा चुने गये थे और बाकी ५ को चीफ कमिश्नरों ने नामजद किया था। चीफ कमिश्नर गवर्नर-जनरल की मातहती में इन प्रांतों का शासन करते थे। १९१९ ई० के शासन-विधान से इन्हें कोई लाभ नहीं हुआ।

१९३५ के शासन-विधान में प्रान्तीय धारा सभायें

१९३५ के शासन विधान में प्रांतीय धारा-सभाओं में कुछ परिवर्तन किया गया।* कुछ प्रांतों में छोटी बड़ी दो धारा-सभाएँ बनाई गई हैं। मद्रास, बम्बई, पश्चिमी बंगाल, संयुक्त-प्रांत, बिहार, आसाम में दो धारा-सभाएँ हैं। उपरोक्त प्रत्येक प्रांत में— बड़ी धारा-सभा का नाम लेजिस्लेटिव कौंसिल और छोटी का लेजिस्लेटिव-असेम्बली रक्खा गया है। पूर्वी पंजाब, मध्यप्रांत और बरार तथा उड़ीसा में केवल एक-एक धारा-सभा बनाई गई है जिसका नाम लेजिस्लेटिव असेम्बली रक्खा गया है।

१९३५ के पहले प्रांतों में दो सभाएँ नहीं थीं। केवल केन्द्रीय सरकार में दो सभाओं का विधान था। संघशासन-विधान में ६ प्रांतों को छोटी और बड़ी दो धारा-सभाएँ दी गई हैं। १९१९ ई० में मान्टेग्यू और चेम्सफोर्ड ने प्रांतों में दो धारा-सभाओं की योजना पर विचार किया था। उनकी समझ में इसकी कोई आवश्यकता न थी। लेकिन संघ-शासन में इसकी उपयोगिता मान ली गई थी। यह कहा गया था कि संघ-शासन विधान में प्रांतीय धारा-सभाओं के अधिकार बढ़ जाने से एक सभा काफी न होगी। आम जनता के अधिकार बढ़ा दिये गये थे। इसलिये यह आवश्यक था कि एक बड़ी धारा-सभा द्वारा विशेष वर्गों के अधिकार सुरक्षित रक्खे जायँ। यह भी सम्भव है कि बड़ी धारा-सभा के न होने से छोटी सभा जल्दी में कानूनी महत्व को न समझे। जो कुछ

---

*वर्तमान प्रांतीय धारा-सभाएँ १९३५ के शासन-विधान के अनुसार ही बनाई गई हैं! बंगाल और पंजाब के विभाजन के पश्चात् सदस्यों की संख्या में अन्तर किया गया है।

भी हो, शासन-विधान के बनानेवालों ने यह स्वीकार किया है कि बड़ी धारा-सभा के जो जो गुण हैं उन सब को आवश्यकता कुछ बड़े प्रान्तों को है। भारतीय जनता की आवाज प्रान्तों की दो धारा-सभाओं के पक्ष में नहीं थी। लोगों का कहना था कि गवर्नर के विशेषाधिकारों के सामने इसका कोई महत्व नहीं था। सम्भवतः बड़ी धारा-सभा प्रान्तीय स्वराज में रोड़े अटकाने के लिये बनाई गई थी। लार्ड हेलिफेक्स ने इसे निरर्थक साबित किया था। बड़े-बड़े ज़मींदारों तथा सेठ-साहूकारों के हितों की रक्षा के लिये इसका निर्माण किया गया था।

कुछ भारतीय राजनीतिज्ञों का अनुमान है कि बृटिश सरकार को यह भय था कि एक धारा-सभा रहने से काँग्रेस को बहुमत प्राप्त करने का अवसर आसानी से मिल जायेगा। यह भय बहुत कुछ ठीक था। आठ प्रान्तों की छोटी धारा-सभा में काँग्रेस ने जो बहुमत प्राप्त किया था उसे देखते हुए यह बात स्पष्ट हो जाती है। स्वर्गीय सर तेजबहादुर सप्रू ने बृटिश राजनीतिज्ञों का ध्यान इस ओर दिलाया था कि प्रान्तों में दो धारा सभाओं की कोई ज़रूरत नहीं है। पार्लियामेंट के कितने ही सदस्यों ने दो धारा-सभाओं की योजन का विरोध किया था। लार्ड स्ट्रैबोगी (Lord Strabogi) का कहना था कि हिन्दोस्तान की वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए इसे एक ऐसी नीति की जरूरत है जो शंकित और दब्बू न हो। भारतीय राजनीतिज्ञ प्रान्तों की दो धारा-सभाओं वाली नीति के विरुद्ध रहे है परन्तु विधान-परिषद् ने जिसके सभी सदस्य भारतीय हैं प्रान्तों में दो धारा-सभाओं के विधान को स्वीकार कर लिया है †। ऐसा क्यों है यह हमारी समझ में नहीं आता।

लेजिस्लेटिव कौंसिल

ऊपर कहा गया है कि संघ-शासन में केवल ६ प्रान्तों में दो धारा-सभाओं का विधान बनाया गया था। बड़ी धारा-सभा का नाम लेजिस्लेटिव कौंसिल है। इसके सदस्यों की संख्या भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अलग-अलग है :—

---

† कांग्रेस की वर्तमान नीति को देखते हुए यह स्पष्ट है कि वह जिन बातों को बृटिश शासन में बुरा ठहराती रही है उन्हीं को आज वह वर्तने मे अपना गौरव समझती है। प्रान्तों में दो धारा-सभाओं की नीति, ५००) से अधिक का वेतन तथा पुलीसों के अधिकारों की वृद्धि इसके चन्द उदाहरण हैं।

संयुक्तप्रान्त	:—कम से कम ५८ और अधिक से अधिक ६०
बम्बई	:— ,, ,, ,, २६ ,, ,, ,, ,, ३०
मद्रास	:—कम से कम ५४ और अधिक से अधिक ५६
बंगाल	:— ,, ,, ,, ६३ ,, ,, ,, ,, ६५ *
बिहार	:—कम से कम २६ और अधिक से अधिक ३०
आसाम	:—कम से कम २१ और अधिक से अधिक २२

ये सदस्य प्रजा के प्रतिनिधि होते हैं। संघ-शासन-विधान में मताधिकार का क्षेत्र बढ़ा दिया गया था। १९१९ के शासन-विधान में प्रान्तीय धारा-सभाओं के प्रतिनिधियों के लिये वोट देने का अधिकार ८७४४००० व्यक्तियों को दिया गया था, जिनमें ३९८००० स्त्रियाँ थीं। अर्थात् केवल ३ प्रतिशत स्त्रियाँ मताधिकारिणी थीं। सम्पति और शिक्षा की रुकावट लगाकर मताधिकार बहुत थोड़े से लोगों को दिया गया था। साइमन कमीशन ने यह सिफारिस की थी कि मताधिकारियों की संख्या कम से कम १० प्रतिशत रक्खी जाय। पहली गोलमेज सभा का फैसला था कि २५ प्रतिशत लोगों को वोट देने का अधिकार मिलना चाहिये। दूसरी गोलमेज सभा ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की जिसने वर्तमान मताधिकार को निश्चित किया था। १४ प्रतिशत जनता को—२९,०००,००० पुरुष और ६,०००,००० स्त्रियाँ—वोट देने का अधिकार दिया गया है।†

लेजिस्लेटिव कौंसिल में और भी सदस्य भर्ती किये जा सकते थे। गवर्नर को यह अधिकार था कि वह किसी वर्ग विशेष की रक्षा के लिए खासकर स्त्रियों के लिये, कुछ सदस्यों को नामजद कर सके। निम्नलिखित संख्या में वह इन्हें नामजद कर सकता था। ऐसा इसलिये किया गया था कि प्रतिनिधित्व में विषमता उत्पन्न न हो और सब वर्गों के अधिकार बड़ी सभा में सुरक्षित रहें। बड़ी सभा में नामजदगी इस प्रकार हो सकती थी :—

संयुक्तप्रान्त	:—कम से कम ६ और अधिक से अधिक ८
बम्बई	:— ,, ,, ,, ३ ,, ,, ,, ४
मद्रास	:— ,, ,, ,, ८ ,, ,, ,, १०

---

* बंगाल-विभाजन के पश्चात् वहाँ की व्यवस्था बदल गई है।

† राष्ट्रीय सरकार २१ वर्ष से ऊपर आयु के सभी स्त्री पुरुषों को मताधिकार देने की व्यवस्था कर रही है।

बंगाल :—कम से कम ६ और अधिक से अधिक ८
बिहार :— ” ” ” ३ ” ” ” ४
आसाम :— ” ” ” ३ ” ” ” ४

संघ धारा-सभा में बड़ी सभा की तरह प्रांतीय बड़ी धारा-सभा (Legislative Council) कभी बर्खास्त नहीं की जा सकती थी। एक तिहाई सदस्य हर तीसरे साल निकलते रहते। जिन निर्वाचन-क्षेत्रों के सदस्य निकलते उन्हीं में से नये सदस्य चुन लिये जाते। इस प्रकार कौंसिल स्थायी रूप से काम करती रहती। लार्ड सभा की तरह इसके सदस्य स्थायी नहीं होते। इस व्यवस्था को दोषपूर्ण माना गया है। वर्तमान युग में इतनी तेज़ी के साथ लोगों के विचार बदल रहे हैं कि किसी संगठन वा समाज को स्थायी करार देना उचित नहीं है। जनता अपने प्रतिनिधियों में तब तक विश्वास करती है जब तक वे उसके विचार को कार्यान्वित करते हैं। प्रतिनिधियों का चुनाव जल्दी होने से जनता अपनी आवश्यकता को बदल सकती है। आज वह किसी प्रकार के विचार वालों में विश्वास करती है, कल किसी और में विश्वास करेगी। इस अवसर से लाभ उठाने का उसे पूरा मौक़ा मिलना चाहिये। निर्वाचन को भार समझ कर धारा-सभाओं के प्रतिनिधि सदैव के लिये चुन लिये जायँ तो राजनीतिक अधिकारों का महत्व कम हो जाता है। प्रजातंत्रवाद का तात्पर्य है कि जनता अपनी आवश्यकतानुसार सरकारी नीति को बदलती रहे। जब धारा-सभा के प्रतिनिधियों को ९ वर्ष तक कोई निकाल नहीं सकता तो वे नवीन विचारों को ग्रहण न कर अपने पुराने विचारों से जनता के ऊपर शासन करने की कोशिश करेंगे। लेजिस्लेटिव कौंसिल में सदस्यों का कोरम १० रक्खा गया था। बंगाल और बिहार में इसके कुछ सदस्य असेम्बली के प्रतिनिधियों द्वारा चुने जाते हैं।*

* १९४९ ई० में नये शासन विधान के कार्यान्वित होने पर यह सम्पूर्ण व्यवस्था बहुत कुछ बदल जायेगी।

प्रान्तीय लेजिसलेटिव

स्थानों का

प्रान्त	कुल स्थान		साधारण स्थान	मुसलमानी स्थान
१—मद्रास	कम से कम	५४	३५	७
	अधिक से अधिक	५६		
२—बम्बई	कम से कम	२६	२०	५
	अधिक से अधिक	३०		
† ३—बंगाल	कम से कम	६३	१०	१७
	अधिक से अधिक	६५		
४-संयुक्तप्रान्त	कम से कम	५८	३४	१७
	अधिक से अधिक	६०		
५—बिहार	कम से कम	२६	६	४
	अधिक से अधिक	३०		
६—आसाम	कम से कम	२१	६	६
	अधिक से अधिक	२२		

† बंगाल विभाजन के पश्चात् सदस्यों की संख्या में अंतर किया गया है।

कौंसिलें

स्वाका

योरोपियन स्थान	भारतीय ईसाइयों के स्थान	असेम्बली द्वारा भरे जाने वाले स्थान	गवर्नर द्वारा नामजदगी के स्थान
१	३	..	कम से कम ८ अधिक से अधिक १०
१	..	..	कम से कम ३ अधिक से अधिक ४
३	..	२७	कम से कम ६ अधिक से अधिक ८
१	..	..	कम से कम ६ अधिक से अधिक ८
१	..	१२	कम से कम ३ अधिक से अधिक ४
२	..	..	कम से कम ३ अधिक से अधिक ४

प्रान्तीय लेजिसलेटिव
स्थानों का

प्रान्त	कुल स्थान	कुल साधारण स्थान	हरिजनों के स्थान	पिछड़े हुये विभागों तथा जातियों के स्थान	सिक्खों के स्थान	मुसलमानों के स्थान
१—मद्रास	२१५	१४६	३०	१	...	२८
२—बम्बई	१७५	११४	१५	१	...	२९
३—बंगाल*	२५०	७८	३०	...	...	११७
४—संयुक्तप्रान्त	२२८	१४०	२०	...	...	६४
५—पंजाब*	१७५	४२	८	...	३१	८४
६—बिहार	१५२	८६	१५	७	...	३९
७—मध्यप्रान्त व बरार	११२	८४	२०	१	...	१४
८—आसाम	१०८	४७	७	९	...	३४
९—उड़ीसा	६०	४४	६	५	...	४
	...	...	...	...	...	...
	...	...	...	...	...	...

* दोनों प्रान्तों के विभाजन के पश्चात् सदस्यों की संख्या में काफी

असेम्बलियाँ

खाका

ऐंग्लो-इंडियन ईसाइयों के स्थान	योरोपियन के स्थान	भारतीय ईसाइयों के स्थान	वाणिज्य तथा व्यवसाय सम्बन्धी स्थान	जमींदारों के स्थान	विश्वविद्यालयों के स्थान	मजदूरों के स्थान	महिलाओं के स्थान				
							साधारण	सिक्ख	मुसलमान	ऐंग्लो-इंडियन ईसाई	भारतीय ईसाई
२	३	८	६	५	१	६	६	...	१	...	१
२	३	३	७	२	१	७	५	...	१	...	...
३	११	२	१९	५	२	८	७	...	२	१	...
१	२	२	३	६	१	३	४	...	२		...
१	१	२	१	५	१	३	१	१	२	...	...
१	२	१	४	४	१	३	३	...	२	...	...
१	१	...	२	३	१	२	३	...	१	...	...
...	१	१	११	...	...	४	१	...	...	...	...
...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...
...	...	१	१	२	...	१	२	...	...	...	...
...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...

कमी हो गई है।

लेजिसलेटिव असेम्बली

असेम्बली के सदस्य जनता के प्रतिनिधि हैं। इनमें कोई सदस्य नामजद नहीं किया गया है और सभी प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने गये हैं। निर्वाचन क्षेत्र साम्प्रदायिक आधार पर बनाये गये हैं। एक साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र में किसी दूसरे सम्प्रदाय वालों को वोट देने का अधिकार नहीं रहा है। प्रत्येक सम्प्रदाय अपना अलग-अलग प्रतिनिधि चुनते रहे हैं। स्त्रियों को अलग सम्प्रदाय मान लिया गया था। ४ अगस्त सन् १६३२ ई० को बृटिश सरकार ने साम्प्रदायिक निर्वाचन की जो घोषणा की थी उसमें पूना पैक्ट में कुछ परिवर्तन किया गया। उसी आधार पर मौजूदा निर्वाचन विधान बनाया गया है। पूना पैक्ट में अछूतों को भी धारा-सभाओं में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया। उनके लिये धारा-सभाओं में कुछ स्थान सुरक्षित कर दिये गये थे। यह काम इतना कुशलता-पूर्वक किया गया था कि हिन्दू समाज में कोई कमजोरी नहीं आने पाई। कई प्रान्तों में स्त्रियों को धारा-सभाओं में स्थान दिया गया। बङ्गाल में खास तौर से एक अँगरेजी ईसाई महिला के लिये, पंजाब में एक सिक्ख स्त्री के लिये और मद्रास में एक ईसाई स्त्री के लिए असेम्बली में स्थान सुरक्षित रक्खे गये थे। असेम्बली का कोरम कुल सदस्यों की संख्या का ⅙ रक्खा गया है।

वर्तमान लेजिसलेटिव असेम्बली की अवधि ५ वर्ष रक्खी गई है। गवर्नर चाहे तो इसकी कार्रवाइयों को अनिश्चित काल तक स्थगित अथवा ५ वर्ष पहले इसे बर्खास्त कर सकता है। लेकिन किसी भी दशा में वह इसकी आयु बढ़ा नहीं सकता। असेम्बली का सभापति स्पीकर कहलाता है। यह असेम्बली के सदस्यों द्वारा चुना जाता है। इसकी अनुपस्थिति में डिप्टी स्पीकर सभापति का काम करता है। स्पीकर का पद स्थायी है। यदि किसी कारणवश असेम्बली ५ वर्ष से पहले बर्खास्त कर दी जाती है तो वह अपने पद पर तब तक बना रहेगा जब तक दूसरी नई असेम्बली की बैठक में दूसरा स्पीकर न चुन लिया जाय। धारा-सभा इनका वेतन निश्चित करती है। प्रान्तीय मन्त्रियों को ५००० रुपया महीना वेतन देने का आम रवाज रहा है। लगभग यही वेतन स्पीकर को भी दिया जाता था। काँग्रेस मन्त्रियों ने केवल ५०० रुपया महीना वेतन लेना स्वीकार किया था और स्पीकर भी इतना ही वेतन लेते थे। इसके अतिरिक्त उन्हें मुफ्त मकान और एक-एक मोटर दिये गये थे। इस बार यह वेतन १५०० रुपया कर दिया गया है।

प्रत्येक देश में धारा-सभाओं का सदस्य बनने के लिये कुछ शर्तें लगाई गई हैं। जो व्यक्ति इन शर्तों को पूरा कर सकते हैं वे ही इनके सदस्य बन सकते हैं। यदि कोई धोखा देकर किसी धारा-सभा का सदस्य बन जाता है तो उसे एक बहुत बड़ी रकम जुर्माने के रूप में देनी पड़ती है। जो लोग शर्तों को पूरा करते हैं और धारा-सभाओं के लिये उम्मीदवार खड़े होते हैं उन्हें कुछ रुपया बतौर जमानत के सरकारी खजाने में जमा करना पड़ता है। यदि एक निश्चित फीसदी से कम मतदाता उन्हें वोट देते हैं तो उनका रुपया सरकार जब्त कर लेती है। ऐसा इसलिये किया गया है कि वे ही व्यक्ति उम्मीदवार खड़े हों जिनका जनता में विश्वास और प्रभाव हो। उम्मीदवारों को यह खास हिदायत कर दी जाती है कि वे एक निश्चित रकम से अधिक प्रचार कार्य में खर्च नहीं कर सकते। चुनाव हो जाने के बाद सफल सदस्यों को अपने चुनाव का पूरा खर्च लिखकर सरकार को देना पड़ता है। यदि किसी सदस्य का खर्च अधिक है तो वह अपने पद से हटा दिया जाता है।

प्रान्तीय धारा सभाओं में प्रतिनिधियों की योग्यतायें

सभी व्यक्ति धारा-साभाओं के सदस्य नहीं बन सकते। उनके लिये निम्न-लिखित शर्तें लगाई गई हैं:—

१—प्रत्येक सदस्य भारतीय प्रजा अथवा देशी नरेश हो। रियासतों की प्रजा भी धारा-सभाओं में शामिल की जा सकती है, परन्तु इसकी व्यवस्था सरकार को विशेष रूप से करनी पड़ती है।*

२—३० वर्ष से कम आयु का कोई व्यक्ति लेजिस्लेटिव कौंसिल का सदस्य नहीं हो सकता। इसी तरह २५ वर्ष से कम आयु का लेजिस्लेटिव असेम्बली का सदस्य नहीं बन सकता।

३—सदस्य को अपने निर्वाचन-क्षेत्र में मताधिकारी होना आवश्यक है।

४—कोई व्यक्ति प्रान्तीय और संघ दोनों धारा-सभाओं का सदस्य नहीं रह सकता। प्रान्तीय धारा-सभाओं में भी दोनों का सदस्य रहना अवैध है।

५—यदि धारा-सभा का कोई सदस्य बिना किसी सूचना के ६० दिन

---

*रियासतों के भविष्य को देखते हुये यह व्यवस्था बदल जायेगी।

तक लगातार इसकी बैठक से गैरहाजिर रहे तो वह अपने स्थान से हटा दिया जाता है।

६—धारा-सभा का सदस्य कोई सरकारी नौकरी नहीं कर सकता।

७—यदि कोई गैर व्यक्ति धारा-सभा की बैठक में हिस्सा लेता है तो पता चलने पर उसे ५०० रुपया रोज के हिसाब से जुर्मा ा किया जाता है। यह रकम प्रान्तीय सरकार की आमदनी समझी जाती है।

८—वैतनिक सरकारी कर्मचारी सरकारी आज्ञा के बिना धारा-सभाओं के लिये उम्मीदवार नहीं हो सकते।

९—पागल और दिवालिये धारा-सभाओं के सदस्य नहीं बन सकते।

१०—जो फौजदारी के जुर्म में सजा काट चुका है अथवा जिसे आजन्म काले पानी की सजा दी गई है, वह धारा-सभा का सदस्य नहीं बन सकता।

११—प्रान्तीय स्वराज की स्थापना के पहले जिन्हें दो वर्ष की जेल की सजा दी गई है अथवा जो काले पानी की सजा भोग चुके हैं वे अपनी रिहाई के ५ वर्ष बाद तक प्रान्तीय धारा-सभाओं के सदस्य नहीं बन सकते।

लेजिसलेटिव कौंसिल के सदस्यों के लिए वोट देने का अधिकारी कौन है?

जैसे धारा-सभाओं के लिये सभी व्यक्ति उम्मीदवार नहीं हो सकते, वैसे ही सभी नागरिकों को वोट देने का अधिकार नहीं है। केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा-सभाओं में सदस्यों के चुनाव में वोट देने की शर्तें भिन्न भिन्न हैं। प्रान्तीय धारा-सभाओं में भी छोटी और बड़ी सभा के लिये वोट देने वालों में भेद किया गया है। जो व्यक्ति कौंसिल के सदस्यों को वोट देने के अधिकारी हैं उनकी योग्यता सभी प्रान्तों में एक-सी नहीं है। संयुक्तप्रान्त में उनकी योग्यता निम्नलिखित रही है:—

निवास सम्बन्धी योग्यतायें

१—मतदाता को अपने निर्वाचनक्षेत्र में निवास करना आवश्यक है। या तो वह निश्चित रूप से वहाँ रहता हो अथवा कभी-कभी निवास करता हो। वहाँ उसका निजी मकान होना जरूरी है।

२—साधारण योग्यतायें :—

अ—जो पिछले वर्ष ४,००० रुपये या इससे अधिक आय पर सरकार को टैक्स दिये हो।

ब—जिसे राय बहादुर, खाँ बहादुर, दीवान बहादुर, सरदार बहादुर या इसी तरह का कोई और खिताब मिला हो।†

स—जो २५० रुपया मासिक सरकारी पेंशन पाता हो।

द—जो भारत को किसी धारा-सभा के सदस्य हों अथवा रहे हों। जो किसी इक्ज़क्यूटिव कौंसिल के सदस्य अथवा मन्त्री हों। जो किसी विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर, चांसलर, फेलो, प्रो० वाइस चांसलर, कोर्ट या सीनेट के सदस्य हों अथवा रहे हों। जो संघ न्यायालय, हाईकोर्ट, चीफ़ कोर्ट अथवा जुडीशियल कमिश्नर की कोर्ट के न्यायाधीश हों या रहे हों। जो कलकत्ता, बम्बई और मद्रास कारपोरेशन के मेयर और शेरिफ़ हों या रहे हों। जो संयुक्त प्रान्त को किसी म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के गैर सरकारी सभापति हों या रहे हों। जो किसी सेन्ट्रल कोआपरेटिव सोसाइटी के गैर सरकारी सभापति हों या रहे हों।

य—जो १००० रुपया या इससे अधिक सालाना मालगुजारी देते हों।

र—जो १,००० रुपया सालाना तक की ज़मीन माफी में जोतते हों।

ल—जो कम से कम १,५०० रुपया सालाना तक के काश्तकार हों।

स्त्रियों की विशेष योग्यतायें

३—वोट देने के लिए स्त्रियों को कुछ विशेष सुविधायें दी गई हैं। जिन स्त्रियों के पतियों में निम्नलिखित योग्यतायें पाई जाती हैं वे वोट दे सकती हैं :—

अ—जो गत वर्ष १०,००० रुपये या इससे अधिक आय पर इनकम टैक्स दिये हों।

ब—जो ५,००० रुपया सालाना सरकारी मालगुजारी देते हों।

स—जो ५,००० रुपये सालाना मालगुजारी की जमीन माफ़ी में रखते हों।

द—जिसे राय बहादुर, खाँ बहादुर, सरदार बहादुर, दीवान बहादुर या इसी तरह की कोई पदवी मिली हो।

---

† स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार ने सरकारी उपाधि देने की प्रथा को बन्द कर दिया है।

य—जो २५० रुपया या इससे अधिक सरकारी पेंशन पाता हो।

हरिजनों की विशेष योग्यतायें

४—हरिजनों के लिए भी कुछ विशेष योग्यतायें निश्चित की गई हैं, जो निम्नलिखित हैं :—

अ—जिसने गत वर्ष २,००० रुपये या इससे अधिक आमदनी पर इन्कम टैक्स दिया हो।

ब—जो २,००० रुपये सालाना मालगुजारी की ज़मीन माफी में रखता ह ।

स—जो ५०० रुपये या इससे अधिक का काश्तकार हो।

द—जिसे गवर्नर की ओर से कोई उपाधि * मिली हो।

लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्यों के लिए वोट देने का अधिकारी कौन है?

प्रान्तीय कौंसिल की तरह असेम्बली के निर्वाचकों की योग्यतायें विभिन्न प्रान्तों में अलग-अलग ठहराई गई हैं। निर्वाचन के पहिले एक सूची बनाई जाती है। जिसका नाम इस सूची में रहता है वे ही वोट दे सकते हैं। सूची में उन्हीं का नाम शरीक किया जाता है जो चन्द शर्तों को पूरा कर सकते हैं। वोटरों को सूची में शामिल होने के लिए ६ प्रकार की शर्तें बनाई गई हैं। इनमें से किसी एक शर्त को अवश्य पूरा करना पड़ता है। यदि ऐसा न हो तो अयोग्य व्यक्ति निर्वाचित होंगे। शर्तों की मात्रा उतनी ही रक्खी गई है जिससे निर्वाचक भले और बुरे को पहचान सकें। लगभग सभी प्रान्तों में ये शर्तें किसी न किसी रूप में लगाई गई हैं। ये शर्तें निम्नलिखित हैं :—

१—निवास सम्बन्धी योग्यता।

२—टैक्स सम्बन्धी योग्यता।

३—सम्पत्ति सम्बन्धी योग्यता।

४—शिक्षा सम्बन्धी योग्यता।

५—सरकारी नौकरी सम्बन्धी योग्यता।

६—स्त्रियों की विशेष योग्यतायें।

संयुक्तप्रांत में इन योग्यताओं का माप क्या है इसका वर्णन नीचे किया गया है :—

अ—प्रत्येक निर्वाचक के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने

---

* उपाधियाँ देना अब गवर्नरों तथा भारतीय सरकार ने रोक दिया है।

निर्वाचन-क्षेत्र में निवास करता हो। अर्थात् वहाँ उसका निजी घर हो जिसमें वह स्थायी रूप से रहता हो।

ब—अथवा जो म्युनिसिपैलिटी को कम से कम १५० रुपया सालाना आमदनी पर टैक्स देता हो।

स—अथवा जो सरकार को इन्कम टैक्स देता हो। यानी उनकी आमदनी २,५०० रुपया सालाना से ऊपर हो

द—अथवा जो २४ रुपया सालाना किराये के मकान में रहता हो या ऐसा उसका निजी मकान हो।

य—अथवा जो कम से कम ५ रुपया का सरकारी मालगुजार या १० रुपये का काश्तकार हो।

र—अथवा जो कम से कम दर्जा ४ या इसी के बराबर कोई दूसरी परीक्षा पास हो।

ल—अथवा जो स्थायी (Regular) सेना से अवकाश गृहीत हो, या पेंशन पाते हों, या बिना कमीशन के अफसर या सिपाही हों।

ऊपर कही गई ७ योग्यताओं में कम से कम एक की पूर्ति किये बिना कोई असेम्बली के लिये निर्वाचक नहीं बन सकता। स्त्रियों को कुछ खास सुविधायें दी गई हैं। यदि ऊपर लिखी योग्यताओं को कोई स्त्री पूरा करती है तो वह निर्वाचक बन सकती है। इनके अतिरिक्त कुछ और भी योग्यतायें उनकी सुविधा के लिये निश्चित की गई हैं जो निम्नलिखित हैं :—

अ—जो स्थायी (Regular) सेना के अफसर या बिना कमीशन के अफसर या सैनिक की विधवायें अथवा मातायें हों।

ब—जो निर्धारित सीमा तक साक्षर हों।

स—जो ऐसे व्यक्तियों की पत्नियाँ हों जिनमें निम्नलिखित योग्यतायें :—

१— जो अपने निर्वाचन-क्षेत्र में कम से कम ३६ रुपया सालाना मकान किराया देता हो या ऐसा एक निजी मकान रखता हो।

२—जो २०० रुपये सालाना आमदनी पर म्युनिसिपैलिटी को टैक्स या सरकारी इन्कम टैक्स देता हो।

३—जो कम से कम २५ रुपया सालाना सरकारी मालगुजारी देता हो।

४—जो कम से कम ५० रुपये का काश्तकार हो।

५—जो स्थायी सेना से अवकाश प्राप्त किये हो या पेंशन पाता हो या बिना कमीशन का अफसर या सिपाही हो।

प्रान्तीय धारा-सभाओं के सभापति

ऊपर कहा गया है कि लेजिस्लेटिव कौंसिल की कोई निश्चित अवधि नहीं है। यह सभा स्थायी रूप से कार्य करता है। असेम्बली की अवधि ५ वर्ष रक्खी गई है। यदि गवर्नर चाहे तो इससे पहले ही बर्खास्त कर सकता है। दोनों धारा-सभाओं की सालाना बैठक आवश्यक है। प्रत्येक धारा सभा की बैठक ६ महीने से अधिक के लिये स्थगित नहीं की जा सकती। गवर्नर जब चाहे दोनों धारा-सभाओं में व्याख्यान दे सकता है। कौंसिल का सभापति प्रेसीडेन्ट कहलाता है। इसकी अनुपस्थिति में सहायक-प्रेसीडेन्ट सभापति का आसन ग्रहण करता है। असेम्बली का सभापति स्पीकर कहलाता है। इसकी अनुपस्थिति में सहायक स्पीकर सभापति का आसन ग्रहण करता है। ये चारों पदाधिकारी क्रमशः अपनी अपनी धारा-सभा के सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। जब कभी प्रेसीडेंट का स्थान खाली होता है तो कौंसिल के सदस्य अपने में से किसी को प्रेसीडन्ट चुन लेते हैं। स्पीकर तथा सहायक स्पीकर अपने पद पर तब तक कार्य कर सकते हैं जब तक वे असेम्बली के सदस्य हैं। वे किसी भी समय अपने पदों से इस्तीफा दे सकते हैं। इसकी सूचना गवर्नर को देनी पड़ती है। यदि असेम्बली के सदस्य स्पीकर से संतुष्ट नहीं हैं, तो वे बहुमत से इसे हटाकर इसकी जगह दूसरा स्पीकर चुन लेते हैं। असेम्बली बर्खास्त होने पर भी स्पीकर अपने पद पर बना रहता है। वह अपने पद पर तब तक आरूढ़ रहता है जब तक नई असेम्बली की पहली बैठक न हो जाय। स्पीकर और प्रसीडन्ट दोनों पदाधिकारियों को वेतन दिया जाता है। इनका वेतन मन्त्रियों के बराबर होता है। प्रान्तीय धारा-सभा इसे निश्चित करती है। स्पीकर के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने पद पर आते ही किसी पार्टी से सम्बन्ध न रक्खे। उसे निष्पक्ष भाव से कार्य करना पड़ता है।

प्रान्तीय धारा-सभाओं के अधिकार और कर्त्तव्य

संघ-शासन विधान में सभी विषय ३ कोटि में बाँट दिये गये थे। कुछ विषयों में कानून बनाने का अधिकार केवल संघ धारा-सभा को था। प्रान्तीय धारा-सभाएँ उनमें हाथ नहीं डाल सकती थीं। कुछ विषय प्रान्तीय सरकारों की मातहती में दिये गये थे। उनसे सम्बन्ध रखने वाले कानून प्रान्तीय धारा-सभाओं

में बनते थे। तीसरी कोटि में वे विषय थे जिन पर दोनों सरकारें अपना विचार प्रकट करतीं थी। दोनों धारा-सभायें इनके लिए कानून बना सकती थी। संघ सरकार जब चाहती प्रान्तीय धारा-सभाओं की कार्रवाइयों में दखल दे सकती थी। जब कभी संघ और प्रान्तीय विधानों में कोई मतभेद उत्पन्न होता तो संघ-धारा-सभा के कानून को मानना पड़ता। प्रान्तों के कानून बनाने का अधिकार प्रान्तीय धारा-सभाओं को रहा है। लेकिन आवश्यकता पड़ने पर संघ-धारा-सभा भी इनके लिये कानून बना सकती थी। साधारण परिस्थिति में वह प्रान्तीय धारा-सभाओं की कार्रवाइयों में हाथ नहीं डालती थी परन्तु गवर्नर-जनरल को किसी अशान्ति या कुव्यवस्था का भय होता तो वह संघ धारा-सभा को प्रान्तों के लिए कानून बनाने की आज्ञा दे सकता था।

भारतीय स्वाधीनता के पूर्व प्रान्तीय धारा-सभायें अनेक बन्धनों से बँधी हुई थीं। उन्हें वह स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी जो स्विटज़रलैण्ड के कैन्टन्स तथा संयुक्तराष्ट्र अमेरिका की रियासतों को प्राप्त है। गवर्नर के विशेष अधिकारों के सामने उनकी एक नहीं चलती थी। जो कुछ भी सीमित क्षेत्र उन्हें कानून बनाने के लिए दिये गये थे उनमें भी गवर्नर को दखल देने का अधिकार था। कुछ मामलों में प्रान्तीय धारा-सभाओं को विचार करने की मुमानियत थी। कोई भी प्रान्तीय धारा-सभा फेडरल कोर्ट अथवा हाईकोर्ट के जज के चरित्र पर वादविवाद नहीं कर सकती थी। यदि कोई बिल प्रान्तीय धारा-सभा में पेश होता और उस पर विचार जारी रहता तो गवर्नर अपने अधिकार से उस वादविवाद को रोक सकता था। धारा-सभा के सदस्यों को विवश होकर सारी कार्रवाई उसी जगह रोक देनी पड़ती। गवर्नर के विशेष अधिकारों पर विचार करने का अधिकार प्रान्तीय धारा-सभाओं को प्राप्त नहीं था। पार्लियामेंट द्वारा पास किये गये कानून पर तथा गवर्नर-जनरल के कानूनों पर कोई भी प्रांतीय धारा-सभा गवर्नर-जनरल की आज्ञा के बिना विचार नहीं कर सकती थी। गवर्नर-जनरल द्वारा जारी किये गये फरमानों (Ordinances) पर प्रान्तीय धारा-सभाओं को विचार करने का अधिकार नहीं था। इसी तरह गवर्नर के फरमान भी उनके हाथ से बाहर रक्खे गये थे। पुलीस सम्बन्धी किसी कानून को बदलने का अधिकार भी उन्हें प्राप्त नहीं था। गवर्नर की अनुमति के बिना प्रान्तीय धारा-सभाओं में किसी नये कर लगाने की चर्चा नहीं उठ सकती थी। यदि कोई नवीन कर-संबंधी बिल पेश करना होता तो पहले गवर्नर की आज्ञा लेनी पड़ती

थी। प्रांतीय सरकार को कर्ज लेने का अधिकार तब तक नहीं था जब तक गवर्नर इसकी आज्ञा न देता। आमदनी और खर्च सम्बन्धी सभी बिल गवर्नर की अनुमति से प्रान्तीय धारा-सभाअ में पेश किये जाते थे।

जब कोई बिल दोनों प्रांतीय धारा-सभाओं द्वारा पास हो जाता था तो इसका अन्तिम निर्णय गवर्नर के हाथ में रहता था। वह बिल पर दस्तखत करने से इनकार कर सकता था। ऐसी हालत में वह नामंजूर समझा जाता और धारा-सभाओं का परिश्रम व्यर्थ जाता था। किसी बिल को वह इस बात के लिए अपने पास रोक सकता था कि उस पर गवर्नर-जनरल की राय जरूरी थी। पार्लियामेंट जब चाहती प्रान्तों के लिए कानून बना सकती थी या किसी प्रांतीय कानून को हटा सकती थी। प्रान्तीय धारा-सभाओं को संघ धारा-सभा की तरह कोई ऐसा कानून बनाने का अधिकार नहीं था जिसका प्रभाव सम्राट, पार्लियामेंट अथवा गृह सरकार के किसी उच्च पदाधिकारी पर पड़ता हो। फौज, सेना, जहाजी बेड़ा, वैदेशिक विभाग आदि से सम्बन्ध रखने वाले कानून प्रान्तीय धारा-सभाओं में नहीं बन सकते थे। प्रांतीय धारा-सभा ऐसा कानून पास नहीं कर सकती थी जिससे अंग्रेजी तिजारत को धक्का लगे। इससे स्पष्ट है कि प्रांतीय धारा-सभाओं के अधिकार बहुत ही संकुचित थे। 'प्रांतीय स्वराज्य' नामक अध्याय में इस विषय पर प्रकाश डाला गया है कि जनता को कहाँ तक अपने लिए कानून बनाने का अधिकार है।

प्रान्तीय धारा-सभायें अपनी कार्य-पद्धति स्वयं बनाती रही हैं। जब कभी गवर्नर के निजी अधिकारों से सम्बन्ध रखने वाले विषयों पर विचार करने की आवश्यकता होती तो गवर्नर स्वयं स्पीकर की सलाह से इसकी कार्य-पद्धति का निर्माण करता था। प्रान्तीय धारा-सभायें किसी देशी रियासत के मसले पर तब तक विचार नहीं कर सकती थीं जब तक गवर्नर की राय में इसकी आवश्यकता न होती। भारत-सरकार तथा गृह-सरकार के सम्बन्ध अथवा किसी देशी राजा के चरित्र के विषय में ये विचार नहीं कर सकती थीं। प्रान्तों के जो विभाग पिछड़े हुये (Excluded or Partially Excluded areas) करार दिये गये थे उन पर एकमात्र अधिकार गवर्नर का था। प्रांतीय धारा-सभाओं द्वारा पास किये गये कानून इन क्षेत्रों में तभी लागू होते थे जब वह इसकी आवश्यकता समझता था। प्रान्तीय धारा-सभाओं की कार्य-पद्धति को कोई कचहरी

दोषपूर्ण नहीं ठहरा सकती थी। इसके सदस्यों को १९३७ ई० तक वेतन न देकर रोज़ाना के हिसाब से भत्ता दिया जाता था। धारा-सभा स्वयं इसे निश्चित करती थी। धारा-सभा के स्थान तक जाने का रेल का किराया भी सदस्यों को दिया जाता था। कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलों ने भत्ते की रकम घटा कर प्रत्येक सदस्य को २०० रुपया मासिक वेतन देना निश्चित किया है। नियम की पाबन्दी करते हुये प्रान्तीय धारा-सभाओं में प्रत्येक सदस्य को बोलने की पूरी इजाज़त दी गई है। इसके लिये उन पर कोई कानूनी कार्रवाई नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त सदस्यों को और भी थोड़ी बहुत सुविधायें दी गई हैं।

प्रान्तीय धारा सभा की कार्रवाई

प्रान्तीय धारा-सभा की सभी कार्रवाई अँग्रेज़ी भाषा में होती रही है परन्तु यदि कोई सदस्य चाहता तो अपनी मातृ-भाषा में अपना विचार प्रकट कर सकता था। आर्थिक बिल को छोड़कर कोई बिल छोटी या बड़ी धारा-सभा में पेश किया जा सकता था। जब तक कोई बिल दोनों धारा-सभाओं द्वारा पास नहीं हो जाता तब तक वह पास नहीं समझा जाता था। यदि कोई बिल किसी धारा-सभा में पेश है और उस पर वाद-विवाद हो रहे हैं; परन्तु किसी कारणवश बीच में ही वह सभा बर्खास्त कर दी जाती है तो वह बिल खतम नहीं समझा जाता था। जब कभी इस धारा-सभा की बैठक होती तो इस पर विचार किया जाता था। मान लीजिये कोई बिल लेजिस्लेटिव कौंसिल में पड़ा हुआ है और अभी तक वह लेजिस्लेटिव असेम्बली में पेश नहीं है, लेकिन इसी बीच में असेम्बली बर्खास्त हो जाती है, तो वह बिल वहीं खतम नहीं हो सकता। जब कभी असेम्बली की बैठक होती तो उस बिल पर विचार किया जाता। यदि कोई बिल प्रान्तीय असेम्बली में पेश रहता या यहाँ से पास होकर प्रांतीय कौंसिल में भेज दिया गया होता परन्तु इसी बीच में असेम्बली बर्खास्त कर दी जाती तो वह बिल उसी जगह खतम हो जाता था। यदि कोई बिल गवर्नर के विशेष अधिकारों से सम्बन्ध रखता तो गवर्नर दोनों प्रान्तीय धारा-सभाओं की सम्मिलित बैठक बुलाता था। बहुमत का निर्णय मान्य समझा जाता था। धारा-सभा द्वारा पास किये गये कानून को गवर्नर फिर उसे विचारार्थ धारा-सभा में भेज सकता था। धारा-सभा को उस पर विचार करना पड़ता था। गवर्नर-जनरल को यह अधिकार था कि वह गवर्नर को इस बात की आज्ञा दे कि अमुक

बिल प्रान्तीय धारा-सभा में पुनः विचार करने के लिए वापिस कर दिया जाय। यदि बिल धारा-सभा द्वारा फिर उसी रूप में पास कर दिया जाता तो वह गवर्नर-जनरल के पास विचार करने के लिए भेज दिया जाता था। वह उसे सम्राट् की अनुमति के लिए भेज देता था। इन सीढ़ियों से गुजरने में बिल को वर्षों बीत जाते थे। प्रांतीय धारा-सभाओं द्वारा पास होने पर यदि बिल गवर्नर-जनरल के हाथों से बच गया तब भी सम्राट् उसे नामंजूर कर सकता था। परन्तु गवर्नर या गवर्नर-जनरल की मंजूरी से १२ महीने के अन्दर सम्राट् को अपना निर्णय देना पड़ता था।

आर्थिक बिल केवल लेजिस्लेटिव असेम्बली में पेश किये जाते थे। प्रतिवर्ष प्रांतीय धारा-सभा अथवा सभाओं के सामने अगले वर्ष के आय-व्यय का ब्यौरा (Budget) पेश किया जाता था। असेम्बली के सदस्यों को अधिकार था कि वे इसको हर एक मद पर विचार करें। परन्तु ब्यौरे में कुछ ऐसी भी मदें शामिल रहती थीं जिन पर उन्हें अपना मत देने का अधिकार नहीं था। वे इन्हें घटा-बढ़ा नहीं सकते थे। वे मदें निम्नलिखित हैं :—

१—गवर्नर का वेतन तथा इसके आफिस का ख़र्च।

२—कर्ज़ का सूद, जिसे प्रत्येक प्रांतीय सरकार को देना आवश्यक था।

३—मन्त्रियों तथा एडवोकेट जनरल का वेतन और इनका भत्ता।

४—हाईकोर्ट के जजों का वेतन और इनका भत्ता।

५—पिछड़े हुये विभागों का खर्च।

६—किसी न्यायालय के निर्णय के अनुसार दी जाने वाली रक़म।

७—कोई और ख़र्च जो शासन-विधान और प्रांतीय धारा-सभा द्वारा घोषित किया गया हो।

ऊपर की सात मदों पर प्रांतीय धारा-सभायें (Legislative Assemblies) विचार कर सकती थीं, लेकिन इन पर न वे अपना मत प्रकट कर सकती थीं और न वोट दे सकतीं थीं। बाकी आमदनी असेम्बली की इच्छानुसार ख़र्च की जाती थी। यदि ये सभायें किसी खर्च को घटा-बढ़ा देतीं तो उसे नामंजूर करने का अधिकार गवर्नर को था। प्रांतीय धारा-सभाओं में कोई मतभेद उत्पन्न हो जाता तो वह केन्द्रीय धारा-सभाओं की तरह दूर किया जाता था।

भविष्य की कार्य पद्धति

विधान परिषद द्वारा जो शासन-विधान तैयार किया जारहा है उसमें धारा-सभाओं की कार्य-पद्धति क्या होगी और उनके अधिकारों की सीमा कितनी होगी—यह भविष्य का विषय है। वर्तमान समय परिवर्तन की गोद में है और शासन सम्बन्धी कार्यवाहियों को सरकार अपनी सुविधानुसार चला रही है। परंतु भविष्य में कोई निश्चित कार्य-प्रणाली अपनानी होगी। भूतकाल तथा वर्तमान की पद्धतियों में अनेक ऐसी बातें हैं जिन्हें अपनाना कोई बुरा न होगा। अधिकार-क्षेत्र चाहे जितना विस्तृत कर दिया जाय, परंतु कार्य पद्धति की मूल बातें एक-सी होती हैं। जब हम शासन-विधान के निर्माण में विदेशों की अनेक बातें अपना रहे हैं तो कार्य-पद्धति में भी, इसका आश्रय लेना होगा।

——

अध्याय १०

प्रान्तीय स्वराज्य

(Provincial Autonomy)

परिभाषा

प्रान्तीय स्वराज का ठीक अर्थ कुछ गम्भीर है। यदि सभी सूबों को पूरी आजादी दे दी जाय तो पूर्ण स्वतन्त्रता का कुछ अर्थ ही नहीं रह जाता। यहाँ पर प्रान्तीय स्वराज और पूर्ण स्वराज का तात्पर्य एक है। साधारण तौर पर प्रान्तीय स्वराज के दो अर्थ लगाये जाते हैं। दोनों में इतना कम अन्तर है कि कोई बात स्पष्ट नहीं होती। एक अर्थ तो यह है कि प्रान्तों में केन्द्रीय सरकार का कुछ हाथ न हो, तभी उन्हें स्वतन्त्र कहा जा सकता है। केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय विषयों में तब तक हस्तक्षेप न करे जब तक प्रान्तीय सरकार किसी ऐसी नीति का आश्रय न ले जो राष्ट्रीय दृष्टि से हानिकारक हो। जब इतनी स्वतन्त्रता प्रान्तों को मिल जाय तब हम कह सकते हैं कि हमारे देश में प्रान्तीय स्वराज की स्थापना की गई है। प्रान्तीय स्वराज का यह अर्थ बहुत कुछ ठीक है, परन्तु इसमें एक कमी है। यदि भारतीय प्रतिनिधियों को कोई अधिकार न दिया जाय और प्रान्तीय शासन गैर जिम्मेवारी के सिद्धान्त पर काम करता रहे तो केन्द्रीय सरकार के हाथ खींचने पर भी जनता को कोई लाभ नहीं हो सकता। प्रान्तीय स्वराज का दूसरा अर्थ है 'एक उत्तरदायी शासन'। अर्थात् मन्त्रिमण्डल प्रान्तीय धारा-सभा के प्रति जिम्मेवार हो। धारा-सभाओं में जनता के प्रतिनिधि होते हैं। यदि शासन की बागडोर उनके हाथ में रहे, तो एक जिम्मेवार शासन की स्थापना होगी। जनता को यह कहने का अधिकार नहीं रह जाता कि प्रान्तों में उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य हो रहा है। ज्वायंट पार्लियामेंटरी कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार प्रान्तीय स्वराज का अर्थ यह है, "प्रान्तीय स्वराज का तात्पर्य शासन-विधान की उस शक्ल से है जिसके अन्दर गवर्नर के सूबों में कार्यकारिणी तथा धारा-सभा केन्द्रीय सरकार से स्वतन्त्र होकर

अपनी सीमा के अन्दर शासन का कार्य चलायेगी।"* यह परिभाषा इतनी अस्पष्ट है कि कोई स्पष्ट बात मस्तिष्क में नहीं बैठती। मालूम नहीं प्रान्तीय सरकार की निहित सीमा क्या है? इसके अन्दर कहीं भी एक जिम्मेवार शासन की चर्चा नहीं की गई है।

प्रान्तीय स्वराज का ठीक अर्थ एक उत्तरदायी शासन से है। प्रांतीय जनता स्वयं अपना राजनीतिक प्रबन्ध करे और अपने प्रतिनिधियों द्वारा सरकारी अफसरों पर अधिकार रक्खे—इसका नाम प्रान्तीय स्वराज है। कार्य-कारिणी सभा के सदस्य धारा-सभा के प्रति जिम्मेवार हों। अतएव प्रांतीय स्वराज का दोहरा अर्थ ठीक नहीं है। एक का तात्पर्य केन्द्रीय और प्रांतीय सरकार के सम्बन्ध से है और दूसरे का तात्पर्य एक स्वतन्त्र शासन (Self Government) है। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रान्तों में एक जिम्मेवार शासन तब तक स्थापित नहीं हो सकता जब तक केन्द्रीय सरकार का दबाव कम न हो जाय। यदि केन्द्रीय सरकार प्रांतीय मामलों में हाथ डालती रहे तो स्वतंत्र शासन का कोई अर्थ ही नहीं है। यह हो सकता है कि शासन की कोई कड़ी मशीन बनाकर केन्द्रीय सरकार अपने हस्तक्षेप को कम करदे और इसी का नाम प्रांतीय स्वराज रख दिया जाय। जनता के प्रति कोई जिम्मेवार शासन न बनाकर केवल केन्द्रीय सरकार के दखल को कम कर दिया जाय। शाब्दिक अर्थों में इसे कोई प्रांतीय स्वराज कह लें, परन्तु स्वराज तो वही है जिसके अन्दर प्रजा स्वयं अपना शासन करे। यदि प्रांतों में एक जिम्मेवार शासन स्थापित कर दिया जाय और केन्द्रीय सरकार दखल देती रहे तो एक ऐसा समय आ सकता है जब सरकारी मशीन फेल कर जाय। या तो सरकार प्रांतीय स्वराज को समाप्त कर दे या अपने दखल को कम करे। १९३७ ई० में ऊपर से दिखलाने के लिये प्रांतीय स्वराज की स्थापना कर दी गई थी, परन्तु भीतर से केन्द्रीय सरकार की शक्ति वैसी

---

* Provincial autonomy means freedom from central control, the institution of a form of government "Whereby each of the Governor's Provinces will possess an Executive and a Legislature having exclusive authority within the province in a precisely defined sphere and in that exclusively provincial sphere broadly free from control by the Central Government and Legislature."

ही थी। २७ महीने के काँग्रेस मंत्रिमण्डलों से यह बात स्पष्ट हो गई थी।

प्रान्तीय स्वराज की मांग

जब काँग्रेस की स्थापना की गई थी तो लोगों का यह अनुमान था कि बृटिश सरकार धीरे-धीरे हमारी राष्ट्रीय माँगों को पूरा कर देगी। पूर्ण स्वराज की कल्पना किसी को भी न थी। कुछ समय व्यतीत होने पर बृटेन की साम्राज्यवादी नीति का पता चलने लगा हिन्दोस्तानियों को कोई अधिकार देने को वह तैयार न था। अँग्रेजों को आर्थिक लाभ की अभिलाषा इतनी अधिक थी कि किसी भी क्षेत्र में हिन्दोस्तानियों को स्वतंत्र कर वे अपने स्वार्थ पर धक्का नहीं पहुँचा सकते थे। इधर हिन्दोस्तान में राष्ट्रीय भावनाओं की वृद्धि हो रही थी। १९०४ ई० में काँग्रेस ने इस आशय का एक प्रस्ताव पास किया कि शासन की मशीन में भारतीय कार्यकर्त्ताओं को अधिक से अधिक हिस्सा लेना चाहिये। १९०५ ई० में फिर यह प्रस्ताव दोहराया गया। इसका तात्पर्य यह था कि बड़ी-बड़ी सरकारी नौकरियों तथा धारा-सभाओं में काम करने का अवसर हिन्दोस्तानियों को भी मिले। १९०६ ई० में काँग्रेस ने यह स्पष्ट कर दिया कि उसका उद्देश्य बृटिश साम्राज्य के अन्तर्गत हिन्दोस्तान को एक स्वतन्त्र राष्ट्र बनाना है। वंग-भंग के प्रश्न ने आग में घी का काम किया। सारे हिन्दोस्तान में स्वतन्त्रता की लहर फैल गई। काँग्रेस अपनी नीति पर डटी रही। उसकी माँग उपयुक्त थी। देश की राजनीतिक पार्टियों ने यह स्वीकार किया कि देशोन्नति के लिये स्वतन्त्रता से बढ़ कर कोई दूसरा मार्ग नहीं है। इस समय काँग्रेस दल में दो बड़ी कमजोरियाँ उत्पन्न हो गई थीं। सूरत की काँग्रेस के बाद वह दो दलों में विभाजित हो गई। मुसलमान अभी तक उससे अलग थे। १९१० ई० में इलाहाबाद काँग्रेस में सर विलियम वेडरवर्न ने इस बात का प्रयत्न किया कि काँग्रेस में आपसी भेदभाव मिटा दिये जायँ और मुसलमान भी इसके उद्देश्य में शामिल हों। १९३५ ई० तक इसमें सफलता प्राप्त न हो सकी। परन्तु इसके कुछ ही दिन बाद लीग और काँग्रेस दोनों ने अपना उद्देश्य एक बना लिया कि उन्हें बृटिश साम्राज्य के अन्दर हिन्दोस्तान में एक स्वतन्त्र सरकार स्थापित करना है। तब से बराबर दोनों की यह माँग बनी रही कि हिन्दोस्तान को पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् दोनों दलों में भेद-भाव इस सीमा तक पहुँचा कि पाकिस्तान की स्थापना हुई।

प्रान्तीय स्वराज पर विभिन्न मत

१९३० ई० तक हिन्दोस्तान को स्वतन्त्रता का प्रश्न एक था। इस पर दो विचार पैदा नहीं हुये थे। लेकिन गोलमेज सभा के बाद प्रान्तीय स्वराज पर दो विभिन्न मत वाले दल उठ खड़े हुये। यह भेद-भाव लन्दन में ही उत्पन्न हो गया था। एक दल का कहना था कि केन्द्रीय सरकार की शक्ति कमजोर नहीं होनी चाहिये। प्रान्तों पर इसका प्रभाव वैसे ही दृढ़ रहना चाहिये जैसे आज है। इस दल के नेताओं ने दक्षिणी अफ्रीका तथा अमेरिका का उदाहरण देकर यह सिद्ध किया कि केन्द्रीय सरकार की शक्ति दृढ़ रखते हुये भी प्रान्तीय स्वराज की स्थापना हो सकती है। इस दल वालों को यह सन्देह था कि यदि प्रान्तों को स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई और केन्द्रीय सरकार का हाथ उनके ऊपर से जाता रहा तो बहुत सम्भव है कि हिन्दोस्तान की राष्ट्रीय एकता नष्ट हो जाय। इससे स्पष्ट होता है कि यह दल बृटिश सरकार की "शक्ति एकीकरण" (Centralised power) में विश्वास करता था। इसका कहना था कि बृटिश सरकार इस बात का ध्यान न रक्खेगी, तो हिन्दोस्तानियों की लगभग एक सदी की कमाई मिट्टी में मिल जायेगी। हिन्दोस्तान में साम्प्रदायिक भेद-भाव का उदाहरण देकर यह सिद्ध किया गया कि केन्द्रीय सरकार की शक्ति कम करने से आपसी झगड़ों में वृद्धि होगी और तरह-तरह के वैमनस्य पैदा होंगे। उपरोक्त विचार से स्पष्ट है कि इस दल को हिन्दोस्तानियों की राजनीतिक कुशलता में विश्वास नहीं था। इस भय से कि कहीं आपस में कुछ भेद उत्पन्न न हो जायँ हमेशा दासता की जंजीर में बँधे रहना उन्हें अच्छा था।

दूसरे दल ने इस केन्द्रीय शक्ति के संचय पर प्रकाश डालते हुये यह साबित किया कि जब तक केन्द्रीय सरकार की शक्ति कम न होगी तब तक प्रांतीय स्वराज्य की स्थापना नहीं हो सकती। यह संभव नहीं है कि बृटिश सरकार सारी शक्ति अपने हाथों में रक्खे और साथ ही सूबों को स्वतन्त्रता भी दे दे। ऐतिहासिक उद्धरणों से यह बात साबित की गई कि शासन की बागडोर को एक सूत्र में बाँधने से जो देश को हानि पहुँची है वह जल्दी पूरी नहीं हो सकती। इससे जनता के अधिकार का अस्तित्व मिटा दिया गया है। वह भीगी बिल्ली की तरह कूपमंडूक हुये बैठी है। उसे इतना भी ज्ञान नहीं है कि उसके नमक की असली कीमत क्या है। प्रांतीय सरकारों को कठपुतली की तरह नचाने से जनता का आत्म-विश्वास कम हो गया था। प्रजा के

व्यक्तित्व पर इस नीति से आघात पहुँचा। जब तक मशीन के पुर्जे आजादी के साथ अपनी जगह पर काम नहीं करते, तब तक वह ठीक तौर पर काम नहीं कर सकती। केन्द्रीय सरकार ने सम्पूर्ण राजनीतिक शक्ति अपने हाथों में लेकर हमारे परिश्रम को व्यर्थ कर दिया था। जो भारतीय जनता किसी समय अपना शासन स्वयं करती थी और बड़ा से बड़ा अफसर उसके कामों में दखल नहीं दे सकता था, वह कौंसिल में थोड़े से प्रतिनिधि भेजने के लिए तरसती थी। जो अपनी सारी कमाई अपनी इच्छानुसार खर्च कर सकती थी वही छोटे-छोटे कामों के लिये केन्द्रीय सरकार की सहायता पर मुँह ताकती थी। यह दल चाहता था कि प्रांतीय सरकार एक जिम्मेवार सरकार करार दी जाय। गवर्नर केवल नाम-मात्र के लिए कार्यकारिणी का प्रधान रहे। प्रांतीय विषय हिन्दोस्तानी मंत्रियों को दे दिये जायँ। आमदनी और खर्च की पूरी जिम्मेवारी उन्हें दे दी जाय। प्रांतों में प्रत्येक सरकारी कर्मचारी प्रांतीय सरकार की इच्छा से भर्ती किये जायँ। उन्हें हटाने का भी अधिकार इसी को हो। तात्पर्य यह है कि इस दल की माँग एक सच्चा प्रान्तीय स्वराज स्थापित करने की थी।

प्रांतीय स्वराज के समर्थक उपरोक्त दोनों दल अपनी-अपनी माँग के लिये पूरी प्रयत्न करते रहे। केन्द्रीय शासन की शक्ति को दृढ़ रखने के पक्षपातियों को यदि बृटिश सरकार का सहायक कहें तो कोई अनुचित न होगा। अब इन दोनों दल वालों की बातों पर बृटिश सरकार को विचार करना था। पार्लियामेंट यह नहीं चाहती थी कि केन्द्रीय सरकार की शक्ति कम हो। उसे संघ-शासन-विधान बनाने की उतनी चिन्ता न थी जितनी केन्द्रीय और प्रांतीय विषयों के विभाजन की। इसी पर उसकी राजसत्ता का सारा दारोमदार था। वह अपने ही हाथों से अपना अहित कैसे कर सकती थी। साथ ही वह हिन्दोस्तानियों को सन्तुष्ट भी करना चाहती थी। इसी उधेड़बुन में ३ वर्ष बीत गये। अंत में सब विषयों की एक सूची बनी जो केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों में बाँट दी गई। बहुत से आवश्यक अधिकार जो प्रांतीय सरकारों को मिलने चाहिये थे, केन्द्रीय सरकार को दे दिये गये। फौज और खजाने पर हर देश का भाग्य निर्भर रहता है। वे केन्द्रीय विषयों की सूची में शामिल कर दिये गये। यदि पार्लियामेंट चाहती तो बृटिश राजनीतिज्ञों की इस भावना को बदल सकती थी, परन्तु उसने ऐसा करना उचित न समझा। प्रत्येक अंग्रेज स्वभाव से ही हिन्दोस्तान में एक दृढ़ केन्द्रीय

शासन को पसन्द करता था। पार्लियामेंट ने अपने जीवनकाल में कुछ देशों को स्वतन्त्रता प्रदान किया था। इसी तरह वह हमारे देश को भी उसी दिशा में ले जा सकती थी।

कनाडा कई सूबों से मिलकर बना है। स्वयं कनाडा एक प्रान्त भी है। १८४० ई० में उसे अकेले स्वतन्त्रता प्राप्त हुई थी। धीरे-धीरे अन्य प्रान्तों को स्वतन्त्रता दे दी गई। अर्थात् समूचे कनाडा में कई स्वतन्त्र सरकारें कायम हो गईं। सबको जिम्मेवार शासन दे दिया गया परन्तु बहुत दिनों तक यह व्यवस्था कायम न रह सकी। अंग्रेज और फ्रांसीसी दोनों जातियों के लोग इसमें निवास करते थे। घरेलू झगड़ों के कारण वे आपस में मिलकर न रह सके। सभी प्रांतों में ये दोनों जातियाँ आपस में लड़ने लगी। दोनों अपने को विभिन्न राष्ट्रवादी समझने लगीं। इस बुराई को दूर करने के लिए १८८७ ई० में समूचे कनाडा के लिये एक संघ शासन-विधान बनाया गया। इस उद्धरण से हमारे दो तात्पर्य हैं; एक तो यह कि दो या दो से अधिक राष्ट्रवादी किसी संघ-शासन की स्थापना कर सकते हैं। शासन-विधान की बुराइयों के कारण वे थोड़े समय तक आपस में भले ही लड़ते रहें, परन्तु अन्त में दोनों एक हो सकते हैं। दूसरा यह है कि संघ-शासन के लिए यह आवश्यक है कि इसकी इकाइयाँ पूरी तरह स्वतन्त्र कर दी जायँ। यदि हमारे देश में सच्चे संघ-शासन की स्थापना करनी है तो प्रान्तीय स्वराज आवश्यक है। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि विभिन्न सम्प्रदाय इसमें बाधक नहीं हो सकते।

आस्ट्रेलिया में भी अलग अलग सूबे आबाद होते गये। ज्यों-ज्यों उनकी आबादी बढ़ती गई और उनके निवासियों की योग्यता का परिचय मिलता गया, त्यों-त्यों उन्हें आज़ादी मिलती गई। १८२५ से १८६६ ई० तक यह सिलसिला जारी रहा। इसके पश्चात् स्वार्थ और सम्पर्क में मतभेद होने के कारण उनमें आपसी झगड़े आरम्भ हुए। सबने फैसला किया कि एक संघ-सरकार बनाई जाय जो सबको एक सूत्र में बाँधकर चलावे। १८६६ ई० में सभी प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने इकट्ठे होकर एक संघ-शासन-विधान का निर्माण किया। बृटिश पार्लियामेंट ने खुशी-खुशी उसे स्वीकार कर लिया। बृटिश साम्राज्य का एक अंग होते हुये भी यह देश आज पूरी तरह आज़ाद है। इन दोनों देशों पर नज़र डालते हुये यह स्पष्ट है कि संसार में कोई संघ-शासन-विधान ऐसा नहीं

है जिसकी इकाइयाँ परतन्त्र हों और केन्द्रीय सरकार की कड़ी देख-रेख में रक्खी गई हों।

भारतीय राजनीतिज्ञों में चाहे जितना भी मतभेद रहा हो, परन्तु हर एक इस बात से सहमत था कि हिन्दोस्तान को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। जब बृटिश सरकार ने इस बात का वादा किया कि वह प्रान्तीय क्षेत्रों में उसे तजुरबा करेगी तो फिर इसमें गोलमाल की बातें ठीक नहीं थीं। प्रान्तीय स्वराज को रूप रेखा का उतना महत्व नहीं था जितना शासकों की सचाई और नेकनीयती का।* काँग्रेस का चुनाव में हिस्सा लेने का मुख्य उद्देश्य यही था कि प्रान्तीय सरकार को अच्छी तरह चलाया जाय। वह शासन में कोई रुकावट पैदा करना नहीं चाहती थी। मन्त्रिपद ग्रहण करने के बाद भी जब-जब अड़चनें आईं, उसने उन्हें बड़ी खूबी के साथ निबाहा। जिन प्रान्तों में कांग्रेस का बहुमत नहीं था वहाँ की भी सरकारों ने काँग्रेस की नीति का अनुसरण किया। तात्पर्य यह है कि सभी प्रान्तों में नया प्रान्तीय स्वराज बड़ी तत्परता से चालू किया गया। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी मिलकर इसे चलाने की सच्ची नीयत रखते थे। लेकिन हर समय उन्हें यह भय रहता था कि गवर्नर तथा गवर्नर-जनरल से उनको मुठभेड़ न हो जाय।

प्रान्तीय स्वराज का क्रियात्मक रूप

१९३७ ई० में संघ शासन-विधान प्रान्तों में कार्यान्वित किया गया। चुनाव में काँग्रेस ने दिल खोल कर हिस्सा लिया। परिणाम यह हुआ कि ६ प्रान्तों में काँग्रेस का बहुमत रहा। संयुक्त प्रान्त की छोटी धारा-सभा के लिये कांग्रेस के १३८ सदस्य चुने गये। कुल जगहें २२८ थीं। इसी प्रकार शेष पाँचों सूबों में कांग्रेस के सदस्यों की संख्या बहुमत से कहीं अधिक थी। संयुक्त प्रान्त, मध्य-प्रांत और बरार, बम्बई, मदरास, बिहार और उड़ीसा—इन सूबों में छोटी सभा में कांग्रेस का बहुमत रहा। पंजाब, बङ्गाल, सिंध, आसाम, और पश्चिमोत्तर प्रदेश, इनमें इसका बहुमत न हो सका। कुछ समय बाद आसाम और पश्चिमोत्तर प्रदेश में भी कांग्रेस का मन्त्रिमण्डल स्थापित हो गया।

---

* For forms of Government let fools contest;
Whatever is best, administered is best.

चुनाव फरवरी १६३७ में समाप्त हो गया। अब प्रश्न यह उठा कि मन्त्रिमण्डल बनाये जायँ। कांग्रेस ने चुनाव में विजय तो प्राप्त की परन्तु अभी तक उसने यह तै नहीं किया था कि मन्त्रिपद ग्रहण करे या नहीं। कांग्रेस में इस विषय में दो रायें थीं। कुछ लोग मन्त्रिपद ग्रहण करने के पक्ष में थे और दूसरे इसका विरोध करते थे। उनका कहना था कि जो संस्था बृटिश सरकार से लड़ने के लिये बनाई गई है। और जो आरम्भ से उसका विरोध करती आ रही है, वह सरकार की अधीनता में काम नहीं कर सकती। साथ ही उसे शासन-विधान की कमज़ोरियाँ दिखाई पड़ रही थीं। उसका कहना था कि प्रान्तीय स्वराज एक निरा ढोंग है और कांग्रेस उसे चलाकर कोई लाभ नहीं उठा सकती। परन्तु पक्षपाती दल इन सब दलीलों के रहते हुये भी मन्त्रिपद ग्रहण करने के पक्ष में था। उसकी यह दलील थी कि यदि सरकार को चलाने की नीयत न थी तो चुनाव में हिस्सा लेने की क्या अवश्यकता थी। शासन को चलाकर उसे यह अनुभव करना था कि कहाँ तक इसके अन्दर स्वतन्त्रता का रूप है। यदि दूसरी पार्टियाँ धारा-सभा में बहुमत प्राप्त कर लेतीं और अपनी इच्छानुसार शासन को चलातीं तो सम्भव है प्रजा की आँख बहुत दिनों तक बन्द रक्खी जाती। सरकार को चलाने में एक और भी लाभ था। प्रान्तीय जनता के दिलों में यह भाव उत्पन्न करना था कि राष्ट्रीय सरकार विदेशी सरकार से किन मामलों में भिन्न हो सकती है। २७ महीने तक, अर्थात् जब तक काँग्रेस ने प्रान्तीय सरकार को चलाया, जनता के दिमाग से विदेशी राज का पर्दा हट गया था। चारों ओर प्रेम और सहानुभूति के भाव दिखाई पड़ने लगे थे। जिन कामों को बृटिश सरकार अपने १५० वर्ष के जीवन में नहीं कर पाई थी, उसे काँग्रेस ने २ वर्षों में कर दिखाया। परन्तु शासन की कमजोरियों को वह कैसे दूर कर सकती थी।

मन्त्रिपद ग्रहण करने में एक और कठिनाई थी। संघ-शासन को काँग्रेस पहले ही इनकार कर चुकी थी। कड़े से कड़े शब्दों में उसने इसे बेकार और दोषपूर्ण ठहराया था। इतनी बुराई करने के बाद यदि वह उसी शासन को कार्यान्वित करती तो इससे बढ़कर शर्म की बात कोई दूसरी न थी। राजनीति उलट फेर का घर है। इसलिये इसे कूटनीति का दूसरा भाई कहा गया है। काँग्रेस की अकल उस जगह पर आकर रुक जाती थी कि गवर्नर के विशेष अधिकारों के सामने वह कर ही क्या सकती

है। इधर कॉंग्रेस का एक वर्ग इस बात के लिये लालायित था कि कुछ समय तक प्रान्तीय शासन को चलाना चाहिये। पद का लोभ सबसे बड़ा होता है। अन्त में कॉंग्रेस ने एक राजनीतिक बहाना ढूंढ़ निकाला। चन्द शर्तों के साथ उसने मन्त्रिपद ग्रहण करना स्वीकार किया परन्तु साथ ही उसने यह भी एलान किया कि वह शासन चलाने नहीं बल्कि उसे तोड़ने जा रही है।* पक्षपात छोड़कर आज हम दावे के साथ यह कह सकते हैं कि कोंग्रेस शासन को चलाने के लिये गई थी, तोड़ने के लिये नहीं। जो कुछ भी हो, वह इस बात पर कमर बाँध चुकी थी कि प्रान्तीय सरकार को चलाना चाहिये। १५ मार्च सन् १६३७ ई० को दिल्ली में कॉंग्रेस की वर्किङ्ग कमीटी की बैठक हुई। महात्मा गाँधी के विचारों के अनुसार यह तै किया गया कि कॉंग्रेस प्रान्तीय सरकार को इस शर्त पर चलावे कि गवर्नर उसके कार्यों में अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग तब तक न करें जब तक मन्त्री अपनी सीमा के अन्दर कार्य करते रहें। अर्थात् गवर्नर इस बात का आश्वासन दें कि वे मन्त्रियों के कामों में अनायास हस्तक्षेप न करेंगे। वे अपने व्यक्तिगत अधिकारों को तभी काम में लायें जब कोई असाधारण परिस्थिति उत्पन्न हो जाय। इस आश्वासन से प्रान्तीय स्वराज की सीमा नहीं बढ़ी; परन्तु रुकावट की बहुत बड़ी शंका जाती रही।

संघ-शासन का प्रधान, गवर्नर-जनरल, कॉंग्रेस को असंतुष्ट नहीं करना चाहता था। उसने अपने एक व्याख्यान में यह जाहिर किया कि नये शासन-विधान की रचना भारतीय प्रजा की भलाई के लिये की गई है। किसी के दिल में इस बात की शंका उत्पन्न नहीं होनी चाहिये कि कोई कर्मचारी मन्त्रियों के कामों में दखल देगा। कारण यह है कि ब्रिटिश सरकार अपनी सहयोग वाली नीति से अलग नहीं रह सकती।

जिन प्रान्तों में कॉंग्रेस का बहुमत था वहाँ के गवर्नरों ने कॉंग्रेस के नेताओं को निमन्त्रित किया। शासन की नीति के अनुसार वे इन्हें बुलाने के लिये बाध्य थे। नेताओं ने आश्वासन की माँग पेश की। इस प्रकार का सुलहनामा संसार के किसी भी देश में अब तक नहीं हुआ था। गवर्नरों को ऐसा करने का कोई अधिकार न था। अतएव अपना कर्त्तव्य समझ कर उन्होंने साफ इनकार कर दिया कि इस प्रकार का आश्वासन

---

* We do not go to run the constitution but to wreck it.

देने में वे सर्वथा असमर्थ हैं। संयुक्तप्रान्त के गवर्नर की ओर से एक घोषणा प्रकाशित की गई कि, 'भारतीय शासन-विधान तथा आदेश' पत्रों से गवर्नर की जिम्मेवारियाँ बहुत ही स्पष्ट हैं। इस प्रकार की माँग पूरा करने का अधिकार उसे बिलकुल नहीं है।* अन्य प्रान्तों के गवर्नरों ने भी इसी प्रकार की मजबूरियाँ जाहिर कीं। नतीजा यह हुआ कि काँग्रेस ने मन्त्रिपद ग्रहण करने से इनकार कर दिया। ३० मार्च सन् १९३६ ई० को महत्मा गाँधी ने अपने एक वक्तव्य में कहा कि आश्वासन का सूत्र उन्हीं का बनाया हुआ था। उन्होंने इस बात पर खेद प्रगट किया कि इतनी छोटी सी बात को मानने से गवर्नरों ने इनकार कर दिया। इधर गवर्नरों को सीधे भारत मन्त्री और पार्लियामेंट से सलाहें मिल रही थीं। भारत मन्त्री, लार्ड जेटलैण्ड ने लार्ड सभा में भाषण देते हुये अपने खयाल का इजहार किया था कि 'पार्लियामेंट ने गवर्नरों को जो जिम्मेवारियाँ दी हैं उन्हें वे बिना उसकी मर्जी के दूर नहीं रह सकते।"† काँग्रेस भी अपनी माँग पर डटी रही। उसे पार्टी की बहुमत शक्ति का भरोसा था। शासन के श्रीगणेश में ही यह रस्साकसी बड़े जोरों के साथ चलने लगी। अभी यह शुरू भी नहीं हुआ था कि इसकी कमजोरियों के आसार दिखाई पड़ने लगे। जिस शासन-विधान के बनाने में वर्षों व्यतीत हुये थे, और लाखों रुपया खर्च हुआ था, उसे बिना किसी जाँच पड़ताल के बदल देना ठीक न था।

१९३५ का शासन-विधान फेल न कर जाय, ऐसा सोचकर गवर्नरों को यह आज्ञा दी गई कि वे अल्प-संख्यक दल से एक मन्त्रिमण्डल बना लें। गवर्नरों ने अपने प्रान्तों में इस प्रकार का मन्त्रिमण्डल बनाकर शासन को चलाना आरम्भ कर दिया। ६ प्रान्तों में मन्त्रिमंडल

---

* The obligations laid upon the Governor by the Government of India Act and the Instrument of Instructions are clear and specific......It is clearly not in the power of the Governor to meet such a demand.

† Parliament has imposed upon them (Governors) certain obligations of which without the authority of Parliament, they could not divest themselves.

की स्थापना हो गई और सब काम सुचारु रूप से चलने लगा। अल्प-संख्यक दल की सरकार (Interim Ministries) बहुमत पार्टी के सहयोग के बिना नहीं चल सकती थी। पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय पर टीका-टिप्पणी होने लगी कि गुड़िया मन्त्रिमण्डल (Interim Ministries) नियम के विरुद्ध है। इसमें कोई संदेह नहीं कि गवर्नरों को आदेश पत्रों (Instrument of Instructions) के अनुसार ऐसा करने का अधिकार दिया गया था, परन्तु प्रान्तीय स्वराज और प्रजातन्त्रवाद की दृष्टि से यह कार्य सर्वथा निन्दनीय था। यदि गुड़िया-मन्त्रिमंडलों की स्थापना के बाद प्रान्तीय असेम्बली की बैठक बुला ली जाती तो सरकार का सारा मजा किरकिरा हो जाता। काँग्रेस बहुमत से उनके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करती और मन्त्रियों को हटना पड़ता। परन्तु शासन-विधान के अनुसार गवर्नरों ने इसे रोकने का प्रयत्न किया। ६ महीने तक प्रान्तीय धारा-सभाओं की बैठक नहीं बुलाई गई। इससे काँग्रेस को अविश्वास का प्रस्ताव पास करने का अवसर न मिल सका। ६ माह व्यतीत होने पर धारा-सभा को बुलाना जरूरी था, अन्यथा शासन-विधान फेल कर जाता।

२६ मार्च सन् १६३७ ई० को लन्दन में रेडियो पर भाषण देते हुए लार्ड लोथियन ने काँग्रेस को यह सलाह दी कि वह बिना किसी आश्वासन के मन्त्रिपद ग्रहण कर ले। इधर ८ अप्रैल सन् १६३७ को भारत मन्त्री लार्ड जेटलैंड ने लार्ड सभा में एक वक्तव्य देते हुये गुड़िया मन्त्रिमंडल की खूब तारीफ की। १० अप्रैल सन् १९३७ को महात्मा गाँधी ने सुलह का एक रास्ता बृटिश सरकार के सामने रक्खा। उनका कहना था कि इस बात के लिये ३ न्यायाधीश नियुक्त कर दिये जायं कि गवर्नर इस प्रकार का आश्वासन दे सकते हैं अथवा नहीं। पार्लियामेंट में एक वक्तव्य देते हुए बटलर ने इस सलाह को ठुकरा दिया। ६ मई सन् १९३७ ई० को लार्ड जेटलैंड ने इस बात की घोषणा की कि नये शासन-विधान की मनशा प्रान्तीय शासन का सूत्र भारतीय मन्त्रियों के हाथों में देना है। इससे काँग्रेस को कुछ तसल्ली हुई और उसने यह स्वीकार किया कि यदि मन्त्रियों और गवर्नरों में हद दर्जे का मतभेद उत्पन्न हो जाय तो गवर्नर उन्हें निकाल दें। महात्मा गाँधी ने भी यही माँग पेश की। २१ जून सन् १६३७ को वाइसराय का जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ उससे सुलह का रास्ता काफी साफ हो गया। जुलाई के पहले सप्ताह में काँग्रेस वर्किङ्ग कमीटी ने यह तय किया कि काँग्रेस अब

मन्त्रिपद स्वीकार कर ले। इसके फलस्वरूप ६ प्रान्तों में कॉंग्रेस मन्त्रि-मंडल की स्थापना हुई।

गुड़िया मन्त्रिमंडल बर्खास्त कर दी गई। कॉंग्रेस शासन का कार्य चलाने लगी। रुकावट की पहली सीढ़ी किसी तरह समाप्त हुई। यद्यपि कॉंग्रेस की माँग पूरी नहीं हुई थी, फिर भी गवर्नर मन्त्रियों की कार्रवाइयों में जल्दी दखल नहीं दे सकते थे। इससे प्रान्तीय स्वराज की सीमा कुछ और विस्तृत मालूम पड़ने लगी। कहा जाता है कि गवर्नरों के आश्वासन से कॉंग्रेस ने प्रान्तीय स्वराज के अर्थ को एक दम बदल दिया।* कॉंग्रेस और गवर्नर दोनों को एक दूसरे के प्रति अधिक श्रद्धा उत्पन्न हो गई। शासन की बागडोर कॉंग्रेस के हाथ में आते ही हिन्दोस्तान का राजनीतिक वातावरण बदल गया। जो कॉंग्रेस आरम्भ से ही बृटिश सरकार का विरोध करती आ रही थी वही अब शासन को कार्यान्वित करने लगी। उसके लिये यह जरूरी था कि वह सभी सूबों में एक प्रकार की नीति को चलाती। विभिन्न प्रान्तों के मन्त्रिमंडल मनमानी न करके उसके उद्देश्य को सामने रक्खें—इसकी देख-रेख के लिये सरदार वल्लभ भाई पटेल, मौलाना अबुलकलाम आजाद और डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद, इन तीन आदमियों की एक कमेटी (The Parliamentory Sub-Committee) बना दी गई। शासन को चलाने में कॉंग्रेस ने अपने सामने ३ उद्देश्य रक्खा:—

१—शासन का खर्च घटाना और नौकरशाही की बेजा हरकतें दूर करना।

२—दीन दुखियों को आर्थिक सहायता देना; हरिजनों और दलित जातियों को उठाना।

३—जनता को अधिक से अधिक राजनीतिक अधिकार प्रदान करना और उसके दिमाग में स्वदेशी सरकार का नक्शा खींचना।

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये नये नये कार्य-क्रम बनाये गये। इनमें अधिक से अधिक रकम लगाने के लिये कॉंग्रेसी मन्त्रियों ने अपना वेतन केवल ५०० रुपया मासिक निश्चित किया। हमें याद रखना चाहिये कि इसके पहिले मन्त्रियों को लगभग ५००० रुपया वेतन दिया जाता था। यदि कांग्रेस के मन्त्री चाहते तो इतना ही वेतन ले सकते थे, परन्तु आम जनता की भलाई का ध्यान रखते हुए उन्होंने केवल

* Mahatma Gandhi changed the whole meaning of Provincial Autonomy.

५०० रुपया मासिक लेना स्वीकार किया। हिन्दोस्तान के सभी सूबों की समस्या एक है। सबके सामने एक ही प्रकार के प्रश्न उपस्थित थे। अर्थात् किसानों की उन्नति, बेकारी को दूर करना, घरेलू कारोबार की वृद्धि, साक्षरता का प्रचार, ग्रामसुधार, मद्य-निषेध, दलितोद्धार, स्वायत्त शासन का सुधार आदि विषयों की ओर सबका ध्यान आकर्षित था। परन्तु काँग्रेस सरकार जल्दी से जल्दी इन्हें आरम्भ करना चाहती थी।

काँग्रेस सरकारों ने राजनीतिक कैदियों को छोड़ने का प्रस्ताव पास किया। कितने ही कैदी जेलों से बाहर निकाले गये। जो शेष रहे उन्हें भी धीरे धीरे छोड़ने की व्यवस्था की गई। ग्राम-उद्योग-संघ की स्थापना की गई। इससे गाँवों की उन्नति पर विचार किया जाने लगा। घरेलू कारोबार की वृद्धि की गई। तरह तरह के काम-धंधों की खोज हुई। कितने ही बेकार आदमियों को काम दिया गया। हरिजनों की भलाई के लिए अलग स्कूल और कारखाने खोले गये। उनके लड़कों को सरकारी वजीफे दिये गये। कालेजों और विश्वविद्यालयों में उनकी फीस माफ कर दी गई। किसानों की उन्नति के लिए हर जिले में बीज गोदाम खोले गये। उनकी खेती के लिए सरकार की ओर से अधिक से अधिक इमदाद दी जाने लगी। उनके लिए तरह तरह के कानून पास किये गये। लगान में कमी कर दी गई; कर्ज अदा करने का तरीका बदल दिया गया और पिछले कर्ज माफ कर दिये गये। जमींदारों को हिदायत की गई कि वे रिआया पर किसी प्रकार का बेजा दबाव न डालें। हरी, बेगार, हथियावन आदि सब बंद कर दिये गये। सरकारी अफसरों को चेतावनी दी गई कि दावत और डालियाँ न लें। सरकारी महकमों में घूसखोरी को रोकने का प्रयत्न किया गया। पुलीस की बेजा हरकतों को हर तरह से कम किया गया। शिक्षा-प्रचार के लिए तरह तरह की योजना काम में लाई गई। संतानों को साक्षर करने का विधान बनाया गया। गाँवों में स्कूल, रात्रि पाठशालायें, तथा लाइब्रेरियाँ खोली गईं। बेसिक शिक्षा का प्रचार, पुरानी शिक्षा-प्रणाली में सुधार तथा नशीली चीजों को दूर करने का प्रयत्न किया गया। मजदूरों को उचित मजदूरी का विधान बनाया गया। साम्प्रदायिकता का भाव कम किया गया। तात्पर्य यह है कि काँग्रेस सरकार ने जनता की भलाई के लिए कोई कसर बाकी न रक्खी। जहाँ तक उसकी शक्ति थी और जितनी अधिक रकम वे इन कार्यों में खर्च कर सकते थे वहाँ तक करने का प्रयत्न किया। इतनी माथापच्ची करने पर भी जनता में असन्तोष की मात्रा कम न हुई। इसका कारण काँग्रेस

की कमी नहीं है, बल्कि कुछ ऐसे कारण पहले से ही उपस्थित कर दिये गये थे जो जनता के दिमाग से नहीं निकल सकते थे।

काँग्रेस जनता की भलाई के लिए जितना कर सकती थी उससे कहीं अधिक किया। शासन-विधान के अन्दर जितनी गुञ्जाइस थी और उसके पास जितना रुपया था, सब भली भाँति प्रयोग में लाये गये। थोड़े समय तक लोगों का विचार बदल गया था। जिन सरकारी कर्मचारियों को लोग काटू समझते थे, वे ही उन्हें झुककर सलाम करने लगे। जिन व्यक्तियों को जेल की हवा खानी पड़ी थी और जिनके ऊपर डंडों की चोट पड़ी थी, उन्हीं की आवाज पर प्रांतीय सरकार का काम होने लगा। जिन दफ्तरों में लोगों को जाने की आज्ञा मुश्किल से मिलती थी वे आम जनता के लिये खोल दिये गये। प्रांतीय धारा-सभा की कार्रवाइयों का ब्यौरा सुनने के लिए धारा-सभा के बाहर कितने ही सूबों में लाउड स्पीकर लगा दिये गये। इक्केवान और मजदूर भी थोड़ी देर विश्राम करके "अपनी सरकार" की कार्रवाइयाँ सुन सकते थे। लोगों के मुँह से विदेशी सरकार की आवाज़ बन्द हो गई थी और 'अपनी सरकार' तथा 'हमारी सरकार' इस प्रकार के शब्द सुनाई पड़ने लगे थे। काँग्रेस आन्दोलन सरकार को भले ही खटके; परन्तु उसके नेताओं तथा कर्मचाहियों से सलाह मशविरा लेना पड़ता था। इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं कि सरकारी ऐक्ट के अनुसार प्रान्तीय सरकारों को गवर्नर तथा मन्त्री चलाते थे, लेकिन कार्यरूप में यह बात नहीं थी। ऊपर से काँग्रेस इन सरकारों को चलाती रही। वर्किङ्ग कमीटी का फैसला काँग्रेस मंत्रियों को मानना पड़ता था। सरकारी ऐक्ट में काँग्रेस का नाम भले ही न हो परंतु २७ महीने तक उसी की तूती बोलती रही। लोगों को यह विश्वास हुआ कि काँग्रेस कोई हुल्लड़बाजी की संस्था नहीं है, बल्कि इसके अन्दर शासन चलाने का पूरा माद्दा मौजूद है। मन्त्रियों ने जिस योग्यता का परिचय दिया उसकी प्रशंसा पार्लियामेंट तक में की गई। १६ अप्रैल सन् १८३८ ई० को पेशावर में भाषण देते हुये हिन्दोस्तान के वाइसराय ने यह कहा कि, "प्रान्तीय स्वराज का पहला वर्ष निहायत अच्छाई के साथ व्यतीत हुआ है। प्रान्तीय धारा-सभाओं ने अपनी योग्यता का आश्चर्यजनक परिचय दिया है।"*

---

*The first year of Provincial Autonomy has worked well and that the provincial Legislatures have shown imagination and responsibility in a high degree.

इन सारी नेकनीयती के बावजूद कांग्रेस सरकार की टीका-टिप्पणी होती रही। इसकी वजह यह थी कि उसका एक दल सरकार चलाने के पक्ष में नहीं था। जगह जगह पर सभाओं तथा मीटिंगों में उसके मुँह से ये शब्द निकलते रहे कि कांग्रेस अपने आदर्श से नीचे गिर गई। पार्लियामेंट की मातहती में काम करना उनके लिये एक बहुत बड़ा अपमान था। लेकिन जो दल शासन को चला रहा था उसने भी कुछ ऐसी ग़लतियाँ की थीं जिनका परिणाम उसी के लिये घातक सिद्ध हुआ। जिस समय असेम्बली के सदस्यों के चुनाव हो रहे थे उस समय कांग्रेस सदस्य अपनी पूरी ताक़त से विजय प्राप्त करना चाहते थे। कितने ही अनुचित तरीके काम में लाये गये। ग़लत बातों का प्रचार किया गया। नागरिकों को व्यर्थ के आश्वासन दिये गये। कुछ कांग्रेस उम्मीदवारों ने तो यहाँ तक कह डाला की चुनाव से एक वर्ष के अन्दर जनता को पूर्ण स्वराज प्राप्त हो जायेगा। साथ ही उनकी सारी आर्थिक कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी। किसानों की सभी तकलीफ़ों को दूर करने का मानो कांग्रेस ने टीका सा ले लिया था। उसे यह ख्याल न था कि शासन की मशीन कहाँ तक उन्हें इन वादों को पूरा करने का मौका देगी। बड़ी-बड़ी आशायें लेकर लोगों ने कांग्रेस को वोट दिया और चुपचाप उनकी पूर्ति की बाट जोहते रहे।

जब चुनाव समाप्त हो गया और कांग्रेस को शासन का भार चलाना पड़ा तो उन्हें मालूम हुआ कि उनकी प्रतिज्ञायें झूठी थीं। उनके हाथों में इतनी रक़म न थी कि मालगुजारी और लगान को वह एक दम माफ़ कर देती। कोई भी सरकार ऐसा नहीं कर सकती। थोड़े समय के अन्दर बेकारी और अशिक्षा दूर नहीं की जा सकती थी। शान्ति की स्थापना के लिये सरकार को सभी तरह के उपायों का आश्रय लेना पड़ा। जगह-जगह पर गोलियाँ चलाई गईं और लोगों को सजायें दी गईं। लोग भौचक्के-से रह गये। उन्हें यह उम्मीद थी कि उनका क़र्ज़ एक दम माफ़ कर दिया जायगा; साथ ही वे कुछ भी करें लेकिन कांग्रेस सरकार चुपचाप देखती रहेगी। ये दोनों बातें असम्भव थीं। न तो जनता को ऐसी उम्मीद करनी चाहिये थी और न कांग्रेस को इस प्रकार की आशायें दिलानी चाहिये थी। तात्पर्य यह है कि लोग कांग्रेस सरकार को स्वर्ग का फ़रिश्ता समझ बैठे थे। उनका अनुमान था कि सरकार की बागडोर हाथ में लेते ही वह सभी प्रकार की तकलीफों को छू मन्तर

से हटा देगी। कितनी गलत धारणा थी! लेकिन इसकी ज़िम्मेवारी स्वयं कांग्रेस पर है। उसने विजय प्राप्त करने के लिये प्रान्तीय स्वराज को स्वर्ग की सीढ़ी करार दिया था। यही वजह है कि कांग्रेस के साधारण उम्मीदवारों के सामने बड़े-बड़े जमीदारों और राजनीतिज्ञों को मुँह की खानी पड़ी।

कांग्रेस सरकार के समय में लड़ाई-झगड़ों की एक हवा बह चली थी। इसका कारण यह नहीं था कि सरकार की नीति भयंकर थी, बल्कि स्वतन्त्रता की भावना का यह एक जीता जागता नमूना था। अब तक लोग आशाहीन होकर सरकारी कर्मचारियों की धौंस को सहन करते रहे। किसान और मजदूर निराश होकर जमींदारों और मिल मालिकों के सामने चूँ तक नहीं कर सकते थे। उनकी आवाज सरकारी दफ़्तरों तक नहीं पहुँच सकती थी। लेकिन कांग्रेस सरकार के आते ही उनके दिलों में आशा का संचार हुआ। वर्षों से सोई हुई भावना पुनः जागृत हो उठी। इसलिये यह स्वाभाविक था कि वे अपने अधिकारों की माँग पेश करते। बेजा हरकतों से लाभ उठाते रहने के कारण उनके विरोधी दल इस अपमान को नहीं सहन कर सकते थे। उन्हें यह खयाल न था कि दलित जातियाँ भी किसी समय अधिकार और समानता की माँग पेश करेंगी। ऐसी दशा में यदि कांग्रेस को एक बहुत बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। विदेशी सरकार की धाक कुछ समय के लिये दूर हो गई थी। इसलिये वह किसी के अत्याचार को अब सहन नहीं कर सकती थी। रही बात हिन्दू और मुसलमानों के साम्प्रदायिक झगड़ों की। दोनों सम्प्रदायों में बैर विरोध की भावना बढ़ने लगी। जगह-जगह पर साम्प्रदायिक दंगे उठ खड़े हुये। इसके लिये भी कांग्रेस सरकारें जिम्मेवार नहीं ठहराई जा सकतीं। इसके मूल में अधिकारों और आशाओं की वही भावना छिपी हुई थी जो अन्य वर्गों में थी। मुसलिम लीग गलत बातों से काँग्रेस को दोषी ठहराना चाहती थी, परन्तु उसे इस बात का मौका नहीं मिला। काँग्रेस सरकारों की नीयत शुरु से अखीर तक सचाई और ईमानदारी की रही।

प्रान्तीय स्वराज में अनेक अड़चनें उपस्थित हुईं। मध्यप्रान्त में डाक्टर खरे (Khare Episode) की चन्द गलतियों से काँग्रेस मन्त्रियों को इस्तीफ़ा दे देना पड़ा। यह प्रश्न इतना बढ़ा कि सारे हिन्दुस्तान में सनसनी सी फैल गई। खैर किसी तरह मामला बाल-बाल

बच गया और कांग्रेस सरकारों को इस्तीफ़ा देने की नौबत न आई। इसी प्रकार राजनीतिक कैदियों को छोड़ने के विषय में गवर्नरों और मन्त्रियों में मतभेद उपस्थित हुआ। मालूम पड़ा कि अब कांग्रेस सरकारी जिम्मेवारी से हाथ खींच लेगी, परन्तु यह प्रश्न भी किसी तरह टल गया। अन्त में योरप की लड़ाई आरम्भ होते ही काँग्रेस सरकारों के सामने कुछ ऐसे मसले पेश हुये कि उन्हें विवश होकर त्यागपत्र देना पड़ा। प्रान्तों के गवर्नर अपने निजी अधिकारों द्वारा शासन को चलाते रहे। कुछ थोड़े से सलाहकार उनकी सहायता के लिये नियुक्त कर दिये गये। लड़ाई के बाद आज फिर काँग्रेस प्रान्तीय शासन को चला रही है। उसकी पिछली सब योजनायें काम में लाई जा रही हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात राष्ट्रीय सरकार अपनी पूरी शक्ति से देश की उन्नति में तल्लीन है।

प्रान्तीय स्वराज और गवर्नर के विशेषाधिकार

१९३५ के संघ-शासन-विधान में प्रान्तीय स्वराज की व्यवस्था तो की गई थी परन्तु इसका महत्व दूसरी ओर से कम कर दिया गया था। गवर्नरों को इतने विशेषाधिकार प्रदान किये गये थे कि उनके सामने मन्त्रियों के अधिकार सूर्य के सामने दीपक की तरह थे। गवर्नर जब चाहते उनके कामों में हस्तक्षेप कर सकते थे। यहाँ पर उनके विशेषाधिकारों की चर्चा विस्तृत रूप से नहीं की जा सकती। पिछले अध्याय में इसका वर्णन किया गया है। ये अधिकार इतने अधिक थे कि आवश्यकता पड़ने पर वह अकेले ही शासन को अपनी इच्छानुसार चला सकता था। यदि मन्त्री निकाल दिये जाते और धारा-सभायें बर्खास्त कर दी जातीं तो उसकी शकल किसी तानाशाह से कम न होती।* उन्हें जो आदेश पत्र (Instrument of Instrucrions) दिये गये थे उनकी सहायता से वे प्रान्तीय शासन को चलाने के लिये एक-मात्र जिम्मेवार थे। मन्त्रियों की कार्य-कुशलता पर उतना विश्वास नहीं किया गया था जितना उसकी अकेली इच्छा पर। मन्त्री अपने कामों के लिये धारा-सभा के प्रति उत्तरदायी अवश्य थे, परन्तु गवर्नर की जिम्मेवारी केन्द्रीय सरकार के प्रति थी। जिस प्रान्त का प्रधान शासक अपने कार्यों के लिये धारा-सभा के प्रति

---

*While his new ministers lack knowledge of the working of the administrative machine, or even of general policy, he, the Governor, had marvellous

जिम्मेवार नहीं था वह स्वराज प्राप्ति का दावा नहीं कर सकता था। जब तक जनता को आवाज का शासन में मूल्य नहीं था तब तक एक जिम्मेवार सरकार की स्थापना कैसे कही जा सकती थी। १९३७ का प्रान्तीय स्वराज शर्तों और रुकावटों से घिरा हुआ था। शासन-विधान को देखते हुए प्रजा के अधिकार नहीं के बराबर थे। जब कभी प्रान्तीय सरकारें किसी बड़ी योजना को कार्यान्वित करतीं तो उनके हाथ पैर बाँध दिये जा सकते थे। के० टी० शाह लिखते हैं "शासन की महत्वपूर्ण बातें भारतीय मन्त्रियों के हाथों से छीन ली गई थीं।"* नये शासन-विधान में ये कमजोरियाँ न रहें, इसका ध्यान रक्खा जा रहा है।

प्रान्तीय सरकार की मातहती में काम करने वाले अफसर मन्त्रियों के अधिकार से बाहर रक्खे गये थे। यदि मन्त्री किसी अफसर के विरुद्ध कोई कार्रवाई करते तो वह गवर्नर के पास इसकी फरियाद कर सकता था। ऐसी नाजुक परिस्थिति में मन्त्री अपने ही आधीन कर्मचारियों को इस बात के लिये प्रेरित नहीं कर सकते थे कि वे अमुक तरीके पर काम करें। प्रान्तीय विभाग की बड़ी बड़ी नौकरियाँ केन्द्रीय सरकार की मुट्ठी में रक्खी गई थीं। खर्च के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकारों को पूरी आजादी हासिल नहीं थी। यहाँ तक कि सामाजिक सुधारों तक में गवर्नर दखल दे सकता था। मन्त्रियों की सलाहें जब चाहे ठुकरा सकता था। किसी भी दृष्टि से प्रान्तीय स्वराज की योजना पूर्ण नहीं थी।

ऊपर कहा गया है कि बृटिश भारत दो प्रकार के सूबों में विभाजित

---

opportunities to be a defacto as well as dejure head of the executive government of his province.

* (a) Substantially the most important part of the executive work was removed from the sphere of the Governor's constitutional advisers.

(b) The Governor continued to be the main spring of action and the real motor force in driving the machinery of provincial government.

(c) The Government of the province was literally the government by the Governor.

चीफ कमिश्नरों के सूबे और प्रान्तीय स्वराज

किया गया था। गवर्नरों के सूबों की संख्या ११ थी और बाकी ६ चीफ कमिश्नर के सूबे कहलाते थे।* बृटिश बिलोचिस्तान, दिल्ली, अजमेर, मेरवाड़ा कुर्ग, अंडमन, नीकोबार और पंथ पिपदैला चीफ कमिश्नर के सूबे कहलाते थे और इनका प्रधान चीफ कमिश्नर कहलाता था। वह सीधे गवर्नर-जनरल के प्रति जिम्मेवार था। प्रत्येक प्रान्त में एक चीफ कमिश्नर रहता था। जो अपनी इच्छानुसार शासन करता था। शासन सम्बन्धी सलाहें उसे गवर्नर-जनरल से लेनी पड़ती थीं। कुर्ग को छोड़ कर अन्य चीफ कमिश्नरों के सूबों में कोई धारा-सभा नहीं बनाई गई थी। सारी जिम्मेवारी चीफ कमिश्नर को दी गई थी। इन सूबों में प्रांतीय स्वराज की कोई चर्चा ही नहीं थी। संघ कार्यकारिणी तथा संघ धारा-सभा द्वारा जितनी आज्ञायें प्राप्त होतीं वे सब चीफ कमिश्नरों के सूबों में लागू की जातीं। केवल बृटिश बिलोचिस्तान में गवर्नर-जनरल के निजी आज्ञा के बिना वे लागू न होतीं। दिल्ली और अजमेर मेरवाड़ा को केन्द्रीय धारा-सभा में प्रतिनिधत्व दिया गया था। कुर्ग की लेजिस्लेटिव कौंसिल को अधिकार दिया गया था कि वह केन्द्रीय धारा-सभाओं में दो सदस्य चुन कर भेज सके। अंडमन और नीकोबार को एक भी प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं था।

चीफ कमिश्नरों के सूबों को किसी प्रकार की राजनीतिक स्वतन्त्रता नहीं दी गई थी। हिन्दोस्तान पहले से ही दो भागों में विभाजित किया गया था। बृटिश भारत और देशी रियासतों में जो राजनीतिक भेदभाव किया गया था उसके दुष्परिणाम हमारी नजरों के सामने मौजूद हैं। रियासतों में जिम्मेवार शासन का नाम भी नहीं था वहाँ की प्रजा राजनैतिक अधिकारों को नहीं जानती थी। बृटिश सरकार उनके मामलों में दखल देने से इसलिये इनकार करती थी कि उसके सुलहनामों में फरक पड़ता। बृटिश सूबों को तो उसने थोड़ी बहुत आजादी दी थी, लेकिन रियासतों के मामलों में हाथ डाल कर वह अपनी शर्तों को भंग करना नहीं चाहती थी। देशी रियासतों की बात तो छोड़ दीजिये, स्वयं बृटिश प्रांतों को सरकार ने दो श्रेणियों में बाँट रक्खा था। गवर्नरों के सूबों में जनता को कुछ अधिकार प्राप्त थे, लेकिन चीफ कमिश्नरों के सूबे केन्द्रीय सरकार की मर्जी पर चलाये जाते थे। उनमें रहने वाले

* पाकिस्तान की स्थापना के बाद भारतीय सूबों की संख्या कम हो गई है।

निवासी राजनीतिक स्वतन्त्रता के उतने ही प्यासे थे जितने गवर्नरों के सूबों में। उनकी संख्या भले ही कम रही हो, परन्तु उनकी आजादी की भावना को कुचला नहीं जा सकता था। पूर्ण स्वतन्त्रता के बाद प्रान्तों का ही नहीं, वरन् प्रांत और रियासतों का भी भेद-भाव दूर किया जा रहा है।

पिछड़े हुये भाग और प्रान्तीय स्वराज

इसी तरह हिन्दोस्तान के कुछ हिस्से 'पिछड़े हुए' (Backward areas) घोषित कर दिये गये थे। ये हिस्से मद्रास, बंगाल, पंजाब, आसाम, पश्चिमोत्तर प्रदेश, संयुक्तप्रांत, बिहार, मध्यप्रांत व बरार, तथा उड़ीसा प्रांतों में थे। इनका शासन प्रबन्ध गवर्नर अपने अधिकारों द्वारा करते थे। इन विभागों में निवास करने वाली जनता को कोई राजनीतिक अधिकार नहीं था। यद्यपि यह भाग किसी न किसी प्रांतीय सरकार की अधीनता में रक्खे गये थे, फिर भी प्रांतीय मंत्रिमंडल इनके कामों में हाथ नहीं डाल सकते थे। इनमें रहने वाले व्यक्तियों को आजादी का लेश मात्र भी नहीं दिया गया था। यदि इन विभागों के निवासी अनपढ़ और असभ्य थे तो बृटिश सरकार अपने १५० वर्ष के जीवन में इन्हें सभ्य बना सकती थी। इनकी राजनीतिक स्वतन्त्रता की जिम्मेवारी बृटिश सरकार के ऊपर थी। स्वतन्त्र भारत में हर पिछड़ी हुई जाति को ऊपर उठाने का विशेष रूप से प्रयत्न किया जा रहा है। उसके राजनीतिक अधिकारों की रक्षा का उत्तरदायित्व राष्ट्रीय सरकार भली भाँति अनुभव करती है।

परिशिष्ट

स्वतन्त्रता से पहले यदि कोई विदेशी इस देश का भ्रमण करता और उसे यह मालूम न होता कि सभी सूबे एक ही सरकार के अधिकार में थे तो उसे यह सन्देह होता कि भारत में दो विदेशी सरकारों का राज्य था। एक का अधिकार गवर्नर के सूबों पर और दूसरी का चीफ कमिश्नर के सूबों पर था। यह दलील बहुत ही नाजुक है कि अन्य प्रांतों की सहानुभूति उनके साथ थी। हमारी सहानुभूति, इटली, इङ्गलैंड, अबीसीनियाँ, स्पेन आदि सभी देशों से है। जब तक वे हमारी बराबरी में खड़े नहीं होते तब तक उन्हें हम अपना भाई नहीं समझ सकते। प्रांतीय स्वराज को चलाकर इस बात की परीक्षा कर ली गई थी कि इससे हिन्दोस्तान अपने राष्ट्रीय उद्देश्य पर नहीं पहुँच सकता था। प्रान्तीय सरकारों तथा लोकमत की परवाह न कर

इस देश को विश्वव्यापी युद्ध में सम्मिलित कर देना प्रान्तीय स्वराज के सर्वथा प्रतिकूल था। इन बातों को भुलाकर भावी शासन-विधान की आशा से कांग्रेस फिर शासन को चलाने लगी थी। १९४७ में राष्ट्रीय सरकार ने १९३५ के संघ-शासन-विधान में कुछ परिवर्तन कर प्रान्तीय सरकारों को इस बात का अवसर प्रदान किया कि वे जनता के हित में अपनी सम्पूर्ण शक्ति को लगावें। तब से प्रान्तों में नये जीवन का संचार हुआ और ग्रामीण जनता में राजनीतिक सन्देश पहुँचाने का उसे अवसर मिला। प्रान्तीय मन्त्रिमंडल स्वतन्त्र राजनीतिक वातावरण से लोक-हित की अनेक योजनाओं को कार्यान्वित करने में तल्लीन हैं। इधर १९४९ के अन्त तक भावी शासन-विधान भी तैयार हो जायगा, जिसमें प्रांतीय शासन की अवस्था और भी दायित्वपूर्ण एवं ठोस होगी।

स्वायत्त-शासन

(LOCAL SELF-GOVERNMENT)

अध्याय ११

प्रान्तीय विभाग

(Provincial Division)

प्रान्तों का विभाजन

प्रत्येक प्रान्त कमिश्नरियों में बाँटा गया है। शासन की सुविधा के लिये इसका विभाजन नितान्त आवश्यक है। भारतीय सूबे इतने बड़े हैं कि इनका शासन-प्रबन्ध इन्हें एक इकाई मान कर नहीं किया जा सकता। कुछ प्रान्त तो यूरोप के कितने ही देशों से कई गुने बड़े हैं। बंगाल का क्षेत्रफल फ्रांस के बराबर रहा है। प्रत्येक का क्षेत्रफल लगभग २००००० वर्ग मील है। मद्रास का क्षेत्रफल ग्रेट बृटेन तथा आयरलैंड से ¼ गुना बड़ा है। दोनों १४०००० वर्ग मील में फैले हुये हैं। पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध का क्षेत्रफल फ्रांस से आधा है। पंजाब की जनसंख्या जर्मनी तथा बम्बई और सिन्ध प्रांत को स्पेन के बराबर रही है। प्रत्येक प्रान्त लगभग ८ या ९ कमिश्नरियों में और कमिश्नरियाँ जिलों में विभाजित की गई हैं।

हिन्दोस्तान में कुल २६६ जिले रहे हैं। इनका क्षेत्रफल तथा जनसंख्या अलग अलग है। कुछ जिले बहुत ही बड़े और कुछ बहुत छोटे हैं। बङ्गाल प्रान्त के मैमनसिंह जिले में स्विटजरलैंड से अधिक आदमी रहते हैं। विजगापट्टम जिले का क्षेत्रफल और आबादी डेन्मार्क से अधिक है। संयुक्तप्रान्त के कुछ जिले न्यूजीलैंड बड़े हैं। तिरहुत कमिश्नरी की जनसंख्या कनाडा से अधिक है। हिन्दोस्तान में सबसे बड़ा जिला विजगापट्टम है। इसका क्षेत्रफल १७१६८ वर्गमील है। दूसरा नम्बर थारपारकर (बम्बई) जिले का है। सम्पूर्ण जिलों का औसत क्षेत्र-फल ४०७५ वर्गमील और औसत जन-सख्या १०००००० है। बहुत कम जिले हैं जिनका क्षेत्रफल १५०० वर्गमील से कम है। शायद ही किसी जिले की आबादी ५००००० से कम है। इन जिलों की जलवायु तथा पैदावार एक-सी नहीं है। एक जिले में कुछ भाग उपजाऊ

और कुछ ऊपर हैं। हर जिले में शहर और देहात की बोलचाल में अन्तर मिलेगा। आर्थिक दृष्टि से कुछ जिले सम्पन्न और कुछ गरीब हैं। कुछ जिले इतने घने बसे हैं कि हर व्यक्ति को २ एकड़ तक भूमि खेती के लिए नहीं मिलती।

कलेक्टर या जिलाधीश

जिले का प्रधान ज़िलाधीश कहलाता है। कुछ प्रांतों में यह कलक्टर और कुछ में डिप्टी कमिश्नर कहलाता है। अपने ज़िले में वह सरकार का प्रतिनिधि है। आम तौर से वह सिविल सरविस का एक सदस्य होता है। प्रान्तीय सिविल सरविस के सदस्य भी इस पद पर नियुक्त किये जाते हैं। वेतन की दृष्टि से कलेक्टर का स्थान अपने ज़िले में सबसे बड़ा नहीं है, परन्तु अधिकार की दृष्टि से इससे बढ़ कर कोई दूसरा पदाधिकारी नहीं होता। इसे दोहरे अधिकार प्राप्त हैं। कलेक्टर की हैसियत से उसे अपने ज़िले में मालगुज़ारी वसूल करने का अधिकार दिया गया है, परन्तु वह भूमि-कर को घटा-बढ़ा नहीं सकता। भूचाल, अकाल, महामारी आदि विपत्तियों के समय मालगुजारी घटाने की सिफारिस वह प्रांतीय सरकार से कर सकता है। मजिस्ट्रेट के नाते वह जिले की छोटी कचहरियों का निरीक्षक होता है। पुलीस के कामों की देख-रेख तथा उन्हें सलाह आदि देने का उसे पूरा अधिकार प्राप्त है। अपने जिले की सम्पूर्ण भूमि से वह परिचित होता है। मालगुज़ारी वसूल करते समय उसे छोटे-बड़े सभी लोगों से मिलने का अवसर मिलता है। जिले में शांति रखने की एक-मात्र जिम्मेवारी इसी पर है। इसीलिये साल के कई महीने वह अपने जिले का दौरा करता है। इस दौड़ान में वह जिले की हर तहसील में लोगों से मिलता है, उनकी हालत पूछता है और वहाँ से सब प्रकार की जानकारी हासिल करता है।

जिले में शासन के लिए कई विभाग बनाये गये हैं। उनका सम्बन्ध प्रान्तीय सरकार से है। पुलीस, आबपाशी, सड़कें तथा इमारतें, खेती व्यवसाय, अस्पताल, तथा फैक्टरी आदि विभिन्न पदाधिकारियों की मातहती में रक्खी गई हैं, लेकिन इसके प्रधान कलेक्टर की राय से अपना कार्य करते हैं। अपने अपने कार्यों की सूचना ये उसे देते रहते हैं। यदि ऐसा न हो तो वह इतनी बड़ी जिम्मेवारी को नहीं निबाह सकता। प्रत्येक विभाग का प्रधान अपने कार्यों के लिए स्वतन्त्र होते हुए भी अपने आपको कलेक्टर से नीचे समझता है। कलेक्टर की

मातहती में काम करने वाले पदाधिकारी सीधे जनता के सम्पर्क में रहते हैं। इनकी देख-रेख के लिए उसे बहुत ही सचेत रहना पड़ता है। कुछ तो इनके कार्यों की देख-रेख के लिए और कुछ अपने जिले का अध्ययन करने के लिए वह एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूमता रहता है। यद्यपि उसका निश्चित निवास-स्थान शहर में होता है, फिर भी वह ग्रामीण बातों से अनभिज्ञ नहीं रहता। साल के ६ महीने उसे इन्हीं देहातों में बिताने पड़ते हैं। जिले के रस्म-रवाज, वहां की बोली, उसकी आर्थिक परिस्थिति तथा लोगों की सभ्यता—इन सब से वह भली भांति परिचित होता है। पालाडे के कथनानुसार वह प्रांतीय सरकार रूपी शरीर का विभिन्न अंग है।*

कलेक्टर का रुतबा अपने जिले में इतना बड़ा होता है कि साधारण लोग इसे सरकार के नाम से सूचित करते हैं। उनका विश्वास है कि वही इनका एकमात्र शासन-कर्त्ता है। किसी तरह की सहायता या छूट की आवश्यकता पड़ती है तो वे इसी का आश्रय लेते हैं। किसानों की मालगुजारी में कठिन से कठिन परिस्थिति में तब तक कोई छूट नहीं दी जा सकती जब तक वह इसकी सिफारिस न करे। विभागों की वृद्धि के कारण तथा आवागमन की सुविधा होने से उसके कर्त्तव्य आज और भी बढ़ गये हैं। कागजी कार्रवाइयाँ इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि उसे बाहर जाने का अवसर बड़ी कठिनाई से मिलता है। इससे उसके अधिकारों पर कुछ आघात पहुँचता है। कहा जाता है कि कलेक्टर के अच्छे दिन अब चले गये।† लेकिन अब भी वह अपने जिले का सम्राट् है। अधिकारों से बढ़कर उसका प्रभाव अपने जिले पर कहीं अधिक पड़ता है। जिले का बड़े से बड़ा जमींदार अथवा सेठ साहूकार उसकी आज्ञा नहीं टाल सकता। यदि कलेक्टर का व्यक्तित्व बड़ा है और वह अपने चरित्र तथा आन्तरिक गुणों से पूर्ण है तो अपने जिले में किसी देवता से कम नहीं माना जाता। कुछ कलेक्टरों के नाम जनता में

---

* He is the eyes the ears, the mouth and the hand of the Provincial Government within his district and serves as its general representative.

† the golden days of the civil service, when the Collector of a district was the monarch of all he surveyed, are definitely gone.

इतने अधिक प्रसिद्ध हैं कि लोग उनकी अनुपस्थिति को अभी तक अनुभव करते हैं। गाँव में अभी तक यह कहावत प्रचलित है कि 'क्या तुम कलेक्टर हो?' इसका तात्पर्य यह है कि ग्रामीण जनता के लिये कलेक्टर से बढ़कर कोई दूसरा पदाधिकारी नहीं जान पड़ता।

सरकारी विभाग में यही एक ऐसा पदाधिकारी है जिसे जनता और बड़े अफसर दोनों के सम्पर्क में आने का अवसर मिलता है। अपने जिले की असलियत से यह भलि भाँति परिचित रहता है। जिले की उन्नति के लिये इसे सब कुछ करने का अधिकार है। यदि यह शासक अद्वितीय योग्यता का हुआ तो अपने जिले को अद्भुत उन्नति कर सकता है। आजमगढ़ जिले में एन० सी० मेहता का नाम तब तक अमर रहेगा जब तक मेहता पुस्तकालय की एक एक ईंट बाकी रहेगी। इससे भी बढ़कर उनको प्रखर बुद्धि से जो लाभ वहाँ के किसानों को पहुँचा वह सर्वदा स्मरणीय है। कुछ अंग्रेज कलेक्टरों ने भी इसी प्रकार की अमर कीर्ति से अपने जिलों को लाभ पहुँचाया है। उसके क्षेत्र बहुमुखी हैं। अपने जिले में भूमि विभाजन, कर्ज से किसानों की छूट, झगड़े का निपटारा, अकाल-पीड़ितों की सेवा, इत्यादि इत्यादि कार्य उसे करने पड़ते हैं। ग्रामीण जीवन में उसका व्यक्तित्व सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है।* पुलीस, जेल, म्युनिसिपलटीज, सड़कें, शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, दवा, टैक्स, इत्यादि इत्यादि कार्यों की देख-रेख उसे करनी पड़ती है। इन कार्यों को देखते हुए उसे कई प्रकार की जानकारी रखनी होती है।† केवल किताबी ज्ञान से काम नहीं चल सकता। एक ओर उसे लोगों की जान-माल की रक्षा के लिये शान्ति की व्यवस्था करनी पड़ती है, और दूसरी ओर व्यापार, शासन, न्याय तथा धन-धान्य की वृद्धि का उपाय सोचना पड़ता है।

१९१९ ई० तक कलेक्टर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का सभापति होता था परन्तु अब ऐसा नहीं है। स्वायत्त शासन (Local Self-Government) की स्थापना के बाद डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का अधिकार जनता को

---

*The Collector is a strongly individualised worker in every department of rural economy.

†He should be a lawyer, an accountant, a financier, a ready writer of state-papers. He ought also to possess no mean knowledge of agriculture, political economy and engineering.

दे दिया गया। इससे कलेक्टर को बहुत सी छोटी-छोटी बातों से अवकाश मिला। अब उसे इन कार्यों की ओर एक साधारण नजर रखनी पड़ती है। जब कभी प्रान्तीय सरकार डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अथवा म्युनिसिपल बोर्ड के कार्यों से असंतुष्ट होती है तो इनका भार कलेक्टर को सुपुर्द कर दिया जाता है। इन बोर्डों की मीटिंगों में वह जब चाहे बैठ सकता है। इसके लिये उसे किसी की आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं है। यदि वह उनके कार्यों से असंतुष्ट है और उसकी समझ में इनकी कार्य-वाहियों से जिले की शान्ति तथा उन्नति में बाधा पड़ती है, तो वह इसकी सूचना प्रान्तीय सरकार को दे सकता है। यदि कलेक्टर का कार्य अपने जिले में अत्यंत सराहनीय है और उसे शासन के अनेक अनुभव प्राप्त हैं तो वह कमिश्नर अथवा गवर्नर का पद प्राप्त कर सकता है।

जिले का कलेक्टर अपने हद में किसी बादशाह से कम नहीं है। उसकी प्रतिष्ठा और आत्म-सम्मान का जिसने अध्ययन किया है वह इसे अच्छी तरह समझ सकता है। उसके सरकारी अधिकार भले ही सीमित हों; परन्तु जिले की जनता उसके साथ रहती है। बड़े बड़े धनी-मानी लोग उसकी मुट्ठी में होते हैं। किसानों की हालत वह भली-भाँति अध्ययन कर उसमें काफी उन्नति कर सकता है। छोटे छोटे ग्राम-व्यव-साय को वह उन्नति दिला सकता है। अपने रचनात्मक विचारों को कार्यान्वित करने के लिये वह सामग्री एकत्र कर सकता है। लेकिन साथ ही यदि वह आराम-तलब हुआ, और रात दिन अपने बंगले में पड़ा रहा, तो उसके विचारों से जिले को कोई लाभ नहीं हो सकता। उसे अत्यंत परिश्रमी और दृढ़ विचार वाला होना पड़ता है। कागजी कारवाइयाँ उतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं जितनी बाहरी देख-रेख। उसे हर समय इस बात पर नज़र रखनी पड़ती है कि जिले में कोई खास दलबन्दी अथवा वैर-भाव तो नहीं पैदा हो रहे हैं। विशेष कर वर्तमान राष्ट्रीय उत्थान के युग में उसे और भी सचेत रहना पड़ता है। एक ओर तो उसे जनता की सेवा का ध्यान होता है और दूसरी ओर अपने बड़े अफ़सरों की आज्ञायें माननी पड़ती हैं। उसे हर प्रकार के लोगों से मिलने का अवसर पड़ता है। सबसे मानसिक अध्ययन की छाप उसके मस्तिष्क पर गहरी पड़ती है।

राजनीतिक संगठन की मशीन उसके हाथ से बाहर है। जिले की सीमा में वह कमी-बेशी नहीं कर सकता। शासन प्रबन्ध के ढाँचे को बदलने का उसे अधिकार नहीं है। फिर भी अपने प्रभाव से वह जिले

में बहुत कुछ कर सकता है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा म्युनिसिपल बोर्ड के ऊपर उसके व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पड़ता है। इन दोनों के सहयोग से जिले को शिक्षा, सफ़ाई, सड़कें तथा शान्ति में विशेष रूप से वृद्धि की जा सकती है ; जिले के सभी सरकारी कर्मचारियों पर अधिकार होने से वह जिस प्रकार की व्यवस्था चाहे कर सकता है। इञ्जीनियर, डाक्टर, पुलीस सुपरिन्टेन्डेन्ट, खजानची इत्यादि सब उसकी सलाह से काम करते हैं। य द वह किसी वस्तु में विशेष रुचि रखता है तो उसके प्रचार के लिये वह बहुत कुछ कर सकता है। अगर उसके दिमाग में कोई लाभदायक योजना आवे तो वह आसानी से काम में लाई जा सकती है।

कलेक्टर के न्याय सम्बन्धी अधिकार

अपने जिले में प्रधान कार्यकारिणी के अतिरिक्त उसे न्याय विभाग का भी कुछ कार्य करना पड़ता है। वह पहले दर्जे का मजिस्ट्रेट कहलाता है। जिले में जितने मजिस्ट्रेट हैं वे सब इसकी मातहती में कार्य करते हैं। मजिस्ट्रेट की हैसियत से उसे यह अधिकार है कि किसी अपराधी को दो वर्ष जेल और १००० रुपया जुर्माना कर सके। ऐसा इसलिये किया गया है कि अपनी सीमा के अन्दर वह पूर्ण शान्ति रख सके। यदि लोगों को इसका भय न हो, तो कोई इससे प्रभावित नहीं हो सकता। जिले के सारी पुलीस इसके अधिकार में है। वह जिसे चाहे गिरफ्तार कर उस पर कोई अभियोग लगाकर मुकदमे चला सकता है। पुलीस सुपरिन्टेन्डेन्ट उसे इस बात की सूचना देता रहता है कि जिले में शांति की क्या व्यवस्था है, या अपराधियों की मात्रा कितनी है। थानों की मदद से गाँव गाँव की रिपोर्ट उसे हर समय मिलती रहती है। यदि पुलीस किसी व्यक्ति को अपराधी ठहराये तो कलेक्टर तुरन्त मुकदमा चला कर बड़ी आसानी से उसे जेल में डाल सकता है। ऊपर कहा गया है कि कलेक्टर की हैसियत से उसका काम सारे जिले की मालगुजारी वसूल करना है। लेकिन इसके अलावा उसे प्रान्तीय सरकार को भूमि तथा खेती सम्बन्धी और भी सलाहें समय समय पर देनी पड़ती हैं। किसानों की समस्या भारत की समस्याओं की ¾ है। इसी से हम अनुमान कर सकते हैं कि हिन्दोस्तान की बेहतरी में कलेक्टर का कितना हाथ है। किसानों और जमींदारों के बीच में जितने झगड़े पैदा होते हैं उनका निपटारा यही करता है।

पुलीस और जेल दोनों उसके हाथ में रक्खे गये हैं। उसके न्याय सम्बन्धी अधिकारों की रक्षा अन्य न्यायाधीशों से अधिक हो सकती है। गाँवों के लोग पुलीस को सरकार का दाहिना हाथ समझते हैं। लाल पगड़ी उनके लिये काल के समान थी। राष्ट्रीय भावना के कारण यह भय बहुत कुछ कम हो चला है, लेकिन फिर भी इस विभाग की कड़ाइयों से हर आदमी डरता है। जहाँ तक जेल की बात है, राजनीतिक कैदियों को छोड़ कर बाकी सभी लोग इसे नरक समझते हैं। कोई व्यक्ति ऐसा न होगा जो खुशी खुशी जेल का जीवन पसन्द करे। अपराध करने पर भी लोग जेलों में जाने से डरते हैं। कलेक्टर इन दोनों कुंजियो को अपने हाथ में रखता है। किसी की हिम्मत नहीं है जो उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन करे।

कलेक्टर को न्याय सम्बन्धी अधिकार पहले पहल लार्ड कार्नवालिस के समय में दिये गये। उसने पहले इसे बंगाल प्रान्त में आरम्भ किया और फिर बाद में इसकी नकल और सूबों में की गई। न्यायाधीश और कलेक्टर के पद एक में जोड़ दिये गये। कलेक्टर का पद वारेन हेस्टिंग्ज के समय से आरम्भ किया गया है। जब कम्पनी ने बंगाल की दीवानी अपने हाथ में ली तो उसे इस पद की आवश्यकता हुई। बहुत दिनों तक मजिस्ट्रेट और कलेक्टर के स्थान एक दूसरे से भिन्न थे। कलेक्टर को आरम्भ में कोई मुकदमा फैसला करने का अधिकार न था। अपने जिले में उसका पद मजिस्ट्रेट से बड़ा होता था। उसकी तनख्वाह भी अधिक थी। मजिस्ट्रेट तरक्की करके कलेक्टर हो जाया करते थे। मजिस्ट्रेट को उतना अनुभव नहीं होता था जितना कलेक्टर को। इससे काम में असुविधा होती थी। इस कमी को दूर करने के लिये दोनों का पद एक में शामिल कर दिया गया। तब से बराबर ये दोनों पद एक के हाथों में चले आ रहे हैं। कहा जाता है कार्य रूप में वह मुकदमे फैसले करने का काम कम करता है, उसका कार्य अन्य मजिस्ट्रेटों की कारवाइयों की देख-भाल करना है। सारांश यह है कि कलेक्टर स्वयं किसी सरकार से कम नहीं है।*

---

* In short, the Collector-Magistrate is the eye and ear of the Provincial Government and to the People, who have to look up to him in everything, he is Government itself.

जिले में सरकारी खज़ाने पर उसका अधिकार होता है। भूमि-कर सम्बन्धी रुपये-पैसे की अपील उसके पास की जाती है। यद्यपि उसे अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेट का अधिकार दिया गया है, परन्तु उसकी इजलास में बहुत कम नये मुकदमे पेश किये जाते हैं। कारण यह है कि उसके पास इतने अधिक काम हैं कि वह दफ्तर में बैठकर उन्हें पूरा नहीं कर सकता। अकसर अपने जिले में उसे इधर उधर जाने की आवश्यकतायें पड़ती हैं। उसके इजलास में अपील के मुकदमे अधिक आते हैं। तहसीलदारों को तथा अन्य मजिस्ट्रेटों के फैसलों की अपील इसके यहाँ की जाती है।

कलेक्टर की जिम्मेवारियों की कोई सूची नहीं बनाई जा सकती।

कलेक्टर की अन्य जिम्मेवारियाँ

जिले की मालगुजारी और न्याय के अतिरिक्त उसे और भी काम करने पड़ते हैं। चीजों का भाव उसे समझना पड़ता है और इसी हिसाब से वह खेती की आमदनी का अनुमान करता है। प्रान्तीय सरकार को अच्छे और बुरे मौसमों की उसे सूचना देनी पड़ती है। खेती के लिये किसानों को वह कर्ज देता है। अपने जिले की एक एक बात उसे प्रान्तीय सरकार को बतानी पड़ती है।† किसी किसी जिले में उसे छोटी छोटी रियासतों का भी प्रबन्ध करना पड़ता है। यदि किसी ताल्लुकेदार की हैसियत नाबालिग के हाथ में है तो कलेक्टर को उसे सँभालना पड़ता है। बड़े बड़े विशेषज्ञ अपनी जानकारी को पुष्ट करने के लिए उससे सलाहें लेते हैं। जिले में अनेक सभायें तथा संगठन बनते रहते हैं। वह इनकी कार्रवाइयों में शरीक हो सकता है। फिर भी किसी न किसी प्रकार से इनके कामों की ओर उसे नजर रखनी पड़ती है। उसे यह अधिकार है कि वह किसी भी सभा-सोसाइटी में हिस्से ले सके। कोई संगठन उसे निमंत्रित भले ही न करे, परन्तु वह अपने अधिकार से उसकी पूरी जानकारी हासिल कर सकता है। जब कोई विशेष व्यक्ति किसी जिले में पदार्पण करता है तो उसको सूचना सबसे पहले कलेक्टर को दी जाती है। उसका स्वागत करने का अधिकार उसे पूरा पूरा दिया गया है। यदि वह खाली

---

† He must keep the Government informed of the condition of his district, and of all notable occurrences therein, from meetings of the Indian National Congress to cattle fairs.

नहीं है तो अपनी इच्छा से इस कार्य को किसी और को सुपुर्द कर सकता है। जिले में जो कुछ भी आपत्तियाँ आयें उन सबको उसे निवारण करना पड़ता है। रोम-निवासियों की एक कहावत के अनुसार सरकार की सारी ज़िम्मेवारी उसके ऊपर रक्खी गई है।* वह कामों को भले ही कुछ सहायकों में विभाजित कर दे, परन्तु अपनी जिम्मेवारी को वह नहीं बाँट सकता।

रजिस्ट्रार की हैसियत से कलेक्टर को शादी के लिये बुलाया जा सकता है। कोई स्त्री या पुरुष विवाह करने पर राजी है तो वे उसके बंगले पर जाकर अपनी इच्छा प्रकट कर सकते हैं। एक ओर उसे फौजी पोशाक में चोर और डाकुओं का पीछा करना पड़ता है, लड़ाई और दंगों को शान्त करना पड़ता है, और दूसरी ओर किसानों की बेहतरी सोचनी पड़ती है, जिले के सभी समुदायों की भलाई का ध्यान रखना पड़ता है, अकाल और महामारी में उन्हें सहायता पहुँचानी पड़ती है तथा शांत और गंभीर भाव से बड़े से बड़े लोगों की खुशी में शरीक होना पड़ता है। हर अदना-आला से उसे तरह तरह की बातें दरियाफ्त करनी पड़ती हैं।

प्रातःकाल वह लोगों से मिलने-जुलने में अपना समय व्यतीत करता है। यदि अवसर मिला तो कुछ बाहरी जाँच-पड़ताल भी करता है। रोज़ वह कचहरी जाता है, लेकिन न्याय विभाग के अन्य कर्मचारियों की तरह वह १० से ४ तक वहाँ नहीं बैठ सकता। अधिक से अधिक ३ या ४ घण्टे वह कचहरी में मुकदमों की कार्रवाई सुनता है। कचहरी के बाद वह डाक पर नजर डालता है। जितनी चिट्ठियाँ आई रहती हैं उन सब के जवाब भले ही न लिखे, परन्तु उन्हें समझने की जिम्मेवारी उसे दी गई है। इनके अलावा उसे स्वयं कुछ अपनी निजी चिट्ठियाँ भेजनी पड़ती हैं। जब इससे फुरसत मिली तो निमंत्रण-पत्रों की ओर उसकी नजर जाती है। कई जगहों से सभा-सुसाइटियों में शरीक होने के लिये निमन्त्रण पत्र आये रहते हैं। यदि उसे आवश्यकता महसूस होती है तो सब काम बन्द करके एक दो जलसों में शरीक होता है।

---

* Whatever the trouble may be, the district officer must see to it. In the old Roman Formula, he must take care that the state suffer no harm. He may divide the work, but he cannot divide the responsibility.

कलेक्टर के लिये यह असम्भव है कि वह सब में शरीक हो सके। सरकारी फरमानों के अतिरिक्त, जनता की इत्तला पर भी उसे नजर रखनी पड़ती है। उसका टेलीफोन सबेरे से ११ बजे रात तक फँसा रहता है। उसकी चिट्ठियों की टोकरियाँ भरी रहती हैं। कानूनों में रद्दोबदल की सूचनायें इतनी अधिक आती हैं कि उस पर उसे घण्टों विचार करना पड़ता है। जिले में हर समय सरकार को ओर से कोई न कोई योजनायें कार्यान्वित होती रहती हैं। इन सब में उसे अपनी सलाह देनी पड़ती है। धारा-सभाओं में जितने प्रश्न पूछे जाते हैं अथवा प्रस्ताव पास किये जाते हैं उनमें बहुतों का जवाब उसे देना पड़ता है।

इन तमाम बातों से स्पष्ट है कि कलेक्टर को कागजी कार्यवाहियाँ अधिक करनी पड़ती हैं। जिले की दौड़ानमें भी चिट्ठियों का पुलिन्दा उसका पीछा नहीं छोड़ता। इससे शासन में मदद भले ही मिले, लेकिन जनता की वास्तविक भलाई में बाधा पड़ती है। अपनी दौड़ान में ही उसे जनता से सम्पर्क प्राप्त करने का अवसर मिलता है। वहीं उसे अपने मातहत कर्मचारियों की देख रेख करनी पड़ती है। अच्छा होता कि उसका अधिकतर समय जनता की भलाई और सरकारी कर्मचारियों की कार्य कुशलता में व्यतीत होता। परन्तु सरकारी कागजात वहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़ते। उसका ध्यान गाँवों की ओर कम जाने पाता है। यदि उसकी दौड़ान में कागजी कार्यवाहियाँ किसी और को सुपुर्द कर दी जायँ तो वह जिले को अधिक लाभ पहुँचा सकता है। दौड़ान में ही उसे हर प्रकार की स्वतन्त्रता रहती है।* एक बार किसी कलेक्टर ने एक फौजी पेन्शनर से पूछा, 'तुम्हारे पड़ोस में शान्ति तो है।' पेन्शनर ने जवाब दिया, "चारों ओर अशान्ति है। आप समझते हैं कि जिला आपकी बपौती है, लेकिन आपको मालूम होना चाहिये कि आजकल दरिद्र नारायण का राज्य है।" इस जवाब से कलेक्टर भौचक्का-सा रह गया और पेन्शनर को साथ लेकर दौरा आरम्भ कर दिया।

इस प्रकरण को समाप्त करने के पहले यह आवश्यक है कि कलेक्टर

---

* In camp, he sees with his own eyes, hears with his own ears, and smells with his own nose, and there by gains much useful information.

कलेक्टर के दोहरे अधिकारों की मीमांसा

के दोहरे अधिकार पर एक दृष्टि डाली जाय। आज लगभग ८० वर्षों से इस विषय पर वाद-विवाद हो रहे हैं, परन्तु अभी तक इसका अन्तिम निर्णय नहीं हुआ। यह कहा जाता है कि कलेक्टर और मजिस्ट्रेट के पद एक व्यक्ति को नहीं मिलने चाहिये। इससे प्रजा की स्वतन्त्रता में बाधा पड़ती है, साथ ही उसके अधिकारों पर आघात होता है। जो व्यक्ति कार्य-कारिणी विभाग का प्रधान हो वही अंतिम फैसला भी दे यह बात कुछ समझ में नहीं आती। भारतीय और अँग्रेज दोनों इस बात से सहमत हैं कि ये दोनों पद एक दूसरे से अलग होने चाहिये। १८९९ ई० में बृटेन के कुछ प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों ने, जिनमें लार्ड हावहाउस, सर रीचर्ड गार्थ, सर चार्ल्स सारजेन्ट के नाम उल्लेखनीय हैं, भारतमन्त्री से यह प्रार्थना की थी कि कलेक्टर और मजिस्ट्रेट पद एक दूसरे से अलग कर दिये जायँ। इन दोनों प्रकार के कर्त्तव्यों को एक के हाथ में रहने से जो हानियाँ हो सकती हैं उनका वर्णन किया गया था। कुछ लोगों ने इसका विरोध भी किया था। तबसे बराबर इस पर वादविवाद होते रहते हैं और जितनी बातें पक्ष और विपक्ष में कही जा सकती हैं, लगभग सभी कही जा चुकी हैं। उन सबके उल्लेख की यहाँ आवश्यकता नहीं है। जो लोग इसके पक्षपाती हैं वे कहते हैं कि इन दोनों पदों को एक के साथ में रहने देना चाहिये। इससे न्याय में सुविधा होती है और जिले का शासन अधिक मजबूती और कुशलता-पूर्वक किया जाता है। कलेक्टर की शक्ति इससे दूनी बढ़ जाती है। यदि ये दोनों प्रकार के कार्य अलग कर दिये जायँ तो बेकार का खर्च बढ़ेगा। लेकिन ये दलीलें गलत ठहराई गई हैं और बहुमत से यह बात निश्चित की गई है कि ये दोनों पद दो व्यक्तियों को मिलने चाहिये।

किसी राजनीतिज्ञ का कहना है कि थोड़े समय तक एक सीमित क्षेत्र में इन दोनों पदों को अलग करके यह अनुभव कर लिया जाय कि कहाँ तक इस प्रश्न में जान है। १९०८ ई० में सर हारवे एडमसन ने वाइसराय की कौंसिल में यह घोषित किया था कि सरकार इन पदों को अलग करने पर विचार करेगी। कुछ गैरसरकारी सदस्यों ने एक प्रस्ताव भी पास किया था कि सरकार इन्हें अलग कर दे। परन्तु सरकार की नीति में कोई फरक न पड़ा। २४ फरवरी सन् १९०९ ई० को संयुक्त-प्रान्त के न्याय विभाग के मन्त्री डाक्टर कैलाशनाथ काटजू ने प्रान्तीय

असेम्बली में यह प्रस्ताव पेश किया कि ये दोनों पद एक दूसरे से अलग होने चाहिये। असेम्बली के कुछ सदस्यों ने इसका काफी विरोध किया। एक सदस्य ने तो यहाँ तक कह डाला कि 'यह योजना एक खिचड़ी है।'† परन्तु कांग्रेस के सदस्यों ने इसका पूरा पूरा समर्थन किया। वे इस बात पर जोर देते रहे कि 'न्याय और हुकूमत का प्रबन्ध अलग कर दिया जाय।' सदस्यों का यह भी कहना था कि "जिस तरीके पर अदालत में फैसले किये जाते हैं उनमें हर हालत में गैर इन्साफी होती है। पुलीस के चालानी मुकदमों में मजिस्ट्रेट को आजादी के साथ फैसला करना कठिन हो जाता है। एक कान्स्टेबुल की बात रखने के लिये मजिस्ट्रेट और सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस तक इन्साफ का गला घोटने के लिये तैयार हो जाते हैं। न्याय संबंधी मामलों का फैसला मुन्सफों की अदालतों द्वारा कराया जाय। क्योंकि वे कलेक्टर के असर से बाहर रहते हैं। जो अदालत वारंट जारी करती है, और जिसके जरिये से गिरफ्तारियाँ होती हैं, उसे फैसला का अधिकार नहीं मिलना चाहिये।"

सच्ची बात यह है कि कार्यकारिणी और न्याय को एक में शामिल करने से एक बहुत बड़ी बेइंसाफी की गई है। बृटिश सरकार की नीति अधिकार को एक सूत्र में बाँधने की रही है। कलेक्टर को यह अधिकार देकर यह बात आसान कर दी गई है कि जब जिसे जरूरत समझी जाय कानून के शिकंजे में फँसा लिया जाय। एक ओर तो कलेक्टर पुलीस से गिरफ्तारी करवाता है और दूसरी ओर खुद उसका फैसला करता है। अर्थात् जो व्यक्ति मुकदमा चलाता है वही स्वयं जज बन कर उसे फैसला भी करता है। इससे पुलीस के अधिकारों की बृद्धि होती है और इंसाफ में फरक पड़ता है। कलेक्टर के सभी मुकदमे ईश्वर के वाक्य समझे जाते हैं। कांग्रेस आरम्भ से ही इस बात की माँग पेश करती रही है कि ये दोनों पद एक दूसरे से अलग कर दिये जायँ। १९२२ ई० में स्टुअर्ट कमीटी इस कार्य के लिये नियुक्त की गई थी कि वह इस पर गहराई के साथ विचार करे। कमीटी ने यह फैसला किया कि इन दोनों प्रकार के अधिकारों को अलग करना निहायत जरूरी है। कमीटी के

---

† It seems to me that the scheme, as put forward, is a kind of Khichari palatable in some parts but distasteful in others. It is neither fish nor fowl nor good red berry. It is a jumble of executive and judicial functions.

कथनानुसार सरकार का खर्च इससे ३ या ३½ लाख रुपया सालाना बढ़ जाता है, परन्तु प्रान्तीय सरकार इतने खर्च को बर्दाश्त कर सकती है। जब यह बात सर्वसम्मति से मान ली गई है कि सरकार के तीनों विभाग—कार्यकारिणी, व्यवस्थापिका और न्याय—अलग अलग रहने चाहिये तो फिर उन्हें एक में मिलाने की क्या आवश्यकता है ? संयुक्त-प्रांत की छोटी धारा-सभा में किसी सदस्य ने इसका उत्तर देते हुये कहा था कि बृटिश गवर्नमेंट और कांग्रेस गवर्नमेंट के तर्ज में जमीन व आसमान का फरक है। अब तक जो कानून बने हैं वे सब के सब बृटिश गवर्नमेंट के बनाये हुये हैं और उनमें ख़ास तौर से इस बात का ख़याल रक्खा गया है कि वे कौन कौन से जरिये अथवा कानून हो सकते हैं, जिनसे हम अपनी रिआया को कानूनी शिकंजों में जकड़ कर उनको किसी किस्म की आज़ादी न दें।"

बृटिश शासन समाप्त हो गया। भारतीय जनता एक स्वतन्त्र वातावरण में रह रही है। इसलिए उन तमाम कानूनों में संशोधन होने चाहिये जिनसे हमारी राजनीतिक स्वतन्त्रता में बाधायें पड़ती हैं। देश और विदेश के प्रमुख राजनीतिज्ञों का यह मत है कि 'ज़िले का शासन-प्रबंध सम्पूर्ण भारतवर्ष के शासन प्रबन्ध की बुनियाद है।† इतना स्वीकार करते हुये भी यदि ज़िले के प्रधान शासक के अधिकारों में सुधार नहीं किया जाता तो यह हमारी सबसे बड़ी बदकिस्मती है। इधर कुछ वर्षों से कागजी कार्रवाहियों की वृद्धि के कारण जिले का शासन और भी लापरवाही से किया जाता है। कलेक्टर को दौड़ा लगाने की फ़ुरसत कम मिलती है। इससे वह जनता की असली दशा से अनभिज्ञ रहता है। अतएव उसके पद में दो प्रकार के सुधारों की आवश्यकता है। एक तो उसे मजिस्ट्रेट का काम न दिया जाय। मुक़दमे फैसला करने के लिये दूसरे पदाधिकारी नियुक्त किये जायँ। दूसरे प्रकार का सुधार यह होना चाहिये कि उससे कागज़ी काम कम कराया जाय। उसे ज़िले का दौड़ा करने का अधिक से अधिक मौका मिलना चाहिये, ताकि वह जनता के सुख-दुख की हालत से परिचित हो सके। इन सुधारों के अतिरिक्त ज़िले का प्रधान शासक केवल हिन्दोस्तानियों को बनाना चाहिये। विदेशी हमारे रस्म-रवाज़ों को उतना नहीं समझ

† The efficient administration of the district is the first condition for the proper Government of India.

सकते जितना एक हिन्दोस्तानी। कलेक्टर को अक्सर अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ किसानों और जमींदारों से मिलने का मौका मिलता है। वह किसी तरह अपना काम भले ही चला ले, परन्तु रस्म-रवाज, रहन-सहन, संस्कृति, धर्म, जातीय भाषा, संगठन आदि से अनभिज्ञ रह कर कोई पदाधिकारी जनता की सच्ची भलाई नहीं कर सकता।

ज़िले का विभाजन तथा अन्य कर्मचारी

प्रत्येक जिले में ३ से ८ तक तहसीलें होती हैं। इनकी जिम्मेदारी तहसीलदार को रहती है। उसे सहायक मजिस्ट्रेट भी कहते हैं। इनका काम मालगुजारी वसूल करके कलेक्टर के पास भेजना होता है। इसके अलावे ये मुक़दमे भी फैसला करते हैं। हर तरह से ये कलेक्टर की मातहती में काम करते हैं। कुछ मुक़दमों को फैसल करने का अधिकार अवैतनिक मजिस्ट्रेट को है जो हर तहसील में चार होते हैं। तहसील को परगना हाकिम भी कहते हैं। तहसीलदार परगना हाकिम भी कहलाता है। तहसील का विभाजन थानों में किया गया है। थाने का मालिक थानेदार कहलाता है। हर गाँव की खबर थानेदार को रखनी पड़ती है। गाँवों के प्रबन्ध के लिये हर गाँव में एक ग्राम पंचायत होती है। इसमें ५ या ७ सदस्य होते हैं। गाँव का मुखिया इसका प्रधान होता है। रात में गाँव की रखवाली करने के लिये चौकीदार रक्खे गये हैं। एक चौकीदार ५ या ६ गाँवों की रखवाली करता है। इसका पद पैत्रिक होता है। सरकारी विभाग में काम करने वाले कर्मचारियों में यही एक ऐसा कर्मचारी है जिसका पद पैत्रिक (Hereditary) है। गाँवों की खेती का ब्योरा रखने तथा खेतों की पड़ताल आदि करने के लिये पटवारी होता है। इसका पद कभी कभी पैत्रिक होता है। एक पटवारी के मर जाने पर उसके लड़के को आमतौर से यह पद दे दिया जाता है। पटवारी को गाँव का खज़ानची (Village accountant) भी कहते हैं। किसी समय में यह हर गाँव की आमदनी और खर्च का हिसाब रखता था, परन्तु अब ऐसा नहीं है। आरम्भ में इसे वेतन नहीं दिया जाता था। गाँव के प्रत्येक घर से इसे अन्न और कुछ पैसे दिये जाते थे। लेकिन अब इसे २५ या ३० रु० मासिक वेतन दिया जाता है। इस प्रकार गाँव से लेकर ज़िले का शासन-प्रबन्ध किया जाता है। इन विभिन्न पदाधिकारियों का सूक्ष्म वर्णन इसलिये किया गया है कि यथास्थान फिर इनका विस्तृत वर्णन किया जायगा।

अध्याय १२

स्थानीय स्वराज

(Local Self-Government)

स्थानीय स्वराज की आवश्यकता

स्थानीय स्वराज अथवा स्वायत्त-शासन का स्वरूप सभी देशों में एक सा नहीं मिलता। कहीं-कहीं तो एक ही देश में स्थानीय संस्थाओं को सभी जगह एक-से अधिकार नहीं दिये गये हैं। प्रत्येक व्यक्ति वा संगठन की आज़ादी उसकी योग्यतानुसार दी जाती है। साथ ही यह भी निश्चित है कि जब तक स्वतन्त्रता प्रदान नहीं की जाती तब तक कोई संस्था अपने आपको उन्नतिशील नहीं बना सकती। इन्हीं दोनों कारणों से स्थानीय स्वराज की व्यवस्था की गई है। यदि सभी कार्य सरकारी कर्मचारी करते रहें, और जनता को किसी प्रकार की जिम्मेवारी न दी जाय, तो शासन में अनेक बुराइयाँ पैदा हो जायेंगी। नौकरशाही से हमें काफी हानियाँ उठानी पड़ती हैं। जनता जितनी ही कूप-मंडूक होती है उतनी ही नौकरशाही उसके लिये घातक सिद्ध होती है। कोई सरकार, चाहे वह जनता की ही क्यों न हो, अपने आपको इससे वंचित नहीं रख सकती। राज्य का विस्तार काफी बड़ा होता है। खास कर वर्तमान युग में राज्यों की सीमा इतनी बड़ी है कि नौकरशाही की धौंस से बचना मुश्किल है। कुछ तो इसकी बुराइयों से बचने के लिये और कुछ राज्य की उन्नति के लिये स्थानीय स्वराज की व्यवस्था की गई है। यदि ज़िले का शासन-प्रबन्ध कलेक्टर और तहसीलदारों को सौंप दिया जाय तो सरकार की शक्ति कमज़ोर नहीं हो सकती लेकिन जनता को इस बात का अवसर नहीं मिल सकता कि वह अपनी घरेलू बातों को अपने आप देखे।

राज्य की सीमा बड़ी होने से सरकार एक स्थान से उसका प्रबन्ध अच्छी तरह नहीं कर सकती। हर समय सतर्क रहने के अतिरिक्त उसे व्यय भी अधिक करना पड़ेगा। इतने पर भी जनता तब तक सन्तुष्ट नहीं रह सकती जब तक उसे शासन सम्बंधी कुछ अधिकार न दिये जायँ। अधिकारों के प्रयोग के लिये उसे एक ऐसा क्षेत्र मिलना चाहिये

जिसमें वह उन्हें कार्यान्वित कर सके। उदाहरणतः डिस्ट्रिक्ट तथा म्युनिसिपल बोर्ड का प्रबन्ध जनता को इसीलिये दिया गया है कि वह इन्हें अपने अधिकारों का क्षेत्र बनाये। साथ ही सरकार को भी कुछ आसानी हो। जिन कामों के लिये सरकार को पैसे खर्च करने पड़ते, और सैकड़ों नौकर रखने पड़ते, उन्हीं कामों को इन बोर्डों के अन्दर लोग अपने शौक से करने के लिये तैयार रहते हैं। मुहल्लों तथा गाँवों की सफाई रखना सरकार के लिये उतना जरूरी नहीं है जितना वहाँ के निवासियों के लिये। यदि लोग सफाई के महत्व को समझ जायँ तो वे अपने आप गन्दगी से पहरेज करने लगेंगे। सफाई-इन्सपेक्टर की कोई खास जरूरत न होगी। यदि लोग गन्दगी के दास हों तो सैकड़ों इन्सपेक्टर उन्हें साफ़ नहीं रख सकते। स्थानीय स्वराज इसी आत्म-निर्भरता की शिक्षा देता है दैनिक जीवन की आवश्यकतायें सबको मालूम हैं। आवश्यकता इस बात की है कि लोगों में इतनी जिम्मेवारी आ जाये कि वे बिना किसी डर-भय से उन्हें पूरा करने लगें। इस प्रकार के भाव तभी पैदा होंगे जब जनता को धीरे-धीरे सभी राजनीतिक जिम्मेवारियाँ सौंप दी जायँ। जहाँ तक स्थानीय विषयों का सम्बन्ध है, यह बात निर्विवाद है कि जनता इनका प्रबन्ध अच्छी तरह कर सकती है। अपनी शिक्षा, सफाई, दवा तथा इस तरह की छोटी-छोटी चीजों के लिये उसे पूरी आजादी मिलनी चाहिये। सरकार स्थानीय संस्थाओं को इतनी रकम दे कि वे अपने क्षेत्र को एक सुसंगठित राष्ट्र के मानिन्द बना सकें। यदि राज्य का कोना-कोना इसी प्रकार के शासन के अन्तर्गत आ जाय तो सरकार की चिन्तायें बहुत कुछ दूर हो जायँ।

सरकार को सबसे बड़ी चिन्ता आन्तरिक व्यवस्था और बाह्य आक्रमण की होती है। पहली चिन्ता को दूर करने के लिये उसे तरह-तरह के कानून बनाने पड़ते हैं, कचहरियों की स्थापना करनी पड़ती है और अनेक कर्मचारी नियुक्त करने पड़ते हैं। बाह्य आक्रमण तो कभी-कभी होते हैं, और इसके लिये उसका फौजी विभाग काफी होता है। किसी असाधारण परिस्थिति में जनता की मदद लेनी पड़ती है, परन्तु ऐसे अवसर बहुत कम आते हैं। राज्य की नींव आन्तरिक व्यवस्था पर कायम है। यह व्यवस्था तब तक नहीं की जा सकती जब तक जनता और सरकार दोनों का सहयोग प्राप्त न हो। कुछ कामों को सरकार अपने कर्मचारियों से कराये और इसके लिये वह प्रजा से टैक्स वसूल करे। लेकिन स्थानीय कामों को वह वहीं के निवासियों को सुपुर्द कर दे।

इसके लिये जितने पैसे की जरूरत हो सरकार उतने की व्यवस्था करे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बहुत कुछ काम बिना पैसे के ही हो सकता है। सरकार को इसके लिये बेगार कराने की आवश्यकता न होगी। लोग अपनी खुशी से इन कामों को करेंगे। मान लीजिये गाँवों के मामूली झगड़ों को फैसल करने के लिये पञ्चायतें बना दी जाती हैं। इसके अलावे पंचायत को गाँव की सफाई तथा पूरे प्रबन्ध की जिम्मेवारी सौंप दी जाती है। उसे उचित साधन भी प्रदान कर दिये जाते हैं। ऐसा करने से कचहरियों की आवश्यकता कम होगी। ५० प्रतिशत मुकदमे गाँवों में ही तै हो जाया करेंगे। वकील, मुख्तार, मुहर्रिर तथा न्यायालयों के अन्य कर्मचारी को जो पैसे मिलते हैं वे जनता की ही जेब में रहेंगे। इससे बढ़ कर शासन की उपयोगिता हो ही क्या सकती है। इसी तरह की और भी जिम्मेवारियाँ स्थानीय संस्थाओं को सौंप कर सरकार आन्तरिक प्रबन्ध से बहुत कुछ निश्चिन्त रह सकती है।

स्थानीय स्वराज सुसंगठित राष्ट्र की पहचान है। जिस मात्रा में सरकार जनता का विश्वास करेगी उसी हद तक वह उसे शासन-प्रबन्ध में आजादी प्रदान करेगी। जो सरकार जनता की भलाई से उदासीन है वह शासन की उपयोगिता पर ध्यान नहीं दे सकती। स्थानीय स्वराज की स्थापना से सरकार का खर्च घटाया जा सकता है। कम से कम खर्च करके वह अधिक से अधिक लोकप्रिय बन सकती है। बहुत से टैक्स जो प्रजा से वसूल किये जाते माफ कर देने होंगे। एक पन्थ दो काज होगा। प्रजा का धन बचेगा और उसकी जिम्मेवारी बढ़ेगी। तीसरे, देश की आंतरिक व्यवस्था सुदृढ़ होगी। जनता को इस बात का अवसर मिलेगा कि वह अपने विचारों का प्रदर्शन करे। शासन का भार सँभालने से उसे अनेक प्रकार की ट्रेनिंग हासिल होगी। छोटी-छोटी बातों से हटकर उसका ध्यान बड़ी बातों की ओर आकर्षित होगा। जनता के अन्दर आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन के भाव पैदा होंगे। तात्पर्य यह है कि जनता और सरकार के बीच में सहयोग की एक ऐसी दीवार खड़ी होगी जिससे अशान्ति और कुव्यववस्था का प्रश्न जाता रहेगा। स्थानीय स्वराज का क्षेत्र कम है; लेकिन इसका प्रभाव बहुत ही व्यापक है। बड़ी से बड़ी बातों को जनता अपने सहयोग से सुलझा सकती है। स्थानीय संस्थाओं का जाल देश के कोने-कोने में फैला हुआ है। सच्चे प्रजातंत्रवाद की उन्नति तभी हो सकती है जब सरकार के आन्तरिक प्रबन्ध इन्हीं संस्थाओं द्वारा कराये जायँ। वह केवल इस बात की देख-रेख

रक्खे कि ये आपस में मिल कर काम करती रहें। जब कभी इनमें मत-भेद उत्पन्न हो जाय तो वह इसे दूर कर दे। इससे यह स्पष्ट है कि सरकार का कार्य जनता की जिम्मेवारी के रूप में परिणत हो जायगा। सरकार स्वयं गौण हो जायगी। चारों ओर स्थानीय संस्थायें दिखाई पड़ेंगी।

स्थानीय स्वराज सरकार की परेशानियाँ कम करने के अतिरिक्त जनता के अन्दर स्वाभिमान और लोक-लज्जा का भाव पैदा करता है। हर काम में लोगों की आम शिकायत रहती है कि यह और अच्छी तरह किया जा सकता है। जब वही काम उन्हें सुपुर्द कर दिया जाता है तो फिर उन्हें टीका-टिप्पणी का अवसर नहीं रह जाता। जनता को सामाजिक तथा राजनीतिक कार्यों में रुचि दिलाने के लिये स्थानीय स्वराज निहायत जरूरी है। उदासीनता पतन की जड़ है। जहाँ की सर-कार जनता की इस मनोवैज्ञानिक चित्तवृत्ति का ध्यान नहीं रखती, वह सदैव असफल रहती है। किसी क्षेत्र के निवासी केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारा-सभाओं से उतना सम्पर्क नहीं रखते जितना अपनी स्थानीय संस्थाओं से। स्थानीय बातों का प्रभाव उनके जीवन पर तत्काल पड़ता है। हर बात उनकी नजरों के सामने रहती है। कोई किसी को धोखा नहीं दे सकता। प्रत्येक जिले के निवासी आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक तथा व्यावहारिक सम्बन्ध के कारण आपस में मिले-जुले रहते हैं। सबकी रहन-सहन का पता चलता रहता है। सरकार उन बातों को सैकड़ों रुपये खर्च करके नहीं जान सकती जिन्हें वहाँ के निवासी रोज देखते रहते हैं। अतएव न्याय की दृष्टि से भी स्थानीय स्वराज नितांत आव-श्यक है। किसी स्थानीय घटना का अध्ययन सरकार उतनी अच्छाई के साथ नहीं कर सकती, जैसे ग्राम पञ्चायतें अथवा जिला वा म्युनिसिपिल बोर्ड कर सकते हैं। सरकारी महकमे में कभी-कभी घूसखोरी का जिक्र आता है। छोटी-छोटी बातों में सरकारी कर्मचारी घूस लेकर बातों को इधर से उधर कर देते हैं। लेकिन ग्राम-संस्थाओं के अधिकारों की वृद्धि करने से इस तरह की बुराइयाँ पैदा नहीं हो सकतीं। यदि किसी म्युनि-सिपलिटी के अन्दर कोई सदस्य घूस लेकर काम करता है तो वह शीघ्र निन्दा का पात्र समझा जाता है, और उसे सार्वजनिक कामों में स्थान नहीं दिया जाता। दुश्चरित्र और अन्यायी व्यक्ति स्थानीय कार्यों के लिये अयोग्य समझे जाते हैं। सरकार उन्हें इतनी बारीकी से नहीं पह-चान सकती जितनी जनता उन्हें पहचानती है। इसीलिये कहा जाता है कि सरकारी कामों को शुद्ध रखने का एकमात्र इलाज स्थानीय स्वराज है।

स्थानीय स्वराज का तात्पर्य

स्थानीय स्वराज एक ऐसा विषय है जिस पर कोई निश्चित राय नहीं दी जा सकती। कुछ लोग तो यहां तक कहते हैं कि इस शब्द का कुछ अर्थ नहीं है। जिस भाग को पूर्ण स्वतन्त्र कर दिया जाय उसे स्थानीय और प्रान्तीय कहने की क्या आवश्यकता है और यदि उसका सम्बन्ध ऊपर की शक्ति से है तो फिर उसे स्वराज कैसे कहा जाय। इसीलिये कहा जाता है कि किसी स्थानीय संस्था को पूर्ण स्वराज नहीं दिया जा सकता। लेकिन ऐसा हो सकता है कि ऊपरी शक्ति उन स्थानीय बातों में हाथ न डाले जिन्हें स्थानीय संस्थायें करने की योग्यता रखती हैं। जो संस्था व संगठन जिस कार्य को अधिक कुशलता-पूर्वक कर सकता है उसे उसका शासन-प्रबन्ध मिलना चाहिये। इससे कार्य सुगम हो जाता है और जनता को अपनी बुद्धि लगाने का अवसर मिलता है। किसी देश में स्थानीय संस्थाओं का क्षेत्रफल निश्चित नहीं किया जा सकता। भौगोलिक परिस्थिति इसका फैसला करती है। फ्रांस में ३८००० के लगभग स्थानीय संस्थायें (Communes) हैं जो स्थान म्युनिसिपल बोर्ड और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को प्राप्त हैं वही इन्हें भी मिला हुआ है। सब का क्षेत्रफल अलग-अलग है। कुछ संस्थाओं (Communes) का क्षेत्रफल केवल १० एकड़ है और कुछ ४०० वर्ग मील के घेरे में फैली हुई हैं। हमारे देश में भी इसी तरह का फरक दिखाई पड़ेगा। सभी शहरों में म्युनिसिपल बोर्ड हैं। कुछ की आबादी लाखों में है और कुछ हजार तक ही सीमित।

स्थानीय स्वराज की परिभाषा करते हुए एक राजनीतिज्ञ लिखता है, "स्थानीय स्वराज का तात्पर्य उस सरकार से है जिसके अन्दर सारी जनता को प्रतिनिधित्व द्वारा शासन में भाग लेने का अवसर प्राप्त हो।" यह परिभाषा बहुत ही व्यापक है। जब सभी स्थानीय विषयों में जनता को पूरी आजादी मिल जायगी तो पूर्ण स्वतन्त्रता इससे कोई अलग चीज नहीं रह जाती। स्थानीय स्वराज की दूसरी परिभाषा इस प्रकार की गई है, "कुछ विषयों में स्थानीय संस्थाओं को अपनी इच्छानुसार शासन करने का अधिकार प्रदान कर दिया जाता है। इस सीमित क्षेत्र के अन्दर जनता स्वयं अपना प्रबन्ध करती है। इसी का नाम स्थानीय स्वराज है।" वास्तव में स्थानीय स्वराज का तात्पर्य घरेलू स्वतन्त्रता से है। जैसे हर आदमी अपने घर में खाने, पीने, पहनने के लिये स्वतन्त्र है, उसी तरह स्थानीय विषयों में भी उसे कुछ सुविधायें

दे दी जाती हैं। जिस क्षेत्र में कुछ व्यक्ति निवास करते हैं वह उनका एक वृहत् कुटुम्ब बन जाता है। वहाँ की छोटी-छोटी बातों से वे अच्छी तरह परिचित रहते हैं। इसीलिये प्रजा की हितैषी सरकार उन्हें यह अधिकार दे देती है कि वे चन्द विषयों का प्रबन्ध अपने आप कर लें। केन्द्रीय सरकार भी उन्हें कर सकती है, परन्तु वह एक विदेशी शासन की तरह करेगी। बहुत सम्भव है उस क्षेत्र के लोग उससे सर्वथा असंतुष्ट रहें।

इससे भी बढ़कर स्थानीय स्वराज एक बहुत बड़े उद्देश्य को पूरा करता है। जनता की यह प्रबल इच्छा रहती है कि अधिक से अधिक राजनैतिक अधिकार उसे प्राप्त हों वर्तमान प्रजातन्त्रवाद के अन्दर चाहे जितनी भी कमजोरियाँ मौजूद हों, परन्तु इसका अन्तिम उद्देश्य यही है। लेकिन कोई भी सरकार प्रजा को वहीं तक जिम्मेवारी दे सकती है जहाँ तक वह इसे निबाहने की क्षमता रखती है। स्थानीय स्वराज इसकी पहली सीढ़ी है। इसी से प्रजा की जिम्मेवारी तथा कार्य कुशलता की परीक्षा होती है। जो व्यक्ति १० रुपये को अच्छी तरह खर्च कर सकता है उसे ५० रुपये खर्च करने का अवसर मिल सकता है, परन्तु जिसके अन्दर ४ पैसे सँभालने की ताकत नहीं है वह किसी बड़ी रकम की जिम्मेवारी कैसे ले सकता है। यदि वह चाहे तब भी उसे कोई नहीं दे सकता। इसी तरह जब स्थानीय विषयों का अधिकार जनता को दिया जाता है तो यह आशा की जाती है कि वह इन्हें अच्छी तरह चलायेगी। कुछ दिन व्यतीत होने पर इसके कार्य अपने आप जाहिर होने लगते हैं। जनता को स्वयं इस बात का पता चल जाता है कि शासन के कार्य में कितनी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं और उन्हें दूर करने की कहाँ तक योग्यता उसके अन्दर मौजूद है।

स्थानीय स्वराज का तात्पर्य जनता को अधिक से अधिक संतुष्ट करना है। दूसरे लोग हमारी आवश्यकताओं को उतना नहीं समझ सकते जितना हम स्वयं समझते हैं। इसलिये यह अच्छा होगा की हम अपने पड़ोसियों की सलाह से अपना प्रबन्ध स्वयं करें। घरेलू बातें छोटी होती हैं, लेकिन वे बड़ी बड़ी बातों से कम महत्व नहीं रखतीं। यदि किसी कुटुम्ब का संगठन बिगड़ जाय और सब लोग अलग अलग होकर मनमानी करने लगें तो सम्भव है अन्य कुटुम्बों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़े। गाँव के गाँव इस उदाहरण से बुरे बन सकते हैं। यह बात सरकार के वश से बाहर है कि जनता की इच्छा के विरुद्ध वह उसे बाँध कर

रक्खे। इसीलिये स्थानीय संगठन का महत्त्व किसी बड़े राजनीतिक संगठन से कम नहीं है। धारा-सभा के बर्खास्त हो जाने से, तथा किसी फरमान के जारी कर देने से हमारे जीवन पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना घरेलू झगड़ों तथा स्थानीय घटनाओं से। हिन्दोस्तान के प्राचीन सामाजिक अथवा राजनीतिक संगठन की ओर आँख उठाकर देखें तो पता चलेगा कि सभी बातें स्थानीय समझी जाती थीं। जब कभी कोई फैसला होता तो स्थानीय रसम-रवाज का ध्यान रक्खा जाता था। लेकिन आज ऐसा नहीं होता। इसकी व्यवस्था आज दूसरे ढंग पर की गई है। यही वजह है कि न्याय और सचाई की अनेक व्यवस्था करने पर भी जनता असन्तुष्ट रहती है। स्थानीय जनता को यह अधिकार प्राप्त होना चाहिये कि वह अपनी शिक्षा का उचित प्रबन्ध कर सके अपनी सुविधा के अनुसार सड़कें बना सके, तथा अपनी उन्नति के लिये तरह तरह के कार्य कर सके। इन कामों में लगे रहने के कारण शासन में अधिक से अधिक व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त होगा। राजा और प्रजा का भेद-भाव नाममात्र को बाकी रहे। स्थानीय स्वराज ही पंचायती राज कहलाता है। इस प्रकार की सरकार अधिक दृढ़ और स्थायी समझी जाती है।

स्थानी स्वराज में सुधार

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा म्युनिसिपल बोर्ड के अन्दर बहुत-सी बुराइयाँ मौजूद हैं। पिछले वर्षों में इनका इतिहास बड़ा ही हृदय-विदारक रहा है। १६३७ ई० में जब कांग्रेस ने प्रान्तीय शासन को अपने हाथों में लिया तो उसका ध्यान इन बुराइयों की ओर आकर्षित हुआ। सुधार की अनेक योजनायें पेश की गईं। सबने इस बात पर ज़ोर दिया कि स्थानीय संस्थाओं का संगठन बदलना चाहिये। मध्यप्रान्त के स्वायत्त शासन-विभाग के मन्त्री श्रीयुत डी० पी० मिश्र ने जो योजना पेश की वह विचार करने योग्य है। खेद है कि कांग्रेस अभी उसे कार्यान्वित न कर सकी थी कि उसे इस्तीफा दे देना पड़ा। संयुक्तप्रान्त, बम्बई तथा अन्य प्रान्तों में भी सुधार की नई नई योजनायें पेश की गई थीं। सब में इस बात पर जोर दिया गया था कि जब तक स्थानीय संस्थाओं का रूप न बदल दिया जायगा तब तक जनता अपने अधिकार से लाभ नहीं उठा सकती। श्रीयुत डी० पी० मिश्र लिखते हैं, सारे हिन्दोस्तान में स्थानीय संस्थाओं की दशा अत्यन्त शोचनीय है। कुछ इने-गिने दो चार बोर्डों को छोड़कर बाकी सब की आर्थिक दशा बड़ी ही डावाँडोल है स्थानीय संस्थायें ताने की निशान बन गई हैं। व्यक्तिगत इनमें लड़ाई-झगड़े

आमतौर से पाये जाते हैं। सदस्यगण जनता के पैसे का दुरुपयोग करनेके साथ ही साथ अपना अमूल्य समय व्यर्थ की बातों में खोते हैं। दलबंदियों में पड़कर योग्य से योग्य कर्मचारी निकाल बाहर कर दिये जाते हैं। परिणाम यह है कि स्थानीय संस्थायें बड़ी ही गैर जिम्मेवारी के साथ काम कर रही हैं।" कांग्रेस सरकार का विचार है कि स्थानीय बोर्डों में सम्मिलित निर्वाचन पद्धति जारी कर दी जाय जिससे साम्प्रदायिक कटुता दूर हो।

संयुक्तप्रान्त में स्वायत्त शासन के सुधार के लिये जो कमीटी बनाई गई थी उसने वर्तमान संगठन पर शोक प्रकट किया। कमीटी की राय में "स्थानीय संस्थाओं की दशा, विशेषकर गाँवों और कस्बों में बहुत ही निराशाजनक है। जो मशीन इन्हें चला रही है उससे जनता की सार्वजनिक उन्नति नहीं हो सकती। इसके विपरीत लोगों की रहन-सहन में उन्नति करने के लिये यह सभी प्रकार से असफल रही हैं।" स्थानीय संस्थाओं ने जितनी लापरवाही और गैर जिम्मेवारी से काम किया है उसका बुरा प्रभाव आम जनता पर साफ दिखाई पड़ता है। लोग कर्मचारियों के व्यवहार से अत्यन्त असन्तुष्ट हैं। किसी भी जिले में चेयरमैन तथा बोर्ड के मेम्बरों की हालत दरियाफ्त की जाय तो पता चलेगा कि सभी लोग उनसे असन्तुष्ट हैं। जो संस्थायें जनता की अधिक भलाई के लिये बनाई गई थीं, और जिनके प्रबन्ध की पूरी शक्ति उन्हीं के हाथों में सौंप दी गई थी, उन्हीं के कारण आपस में वैर-विरोध की वृद्धि हो, यह बात कुछ उलटी सी जान पड़ती है। कमीटी ने यहाँ तक कहा था कि "जिला और म्युनस्पिल बोर्ड की कार्रवाइयों में रत्ती भर भी दम नहीं है। दोनों ही अकर्मण्य तथा झगड़े के घर हैं।"

बम्बई में जो कामीटी इस कार्य के लिये बनाई गई थी, उसकी आवाज कुछ नम्र रही। उसने यह जाहिर किया कि संसार के सभी देशों में स्वायत्त शासन की दशा शोचनीय है। हिन्दोस्तान भी उसी लहर में बह रहा है। ऐसा एक भी देश दिखाई नहीं पड़ता जिसकी स्थानीय संस्थायें पाक साफ हों, और जिनकी कार्रवाइयों से जनता सन्तुष्ट हो। कमीटी का यह विचार है कि स्थानीय संस्थाओं में पैसे की कमी के कारण अनेक बुराइयाँ अपना घर कर गई हैं। यदि आज इनकी आर्थिक दशा ठीक कर दी जाय तो इनका कार्य सुचारु रूप से चलने लगेगा।

इन तमाम योजनाओं और कमीटियों के विचार से यह साफ जाहिर है कि कुछ न कुछ सुधार करने की आवश्यकता नितान्त जरूरी है। इन सबका सारांश यह है कि :—

१—मौजूदा स्थानीय संस्थाओं को मशीन दोषपूर्ण है। इसका पुनर्संगठन होना चाहिये।

२—इन संस्थाओं के कर्मचारी अयोग्य और अनभिज्ञ हैं। इनकी उचित ट्रेनिंग होनी चाहिये।

३—इनका आर्थिक सुधार होना चाहिये।

यदि ये तीनों बुराइयाँ दूर कर दी जायँ तो स्वायत्त शासन अपने उद्देश्य को पूरा कर सकता है। अब प्रश्न यह है कि क्या स्थानीय संस्थायें इस कमी को दूर करने की शक्ति रखती हैं? क्या उन्हें यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपने संगठन को जैसा चाहें बना लें? क्या अपने कर्मचारियों को नियुक्त करने तथा निकालने के अधिकार उन्हें प्राप्त हैं? क्या वे अपनी आर्थिक परिस्थिति को ठीक करने के लिये मनमाना टैक्स लगा सकती हैं? अथवा कर्ज ले सकती हैं? ये प्रश्न जब तक हल न होंगे तब तक यह कहना अत्यन्त कठिन है कि स्थानीय स्वराज की मौजूदा बुराइयों के लिये दोषी कौन है। इन्हें जानने के लिये यह आवश्यक है कि स्थानीय संस्थाओं की ताकत और उनके अधिकार पर दृष्टि डाली जाय।

स्वायत्त शासन की सीमा

स्थानीय संस्थाओं के अधिकार सीमित हैं। वे अपनी परिस्थिति ठीक करने तथा अपने को अधिक कार्यकुशल बनाने के लिये आजाद नहीं हैं। उन्हें कर्ज लेने का अधिकार नहीं है। जहाँ तक संगठन की बात है, वे रत्ती भर भी इसमें परिवर्तन नहीं कर सकतीं। जनता की यह आम शिकायत रहती है कि डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अथवा म्युनिसिपल बोर्ड उनके लिये स्कूल नहीं खोलते। हर गाँव को यह आशा रहती है कि वहाँ कोई न कोई स्कूल खोल दिया जाय। छोटे छोटे कस्बों के लिये बिजली और सीमेंट की सड़कें चाहिये। सड़कों के दोनों किनारों पर पेड़ होना जरूरी है। ये आशायें बुरी नहीं हैं, और जनता की माँग के लिये बहुत कुछ यथार्थ हैं। इससे पता चलता है कि वह अपने जीवन को उठाना चाहती है। अब वह दब्बू और अपने अधिकारों से अनभिज्ञ नहीं है। लेकिन प्रश्न तो यह है कि स्थानीय संस्थायें कहाँ तक इन माँगों को पूरा कर सकती हैं। जब तक हम उनकी शक्ति का अन्दाज न कर लें। तब तक हम उन्हें दोषी नहीं ठहरा सकते। काँग्रेस सरकारों ने इसे स्वीकार किया था कि इन संस्थाओं के अधिकार इतने कम हैं कि ये जनता की माँग को पूरा नहीं कर सकतीं। वर्तमान समय में जनता में जो असन्तोष इनकी ओर से फैले हुये हैं उन्हें दूर करने की शक्ति इनमें

नहीं है। यही सोचकर कांग्रेस ने यह विचार प्रकट किया था कि स्थानीय प्रबन्ध की सारी बातें इन संस्थाओं को दे दी जायँ। जब तक ऐसा न होगा तब तक इनकी जिम्मेदारी बंटी रहेगी। गैर जिम्मेदारी रह कर कोई संगठन अपने उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकता।

स्थानीय स्वराज का क्षेत्र अत्यंत संकीर्ण है। शिक्षा, सफाई और आवागमन इन तीनों बातों को छोड़कर उनके हाथ पैर बँधे हुये हैं। पण्डित मिश्र का कहना है कि जिस प्रकार प्रान्तों के विषय २१ विभागों में बाँटे गये हैं उसी प्रकार प्रत्येक जिले का कार्य २१ विभागों में बाँट दिया जाय। जिले की एक कौंसिल इन विभागों का प्रबन्ध प्रान्तीय सरकार की देख-रेख में करे। इससे कार्य में सुविधा होगी और संस्थायें अपनी जिम्मेदारी को अधिक महसूस करेंगी। प्रान्तीय धारा-सभा स्थानीय संस्थाओं के लिये कोई कानून पास करने का कष्ट न करे। इन मामलों में वे अपना व्यर्थ का समय और रुपया बर्बाद न करें स्थानीय कौंसिल (District Gouncil) अपनी सुविधानुसार इन नियमों को बना लें। मंत्रीमंडल तथा धारा-सभा का जो स्थान प्रान्त में है वही जिले की कौंसिल, कार्यकारिणी कमेटी तथा इसके सभापति को हो। संयुक्त-प्रान्त की कमेटी ने भी इस योजना की सराहना की थी। उसने इस बात की सिफारिश की थी कि यदि स्थानीय संस्थाओं को सफल बनाना है तो उनका संगठन प्रान्तीय सरकार के ढंग पर होना चाहिये। जिले की कौंसिल छोटे पैमाने पर उन तमाम कामों को करने के लिये आजाद होगा जो प्रान्तीय सरकार आज कर रही है।

१६१६ से लेकर १६३७ ई० तक स्थानीय संस्थाओं की असफलता पर दृष्टिपात करते हुये पंडित मिश्र लिखते हैं कि संस्थाओं की आजादी के बावजूद इन्हें चन्द बातों से इस कदर दूर रक्खा गया कि हर कदम पर इन्हें मुँह की खानी पड़ी। ये संस्थायें किसी योग्य व्यक्ति की मातहती में न थीं। प्रान्तीय सरकार का दोहरा शासन उन्हें इस बात का अवसर नहीं देता था कि वे अपने अन्दर से योग्य व्यक्तियों को खोज निकालें। जिले में इस प्रकार के विभाजन की कोई जरूरत नहीं है। यह सिद्धान्त गलत है कि कुछ मामलों में सरकारी कर्मचारी अपना हाथ रक्खें और बाकी जनता के हाथों में रहें। इस दो अमली हुकूमत से प्रजा को जो हानि हुई है उसका जीता जागता उदाहरण प्रजा के असंतोष रूप में हमारे सामने मौजूद हैं। सारे अधिकार जिले की कौंसिल को हों। वही योग्य से योग्य कर्मचारियों को खोज कर अपना कार्य कराये।

स्थानीय स्वराज अभी तक पूर्ण नहीं है। नागरिक शिक्षा के अभाव के कारण स्थानीय जनता में उन बातों की कमी है जो शासन को चलाने के लिये आवश्यक है। यही वजह है कि डिस्ट्रिक्ट तथा म्युनिसिपल बोर्ड की कार्रवाइयों से लोग असंतुष्ट रहते हैं। इनकी भीतरी कमजोरियों की बहुत कुछ जिम्मेवारी सरकार के ऊपर है। उसका यह फर्ज है कि वह जनता को अधिक योग्य और कार्य-कुशल बनाये। स्थानीय संस्थाओं के सुधार के लिये चन्द बातें निहायत जरूरी हैं। पहली चीज तो यह है कि सरकार सबके लिये नागरिक शिक्षा का उचित प्रबन्ध करे। छोटी कक्षा से ही नागरिकता की शिक्षा दी जाय। कोरे किताबी ज्ञान से भोले-भाले बच्चे अच्छे नागरिक तथा योग्य शासक नहीं बन सकते। हर गाँव में अनेक प्रकार की पञ्चायतें स्थापित की जायँ। ग्राम के सभी तजुरबेकार और योग्य व्यक्तियों की एक कौंसिल बनाई जाय। वही इन कमेटियों के कामों की देख भाल करे और मुकदमों का फैसला करे। सरकारी कर्मचारी स्थानीय संस्थाओं की आज्ञा के बिना किसी कार्य में दखल न दें। यदि संस्थायें किसी काम में लापरवाही करें तो सरकार उन्हें चेतावनी दे सकती है। सरकार पैसे से इनकी पूरी मदद करे। हर जिले का शासन वहाँ के निवासियों को सुपुर्द कर दिया जाय। थोड़े से सरकारी कर्मचारी उनकी देख-रेख के लिये रख दिये जायँ। जिन विषयों में सरकार कुछ सुधार करना चाहे उन्हें वह सलाह के रूप में स्थानीय संस्थाओं को दे सकती है। योग्य और विशेष जानकारी रखने वाले व्यक्तियों को वह इस कार्य के लिये नियुक्त कर सकती है कि वे स्थानीय बातों की खोज करके शासन को अधिक सुविधा-जनक तथा सरल बनावें। स्थानीय संस्थायें सरकार के इस कार्य में काफी मदद दे सकती हैं इससे ग्राम-व्यवसायों तथा अनेक ऐसी बातों में उन्नति हो सकती है जिनकी ओर सरकार को ध्यान देने का अवसर नहीं मिलता। साथ ही इन संस्थाओं में सम्मिलित निर्वाचन पद्धति भी आवश्यक है।

प्राचीन भारत और स्थानीय स्वराज

स्थानीय स्वराज के लिये हिन्दोस्तान प्रसिद्ध है। बृटिश राज्य से पहिले हिन्दू और मुसलमान दोनों कालों में यहाँ पञ्चायती राज की व्यवस्था थी। इसका विस्तृत वर्णन उन्नीसवें अध्याय में किया गया है। ग्राम और शहर दोनों के लिये दो प्रकार की संस्थायें थीं। शहरों के प्रबन्ध के लिये कई कमेटियाँ होती

थीं। सबके ऊपर एक प्रधान कमीटी होती थी। मोहन्जोदारो और हरप्पा नामक शहरों की खुदाई से पता चलता है कि शहरों का प्रबन्ध कितनी उत्तमता-पूर्वक किया जाता था। उनमें सफाई, रोशनी, सड़कों आदि की व्यवस्था आजकल से अच्छी थी। शहर एक खास नक़शे के अनुसार बसाये जाते थे। घरों की बनावट में इस बात का ध्यान रक्खा जाता था कि हर प्रकार की सुविधायें इनमें मौजूद हों। दूकानों की व्यवस्था एक नियम के अनुसार की जाती थी। एक प्रकार की चीज एक ही जगह बिक सकती थी। चारों ओर ऊँची और मजबूत दीवारें थीं। पाटलिपुत्र के वर्णन में इस प्रकार की दीवारों का जिक्र किया गया है। शहर में प्रवेश करने के लिये एक या दो फाटक होते थे। इन पर पहरे की व्यवस्था रहती थी। रात में पहरेदार इनकी रखवाली करते थे। आधुनिक वैज्ञानिक साधनों के न होते हुये भी यह व्यवस्था आजकल से कहीं अच्छी थी। शहर विभिन्न प्रकार के बगीचों और वाटिकाओं से भरे होते थे। कोई आदमी बिना प्रयोजन शहरों में नहीं रह सकता था। हर नये यात्री का नाम और पूरा पता लिख लिया जाता था। शहरी लोगों का जीवन नियमित था। रात और दिन दोनों समय घन्टे बजाये जाते थे। विशेष खतरे के समय एक खास घंटे से लोगों को इसकी सूचना दी जाती थी। चीजों का भाव ठीक करने के लिये अलग-अलग कमेटियाँ होती थी। सड़ी-गली चीजें बेचने की सख्त मुमानियत थी। दूकानदार अपनी चीजें उचित भाव से महँगा नहीं बेच सकता था। हर शहर में एक कोतवाली और कुछ सिपाही रहते थे। प्रबन्ध का सारा काम शहर के निवासियों को सुपुर्द किया गया था। आम तौर से शहर नदियों के किनारे हुआ करते थे। इससे व्यापार में सुविधा होती थी।

गाँवों के प्रबन्ध के लिये स्थानीय पञ्चायतें बनी हुई थीं। हर गाँव में एक बड़ी पञ्चायत होती थी। इसके नीचे कमीटियाँ होती थीं। इन्हीं को सब काम सुपुर्द किया गया था। प्रत्येक गाँव में एक क्लर्क, एक मुखिया, दो पहरेदार तथा तरह-तरह के पेशे वाले रहते थे। सबको अपने-अपने काम की जिम्मेवारी दी गई थी। गाँवों का जीवन सामूहिक था। नाई, धोबी, दर्जी, बढ़ई, सुनार आदि पेशे वाले सबकी भलाई के लिये काम करते थे। ग्राम-पञ्चायतें इनकी देख-रेख करती थीं। प्रत्येक गाँव स्वावलम्बी और सुखी था। बादशाह तक को गाँव के मामलों में हाथ डालने की इजाजत न थी। सरकारी कर्मचारी ग्राम-पञ्चायतों की इज्जत करते थे। सरकारी महकमे में इन पञ्चायतों की बात बड़े

वर्तमान स्थानीय संस्थाओं का विकास

"प्राचीन ग्रामीण संस्थाओं की रचना संकुचित दृष्टिकोण से की गई थी। इनका कर्त्तव्य बहुत ही साधारण था और इनके अन्दर जातीयता की प्रधानता थी। इनका काम प्रजा से टैक्स वसूल करना, और जान-माल की रक्षा करना था। इससे नागरिक शिक्षा में कुछ भी सहायता नहीं मिलती थी और न शासन का ही भार हलका होता था।

इस प्रकार के कथन में कोई दम नहीं है। प्राचीन स्थानीय संस्थाओं की प्रशंसा विदेशियों तक ने की है। जो संगठन हजारों वर्षों से चला आ रहा था, और जिसे तोड़ने की हिम्मत शेरशाह और अकबर ऐसे योग्य शासकों ने नहीं की, उसे संकुचित और बेकार कहना एक घोर अन्याय है। मैं यह मानता हूँ कि बृटिश राज्य के अन्दर स्थानीय संस्थाओं का संगठन किसी और तरह का है, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मौजूदा सभी चीजें पहले से अच्छी हैं। राजनैतिक स्वतन्त्रता की आवाज आज काफी बुलन्द है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि बृटिश राज्य के पहले हिन्दोस्तान में गुलाम बसते थे और उन्हें राजनीतिक अधिकार प्राप्त न थे। इस तरह की धारणायें गलत हैं और जो लोग प्राचीन इतिहास से परिचित नहीं हैं उन्हें सभी चीजें बृटिश राज्य की देन मालूम पड़ती हैं।

ऊपर कहा गया है कि बृटिश राज्य की नीति कुछ और रही है। हर मामले में विदेशीपन की बू हमारे देश में मौजूद है। यह स्वाभाविक है कि "यथा राजा तथा प्रजा"। अँग्रेजों का आगमन समुद्र मार्गों से हुआ। व्यापार की सुविधा के लिये उनका ध्यान शहरों की ओर आकर्षित हुआ। १६८७ ई० में कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को यह आज्ञा दी कि वह मद्रास शहर में एक कारपोरेशन की स्थापना करे। इस कारपोरेशन के सभी सदस्य नामजद किये गये थे। इसमें हिन्दोस्तानी और अँग्रेज दोनों थे। इसके बाद १७२६ ई० में कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में मेयर्स कोर्ट की स्थापना की गई। इनका काम शासन प्रबन्ध करना न था, बल्कि न्याय करने के लिये इनकी रचना की गई थी। १७७२ ई० में रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के अनुसार स्थानीय अफसरों तथा संस्थाओं को यह अधिकार दिया गया कि वे अपने अधीन हिस्सों से टैक्स वसूल कर सकते हैं। १७९२ ई० में गवर्नर-जनरल को

यह अधिकार दिया गया कि वह कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास में शांति जज (Justices of the Peace) की स्थापना करे। इनका काम शहर की सफाई, सड़कों की रक्षा तथा इसी तरह की स्थानीय बातों की देख-रेख करना था।

१८५६ ई० में बम्बई की म्युनिसिपलिटी में कुछ तबदीलियाँ की गईं। १८६२ ई० में फिर इसमें कुछ परिवर्तन किये गये। पहिले के अनुसार शहर के प्रबन्ध का भार शांति-जज और एक वैतनिक कमिश्नर को दिया गया था। परन्तु दूसरे ऐक्ट में दो निर्वाचित सभाओं को शासन का भार सौंप दिया गया। पहिली सभा में ६४ सदस्य थे। आधे जनता द्वारा निर्वाचित किये गये और बाकी शांति-जज तथा सरकार ने नामजद किया था। एक सभा का नाम कारपोरेशन और दूसरी का शहर कौंसिल (Town Council) था। इसमें कुल १२ सदस्य थे। इसमें ८ कारपोरेशन द्वारा चुने गये थे और बाकी को सरकार ने नामजद किया था। म्युनिसिपल कमिश्नर के अधिकार पहले की तरह बने रहे। आर्थिक विषयों में शहर कौंसिल प्रधान ठहराई गई थी। १८५० तथा १८५६ ई० में गवर्नर-जनरल की कौंसिल ने दो ऐसे कानून पास किये जिनका सम्बन्ध अन्य शहरों की म्युनिसिपलिटियों से था। लार्ड मेयो के समय में स्थानीय संस्थाओं पर अधिक ध्यान दिया गया। उसका विचार था कि इन्हें अपना प्रबंध करने की पूरी आजादी मिलनी चाहिये।

स्थानीय स्वराज की स्थापना लार्ड रिपन के समय से मानी जाती है। १८८२ ई० में उसके एक प्रस्ताव के फलस्वरूप म्युनिसिपलिटियों का ढाँचा और उनका कर्त्तव्य बदल दिया गया। उसने अपना उद्देश्य जाहिर करते हुये यह कहा कि, "स्थानीय संस्थाओं का उद्देश्य जनता को राजनीतिक शिक्षा देना है। इससे योग्य व्यक्ति अपने आप आगे बढ़कर शासन में हाथ बटायेंगे।" यहाँ तक तो म्युनिसिपलिटी की बात रही। रिपन का ध्यान ग्राम पञ्चायतों तथा जिला बोर्डों की तरफ भी गया। १८७० ई० तक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की स्थापना नहीं हुई थी। शहरों में म्युनिसिपलिटियाँ काम करती थीं, परंतु गाँवों के प्रबंध की कोई स्थानीय व्यवस्था न थी। पंचायतें तो थीं, लेकिन बृटिश सरकार उन्हें पुनः जीवित करने के पक्ष में न थी। उसका हर काम शहर से ही आरम्भ होता है। कमेटियाँ, दफ्तर, कचहरियाँ, स्कूल, लाइब्रेरी आदि सब कुछ शहर में ही होने चाहिये। यही वजह

कि गाँव की पंचायतें बृटिश राज्य में टूटती गई। १८७० ई० में लार्ड मेयो के समय में यह प्रस्ताव पास किया गया कि विभिन्न प्रान्तों में स्थानीय संस्थाओं को कुछ शासन प्रबन्ध के अधिकार दे दिये जायँ। आर्थिक क्षेत्र में उन्हें छोटे मोटे अधिकार दिये गये थे। परन्तु अभी तक इनका कोई ठीक रूप नहीं बना था। लार्ड रिपन के समय में सबका पुनर्संगठन किया गया। सारे हिन्दोस्तान में जिला बोर्डों की स्थापना की गई। समय समय पर नये नये कानून पास किये गये और इन बोर्डों की बनावट में सुधार होते गये।

जिला बोर्डों में गैर सरकारी सदस्यों की संख्या क्रमशः बढ़ती गई और इनके अधिकार और कर्त्तव्य भी धीरे धीरे बदलते गये। निर्वाचन की प्रथा चलाई गई। उन्हें आर्थिक मामलों की कुछ स्वतन्त्रता देकर स्वावलम्बी बनने का अवसर दिया गया। कुछ विभागों के टैक्स उन्हीं की मर्जी पर छोड़ दिये गये। उन्हें खर्च करने का अधिकार इन्हीं बोर्डों को दिया गया। प्रांतीय सरकारों ने अपने प्रान्तों में इनकी स्थापना और वृद्धि की। भारत सरकार इसमें हाथ नहीं डालती थी। इसीलिये विभिन्न प्रान्तों की स्थानीय संस्थाओं का स्वरूप अलग अलग दिखाई पड़ता है। उनके अधिकार और कर्त्तव्यों में भी फरक दिखाई पड़ते हैं। १६१६ ई० तक इतने कानून पास करने पर भी इन संस्थाओं का संगठन सन्तोष-जनक न था। १६०६ ई० में इनकी जाँच के लिये एक कमीशन (Decentralization Commission) नियुक्त किया गया। उसकी रिपोर्ट में यह बात जाहिर की गई कि स्थानीय संस्थाओं को शक्ति कम है और इन्हें अधिक स्वतन्त्र रखने की आवश्यकता है। भारतीय शासन का विकास इतना धीरे धीरे हुआ है कि छोटे छोटे अधिकारों को प्राप्त करने में जनता को वर्षों इन्तजार करना पड़ा है। जिला बोर्डों की हालत १६१६ ई० तक पहले ही की तरह बनी रही।

१६१८ ई० में भारत सरकार की ओर से एक विज्ञप्ति प्रकाशित की गई जिसका उद्देश्य यह था कि जिला बोर्डों से सरकारी अफसरों का हाथ हटा दिया जाय। अब तक जिले का कलेक्टर बोर्ड का सभापति होता था और हर मामले में जनता को दबाना पड़ता था। टैक्स लगाने तथा सफाई रखने में भी सरकारी कर्मचारियों की मर्जी पर निर्भर रहना पड़ता था। कहने के लिये जिला बोर्ड की स्थापना की गई थी लेकिन हर मामले में सरकारी कर्मचारियों की बातें मानती

पड़ती थीं। उनकी मर्जी के खिलाफ चलने का साहस जनता को नहीं होता था। १६१८ ई० के सुधार में इस बात की सिफारिश की गई कि बोर्डों को कुछ और अधिकार प्रदान किये जायँ। निर्वाचकों की संख्या बढ़ा दी जाय और सरकारी अफसरों की धौंस दूर कर दी जाय। अब तक बोर्डों के चेयरमैन सरकार द्वारा नामजद किये जाते थे, (जो आमतौर से कलेक्टर होता था) लेकिन अब यह सिफारिश की गई कि बोर्ड के सदस्य स्वयं इन्हें निर्वाचित करें। इसी के फलस्वरूप १६१६ ई० के शासन-सुधार में स्वायत्त शासन का विभाग प्रान्तीय सरकार की मातहती में एक मन्त्री को सौंप दिया गया। कलेक्टर का हाथ बोर्ड के कामों से हटा दिया गया।

प्रान्तीय सरकारें स्वायत्त शासन में अधिक रुचि लेने लगीं। जब से यह विभाग भारतीय मन्त्रियों को सौंप दिया गया तब से इसकी उन्नति बराबर होती गई है। १६२२ ई० में संयुक्तप्रान्त में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड बिल पास किया गया। इसके अनुसार बोर्डों को टैक्स लगाने की अधिक शक्ति प्रदान की गई। पंजाब प्रान्त में ग्राम-पंचायत या इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट कायम किये गये। बिहार तथा उड़ीसा में भी इसी तरह के सुधार किये गये। मध्यप्रान्त, आसाम, बंगाल, बम्बई आदि प्रान्तों में स्थानीय संस्थाओं में अनेक सुधार हुये। स्वतन्त्रता के पश्चात् इन संस्थाओं में तरह तरह के सुधार सोचे जा रहे हैं।

अध्याय १३

स्थानीय संस्थाएँ

स्थानीय संस्थायें

स्थानीय संस्थायें दो प्रकार की हैं। कुछ तो शहरों के लिये और कुछ ग्रामों के लिये। चूँकि दोनों की समस्यायें और भौगोलिक परिस्थिति भिन्न भिन्न है इसलिये इनके संगठन, कार्य तथा दृष्टिकोण में भी भेद है। ग्रामों में कार्य करने वाली संस्थाओं का नाम सभी सूबों में एकसा नहीं है। बृटिश प्रान्तों में हर जिले में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड स्थापित किये गये हैं परन्तु आसाम में इसका नाम ताल्लुका बोर्ड है। संयुक्तप्रान्त में ग्रामों के लिये दो प्रकार की स्थानीय संस्थायें बनाई गई हैं:—

१—डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और

२—ग्राम-पंचायतें

इसी प्रकार शहरों के प्रबन्ध के लिये ४ प्रकार की स्थानीय संस्थायें हैं:—

१—कारपोरेशन

२—म्युनिसिपैलिटी

३—इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट और

४—पोर्ट ट्रस्ट

जहाँ तक इन संस्थाओं की संख्या का प्रश्न है इनमें किसी प्रकार के उलट-फेर की जरूरत नहीं है और न गांवों तथा शहरों में दस बीस अन्य संस्थाओं की आवश्यकता है यदि इन्हीं ६ संस्थाओं का संगठन और इनके कार्य ठीक हो जायँ तो स्थानीय जनता को इनसे काफी भलाई हो सकती है। अभी तक इन संस्थाओं में अनेक कमजोरियां हैं। जब तक हम इन्हें दूर न करेंगे तब तक इनके महत्व को समझना कठिन है। हमारे ही भाई और पड़ोसी इनमें काम करते हैं। वे हमारी समस्याओं से भली भाँति परिचित हैं। उनकी और हमारी दोनों की समस्यायें एक हैं। फिर भी उनसे हमें लाभ नहीं पहुँचता। इसका कोई न कोई कारण जरूर है। व्यक्तियों को हम दोषी इसलिये नहीं ठहरा सकते कि बारी बारी से सबको इनमें काम करने के

अवसर मिलते हैं। यदि दो-चार व्यक्ति बुरे हुये तो यह सम्भव हो सकता है, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि इन संस्थाओं में आते ही लोगों की दृष्टि बदल जाती है। सबसे बड़ी कमजोरी मशीन की होती है। जैसा संगठन होगा वैसी ही कार्य-पद्धति होगी। इन संस्थाओं के संगठन में कुछ ऐसे सुधार होने चाहिये जिससे इनमें आने वाले व्यक्तियों को सचाई और ईमानदारी से काम करने का अवसर मिले। आरम्भ में इनमें काम करने वाले कर्मचारी सरकार द्वारा नामजद किये जाते थे। उनका काम प्रान्तीय सरकार के हुक्मों को तामील करना था। परन्तु अब यह बुराई दूर कर दी गई है। लगभग सभी सदस्य जनता के प्रतिनिधि होते हैं। प्रत्येक संस्था का अलग-अलग वर्णन करने से इनके संगठन और कार्य-पद्धति को ठीक ठीक जानकारी हो सकती है। पहले ग्राम-संस्थाओं पर विचार किया जायगा।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की स्थापना

डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को स्थापना १८७० ई० के बाद हुई है। पहले गाँवों का शासन पंचायतों द्वारा होता था। शासन की बागडोर को एकत्र करने के लिये, हर जिले में गाँवों के प्रबन्ध के लिये एक संस्था बनाई गई। इसी का नाम डिस्ट्रिक्ट बोर्ड है। बोर्ड शब्द से तीन बोर्डों का आभास होता है। किसी भी संगठन का नाम बोर्ड रक्खा जा सकता है, परन्तु यहाँ पर जिले में जो बोर्ड स्थापित किये गये हैं वे तीन प्रकार के हैं:—

जिला बोर्ड या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड

१— प्रत्येक जिले में गाँवों का प्रबन्ध करनेवाली सबसे बड़ी संस्था जिला बोर्ड कहलाती है। जिला बोर्ड को मध्य-प्रांत में जिला कौंसिल कहते हैं।

तारलुका बोर्ड

२—इसे सब-डिवीजनल बोर्ड भी कहते हैं। इसका दर्जा जिला बोर्ड से छोटा होता है। ताल्लुका बोर्ड सभी प्रान्तों में नहीं पाये जाते हैं। ५० या १०० गाँवों के संगठन से इनकी उत्पत्ति होती है।

लोकल बोर्ड

३—प्रत्येक गाँव अथवा दो चार गाँवों की देख-रेख के लिये लोकल बोर्ड बनाये जाते हैं। वास्तव में इन्हे ग्राम-पंचायत कहा जाय तो कोई गलती न होगी।

संयुक्तप्रांत में जिला बोर्ड और ग्राम-पंचायतें पाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त कोई दूसरा संगठन गांवों के शासन-प्रबन्ध के लिये नहीं बनाया

गया है। हिन्दोस्तान गाँवों का देश कहा जाता है। लगभग ७ लाख गाँव ब्रिटिश भारत में पाये जाते हैं। ६० प्रतिशत व्यक्ति गाँवों में निवास करते हैं। केवल नौकरी पेशे वाले तथा व्यापारी शहरों में रहते हैं। यदि पता लगाया जाय तो उनका भी स्थान थोड़े दिन पहले किसी न किसी गाँव में मिलेगा। हमारे देशवासियों का मुख्य पेशा खेती है। ७३ प्रतिशत जनता खेती करके अपना गुजर करती है। खेती की सुविधा गाँवों में ही है, क्योंकि खेत शहरों में नहीं लाये जा सकते। शहरों में तो रहने तक को जमीन नहीं मिलती खेती करना तो दूर रहा। इसीलिये लोगों को गाँवों में रहना पड़ता है। कोई भी भारतीय सरकार गाँवों की अवहेलना नहीं कर सकती। उसकी आमदनी का मुख्य जरिया माल-गुजारी है। किसानों की ही आय पर सरकार का खर्च निर्भर है। इन्हीं की देख-रेख तथा भलाई के लिये जिला बोर्डों की स्थापना की गई है।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का संगठन

भारत में कुल २०७ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड है। इनमें ४८ केवल संयुक्त-प्रान्त में हैं। संयुक्तप्रांत को छोड़ कर कुछ प्रान्तों में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के नीचे ताल्लुका बोर्ड स्थापित किये गये हैं। इनकी संख्या ५८४ है। मद्रास प्रांत में इन दोनों बोर्डों के अतिरिक्त यूनियन बोर्ड बनाये गये हैं, जिनकी संख्या ४५५ है। जिला बोर्ड स्थापित करने का अधिकार प्रान्तीय सरकार को है। बिना उसकी आज्ञा के कोई डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अपना काम बन्द नहीं कर सकता।

१९१९ ई० के शासन सुधार में स्वायत्त शासन (Local-Self Government) का महकमा प्रांतीय सरकार के एक भारतीय मंत्री को दे दिया गया। तब से इसके संगठन में और भी सुधार होते गये। वर्तमान समय में इसका संगठन निम्नलिखित प्रकार से किया गया है। प्रांतीय स्वराज के स्थापित होने से जिला बोर्ड में नामजदगी का तरीका दूर कर दिया गया है। शहरों को छोड़कर प्रत्येक जिला कुछ निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। हर क्षेत्र से दो या तीन सदस्य चुन लिये जाते हैं। इस प्रकार ४० या ४५ के लगभग जो चुने हुए सदस्य आते हैं, उन्हीं को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का सदस्य कहते हैं। इन्हीं की कमीटी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड कहलाती हैं। इनके साथ ही एक व्यक्ति बोर्ड का प्रेसीडेंट भी चुना जाता है, जिसकी अवधि ४ वर्ष रहती है। जिला बोर्ड का चुनाव ४ वर्ष के लिये होता है, परन्तु प्रांतीय सरकार इसकी अवधि को बढ़ा सकती है। गत महायुद्ध के समय प्रान्तीय स्वराज की विफलता तथा युद्ध के

कारण बोर्डों की अवधि बढ़ा दी गई थी। इसीलिये बोर्ड का नया चुनाव गत अप्रेल मास में हुआ।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सदस्यों का चुनाव अब सम्मिलित निर्वाचन पद्धति से किया जाता है। हिन्दू और मुसलमानों के लिये निर्वाचकों की संख्या भिन्न भिन्न नहीं होती। मुसलमान सदस्यों तथा हरिजनों के लिये कुछ स्थान निश्चित कर दिये गये हैं।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अपना सब काम कमीटियों द्वारा करता है। जब बोर्ड की पहली बैठक होती है तो विभिन्न कार्यों के लिये अलग अलग कमीटियाँ बना दी जाती हैं। हर कमीटी में ३ या ४ सदस्य रख दिये जाते हैं। बोर्ड के सभी सदस्य बैठकर कमीटियों का निर्माण करते हैं। हर कमीटी अपना एक सभापति रखती है। शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, सड़क, पानी इत्यादि-इत्यादि कमीटियाँ होती हैं। इन सबमें शिक्षा कमीटी बड़ी समझी जाती है। इसका सभापति शिक्षा विभाग का चेयरमैन कहलाता है। जिले भर के अपर तथा मिडिल स्कूल इसी की देख-रेख में कार्य करते हैं। प्रतिवर्ष कितने ही नये नये स्कूल और सैकड़ों अध्यापक इसकी मर्जी से खोले तथा भर्ती किये जाते हैं। इसीलिये शिक्षा विभाग का चेयरमैन जिले के कामों में बहुत बड़ा हाथ रखता है।* यदि यह योग्य और अनुभवी हो तो अपने जिले की काफी उन्नति कर सकता है। इसी तरह हर विभाग की देखरेख के लिये एक कमीटी होती है। प्रेसीडेन्ट इन सबका प्रधान होता है। बोर्ड के सदस्यों की बैठक महीने में एक बार होती है। आवश्यकता पड़ने पर यह किसी भी समय बुलाई जा सकती है।

प्रत्येक बोर्ड का एक मंत्री होता है। वास्तव में सब कामों की देख-रेख यही करता है। बोर्ड के कर्मचारी इसकी अध्यक्षता में कार्य करते हैं। इसका स्थान वैतनिक होता है। इसके अतिरिक्त एक इंजीनियर, एक डाक्टर और एक स्वास्थ्य-निरीक्षक इत्यादि कर्मचारी बोर्ड द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। बोर्ड के दफ्तर में अनेक क्लार्क और चपरासी भी भर्ती किये जाते हैं। प्रेसीडेन्ट और सदस्यों को छोड़कर बाकी सभी वैतनिक होते हैं। जिले में दौरा करने के लिये इन्हें वेतन के अतिरिक्त भत्ते भी दिये जाते हैं। यद्यपि प्रेसीडेन्ट को वेतन नहीं दिया जाता फिर भी दौरे के समय इसे प्रति मील के हिसाब से भत्ता दिया जाता है। बोर्ड के सदस्यों को ७५) मासिक तथा प्रेसीडेन्ट को ५००) मासिक पुरस्कार देने के लिये

---

* नई शिक्षा योजना में चेयरमैन के अधिकार बहुत कुछ कम कर दिये गये हैं।

विचार किया जारहा है। जो भी व्यक्ति इस पद पर आते हैं उनकी इच्छा धन की नहीं होती। केवल पद के लोभ से अथवा काम करने की इच्छा से लोग प्रेसीडेन्ट बनने की ख्वाहिश रखते हैं। इसके चुनाव के समय बोर्ड में काफ़ी चहल-पहल रहती है। कभी कभी तो इसके लिये झगड़े-फसाद तक हो जाया करते हैं। दलबन्दियों का होना तो एक साधारण-सी बात है। वास्तव में इन पदों पर पहुँच कर योग्य व्यक्ति जिले की काफी सेवा कर सकते हैं, परन्तु कुछ लोग इससे अनुचित लाभ उठाने की इच्छा से वहाँ जाते हैं। उनका उद्देश्य अपने मित्रों अथवा सम्बन्धियों को नौकरी तथा ठेकेदारी दिलाना होता है। हर साल बोर्ड में लाखों रुपये के ठीके दिये जाते हैं। इनमें काफी मुनाफे और बचत की गुंजाइश रहती है। यद्यपि बोर्ड का यह नियम है कि कोई सदस्य स्वयं ठीका नहीं ले सकता, फिर भी दूसरों के नाम पर लोग इससे अनुचित लाभ उठाते हैं। प्रेसीडेंट को अपने पद की रक्षा के लिये सदस्यों को खुश रखना पड़ता है। इन्हीं कारणों से बोर्डों के काम बड़ी गैर जिम्मेवारी से किये जाते हैं। कभी कभी तो प्रान्तीय सरकार को इन्हें सचेत करना पड़ता है। फिर भी यदि कोई सुधार न हुआ तो वह इसे जिले के कलेक्टर की मातहती में दे देती है।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का सदस्य बनने के लिये हर उम्मीदवार को कुछ शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं। उसके लिये अपने निर्वाचन-क्षेत्र में निर्वाचक होना आवश्यक है। कुछ ऐसी भी शर्तें रक्खी गई हैं जिनसे कुछ व्यक्ति अयोग्य ठहराये गये हैं। बोर्ड के सदस्यों के लिए निम्नलिखित शर्तें ठहराई गई हैं :—

१—प्रत्येक निर्वाचक के लिये भारतीय नागरिक होना आवश्यक है।

२—उसकी आयु कम से कम २१ वर्ष होनी चाहिये।

३—उसे अपने जिले का स्थायी निवासी होना चाहिये।

४—वह कम से कम २५ रुपये का मालगुजार हो। या

५—५० रुपये का काश्तकार हो। या

६—जो सरकार को इनकम टैक्स देता हो। या

७—जो डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को टैक्स देता हो। या

८—जो हिन्दी या उर्दू की मिडिल परीक्षा अथवा अँग्रेजी की इन्ट्रेन्स परीक्षा पास हो।

आमतौर से सदस्यों के लिये जो निषेध बनाये गये हैं वे निर्वाचकों पर भी लागू होते हैं। पागल और दिवालिये इसके चुनाव में वोट नहीं दे

सकते। जो पिछले साल का जिले का टैक्स न दिया हो वह वोट नहीं दे सकता। जिन्हें ६ महीने से अधिक की सजा मिली हो अथवा देश-निकाला दिया गया हो वे वोट नहीं दे सकते। जिन्हें नम्बर १० के जुर्म में अपराधी ठहराया गया है वे वोट नहीं दे सकते। प्रान्तीय सरकार को यह अधिकार है कि वह इन प्रतिबन्धों को हटा कर किसी व्यक्ति को वोट देने का अधिकार प्रदान कर सके। निर्वाचित सदस्यों के अतिरिक्त बोर्ड में कुछ विशेष वर्गों के लोग भी नामजद किये जाते रहे हैं। कांग्रेस सरकार ने चुनाव के मामले में अनेक परिवर्तन किया है।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का आय और व्यय

कोई संस्था अपने कार्य में तभी सफल हो सकती है जब उसके पास काफी पैसे हों। खास कर वह संस्था जिसे सभी काम पैसे से करने हैं गरीब रह कर जनता की सेवा नहीं कर सकती। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की जिम्मेवारी का क्षेत्र बहुत बड़ा है। जिले में रहने वाले सभी प्रकार के लोगों की उन्नति का उसे ध्यान रखना पड़ता है। सबके स्वास्थ्य और शिक्षा का प्रबन्ध करना पड़ता है। ऐसी दशा में बोर्ड के पास एक लम्बी आय होनी चाहिये। वर्तमान समय में इसकी आय के निम्नलिखित जरिये हैं:—

१—सरकारी सहायता—प्रान्तीय सरकार जितना रुपया भूमि-कर के रूप में जिले से वसूल करती है उस पर फी रुपया एक आना के हिसाब से यह डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को दे देती है। मालगुजारी के साथ ही यह रकम वसूल कर ली जाती है और बाद में सरकार इसे बोर्ड के पास भेज देती है। संयुक्तप्रान्त के जिला बोर्ड अपनी आमदनी का ४६.५८ भाग सर-कारी सहायता से पाते हैं।

२—कभी कभी प्रान्तीय सरकार किसी विशेष योजना को कार्या-न्वित करने के लिये जिला बोर्डों को कुछ रकम दे दिया करती है। इस तरह की सहायता स्थायी नहीं होती।

३—डिस्ट्रिक्ट बोर्ड जिले के जमींदारों अथवा काश्तकारों पर कर लगा सकते हैं। कुछ निश्चित रकम से ऊपर जिनकी आय होती है उनसे बोर्ड सालाना कुछ टैक्स वसूल करती है।

४—देहात के बाजारों तथा नुमायशों पर कुछ टैक्स लगाया जाता है।

५—देहातों में चलने वाली सवारियों पर टैक्स लगाये जाते हैं। मोटर गाड़ी, इक्का तथा अन्य सवारियों पर कुछ निश्चित दर से टैक्स लगा दिया जाता है।

६—नदी, तालाब, घाट आदि की आमदनी बोर्ड की आय समझी जाती है।

७—जिले भर के स्कूलों से जो फीस आती है वह बोर्ड की आमदनी समझी जाती है।

८—सड़कों के किनारे जो पेड़ होते हैं उनसे जो आमदनी होती है वह बोर्ड की आय समझी जाती है।

९—इन आमदनियों के अतिरिक्त डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की जिले से कुछ और भी थोड़ी बहुत आमदनी हो जाया करती है। हर सूबे में तथा हर जिले में इस प्रकार के जरिये भिन्न-भिन्न होते हैं।

इस प्रकार डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को अपने आधे खर्चे के लिये प्रान्तीय सरकार पर निर्भर करना पड़ता है और बाकी के लिये जिले की ग्रामीण जनता पर। प्रकृति भी इन बोर्डों की आमदनी में काफी सहायक हो सकती है। यदि जिले में बहुत सी नदियाँ, तालाब अथवा जंगल हैं तो इनसे उसकी आमदनी बढ़ सकती है। डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के अन्दर रहने वाले व्यक्तियों की संख्या २२ करोड़ से कुछ अधिक है। परन्तु इन बोर्डों की कुल वार्षिक आमदनी केवल १७ करोड़ रुपये है। अर्थात् जिला बोर्डों को प्रत्येक व्यक्ति लगभग १३ आना पैसे प्रति वर्ष देता है। खर्चे को देखते हुये यह आमदनी बहुत थोड़ी है। वैसे तो लोगों ने बोर्ड की आमदनी बढ़ाने के लिये तरह तरह के जरिये सोचे हैं, लेकिन हर मामले में जनता की जेब खाली करना ठीक नहीं है। कुछ लोग अप्रत्यक्ष रूप से ग्रामीणों पर टैक्स लगाकर बोर्ड की आमदनी बढ़ाना चाहते हैं, लेकिन यह सिद्धान्त गलत है। गाँवों में रहने वाले किसान और मजदूरों की हालत आज ऐसी नहीं है कि अप्रत्यक्ष टैक्स लगाकर उनसे कुछ और लिया जाय। अच्छा होगा कि प्रान्तीय सरकार जिला बोर्डों को एक आना फी रुपया भूमि-कर न देकर दो आना फी रुपया देवे। इससे बोर्डों की आय लगभग ड्योढ़ी हो जायगी। इसके अलावे जब जिला बोर्ड सभी प्रकार की सवारियों पर टैक्स लगाती है तो रेलवे पर भी एक लम्बी रकम टैक्स के रूप में लगाई जा सकती है। जिस जिले में जितनी कम या बेश रेलें हैं, उसी हिसाब से बोर्ड रेलवे कम्पनियों से टैक्स वसूल करे। प्रान्तीय सरकार को रेलवे बोर्ड से इस रकम को दिलाने का प्रयत्न करना चाहिये। बोर्डों की आमदनी का तीसरा जरिया यह हो सकता है कि जिले में कुछ औद्योगिक कार्यों की वृद्धि की जाय। गाँवों में व्यवसाय की कमी है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तरह तरह के व्यवसाय खोलें

और उनसे यथा उचित टैक्स वसूल करें। इन जरियों के अलावा बार-बार किसानों और मजदूरों की जेब टटोलना इस विकट गरीबी में एक बहुत बड़ा अन्याय है।

डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को निम्नलिखित खर्चे बर्दाश्त करने पड़ते हैं :—

१—जिले में लोअर कक्षा से लेकर मिडिल स्कूल तक का खर्च।

२—कृषि की उन्नति के लिये पानी का प्रबन्ध करना पड़ता है। इसके लिये कुयें और तालाब बनवाने पड़ते हैं।

३—बोर्ड के कर्मचारियों को वेतन देना पड़ता है।

४—स्वास्थ्य तथा बीमारियों के लिये अस्पतालों और डाक्टरों का प्रबन्ध करना पड़ता है।

५—सफाई की देख-रेख के लिये अफसर नियुक्त करने पड़ते हैं, तथा नुमायशों और मेलों का विशेष प्रबन्ध करना पड़ता है।

६—जिले में सड़कें बनवानी पड़ती हैं और उनके किनारे पेड़ तथा फल-फूल लगवाने पड़ते हैं।

७—अकाल तथा महामारी के अवसरों पर विशेष रूप से खर्च का प्रबन्ध करना पड़ता है।

८—इनके अतिरिक्त व्यवसाय की उन्नति के लिये कुछ रुपये खर्च करने पड़ते हैं।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कर्तव्य

स्थानीय संस्थाओं के कर्तव्यों का वर्णन करते हुये प्रो० कन्हैयालालजी वर्मा लिखते हैं, "स्थानीय स्वराज्य की संस्थायें तरह-तरह के काम करती हैं। उन सब का अलग-अलग हाल लिखने के लिये बहुत ज्यादा जगह की जरूरत है। अतएव सुविधा के लिये हम उनका वर्णन निम्नलिखित ४ समूहों में करेंगे :—

(१) सार्वजनिक स्वास्थ्य के काम;

(२) सार्वजनिक सुभीते के काम;

(३) सार्वजनिक रक्षा के काम; और

(४) सार्वजनिक शिक्षा के काम।

प्रोफेसर वर्मा के इस कार्य-विभाजन से मैं सर्वथा सहमत हूँ। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कर्तव्यों की कोई निश्चित सूची नहीं बनाई जा सकती। कारण यह है कि जो संस्था जनता की सेवा के लिये बनाई गई है उसके कर्तव्य गिने नहीं जा सकते। यह बात बोर्ड की शक्ति और

कार्य-कुशलता पर निर्भर है कि वह कहाँ तक अपने जिले की उन्नति कर सकता है। यदि कोई डिस्ट्रिक्ट बोर्ड चाहे तो अपने उद्योग से जिले की अनेक प्रकार से उन्नति कर सकता है। भौगोलिक परिस्थिति तथा आर्थिक प्रबन्ध के अनुसार इसके कर्तव्य भिन्न भिन्न हैं। अध्ययन की सुविधा के लिये इसके कर्तव्यों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। एक आवश्यक और दूसरे अनावश्यक। पहिली कोटि में वे कर्तव्य हैं जिन्हें करने के लिये प्रत्येक जिला बोर्ड बाध्य है। यदि इनके करने की क्षमता उसमें नहीं है तो उनकी स्थिति कायम नहीं रह सकती। प्रान्तीय सरकार को विवश होकर उसका प्रबन्ध अपने हाथों में लेना होगा। दूसरे प्रकार के कर्तव्य वे हैं जिनका करना और न करना बोर्ड की इच्छा पर है। यदि वह इन्हें करता है तो उससे जिले की अच्छी उन्नति हो सकती है। लगभग सभी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अनावश्यक कर्तव्यों में से अधिक से अधिक करने की कोशिश करते हैं। कारण यह है कि 'अनावश्यक कर्तव्य' का तात्पर्य यह नहीं है, कि वे गैर जरूरी हैं और उन्हें करने की कोई आवश्यकता नहीं है बल्कि इसका अर्थ यह है कि पहले आवश्यक कर्तव्यों की ओर ध्यान दिया जाय और फिर अनावश्यक कर्तव्य की तरफ। पहिले प्रकार के कर्तव्यों को ठुकरा कर कोई बोर्ड दूसरे प्रकार के कर्तव्यों को पूरा करने में समर्थ नहीं हो सकता।

आवश्यक कर्तव्यों को निम्नलिखित ६ भागों में बाँट सकते हैं :—

(१) आवागमन के साधनों को बनाना। अर्थात् ज़िले में सड़कों की व्यवस्था करना।

(२) अस्पताल, औषधालय, बाजार, धर्मशाला, तथा अन्य सामाजिक जगहों को बनाना और इन्हें चलाने की व्यवस्था करना।

(३) सार्वजनिक कुयें, तालाब तथा अन्य स्थानों की मरम्मत करना।

(४) अपर तथा मिडिल कक्षा तक शिक्षा दिलाना।

(५) स्वास्थ्य, सफाई तथा बीमारियों के टीके दिलवाना।

(६) सड़कों के किनारे पेड़ लगवाना और इनकी देख-रेख करना।

इन आवश्यक कर्त्तव्यों के अतिरिक्त बोर्ड को कुछ और भी कार्य लोकप्रियता के निमित्त करने पड़ते हैं। उसके पास यदि पैसे हैं और उसके कर्मचारी इन्हें करने की क्षमता रखते हैं तो वह इन्हें किये

बगैर नहीं रह सकता। बोर्ड के सभी सदस्य अवैतनिक होते हैं। प्रेसीडेन्ट को छोड़ कर उन्हें किसी प्रकार का भत्ता भी नहीं मिलता। इस लिये बोर्ड में आने का उनका यही मन्तव्य होता है कि जनता की अधिक से अधिक भलाई करें। यह स्वाभाविक है कि सार्वजनिक कार्य सबको आकर्षित करते हैं। थोड़ी भी गुञ्जाइश हुई तो सदस्य अनावश्यक कार्यों में से किसी को भी अपनाने में अपना गौरव समझते हैं। अनावश्यक कार्यों की सीमा अनन्त है। केवल समझने की सुविधा के लिये हम उन्हें ४ कोटि में रख सकते हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त भी बहुत से कार्य जिले की भलाई के लिये किये जा सकते हैं। अनावश्यक कर्तव्यों की ४ कोटियाँ :—

१—अकाल तथा महामारी के समय जनता की सेवा करना। प्रत्येक बोर्ड अपनी शक्ति के अनुसार इस कार्य को कर सकता है। स्थानीय संस्था के नाते वह अपने पड़ोसी को भूखे, नंगे तथा बीमार नहीं देख सकता।

२—यदि किसी जिले में बिजली और सड़कों का अच्छा प्रबन्ध है तो वहाँ का डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ट्रैमगाड़ी, टेलीफोन, छोटी मोटी रेलवे तथा रेडियो आदि का प्रबन्ध कर सकता है।

३—बोर्ड चाहे तो अपने जिले में अच्छे प्रकार के अन्न के बीज, जानवर, घोड़े तथा तरह तरह की उन्नति के कार्य कर सकता है। कृषि की उन्नति के लिये वह देहातों में खेती की नुमायश लगवा सकता है। किसानों की भलाई के लिये वह नमूने की खेती का प्रबन्ध कर सकता है।

४—जनता के सुख और उसकी उन्नति के लिये वह अन्य कार्यों को अपने हाथों में ले सकता है।

कर्तव्यों के इस विभाजन में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सभी कार्य आ जाते हैं। अपने को लोकप्रिय बनाने के लिये यह जितने कर्तव्यों को चाहे कर सकता है। इसी अध्याय के अन्त में इस बात पर थोड़ा विचार किया गया है कि कहाँ तक मौजूदा बोर्ड इन्हें कर रहे हैं और क्या कारण है कि ये अभी तक लोकप्रिय नहीं हैं। इन कर्तव्यों को पूरा करने के लिए अच्छे कर्मचारियों तथा एक लम्बी आय की आवश्यकता है। मौजूदा बोर्डों में इन दोनों की कमी है। प्रांतीय अथवा केन्द्रीय सरकार के कानों में जो बातें देर से पहुँच सकती हैं उन्हें तुरन्त करने का अवसर इन्हीं बोर्ड के कर्मचारियों को मिलता है। हर समय जनता के घनिष्ट

सम्पर्क में रहने के कारण कोई भी तकलीफों को इसके सामने पेश कर सकता है। थोड़ी भी असावधानी हुई कि बोर्ड को इसकी इत्तला पहुँचा दी जाती है। इसलिए बोर्डों को जनता के सन्तोष के लिए बहुत ही सतर्क और तत्पर रहना पड़ता है। सरकार का जो विभाग जनता के जितने ही निकट होता है वह उतना ही बदनाम होता है, परन्तु साथ ही उसे यह भी अवसर रहता है कि वह जनता का सब से अधिक प्रीति-भाजन बन सके। इसके लिए उसे साफ दिल और नेकनीयत रहना पड़ता है।

ग्राम पंचायतें

ग्राम की स्थानीय संस्थाओं में दूसरा दर्जा ग्राम पंचायतों का है। इन का महत्व जिला बोर्ड से कम नहीं है। भारतीय इतिहास में इन पंचायतों का वर्णन काफी किया गया है। यदि इस देश की प्राचीन राजनीति को ग्रामीण कहा जाय तो कोई अनुचित न होगा। कारण यह है कि ग्राम पंचायतों पर ही हिन्दू और मुसलमान बादशाह अपने शासन के लिए निर्भर थे। जो स्थान आज जिला बोर्ड को प्राप्त है उससे कहीं बड़ा स्थान पंचायतों को किसी समय प्राप्त था। बृटिश राज्य में इनका महत्व कम हो जाने से हम अपनी पुरानी राजनीति को नहीं भूल सकते। वर्तमान धारा-सभाओं की चहल-पहल तथा दफ्तरों की बढ़ती की चकाचौंध में प्राचीन ग्राम पंचायतें हमारी नजरों से ओझल नहीं हो सकतीं। केवल चुनाव और मताधिकार को देखकर हम एकता और समानता के सच्चे अर्थ को नहीं भूले सकते। जिस समय इन ग्राम पंचायतों का बोलबाला था, और शासन की बागडोर सीधे जनता के हाथ में दी गई थी, उस समय मौजूदा राजनीतिक विकारों का कहीं पता भी न था। प्रजातंत्रवाद के नाम पर आज साम्राज्यशाही की स्थापना की जाती है और अधिकार का बहाना लेकर जनता की बची-खुची हस्ती पर भी आघात किया जाता है, परंतु पंचायती राज्य में इस तरह के ढोंग की गुञ्जाइश न थी। प्रजा अपनी इच्छानुसार अपना शासन करती थी। प्रत्येक गाँव एक छोटे से राष्ट्र के मानिन्द था। वहीं के निवासी अपनी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक कठिनाइयों को सुलझाते थे। देश की सरकार इनसे अलग न थी। राजा हर तरह से इनकी सहायता करते थे। जिस प्रजातन्त्रवाद की खोज में पाश्चात्य प्रदेश निवासी आज सदियों से दिवाने हो रहे हैं उसकी स्थापना हमारे देश में आज हजारों वर्ष पहले हो चुकी है। हमारी कमजोरी से यदि वे संस्थायें आज नष्ट हो गई हैं तो हम फिर उन्हें स्थापित कर सकते हैं। ये ग्राम

पंचायतें क्या हैं और इनके क्या क्या कर्त्तव्य हैं, इसका पूरा वर्णन अगले अध्याय में किया गया है।

शहरी स्थानीय संस्थायें शहरों के प्रबन्ध के लिए चार स्थानीय संस्थायें बनाई गई हैं—कारपोरेशन, म्युनिसिपल बोर्ड, इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट और पोर्ट ट्रस्ट। कुछ शहरों में कारपोरेशन स्थापित किये गये हैं; कहीं पर म्युनिसिपल बोर्ड हैं; कुछ शहरों में म्युनिसिपल बोर्ड और इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट दोनों हैं। लेकिन कोई ऐसा शहर नहीं है जहाँ इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट हो किन्तु म्युनिसिपल बोर्ड न हो। म्युनिसिपल बोर्ड और कारपोरेशन के अलावा कुछ बड़े-बड़े व्यापारी शहरों में पोर्ट ट्रस्ट बनाये गये हैं। पोर्ट ट्रस्ट आमतौर से उन्हीं शहरों में बनाये जाते हैं जो समुद्र के किनारे हैं और जहाँ विदेशों से माल आते जाते हैं। इन चारों प्रकार की संस्थाओं की स्थापनाशहर की समस्याओं को हल करने के लिए की गई है। इसलिये इनके संगठन और कर्तव्यों की चर्चा करने के पहले हम शहरी जीवन की ओर थोड़ा दृष्टिपात करें। तभी हमें यह बात समझ में आ सकती है कि कहाँ तक ये संस्थायें अपने कर्तव्य का पालन कर रही हैं।

शहरों की वृद्धि और उनकी समस्याएँ हिन्दोस्तान की अधिकतर जनता गाँवों में रहती है। कुछ थोड़े से लोग नौकरी तथा व्यापार के लिए शहरों में निवास करते हैं। संसार के अन्य देशों में ऐसी बात नहीं है। केवल चीन एक ऐसा देश है जहाँ की ८० प्रतिशत जनता खेती का काम करती है। बाकी मुल्क व्यापारी हैं। उनका काम विदेशों के लिए चीजें बनाना है। यदि वे ऐसा न करें तो भूखों मर जायँ। उनके यहाँ खेती के लिए जमीन नहीं है। सर्दी और पहाड़ी प्रान्त होने के कारण वहाँ खेती नहीं हो सकती। इसीलिए वे मुल्क नवीन वैज्ञानिक साधनों का सहारा लेकर तरह तरह की चीजें बनाते हैं और उन्हीं को बेंच कर अपना गुजर करते हैं। यही वजह है कि उन्हें विवश होकर बिजली तथा अन्य साधनों के लिये शहरों में ही रहना पड़ता है। फ्रांस में लगभग ५० प्रतिशत लोग शहरों में रहते हैं। इङ्गलैंड की ८० प्रतिशत जनता शहरों में निवास करती है। इसी तरह अन्य योरपीय देशों तथा अमेरिका में अधिक से अधिक आदमी शहरों में निवास करते हैं। परन्तु हिन्दोस्तान में ऐसी बात नहीं है। यहाँ केवल ११ प्रतिशत लोग शहरों में रहते हैं। बाकी ८९ प्रतिशत

जनता गाँवों में निवास करती है। बम्बई प्रान्त में शहरी आबादी हिन्दोस्तान में सबसे अधिक है। २२.६ प्रतिशत जनता शहरों में रहती है। बिहार व उड़ीसा प्रान्त में शहरी जन-संख्या सबसे कम है। वहाँ केवल १.७ प्रतिशत लोग शहरों में रहते हैं। निम्नलिखित खाके से यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी कि हमारे देश में शहरी आबादी कितनी कम है :—

प्रान्त	प्रतिशत शहरों की जन संख्या	प्रतिशत गाँवों की जन-संख्या
बम्बई	...२२.६	...७७.४
मद्रास	...११.८	..८८.२
पंजाब	..११.८	..८८.२
संयुक्त प्रान्त	...१०.२	...८६.२
मध्य प्रदेश	... ८.५	...९१.५
बंगाल	... ६.५	...९३.५
आसाम	... ३.४	...९३.६
बिहार व उड़ीसा	... १.७	...९८.३

हिन्दोस्तान में केवल ७ ऐसे बड़े शहर हैं जिनकी आबादी ४ लाख से ऊपर है। ३९ शहरों की आबादी ४ लाख से अधिक है। कलकत्ते की आबादी हिन्दोस्तान के सभी शहरों से बड़ी है। इसकी आबादी २१ लाख के लगभग है। यह संसार के ७ बड़े शहरों में माना जाता है। लन्दन में लगभग ८१ लाख आदमी रहते हैं। न्यूयार्क शहर की आबादी ८२ लाख से कुछ ऊपर है। संसार के तीसरे बड़े शहर टोकियो की आबादी ६९ लाख ३० हजार है। बर्लिन की जन-संख्या ५३ लाख १२ हजार है। पेरिस की जन-संख्या २८ लाख ७७ हजार है। मास्को में २८ लाख आदमी रहते हैं। इन शहरों की जन-संख्या को देखते हुये यह साफ जाहिर है कि हिन्दोस्तान के शहर इनके सामने मामूली गाँव से हैं। फिर भी शहरों की समस्या हर जगह एक है। कहीं बड़े पैमाने पर और कहीं छोटे पैमाने पर निवासियों की रक्षा और उनकी सफाई आदि का प्रबन्ध सब को करना पड़ता है। जहाँ थोड़ी सी जगह में बहुत से लोग निवास करते हैं, और सभी व्यक्ति व्यापार से ही अपना गुजर करना चाहते हैं, उनकी सफाई और स्वास्थ्य का ध्यान विशेष रूप से रखना होगा। पिछले वर्षों से प्रत्येक देश की आबादी बढ़ती गई है। सबके सामने यह बहुत बड़ी समस्या है कि इतनी बढ़ती

हुई जन-संख्या के लिये भोजन तथा रहने की उचित व्यवस्था क्या हो। कुछ समय पहिले जापान ने एक १० वर्ष की योजना बनाई थी। इसका उद्देश्य यह था कि १० वर्ष के अन्दर प्रत्येक कुटुम्ब में कम से कम ५ बच्चे जरूर हो जाने चाहिये। जहाँ संसार के मुल्क अपनी आबादी को घटाने की चिन्ता में हैं, वहाँ जापान की यह नीति कुछ समझ में नहीं आती। हमारे देश की भी जन संख्या काफी बढ़ रही है। १९२१ ई० में हम ३३ करोड़ के लगभग थे; परन्तु १९३१ में ३६ करोड़ के लगभग तथा गत १९४१ की गणना में हम ४० करोड़ के लगभग पहुँच गये।

जब किसी देश को आबादी बढ़ती है तो गाँव और शहर दोनों पर एक सा प्रभाव पड़ता है। गाँव की खेती की सीमा निश्चित है। जब आबादी बढ़ेगी तो यह स्वाभाविक है कि हर किसान को जोतने की जमीन कम मिलेगी। इससे गरीबी और बेकारी फैलेगी। आज भी किसानों के सामने यह समस्या मौजूद है। हर किसान के पास हिन्दोस्तान में अनुपात के हिसाब से एक एकड़ भी जमीन नहीं है। फिर भी हमें इससे घबड़ाने की जरूरत नहीं है। जब कि जापान की १ करोड़ ७० लाख एकड़ जमीन ५ करोड़ ६० लाख आदमियों को भोजन और वस्त्र दे रही है तो हमारे देश को क्या चिन्ता है। शहर की आबादी पर इसका गहरा असर पड़ा है। मौजूदा समय में शहरों की संख्या हमारे देश में बढ़ रही है। इसके कई कारण हैं। व्यापार और व्यवसाय की वृद्धि से अधिकतर लोग शहरों में रहते हैं। गाँवों में बेकारी और गरीबी के कारण लोग शहरों में चले आते हैं। वहीं नौकरी अथवा तिजारत करके अपना गुजर करते हैं। शिक्षा तथा शासन-प्रबन्ध की सभी संस्थायें शहरों में स्थापित की गई हैं। उदाहरण के लिये इलाहाबाद जिले को ले लीजिये। समूचे जिले में ५ हाई स्कूल और एक या दो छोटे मोटे कारखाने होंगे। परन्तु अकेले इलाहाबाद शहर में २२ हाई स्कूल, ६ कालेज और एक यूनिवर्सिटी है। इनके अतिरिक्त कचहरियों और कारखानों की तो कोई बात ही नहीं है। सभी तरह की सुविधायें शहरों में बनाई गई हैं। बृटिश सरकार गाँवों से उदासीन रही है। उसकी नीति शहरी थी। इसलिये गाँवों की ओर कम ध्यान दिया गया है। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक है कि लोग शहरों का ही आश्रय लें। इस समय शहरों की आबादी बढ़ती जा रही है। रेल आदि के चलने से नये नये व्यापारी शहर बढ़ते जा रहे

इनके प्रबन्ध के लिये सरकार को चिन्ता करनी पड़ती है।

शहरों में अनेक समस्यायें हैं। लाखों की संख्या में जहाँ एक ही जगह लोग रहते हैं वहाँ तरह तरह की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं। सबसे पहले तो उनके रहने के लिये उचित घर चाहिये। अगर वे गन्दे घरों तथा गन्दी गलियों में रहते हैं तो नाना प्रकार की बीमारियाँ फैलेंगी। इसके बाद इक्के, गाड़ी, मोटर आदि के लिये अच्छी अच्छी सड़कें चाहिये। यदि सड़कें धूल से भरी हुई हों तो यात्रियों को अनेक असुविधायें होंगी। गाँवों में तो टेढ़े मेढ़े रास्तों से भी काम चल जाता है, क्योंकि न तो वहां मोटरें चलती हैं और न तिजारती सामानों का आयात और निर्यात होता है, लेकिन शहरों में तो २४ घण्टे इक्के, ताँगे, मोटर, ठेले आदि इधर से उधर दौड़ते रहते हैं। रोशनी और हवा के लिये खास तौर से प्रबन्ध करना पड़ता है। यदि रोशनी न हो तो रात में डाके पड़ सकते हैं। शहर की दूकानों में हजारों लाखों रुपये के सामान बन्द रहते हैं। इसकी रक्षा के लिये प्रकाश का पूरा प्रबन्ध करना पड़ता है। हवा न मिलने से तरह तरह के रोग फैलेंगे। लोगों का स्वास्थ्य खराब होगा। इसलिये चौड़ी सड़कों और पार्क आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है। लोगों की रक्षा के लिये पुलीस आदि का प्रबन्ध करना पड़ता है। इतनी बड़ी आबादी के लिये कुयें से पानी देना मुश्किल है। यदि किसी कुयें का पानी खराब हुआ और पीने वालों में बीमारी फैली तो सारा शहर उसका शिकार बनेगा। इसलिये साफ और स्वास्थ्य-वर्धक जल की व्यवस्था निहायत जरूरी है। दूकानों के प्रबन्ध के लिये कुछ नियम उपनियम जब तक न बनाये जायँ तब तक सफाई और स्वास्थ्य की व्यवस्था ठीक नहीं की जा सकती। इस बात का ध्यान रखना होगा कि सड़ी गली चीजें न बिकने पायें और एक प्रकार की दूकानें एक ही कतार में हों।

कुछ दिनों से हिन्दुस्तान में साम्प्रदायिक झगड़े जोर पकड़ते जा रहे हैं। यह समस्या देहातों में उतनी नहीं है जितनी शहरों में। शहरों में कभी-कभी त्यौहार अथवा उत्सव पर दंगे फसाद होजाने का डर रहता है।

शहरों में अपराधों की संख्या अधिक होती है। धनी और गरीब में जमीन आसमान का अन्तर होता है। एक ओर टूटी-फूटी झोपड़ियाँ होती हैं, लोग जानवर की तरह ठेले खींच कर और सड़कें कूट कर अपना गुजर करते हैं, लेकिन दूसरी ओर आलीशान इमारतें

होता है और लोग आराम से जिन्दगी बसर करते हैं। धनी वर्ग की मनोवृत्ति अधिक रुपये कमाने की होती है। अपने स्वार्थ के लिये गलत बातों का प्रचार किया जाता है। इसलिये मजदूरों और धनियों की समस्यायें भी शहरों में कम नहीं हैं। सरकारी कर्मचारियों को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि गरीबों और अनाथों का उचित प्रबन्ध हो और व्यापारी बेजा तरीके पर रुपये न कमायें। इन्हीं समस्याओं के अन्तर्गत शहरों की कुछ और भी छोटी मोटी समस्यायें हैं। इन्हें सुलझाये बिना नागरिक सुख और शान्ति से नहीं रह सकते।

इन्हीं समस्याओं को हल करने के लिये कलकत्ता, करांची, बम्बई और मद्रास शहरों में कारपोरेशन की स्थापना की गई है। हिन्दोस्तान में कुल ४ कारपोरेशन और ७८१ म्युनिसिपल बोर्ड हैं। संयुक्तप्रान्त में म्युनिसिपलिटियों की संख्या ८५ है। हिन्दोस्तान की म्युनिसिपलिटियों के अन्दर कुल २ करोड़ १० लाख आदमी रहते हैं। छोटे छोटे कस्बों में टाउन एरिया की स्थापना की गई है। छोटे पैमाने पर ये भी वही काम करती हैं जो म्युनिसिपल बोर्ड करते हैं। कुछ बड़े शहरों में म्युनिसिपल बोर्ड के अलावे इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट भी स्थापित किये गये हैं। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, रंगून, करांची, चटगाँव तथा अदन में पोर्ट ट्रस्ट हैं। ये संस्थायें अपनी अपनी सीमा के अन्दर शहरों का प्रबन्ध करती हैं। यद्यपि इनके प्रयत्न से शहर की सारी समस्यायें हल नहीं हो जातीं फिर भी यदि ये अपना काम बन्द कर दें तो शहर की जनता एक दिन भी नहीं रह सकती। ६ मार्च सन् १६४१ ई० को इलाहाबाद में बिजली घर में आग लग गई। पानी और रोशनी दोनों लगभग २४ घण्टे के लिये बन्द हो गये थे। मालूम पड़ता था मानो लोग पागल से हो रहे हैं।

कारपोरेशन — कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और करांची में कारपोरेशन स्थापित किये गये हैं। इन शहरों में म्युनिसिपलिटियाँ नहीं हैं। कारपोरेशन एक प्रकार की म्युनिसिपल बोर्ड है। इसके काम वे ही हैं जो म्युनिसिपलिटी के। चूँकि बड़े शहरों के प्रबन्ध के लिये एक प्रभावशाली अथवा मजबूत संगठन की जरूरत है, इसलिये वहाँ कारपोरेशन बनाये गये हैं। किसी एक कारपोरेशन के संगठन से यह बात साफ हो जायेगी कि इनका संगठन कैसे किया गया है। बाकी कारपोरेशनों का सूक्ष्म वर्णन कर दिया जायगा। जहाँ तक इनके कर्त्तव्यों का सवाल है, यह बात म्युनिसिपल बोर्ड के कर्तव्य से स्पष्ट हो जायेगी। शहर चाहे छोटे हों अथवा बड़े,

सबकी समस्या एक सी है। कारपोरेशन और म्युनिसिपलिटी के कर्तव्य में कोई भेद नहीं है। इनके अधिकारों में थोड़ा बहुत फरक जरूर है।

कलकत्ता कारपोरेशन

कलकत्ते की आबादी २१ लाख के लगभग है। इसके प्रबंध के लिये यहीं के निवासियों की एक बोर्ड बनाई गई है, जिसका नाम कारपोरेशन है। कलकत्ता कारपोरेशन में कुल ९२ सदस्य हैं, जिनमें ७७ जनता द्वारा चुने गये हैं और १० को बंगाल की सरकार ने नामजद किया है। इन ८७ सदस्यों को कौंसिलर कहते हैं। ये ८७ सदस्य एक साथ बैठकर ५ अन्य अनुभवी आदमियों को चुनते हैं। इस प्रकार ९२ सदस्य शहर का सारा प्रबंध करते हैं। सभी सदस्य ३ साल के लिये चुने अथवा नामजद किये जाते हैं। कारपोरेशन के सदस्य अपना सभापति और उपसभापति स्वयं चुनते हैं। ये दोनों पदाधिकारी इसके सदस्यों में से चुने जाते हैं। इनका चुनाव प्रतिवर्ष होता है। सभापति तथा उपसभापति का नाम मेयर और डिप्टी मेयर है। इन पदाधिकारियों को वेतन नहीं दिया जाता। कारपोरेशन सारे कामों की देख-रेख रखने तथा चलाने के लिए एक वैतनिक पदाधिकारी नियुक्त करता है, जिसे एक्जीक्यूटिव अफसर कहते हैं। इसके अतिरिक्त एक इंजीनियर, एक स्वास्थ्य अफसर, एक मन्त्री और एक सहायक एक्जीक्यूटिव अफसर होते हैं। इन सबको कारपोरेशन स्वयं नियुक्त करता है, परन्तु प्रान्तीय सरकार से इनकी मंजूरी लेनी पड़ती है। प्रतिवर्ष वह अपने सदस्यों की १० कमेटियों द्वारा अपना कार्य करता है।

कारपोरेशन के सदस्यों का चुनाव उसी प्रकार होता है जैसे म्युनिसिपैलिटी के मेम्बरों का। वोट देने का अधिकार अधिक से अधिक लोगों को दिया गया है। कहा जाता है कि "बृटिश साम्राज्य के अन्दर दूसरे दर्जे के शहर कलकत्ते में स्वराज की स्थापना की गई है।" जो कुछ भी हो अभी तक शहर के सभी बालिग व्यक्तियों को वोट देने का अधिकार प्राप्त नहीं है। मतदाताओं के लिये टैक्स, आय, तथा शिक्षा की शर्त लगाई गई है। मद्रास में केवल ५ प्रतिशत निवासियों को वोट देने का अधिकार है। बम्बई शहर में १० प्रतिशत नगर निवासी वोट दे सकते हैं।

कलकत्ता कारपोरेशन की आय २ करोड़ रुपये सालाना से कुछ अधिक है। यह आय विभिन्न मदों से होती है। इसके पहिले मेयर देश बन्धु चितरंजन दास थे। तब से बराबर यह संस्था राष्ट्रीय दल वालों के हाथ में रही है। अन्य कार्यों के अतिरिक्त शिक्षा में इसने अद्वितीय उन्नति

दिखलाई है। आज वहाँ २५० प्राइमरी स्कूल हैं, जिनमें ३०,००० विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती है।

बम्बई कारपोरेशन

इस कारपोरेशन की स्थापना सन् १८८८ ई० में की कई थी। इसमें कुल ११७ सदस्य हैं। इनमें ११४ प्रजा द्वारा चुने जाते हैं और बाकी ३ सदस्यों को सरकार नामजद करती है। बम्बई पोर्टट्रस्ट का चेयरमैन, बम्बई का पुलीस कमिश्नर और प्रेसीडेन्सी डिवीजन का एक्जीक्यूटिव इंजीनियर इसके नामजद सदस्यों में होते हैं। सम्मिलित निर्वाचन पद्धति के अनुसार सदस्यों का चुनाव होता है। किसी सम्प्रदाय के लिये कोई स्थान सुरक्षित नहीं रक्खा गया है। जो आदमी ५ रुपये महीने मकान का किराया देता है वह मताधिकारी समझा जाता है। १९४२ ई० से सभी बालिग आदमियों को मताधिकार दे दिया गया है। कारपोरेशन की अवधि ४ वर्ष रक्खी गई है। सदस्य स्वयं अपना सभापति (Mayor) चुनते हैं। इसका चुनाव प्रतिवर्ष होता है, एक प्रचलित प्रथा के अनुसार इसका चुनाव प्रतिवर्ष क्रमशः हिन्दू, मुसलमान, पारसी तथा अँग्रेज जाति के अनुसार किया जाता है। इसके सदस्य कौंसिलर कहलाते हैं।

कारपोरेशन का एक्जीक्यूटिव अफसर म्युनिसिपल कमिश्नर कहलाता है। बम्बई की सरकार स्वयं इसे ३ वर्ष के लिए नियुक्त करती है। यह आमतौर से इंडियन सिविल सर्विस का सदस्य होता है। कारपोरेशन के कामों की देख-रेख के लिये यह आवश्यक है कि एक निष्पक्ष और प्रभावशाली व्यक्ति इसके ऊपर हो। परन्तु यह भी ठीक नहीं है कि सरकार किसी एक व्यक्ति के हाथ में कारपोरेशन की पूरी जिम्मेवारी दे दे। इससे नगर निवासियों का अधिकार जाता रहेगा। इसीलिये म्युनिसिपल कमिश्नर को कारपोरेशन के मातहत रक्खा गया है। यद्यपि इस अफसर की नियुक्ति प्रान्तीय सरकार द्वारा की जाती है, परन्तु कारपोरेशन के ७६ सदस्य एक राय होकर उसे अपने पद से हटा सकते हैं। म्युनिसिपल कमिश्नर की सहायता के लिये दो सहायक कमिश्नर नियुक्त किये जाते हैं। कारपोरेशन स्वयं इन्हें नियुक्त करता है। परन्तु प्रान्तीय सरकार से इनकी मंजूरी लेनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त कारपोरेशन के अन्य कर्मचारी स्वयं कारपोरेशन द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। कमिश्नर को यह अधिकार है कि वह ५०० रुपये मासिक तक के कर्मचारियों को स्वयं नियुक्ति करे। कारपोरेशन का सालाना आय-व्यय वही तैयार करता

है। बम्बई कारपोरेशन की सालाना आमदनी ३ करोड़ रुपये से कुछ अधिक है। म्युनिसिपल कमिश्नर और कारपोरेशन के बीच में १६ सदस्यों की एक कमेटी बना दी जाती है। कारपोरेशन के सदस्य अपने ही में से इन्हें चुनते हैं। इस कमेटी के आधे सदस्य हर साल बर्खास्त कर दिये जाते हैं और उनकी जगह नये सदस्य चुन लिये जाते हैं। वास्तव में कारपोरेशन कामों की जाँच-पड़ताल तथा कमिश्नर के कामों की निगरानी यही कमीटी करती है। सोलह सोलह सदस्यों की दो और कमेटियाँ होती हैं। इनका नाम इम्प्रूवमेंट कमीटी और स्कूल कमीटी है। इन कमेटियों की नियुक्ति कारपोरेशन स्वयं करता है। इसके अतिरिक्त अन्य कमीटियाँ भी इसी के द्वारा बनाई जाती हैं।

मद्रास कारपोरेशन

मद्रास कारपोरेशन में कुल ६५ सदस्य हैं जिन्हें कौंसिलर कहते हैं। इनमें ५६ सदस्य जनता द्वारा चुने जाते हैं, एक प्रान्तीय सरकार द्वारा नामजद किया जाता है, और बाकी ५ सदस्यों को कारपोरेशन के उपर्युक्त सदस्य कोआप्ट करते हैं। अर्थात् शहर के अनुभवशील व्यक्तियों में से किन्हीं ५ को कारपोरेशन का सदस्य चुन लेते हैं। कोआप्ट किये गये सदस्यों में एक स्त्री भी रहती है। कारपोरेशन के सदस्य स्वयं अपना सभापति चुनते हैं। चीफ एक्जीक्यूटिव अफसर म्युनिसिपल कमिश्नर कहलाता है। बम्बई कारपोरेशन के कमिश्नर की तरह इसकी नियुक्ति प्रान्तीय सरकार करती है। यह इण्डियन सिविल सर्विस का सदस्य होता है। अन्य पदाधिकारी कारपोरेशन द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। इसकी सालाना आमदनी ६७ लाख रुपये हैं।

कारपोरेशन और म्युनिसिपल बोर्ड के कामों में कोई अन्तर नहीं है। केवल दर्जे का फरक है। शहरों के प्रबन्ध की समस्याये दोनों के सामने हैं इसलिये म्युनिसिपल बोर्ड के कर्तव्यों के वर्णन में ही कारपोरेशन के भी कर्तव्य शामिल हैं। इन्हें अलग स्थान देने की कोई आवश्यकता नहीं है।

म्युनिसिपल बोर्ड और उनका संगठन

बड़े शहरों में जो संस्थायें इसके प्रबन्ध के लिये स्थापित की गई हैं उन्हें म्युनिसिपल बोर्ड कहते हैं। छोटे शहरों में, जिन्हें कस्बा कहते हैं, म्युनिसिपल बोर्ड नहीं होते। हिन्दोस्तान में कुल ७८१ म्युनिसिपल बोर्ड हैं और इसके अन्दर २ करोड़ १० लाख आदमी रहते हैं। इनकी वार्षिक आमदनी ३८ करोड़ रुपये हैं। यदि सबके अन्दर सदस्यों का जोड़ लगाया जाय तो ७ फीसदी सदस्य अपने

पद के कारण (Ex-Officio), २५ फीसदी नामजद और बाकी ६८ फीसदी जनता द्वारा चुने हुये होते हैं। ७१ म्युनिसिपैलिटियों की प्रत्येक की आबादी ५० हजार से ऊपर है। प्रान्तीय सरकार शहरों में म्युनिसिपल बोर्ड की स्थापना कर सकती है। यदि किसी म्युनिसिपल बोर्ड का प्रबन्ध खराब है, और जनता उससे सन्तुष्ट नहीं है, तो सरकार उसे अपने हाथों में ले सकती है।

म्युनिसिपल बोर्ड के सदस्यों के चुनाव के लिये शहर को कई निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक क्षेत्र को वार्ड कहते हैं। हर वार्ड से २ या ३ सदस्य चुने जाते हैं। इन्हीं को बोर्ड का सदस्य कहा जाता है। कुछ व्यक्ति अपने पद के कारण इसके सदस्य होते हैं और कुछ को प्रान्तीय सरकार नामजद करती है। सदस्यों का चुनाव ४ वर्ष के लिये होता है, परन्तु प्रान्तीय सरकार इसकी आयु बढ़ा सकती है। जब सदस्यों का चुनाव हो जाता है तो ये अपना सभापति और उपसभापति चुनते हैं। इन्हें प्रेसीडेन्ट और वाइस प्रेसीडेन्ट कहते हैं। प्रेसीडेन्ट शहर का कोई प्रतिष्ठित और योग्य व्यक्ति होता है। उसके लिये बोर्ड का सदस्य होना जरूरी नहीं है। इनके अतिरिक्त म्युनिसिपल बोर्ड एक्जेक्यूटिव आफिसर, म्युनिसिपल इन्जीनियर, वाटर वर्क्स सुपरिन्टेडेन्ट तथा सेक्रेटरी आदि कर्मचारियों को नियुक्त करता है। इनकी योग्यतायें प्रान्तीय सरकार की ओर से पहले से निर्धारित हैं। अन्य कर्मचारियों को बोर्ड स्वयं नियुक्त करता है।

म्युनिसिपैलिटी अपने कार्य की सुविधा के लिये सारा प्रबन्ध कमीटियां द्वारा करती है। कमीटियों में आम तौर से ६ से १० तक सदस्य होते हैं। सब काम कई विभागों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक विभाग की जिम्मेवारी किसी न किसी कमीटी को सौंप दी जाती है। कमीटियों की नियुक्ति बोर्ड स्वयं करता है। आमतौर से निम्नलिखित कमीटियाँ सभी म्युनिसिपल बोर्डों में होती हैं:—

१—फिनान्स कमीटी
२—शिक्षा कमीटी
३—स्वास्थ्य कमीटी
४—सड़क, मकान आदि देख-रेख करने वाली कमेटी
५—पानी कमीटी
६—चुँगी कमीटी
७—खाद्य पदार्थ देख-रेख कमीटी

८—सवारी कमीटी

जो म्युनिसिपल बोर्ड उन्नतिशील हैं, और नागरिकों की भलाई का अधिक ध्यान रखते हैं, वे और भी तरह तरह की कमीटियाँ बनाते हैं। इन सब में शिक्षा कमीटी का दर्जा बड़ा समझा जाता है। परन्तु कार्य की दृष्टि से सबका महत्व एक-सा है। कुछ लोगों का विचार है कि कमीटियों को अपने कामों में मदद लेने के लिये अन्य जानकार व्यक्तियों को भी शामिल करने का अधिकार मिलना चाहिये।

म्युनिसिपल बोर्ड के कर्तव्य

म्युनिसिपल बोर्ड की जिम्मेवारी शहर की आर्थिक, राजनीतिक और शारीरिक उन्नति करना है। वह शहर में अच्छी-से-अच्छी सड़कें बनवाये और उनकी देख-रेख का पूरा प्रबन्ध करे। शहर में गन्दी और सड़ी-गली चीजों को आने से रोके। जो दूकानदार गन्दी चीजें बेचे उसे बोर्ड उचित दंड दे। इन कर्तव्यों का सभी म्युनिसिपल बोर्ड पालन करते हैं। इनके अतिरिक्त शहर में पानी और रोशनी का इन्तजाम करते हैं। शिक्षा के लिये अपर और मिडिल स्कूल खोलते हैं। सफाई के लिये कूड़े फेंकने के लिये कर्मचारी नियुक्त करते हैं। बीमारी की देख-रेख के लिये अस्पताल और औषधालय खोले जाते हैं। स्वास्थ्य की जाँच के लिये अफसर मुकर्रर किये जाते हैं। कुछ म्युनिसिपल बोर्ड अजायबघर और नमूने के फार्म भी रखते हैं। हवा की शहरों में सब से अधिक कठिनाई होती है। म्युनिसिपल बोर्ड इसके लिये पार्क और बगीचों का प्रबन्ध करते हैं। लोगों की शिक्षा के लिये पुस्तकालय और वाचनालय भी खोले जाते हैं। एक बार कानपुर की म्युनिसिपलिटी ने २००० रुपये इसलिये मंजूर किया था कि शहर के सारे बन्दर पकड़ कर बाहर भेज दिये जायँ। आर्थिक उन्नति के लिये तरह-तरह के रोजगार खोले जाते हैं। शहरों में बेकारों और अनाथों की संख्या अधिक होती है। इनके रहने के लिये सार्वजनिक जगहें तथा काम के लिये कोई प्रबन्ध करना पड़ता है।

शहर में सब से अधिक ध्यान सफाई का करना पड़ता है। हजारों की तादाद में एक जगह रहने से बीमारी फैलने का डर अधिक रहता है। म्युनिसिपल बोर्ड शौचालय आदि बनवाने की पूरी व्यवस्था करते हैं। उचित स्थान से बाहर जो किसी जगह को गन्दा करते हैं उन्हें कड़ा दंड दिया जाता है। तात्पर्य यह है कि शहर के लिये जिन जिन प्रबन्धों की आवश्यकता होती है वे उसे करते हैं। मुहल्लों तथा सड़कों का नाम

रखना, घरों का नम्बर लगाना, जगह-जगह पर धर्मशालायें और प्याऊ बनवाना, आग से रक्षा का प्रबन्ध करना, जन्म और मृत्यु का हिसाब रखना, कब्र तथा श्मशानघाट की व्यवस्था करना इत्यादि कार्य बोर्ड को करने पड़ते हैं। इनमें कुछ कर्तव्य ऐसे हैं जिन्हें करना उसे लाजमी है, परन्तु बाकी को उसके सामर्थ्य पर छोड़ दिया गया है। कुछ म्युनिसिपल बोर्ड, जिन्हें अपने नगर-निवासियों का अधिक ध्यान है, व्यापार भी करते हैं। इसे म्युनिसिपल तिजारत (Municipal Trading) कहते हैं। इससे दो लाभ होते हैं एक तो लोगों को अच्छी-से-अच्छी चीजें उचित दाम पर मिल सकती हैं। और दूसरे बोर्ड की आय भी बढ़ती है। एक बड़ी संस्था के नाते वह चीजों को अधिक सुविधा पर खरीद सकती है। जो कुछ आमदनी होती है वह शिक्षा तथा अन्य सार्वजनिक कामों में व्यय की जाती है। परन्तु इससे थोड़ी हानि भी है। व्यक्तिगत व्यापार को इससे धक्का लगता है। जब बोर्ड स्वयं व्यापार करती है तो छोटे-मोटे तिजारती उसके मुकाबिले में अपनी चीजें नहीं बेच सकते। जो कुछ भी हो इसके लिये बोर्ड को काफी धन की आवश्यकता होती है।

म्युनिसिपल बोर्ड का आय और व्यय

शहर के प्रबन्ध के लिये बोर्ड को काफी रकम खर्च करनी पड़ती है। सड़कों के बनवाने तथा पार्कों की रक्षा के लिये उसे अपनी आमदनी का बहुत बड़ा हिस्सा लगाना पड़ता है। शिक्षा पर इसका खर्च सबसे अधिक होता है। इसके अतिरिक्त सफाई, स्वास्थ्य और अस्पतालों पर काफी ध्यान देना पड़ रहा है। काम में उसे पैसे खर्च करने पड़ते हैं। असाधारण परिस्थिति में उसके खर्चे और भी बढ़ जाते हैं। इन खर्चों को चलाने के लिए इसके पास आय के अनेक जरिये हैं। सबसे अधिक आय शहर की चुँगी और टैक्स से होती है। आमदनी के निम्नलिखित ५ जरिये हैं :—

१—चुँगी—शहर में आने वाली तमाम चीज़ों पर यह टैक्स लगाया जाता है।

२—टैक्स—प्रत्येक म्युनिसिपल बोर्ड की दो तिहाई आमदनी इसी जरिये से होती है। ये टैक्स पेशे, व्यापार, जानवर, सवारियाँ, पानी, रोशनी तथा सफाई पर लगाये जाते हैं।

३—म्युनिसिपल बोर्ड की निजी सम्पत्ति।

४—प्रान्तीय सरकार की इमदाद।

५—म्युनिसिपल व्यापार (Municipal Trading) ।

इनके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर वे अपनी हैसियत के अनुसार कर्ज भी ले सकती हैं। टैक्स के नये-नये जरिये भी वह निकाल सकती है। कुछ म्युनिसिपैलिटियों ने यात्रियों पर भी टैक्स लगाने की व्यवस्था की है। कभी-कभी पुलों से भी कुछ आमदनी होती है। यदि शहर किसी नदी के किनारे है तो घाट के ठेकों से उसे कुछ सालाना आय होती रहती है। शहर के गन्दे पानी से कभी-कभी अच्छी आमदनी होती है। यदि पास में कोई बड़ा खेती का फार्म हुआ तो उसके गन्दे पानी का मूल्य काफी बढ़ जाता है। हिन्दोस्तान की सभी म्युनिसिपलिटियों का सालाना खर्च लगभग १८ करोड़ रुपये है। इसमें १३ प्रतिशत सर्वसाधारण के कामों में, और इतनी ही पानी के प्रबन्ध में, १८ प्रतिशत स्वास्थ्य, और ११ प्रतिशत शिक्षा पर ख़र्च होता है। संयुक्त प्रांत की म्युनिसिपैलिटियाँ अपने ख़र्च का ५२ प्रतिशत स्वास्थ्य पर ख़र्च करती हैं। लेकिन इस प्रांत में इसका शिक्षा-खर्च बहुत ही कम है। केवल १३·५८ प्रतिशत आमदनी शिक्षा के ऊपर लगाई जाती है। कर्मचारियों के वेतन पर इस प्रांत की म्युनिसिपैलिटियाँ ११·५१ प्रतिशत ख़र्च करती हैं। संयुक्त प्रान्त की म्युनिसिपलिटियों की कुल आमदनी १७५३६२३५ रुपये सालाना है। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति से ३ रुपया ८ आना १ पाई वसूल किया जाता है। सरकार से जो सहायता म्युनिसिपल बोर्डों को मिलती है वह बहुत ही कम है। १९३५-३६ ई० में संयुक्तप्रांत की म्युनिसिपैलिटियों को कुल ६३३७२६ रुपये प्रान्तीय सरकार से मिले थे। अर्थात् ४ प्रतिशत से भी कम इन्हें दिया गया था। जर्मनी में केन्द्रीय सरकार म्युनिसिपलिटियों को इनकी आमदनी का लगभग ३० प्रतिशत सहायता के रूप में देता है।

इम्प्रूमेंट ट्रस्ट

चन्द बड़े शहरों में म्युनिसिपलिटियों को प्रबन्ध का कार्य चलाने में काफी नहीं समझा गया। इसीलिये सफाई, हवा, रोशनी आदि के प्रबन्ध के लिए एक और स्थानीय संस्था बना दी गई है। इसका नाम इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट है। कलकत्ता, बम्बई, कानपूर, लखनऊ, दिल्ली, इलाहाबाद आदि शहरों में इनकी स्थापना की गई है। यह संस्था अभी तक शहरी जनता के हाथ में नहीं है। इसके सदस्य कुछ तो पद के कारण और कुछ सरकार द्वारा नामजद किये जाते हैं। इलाहाबाद इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट में कुल ६ सदस्य हैं। इनमें ३ प्रान्तीय सरकार द्वारा नामजद किये जाते हैं। नामजद सदस्यों में जिले का कलेक्टर जरूर होता है। यह कोई लिखित

नियम नहीं है, बल्कि एक प्रथा सी चली आती है। दो सदस्य म्युनिसिपल बोर्ड के प्रतिनिधि होते हैं। बोर्ड के सदस्य अपने में से किन्हीं दो सदस्यों को ट्रस्ट में भेज सकते हैं। बाकी एक सदस्य बोर्ड का चेयरमैन होता है। इससे स्पष्ट है कि ये सदस्य जनता के प्रतिनिधि नहीं होते। इम्प्रूवमेंट-ट्रस्ट के सदस्यों की नियुक्ति ३ वर्ष के लिए की जाती है। ३ साल के बाद दूसरे नये ट्रस्टी भर्ती किये जाते हैं। ट्रस्ट की बैठक आमतौर से महीने में एक बार होती है। सभी सदस्य अपने में से किसी को चेयरमैन चुन लेते हैं। ट्रस्ट एक वैतनिक मंत्री तथा अन्य कर्मचारियों को भी नियुक्त करता है। कलकत्ता इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट में कुल १२ सदस्य हैं।

विज्ञान तथा कला-कौशल की वृद्धि के कारण आजकल लोगों की रहन-सहन में काफी परिवर्तन हो रहे हैं। घिरे मकानों तथा गन्दी गलियों में रहना लोग पसंद नहीं करते। उनके मकान साफ-सुथरे, हवादार तथा किसी अच्छे वायुमंडल में होने चाहिये। सड़कें भी चौड़ी और सुन्दर होनी चाहिये। हर चीज में मनुष्य सौंदर्य और सफाई पसन्द करता है। लेकिन हमारे देशके शहर पुरानी चाल के बने हैं। उनके रास्ते पतले हैं और घरों की बनावट बहुत ही सँकड़ी है। जो नये मकान भी इधर बनाये गये उनमें स्वास्थ्य और रोशनी का ध्यान कम दिया गया है। हिंदोस्तान के कुछ शहरों की आबादी लन्दन से भी घनी है। लंदन में १२·२ प्रतिशत आदमी एक कमरे में ही अपना गुजर करते हैं। लेकिन लखनऊ में ५०·४ प्रतिशत व्यक्ति एक कमरे में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। बम्बई के ७४ प्रतिशत एक कमरे के मकानों में रहते हैं। इतनी तंग जगह में रहने से लोगों का स्वास्थ्य खराब होता है और इसका प्रभाव उनकी संतान पर भी पड़ता है। इसी का परिणाम है कि हिन्दोस्तानियों की औसत आयु अन्य देश वासियों की अपेक्षा आधी होती है। हमारे देश के २० प्रतिशत बच्चे एक वर्ष की आयु में मृत्यु के ग्रास होते हैं। जितने भी आदमी इस देश में मरते हैं उनमें पाँचवाँ हिस्सा दुधमुंहे बच्चों का है।

इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट की स्थापना इसीलिये की गई है कि वह शहर को नये ढंग से बसाने का प्रयत्न करे। जो हिस्से नये बसाये जायँ वे किसी खास नक़शे के अनुसार बनाये जायँ। घरों की बनावट, हवा तथा रोशनी पर काफी ध्यान दिया जाय। शहर के जो हिस्से सिकुड़े हुये हैं और जहाँ सूर्य की धूप मुश्किल से पहुँचती है, उन्हें चौड़ा करने का प्रयत्न किया जाय। इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट प्रान्तीय सरकार के सामने अनेक योजनायें शहर को सुन्दर

और आकर्षक बनाने के लिये पेश करे और मंजूरी मिलने पर वह उन्हें कार्यान्वित करे। शहर के भंगियों तथा गरीबों के रहने के लिये वह अच्छा से अच्छा प्रबन्ध करे। पैसे की कमी और शिक्षा के अभाव के कारण इनका रहन-सहन बहुत ही गन्दा होता है। किसी उचित स्थान पर ट्रस्ट इनके लिये साफ खुला हुआ मकान बनाने की योजना बनावे। इलाहाबाद इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट कई हजार रुपये खर्च करके गरीबों के लिये कितने ही अच्छे मकान तैयार कराये हैं। यदि ये ट्रस्ट अच्छी तरह काम करते रहें तो कुछ दिनों में हिन्दोस्तान के सभी बड़े-बड़े शहर बहुत ही आकर्षक और खुले हुये दिखाई पड़ने लगेंगे। शहरों को नये ढङ्ग से बसाने में कुछ लोगों को काफी हानि उठानी पड़ती है। उनके मकान गिरा दिये जाते हैं और बहुत थोड़ी रकम उन्हें एवज में दी जाती है। परन्तु ये दोनों बातें नहीं हो सकतीं कि एक ओर कुछ हानि भी न हो और दूसरी ओर हमारा घर साफ और खुला हुआ दिखाई पड़े। इन योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये इम्प्रूवमेंट ट्रस्टों के पास पैसे की कमी है। या तो सरकार इन्हें अपनी आमदनी का कुछ हिस्सा दे अथवा म्युनिसिपल बोर्ड की कुछ आमदनी इनके जिम्मे कर दे। अब तक इन्हें बिकी हुई जमीनों, सरकारी सहायता और कर्ज पर निर्भर करना पड़ता है।

पोर्ट ट्रस्ट

उन बड़े-बड़े शहरों में जो समुद्र के किनारे हैं कारपोरेशन, म्युनिसिपलिटी, तथा इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट के अतिरिक्त पोर्ट ट्रस्ट भी स्थापित किये गये हैं। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास कराँची और चटगाँव में हिन्दोस्तान के प्रसिद्ध पोर्ट ट्रस्ट हैं। कलकत्ते के अतिरिक्त सभी पोर्ट ट्रस्ट में नामजद सदस्यों की संख्या निर्वाचित सदस्यों से अधिक होती है। अधिकतर सदस्य योरोपियन होते रहे हैं। इन्हें भत्ता भी दिया जाता है। इनके कामों में सरकारी हस्तक्षेप अधिक होता है। मद्रास पोर्ट ट्रस्ट के लगभग सभी सदस्य योरोपियन रहे हैं। ट्रस्ट का मुख्य काम समुद्र के किनारे घाट बनवाना, मालगोदाम बनाना तथा व्यापार के सुविधे के लिये नाव और जहाजों का प्रबन्ध करना है। बन्दरगाहों में विदेशों से तरह-तरह के माल अधिक आते हैं। पोर्ट ट्रस्ट इन्हें उतारने तथा इनकी निगरानी का पूरा प्रबन्ध करता है। इसीलिये ट्रस्ट को अपनी अलग पुलिस रखने का अधिकार दिया है। इसके सदस्य कमिश्नर वा ट्रस्टी कहलाते हैं। ट्रस्ट की आमदनी के मुख्य जरिये निम्नलिखित हैं :—

१—माल की लदाई और उतराई।

२—गोदाम के किराये तथा

३—जहाजों के कर।

ऊपर स्थानीय संस्थाओं के सङ्गठन और उनके कार्यों पर विचार किया गया है। अब यह देखना है कि कहाँ तक इन्हें अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हुई है। प्रोफेसर राम और शर्मा के कथनानुसार स्थानीय सरकार के मुख्य ४ उद्देश्य हैं :—

स्थानीय संस्थाओं पर आलोचनात्मक दृष्टि

१—स्थानीय विषयों की जानकारी

२—शासन-प्रबन्ध की कुशलता

३—योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति

४—समाज की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति।

स्थानीय संस्थाओं को अपने उद्देश्य में काफी सफलता प्राप्त हुई है। स्थानीय जनता के दिलों से विदेशी सरकार की भावना बहुत कुछ दूर हो चली है। कितनी ही स्थानीय संस्थाओं ने अपनी कार्यकुशलता का इतना अच्छा परिचय दिया है कि साइमन कमीशन ने मुक्त-कंठ से इनकी प्रशंसा की है। परन्तु साथ ही कुछ ऐसी भी संस्थायें हैं जिन्होंने अपने अधिकारों का बेजा फायदा उठाया है। इङ्गलैण्ड तथा अमेरिका आदि प्रजातन्त्रवादी देशों में भी स्थानीय संस्थाओं में तरह-तरह की गन्दी बातें पाई जाती हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि गुलाम होने के नाते हम उन सबकी नकल करें। स्थानीय संस्थाओं ने अपने क्षेत्र में शिक्षा का जो प्रचार किया है उसे हम नहीं भुला सकते। यह सच है कि हमारे देश में शिक्षित आदमियों की संख्या केवल १० फी सदी है। परन्तु इस कूपमंडूकता की जिम्मेवारी प्रान्तीय सरकार पर है। स्थानीय संस्थाओं के पास इतने पैसे नहीं हैं कि वे हर गाँव में एक स्कूल खोल सकें। आमतौर से हमारे देश में संस्थायें बहुत ही बदनाम हैं। कुछ व्यक्तियों को यहाँ तक कहते सुना गया है कि, 'स्थानीय संस्थायें बेकार हैं।" जनता के अत्यन्त सम्पर्क में रहने के कारण इनकी टीका-टिप्पणी अनिवार्य है। इससे घबड़ा कर इनके फायदों को हमें नहीं भुलाना चाहिये। यदि हमें इसमें कुछ भी दिखलाई पड़े तो हम उसे बार-बार सुधारने की कोशिश करें। जिस स्वराज के लिये आज हम कितने वर्षों से चिल्ला रहे हैं, उसके मूल को ही सम्हालने की क्षमता हम नहीं रखते तो इससे बढ़कर हमारा अभाग्य और क्या होगा।

स्थानीय स्वराज पूर्ण स्वराज की जड़ है।

स्थानीय संस्थाओं के पिछले कारनामों से स्पष्ट है कि उनकी असफलता के मुख्य दो कारण हैं—वाह्य और आन्तरिक। इन संस्थाओं पर कुछ ऐसे सरकारी दबाव पड़ते हैं जिनके कारण इनकी स्वतन्त्रता में बाधा पड़ती है। प्रान्तीय सरकार, कमिश्नर और जिले के कलेक्टर इनके कामों में जब चाहें दखल दे सकते हैं। कलक्टर को यह अधिकार है कि वह इनके हुक्मों को इस बूते पर रोक दे कि इससे सार्वजनिक शान्ति में बाधा पड़ती है। इनका सारा हिसाब-किताब कमिश्नर की मुट्ठी में रहता है। वह इन्हें अपना खर्च घटाने का हुक्म दे सकता है। इन दोनों सरकारी पदाधिकारियों के अलावे प्रान्तीय सरकार स्वयं स्थानीय संस्थाओं को अपने हाथ में रखती है। वह इन्हें जब चाहे तोड़ सकती है। स्थानीय शासन-प्रबन्ध में उसके कानूनों का प्रभाव गहरा पड़ता है। किसी स्थानीय संस्था का सभापति अथवा उपसभापति अपने आचरण तथा लापरवाही के कारेण प्रान्तीय सरकार द्वारा हटाया जा सकता है। इन संस्थाओं के कुछ कर्मचारी प्रान्तीय सरकार की मंजूरी के बिना भरती नहीं किये जा सकते। इनके द्वारा बनाये गये कानूनों प्रान्तीय सरकार से तसदीक कराना पड़ता है। यदि किसी नई योजना को कार्यान्वित करने के लिये स्थानीय संस्थायें कुछ कर्ज लेना चाहें तो इसकी मंजूरी प्रान्तीय सरकार से लेनी पड़ती है।' तात्पर्य यह है कि इनकी असफलता का बहुत कुछ कारण इस प्रकार के बाहरी दबाव हैं। जब तक ये कम नहीं किये जाते तब तक स्थानीय स्वराज सफलता को प्राप्त नहीं हो सकता।

स्थानीय संस्थाओं की असफलता के कुछ आन्तरिक कारण भी हैं। अर्थात् संस्थायें स्वयं इनके लिये जिम्मेवार हैं। इनके कुछ सदस्य अपने स्वार्थ-साधन के लिये तरह-तरह की आन्तरिक बुराइयाँ फैलाते हैं। इसके कितने ही उदाहरण मौजूद हैं। थोड़ा-बहुत पैसा सार्वजनिक कामों में लगता है, और बाकी सदस्यों तथा कर्मचारियों की जेब में जाता है। स्थानीय संस्थाओं से यह आशा की जाती है कि वे योग्य से योग्य कर्मचारी नियुक्त करें लेकिन कार्य रूप में दलबन्दियों के चक्कर में पड़कर कितने ही ऐसे गैरे केवल बातों की तनख्वाह लेते हैं। एक म्युनिसिपल बोर्ड के शिक्षा विभाग के चेयरमैन से मैंने अपने पद से इस्तीफा दे देने के लिये कहा। उन्होंने तुरन्त जवाब दिया कि, "हमें अपने पद की उतनी चिन्ता नहीं है, जितनी उन एक अन्धे

आर एक लँगड़े की है जो बोर्ड के दफ्तर में लगे हुये हैं।" सदस्यों को इस बात की चिन्ता नहीं होती कि योग्य से योग्य व्यक्ति अपने पदों पर नियुक्त किये जायँ। उन्हें अधिकतर चिन्ता अपने सम्बन्धियों और मित्रों की होती है। संस्थाओं के चुनाव में कितने ही अयोग्य व्यक्ति चुन लिये जाते हैं। नागरिक शिक्षा की कमी के कारण लोग राजनीतिक अधिकारों के महत्व को नहीं समझते। क्षणिक प्रयोजनों और झूठी प्रतिज्ञाओं के चक्कर में आकर वे स्वार्थी तथा अयोग्य व्यक्तियों को अपना मत देने पर तैयार हो जाते हैं। संस्थाओं के कार्यों में व्यक्तिगत मनोभावों का प्रभाव पड़ता है इससे सार्वजनिक हित में और भी बाधा पड़ती है। संस्थाओं के अन्दर घूसखोरी और बेईमानी की जो बीमारी फैली हुई है उसका कारण हमारी नागरिकता की कमी है।

यदि स्थानीय स्वराज को सफल बनाना है तो जनता को उचित नागरिक शिक्षा दी जाय। इसके अभाव में वह गन्दी बातों के प्रभाव से अपने आपको नहीं बचा सकती। सार्वजनिक कामों का महत्व हमारे दिलों में तब तक नहीं बैठ सकता जब तक हमें समाज-शास्त्र का थोड़ा ज्ञान न कराया जाय। मध्यम श्रेणी तक नागरिक शास्त्र को अनिवार्य विषय बना कर शिक्षा विभाग ने इस ओर ध्यान दिया है। इससे स्थानीय संस्थाओं की भीतरी कमजोरियाँ बहुत कुछ दूर हो सकती हैं। जहाँ तक ऊपरी दबाव का प्रश्न है, प्रान्तीय सरकार इसे कम कर सकती है। लेकिन इसी से ये संस्थाएँ अपने मंजिल मकसूद पर नहीं पहुँच सकतीं। हिन्दोस्तान की वर्तमान परिस्थिति इस बात की उम्मीद करती है कि देश में तरह तरह के कारोबार खोले जायँ। स्थानीय संस्थायें निहायत खूबसूरती से इन्हें कर सकती हैं। लेकिन इनके आगे कदम न बढ़ाने का कारण पैसे की कमी है। या तो प्रान्तीय सरकार इनको इमदाद और बढ़ाये या इन्हें कोई ऐसा रास्ता दे जिससे इनकी आमदनी कम से कम ड्योढ़ी हो जाय। इसी अध्याय में यह सलाह दी गई है कि जिला बोर्ड की आमदनी सरकार किस प्रकार ड्योढ़ी कर सकती है। यदि ये कमजोरियाँ दूर कर दी जायँ, तो स्थानीय संस्थाएँ अपनी बुराइयों को दूर करने के साथ, देश की अधिक भलाई कर सकती हैं।

अध्याय १४

ग्राम पंचायत

ग्राम की परिभाषा

'ग्राम' शब्द के लिये कोष की आवश्यकता किसी को न होगी। यहाँ तक कि कचहरियों में भी इस शब्द के स्पष्टीकरण का प्रश्न नहीं उठ सकता। यह शब्द अत्यन्त प्रचलित है। जब कोई विदेशी हिन्दोस्तान की जानकारी हासिल करना चाहता है तो उसे पहिली हिदायत यह मिलती है कि वह गाँवों का अध्ययन करे। जो हिन्दोस्तान के गाँवों का जीवन नहीं जानता वह भारतीय सभ्यता को नहीं पहचान सकता। जब देशी और विदेशी दोनों ही गाँवों से भलीभाँति परिचित हैं तो इसकी परिभाषा की कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती। परन्तु कुछ ऐसी भ्रान्तियाँ फैली हैं, जिन्हें निवारण करने के लिये इसे दे देना अच्छा होगा। थोड़े दिन हुये एक पुस्तक* देख रहा था। उसमें लिखा था कि यदि कोई आदमी हिन्दोस्तान में किसी एकान्त स्थान में पड़ जाय और कोई रास्ता मालूम न पड़े तो वह नाक खोलकर चारों दिशाओं में साँस ले। जिधर से गन्दी हवा आती हो उधर को वह चल पड़े। कोई न कोई गाँव जरूर मिल जायगा। यह बात आमतौर से प्रचलित है कि जो मूर्ख हों और जिन्हें कोई भी ठग सके वे गाँव के रहनेवाले होते हैं। इधर दस-बीस वर्षों से लोग गाँवों को छोड़ शहरों में आने लगे हैं। इसलिये नहीं कि गाँव बुरे हैं, बल्कि रोजी की तलाश में उन्हें विवश होकर गाँव छोड़ने पड़ते हैं। कुछ लोग इससे भी यह अनुमान करते हैं कि गाँवों का जीवन सभी प्रकार से बुरा है। वहाँ कोई रहना नहीं चाहता।

यदि हमारे देश के गाँव सचमुच बुरे होते, और लोगों को उनमें रहने की इच्छा न होती, तो अब तक कितने ही नये-नये शहर बस गये होते। वास्तव में जो गाँवों के जीवन से परिचित नहीं हैं वे उसे पहचान नहीं सकते। एक छोटी सी मिसाल से यह बात अच्छी तरह साफ हो जायेगी। मिस्टर राय अपनी एक पुस्तक† में लिखते हैं कि, "जब कोई

---

* Socrates in an Indian village.

† The Spirit of Indian civilization.

योरप निवासी हिन्दोस्तान की यात्रा करने के लिये प्रस्थान करता था तो उसे चन्द बातें पहले से ही दिमाग में बैठा दी जाती थीं। लड़कपन से ही विदेशियों को इस बात की शिक्षा दी जाती थी कि हिन्दोस्तान के रहने वाले असभ्य होते हैं। "उनके शरीर पर ठीक तरह की पोशाक नहीं होती और वे हर समय जूते तथा दस्ताने नहीं पहने रहते। उनकी रहन-सहन निम्न श्रेणी की है। वे नंगे बदन किसी से भी मिल सकते हैं और हर समय एक ही पोशाक में रहने के आदी होते हैं।" इसका परिणाम यह होता है कि जब कोई विदेशी इस देश में आता है तो वह उसी प्रकार का नकशा यहां देखता है। उसके मन में तुरन्त यह बात बैठ जाती है कि सचमुच हिन्दोस्तानी असभ्य हैं। परन्तु सच तो यह है कि विदेशी भारतीय सभ्यता की गहराई को नहीं जानते। उनकी सभ्यता की नाप दस्ताने और रूमाल तक ही सीमित है। ठीक यही दशा हिन्दोस्तानी शहरों की है। शहर के लोग ग्रामीण जीवन को पिछड़ा हुआ समझते हैं। नई सभ्यता की रोशनी में गाँवों का प्राचीन जीवन उन्हें नीरस मालूम पड़ता है। कोई भारतीय शहर ऐसा न होगा जिसकी आधी जनसंख्या गाँवों से घनिष्ट सम्बन्ध न रखती हो। नौकरी अथवा व्यापार की सुविधा के लिये लोग शहरों में रहते हैं, परन्तु उनका असली घर तथा कुटुम्ब गाँव में ही होता है।

यह कहना बड़ा कठिन है कि गाँव की ठीक-ठीक सीमा क्या है, उनमें कितने कुटुम्ब होते हैं, उनकी जनसंख्या कितनी है। हमारे देश में ७ लाख से अधिक गाँव हैं। प्रत्येक का क्षेत्रफल और जनसंख्या भिन्न भिन्न है। बौद्धायन और गौतम गाँवों की परिभाषा करते हुये लिखते हैं, "वह स्थान जहाँ सच्चे और पवित्र आदमी निवास करें गाँव कहलाता है।" बौद्धायन के कथनानुसार, "कोई भी सत्पुरुष गाँव में ही रहना चाहेगा क्योंकि वहाँ खान-पान की चीजें बहुतायत से मिलती हैं। प्रत्येक गाँव चोर-डाकुओं से सुरक्षित होता है। छोटे-छोटे राजनीतिक परिवर्तनों का असर वहां नहीं पड़ता। वहाँ के निवासियों का जीवन शान्त और सुखमय होता है।" कौटिल्य के शब्दों में "गाँव वह स्थान है जिसमें १०० से ५०० तक कुटुम्ब निवास करते हों। सबका घर सुरक्षित हो और उनका जीवन सम्मिलित तथा सहयोगी हो।" गाँवों में जनसंख्या की कोई सीमा निश्चित नहीं की जा सकती। ५००० से ऊपर मनुष्य जब एक जगह निवास करते हों तो वह कस्बा कहलाता है। इससे कम जनसंख्या वाले स्थान गाँवों की कोटि में गिने जाते हैं।

कुछ ऐसे भी गाँव हैं जिनमें १०० या २०० आदमी निवास करते हैं और उनमें केवल ४० या ५० घर हैं लेकिन कुछ गाँव कस्बों की बराबरी करते हैं। हिन्दी साहित्य में ग्राम सम्बन्धी साहित्य की अभी कमी है। जो सभ्यता हमारे गाँवों में छिपी हुई है उसका आभास अभी पढ़े लिखे लोगों को कम है। ऊपर से वे इसकी सराहना भले ही करें, परन्तु भीतर से वे नहीं जानते कि गाँवों की विशेषता क्या है?

गाँव की परिभाषा अत्यन्त रोचक और सरल है। आज कल कुछ, विशेष कारणों से हमें इसमें सन्देह हो सकता है, लेकिन उसकी असलियत वही है जो हिन्दू काल से लेकर अभी तक मौजूद है। पेड़ों तथा बगीचों से घिरे हुये वे स्थान जहाँ कोलाहल का नाम भी न हो गाँव कहलाते हैं। प्रत्येक गाँव में आमतौर से १०० या २०० घर होते हैं। इसके चारों ओर खेत या बगीचे होते हैं। यहाँ के निवासियों का मुख्य व्यवसाय खेती और गोपालन है। इनका जीवन अत्यन्त सरल और पवित्र होता है। ये चोरी और दगाबाजी का नाम नहीं जानते। स्वभाव से ही ये परिश्रम-शील और संयमी होते हैं। अपनी सभी आवश्यकताओं के लिये ये अपने गाँव पर ही निर्भर करते हैं। प्रत्येक गाँव स्वतन्त्र और स्वावलम्बी होता है। यहां के लोग अपनी आवश्यकतानुसार सभी चीजें पैदा कर लेते हैं। गाँव ही ऐसी जगह है जहां बिना रुपये-पैसे के भी आदमी सुख से रह सकता है। शहरों की तरह यहाँ बीमारी और गन्दगी का बाजार नहीं रहता। सब लोग एक दूसरे का विश्वास करते हैं। जिसे हम भारतीय सभ्यता कहते हैं, और जिसके ऊपर अब भी हमें गर्व है, वह गाँवों की चीज है। आज भी वह उसी जगह दिखलाई पड़ेगी। बृटिश राज के अन्दर गांवों की दशा में महान् परिवर्तन हुआ है। उनकी गरीबी और बेकारी की समस्या ने देश को चिन्ता के जाल में बांध रक्खा है। इतने पर भी हमारे गांव स्वर्ग की तुलना करते हैं।

गाँव और भारतीय शासन

यदि गांवों की चर्चा छोड़कर भारतीय शासन-प्रबन्ध पर विचार किया जाय तो यह बात वैसी ही बेतुकी है जैसे प्राण को छोड़कर शरीर का अध्ययन। शरीर में जो प्राण का स्थान है वह भारतीय राजनीतिक प्रबन्ध में गांवों का। इस देश में कोई शासन-विधान तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक इसकी जड़ गांवों में

न डाली जाय ! बड़े बड़े राजनीतिज्ञ और सुधारक राजनीतिक अधिकारों की उधेड़ बुन में इस को भूल जाते हैं कि जब तक गाँवों को पूरी आजादी हासिल न होगी, तब तक प्रान्तीय स्वराज और संघ-शासन की कोई सदुपयोगिता नहीं हो सकती। जिन गाँवों की बदौलत ४० करोड़ हिन्दोस्तानियों का भरण-पोषण होता है, और जिनकी उन्नति अवनति पर हमारी सभ्यता की दीवाल खड़ी की गई है, उन्हें हम कैसे ठुकरा सकते हैं ? जिन ग्राम पंचायतों का नकशा कॉंग्रेस के दिमाग में बैठा हुआ है उसके महत्व को पश्चिमी प्रजातन्त्रवाद की आँधी में हम नहीं देख सकते। केवल केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कर्मचारियों के अधिकारों तथा चन्द कौंसिल की बनावट से शासन-विधान का सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता। महात्मा गाँधी ने पूरी तौर से इसका अनुभव किया था।

हिन्दोस्तान गाँवों का देश है। यहाँ की ९० फीसदी जनता गाँवों में रहती है। उनका मुख्य व्यवसाय खेती है। जब तक शासन-विधान के अन्दर ग्राम-संगठन की व्यवस्था न की जायगी, वह सर्वथा अधूरा सिद्ध होगा। "हरेक शासन की मुख्य आवश्यकता इसीलिये होती है कि प्रजा के जन-धन की रक्षा और उन्नति होती रहे। जो शासन इन दोनों बातों में असफल हुआ, नैतिक रीति से उसने अपने को नष्ट कर दिया।"* अनादि काल से गाँव शासन की जड़ समझे जाते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों कालों में इनकी स्वतन्त्रता और स्वावलम्बन में बाधा नहीं पड़ी। हिन्दोस्तान के अन्दर बड़े-बड़े राजनीतिक परिवर्तन हुये, कितने ही विदेशियों ने इस देश पर हमला किया, परन्तु ग्राम अपनी पंचायतों द्वारा स्वतन्त्र रूप से काम करते रहे। उन्हें इन तमाम परिवर्तनों का पता भी न चला। इन गाँवों का संगठन इतना दृढ़ और स्थायी था कि छोटे मोटे राजनीतिक परिवर्तनों अथवा सामाजिक क्रांतियों के कारण उसकी दीवाल नहीं हिल सकती थी। यूरोप अपने प्रजातन्त्र-वाद की डींग मारता है। ब्रिटेन हमें इस बात का आश्वासन दिलाता रहा है कि हमारे देश में सच्चे प्रजातन्त्रवाद की स्थापना होने जा रही है। पाश्चात्य प्रजातन्त्रवाद की जड़ में जो खोखलापन मौजूद है उसका उदाहरण हमें साफ दिखाई पड़ता है। हमारे देश में जिस प्रजातन्त्रवाद की आवश्यकता है उसका सम्बन्ध गाँवों से है। पहले

* हमारे गाँवों का सुधार और संगठन, अध्याय २७, पृष्ठ, ३००

प्रत्येक गाँव को स्वतन्त्र और स्वावलम्बी बनाना होगा। जब ७ लाख गाँवों को सभी प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायगी तो प्रजातन्त्र वाद अपने आप स्थापित हो जायगा। इस देश में शासन-विधान की उपयोगिता तभी है जब वह गाँवों के जीवन के अनुकूल हो। जिस शासन-विधान का निर्माण विदेशी अथवा थोड़े से शहरी लोग सभा भवन में बैठकर करेंगे उसकी उपयोगिता में हमें सन्देह है। गाँवों के प्राचीन संगठन पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि शासन-विधान में इसका कितना महत्व था।

ग्राम संगठन

प्राचीन काल में गाँवों के संगठन की सराहना सभी विदेशियों ने मुक्तकंठ से की है। सर चार्ल्स मेटकाफ लिखते हैं, "ग्राम पञ्चायतों के अन्दर प्रजातन्त्रवाद की सभी अच्छाइयाँ मौजूद हैं। प्रत्येक गाँव एक छोटा सा स्वतन्त्र देश है। बाहरी सम्बन्ध की इसे कोई जरूरत नहीं है। जिन चीजों की रक्षा की कहीं सम्भावना नहीं है उनकी रक्षा इन गाँवों ने की है। ग्राम पञ्चायतों के इस संगठन से प्रत्येक गाँव एक स्वतन्त्र राष्ट्र की भाँति है। उनकी स्वतन्त्रता, स्वावलम्बन तथा प्रसन्नता के ऊँचे पैमाने को देखते हुये पञ्चायतों के महत्व को हम भली भाँति समझ सकते हैं।"* आज भी गाँवों का संगठन सर्वथा नष्ट नहीं हुआ है। कितनी ही बातें वहाँ ऐसी दिखाई पड़ेगी जिन्हें सब लोग मिलकर करते हैं। खेती के काम में सब लोग एक दूसरे की सहायता करते हैं। तालाब, कुयें, नहर आदि बनाने के लिये वे एक साथ अपने घरों से निकलते हैं। यदि किसी के ऊपर किसी प्रकार की विपत्ति पड़ जाय तो सभी अपनी पूरी ताकत से उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं। गाँवों के तीन चौथाई झगड़े आज भी ग्राम पञ्चायतों में फैसल होते हैं। बृटिश

---

*The village communities are little repulblics having nearly every thing they want within themselves and almost independent of foreign relations. They seem to last where nothing else losts This union of the village communities, each one forming a separate little state in itself.........is in a high degree conducive to their happiness, and to the enjoyment of a great portion of freedom and independence.

सरकार के अन्दर ग्राम पंचायतों का कोई महत्व नहीं रहा है। इसीलिये इनकी उपयोगिता कम दिखाई पड़ती है। कुछ लोग तो इन्हें कहानी मात्र समझते हैं।

ग्राम संगठन का स्वरूप भिन्न-भिन्न समयों में अलग-अलग रहा है। ऐतिहासिक प्रमाण न मिलने से हम इसका क्रमिक विवरण नहीं दे सकते। हिन्दू काल में गाँवों का संगठन पंचायत के आधार पर किया जाता था। गाँव ही शासन की सबसे छोटी इकाई माने जाते थे। प्रत्येक गाँव का प्रबन्ध वहाँ की पंचायतें करती थीं। १० गाँवों को मिलाकर एक दूसरी पंचायत बनाई जाती थी। इस संगठन को संग्रहण कहा जाता था। फिर २०० गाँवों का एक दूसरा संगठन होता था, जिसे खरबालिका कहा जाता था। इसके ऊपर ४०० गाँवों का एक संगठन बनाया जाता था, जिनका नाम द्रोणमुख था। अन्त में ८०० गाँवों का एक संगठन होता था जो स्थानीय कहलाता था। मानव धर्म शास्त्र में गाँवों का संगठन कुछ और बतलाया गया है। उसके कथनानुसार गाँवों का संगठन एक, दस, बीस, सौ, एक हज़ार के बीच में था। दो सौ, तीन सौ और पाँच सौ गांवों का अलग अलग संगठन था। इस संगठन को मनु ने गुल्म कहा है।

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में इस देश का शासन गाँवों से आरम्भ होता था। श्रेणीबद्ध इनका संगठन किया जाता था। संहिता के रचयिता ने कहा है कि देश शब्द का अर्थ है एक हज़ार गाँवों का संगठन। हर गाँव का क्षेत्रफल सामान्य रूप से २ वर्ग मील होता था। इसमें अलग-अलग मार्ग होते थे। इनका नाम पद्म, वीथी, मार्ग तथा राजमार्ग था। इनकी चौड़ाई क्रमशः ३,५, १० और १५ फीट होती थी। राजमार्ग की चौड़ाई १५ से ३० फीट तक होती थी। प्रत्येक गांव में एक चौपाल (Rast house) होती थी। यात्रियों के ठहरने तथा खाने का इसमें पूरा प्रबन्ध रहता था। शुक्राचार्य ने गांवों का संगठन ऐक से दस हजार गांवों तक माना है। प्रत्येक श्रेणी का संगठन सुदृढ़ और स्वावलम्बी था। ग्राम पंचायतें गाँवों का शासन करती थीं। परंतु केन्द्रीय सरकार की ओर से भी उनकी देख-रेख का प्रबंध था। हर गाँव में एक सरकारी कर्मचारी रहता था, जो गोप कहलाता था। गाथा सप्तसती में इसका नाम ग्रामणी कहा गया है। एक से दस गांव तक की ज़िम्मेवारी इसे दी गई थी। प्रति वर्ष गावों की जनसंख्या की गणना की जाती थी। सरकारी कर्मचारी पञ्चायत द्वारा इस कार्य को करते थे

और केन्द्रीय सरकार को इसकी सूचना देते थे। जनगणना के समय हर गाँव में घरों की संख्या, आदमियों तथा पशुओं की संख्या, उनकी जाति तथा आयु आदि भी दिखाये जाते थे। गोप या गाँव का मुखिया हिसाब-किताब का ब्यौरा रखता था। गाँव की जितनी आमदनी सरकार को देनी होती थी उसे वह वसूल करके भेजता था। शुक्र-नीतिसार के अनुसार गोप या मुखिया ब्राह्मण जाति के होते थे।

शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से गाँवों में कोई भेद नहीं है। जो संगठन किसी छोटे गाँव में बना हुआ है वही बड़े में भी है।

गाँव की किस्में हिन्दू काल में कुछ गाँवों की आमदनी मन्दिरों तथा पाठशालाओं को दे दी जाती थी। परन्तु उनके शासन-प्रबन्ध में कोई अन्तर नहीं पड़ता था। गाँव का हिसाब-किताब रखने वाला उनकी आमदनी सरकारी खजाने में न भेजकर किसी संस्था को भेज देता था। प्रजा के अधिकारों में कोई कमी नहीं पड़ती थी। कभी कभी विद्वानों को कुछ गाँव माफी में दे दिये जाते थे। सरकार उसकी आमदनी से कोई मतलब नहीं रखती थी। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जो जितना चाहे गाँवों से वसूल कर ले। एक निश्चित आय से अधिक लेने का अधिकार किसी को तब तक नहीं था जब तक ग्राम पंचायत अथवा केंद्रीय सरकार इसकी आज्ञा न दे दे। गाँव की आमदनी चाहे जिस मद में खर्च की जाय, उसके राजनीतिक प्रबन्ध में कोई अन्तर नहीं पड़ता था। मुसलमानी जमाने में कुछ लोगों को जागीरें दी जाती थीं। कितने ही कर्मचारियों को वेतन के बदले दो एक गाँव दे दिये जाते थे। परन्तु शासन-प्रबन्ध में वे कोई उलट-फेर नहीं कर सकते थे। जब तक गांवों के लोग एक निश्चित रकम सरकारी खजाने में भेजते रहते थे तब तक बादशाह तक उनके कामों में दखल नहीं दे सकता था।* किसी सरकारी अथवा गैर सरकारी कर्मचारी को प्रजा से एक पाई भी अधिक वसूल करने का अधिकार न था। १०५४ ई० के एक शिलालेख से यह पता चलता है कि सरकार प्रजा के धन को उसकी एक सुरक्षित सम्पत्ति समझती थी। जिस प्रकार माली बगीचे से फल-फूल चुन लेता है परन्तु

*It is fairly clear that during the period of Mohammadan rule, the village communities were left more or less to their own resources, and practically no connection was maintained with the King's Government, except the due payment of the taxes.

बगीचे की सुन्दरता और हरियाली में कोई अन्तर नहीं पड़ती, उसी तरह सरकार प्रजा की आय का एक छोटा सा हिस्सा वसूल करती थी। शिलालेख में एक स्त्री की कहानी लिखी गई है। गाँव के किसी कर्मचारी ने किसी स्त्री से कुछ अनुचित रकम टैक्स के रूप में लेना चाहा। स्त्री ने देने से इनकार कर दिया। कर्मचारी ने उसे कुछ बुरा-भला कहा। स्त्री जहर खाकर मर गई। आस-पास के गाँवों में इस विषय पर पंचायतें हुईं। १७ जिलों के गाँवों की पंचायतों में इस मामले पर विचार किया गया। कर्मचारी अपराधी ठहराया गया और उसे सख्त दंड दिया गया।*

गाँवों की आमदनी चाहे जिसके पास जाय, उसके शासन-प्रबन्ध में कोई अन्तर नहीं किया जाता था। गाँवों में पञ्चायतों का स्वरूप एक था। सरकारी टैक्स सबसे एक सा लिया जाता था। गाँवों की रक्षा और शान्ति की चिन्ता सरकार को एक सी करनी पड़ती थी। इतना अवश्य है कि कुछ गाँवों की ओर सरकार को विशेष ध्यान देना पड़ता था। इसकी वजह यह थी कि वहाँ के निवासियों का पेशा ऐसा होता था जिन्हें उत्साहित करना सरकार अपना कर्तव्य समझती थी। उनके कला-कौशल से सारे राज्य को लाभ पहुँचता था। निम्नलिखित उद्धरणों से यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी। बौद्ध कालीन जातकों से यह पता चलता है कि एक गाँव में ५०० आदमी निवास करते थे और सभी बढ़ई का काम करते थे। दूसरा गाँव लुहारों का था। इसमें सिर्फ लोहार ही बसते थे। १००० घर लुहारों के थे। इसी प्रकार एक तीसरा गाँव १००० लकड़िहारों का था।† यदि इन्हें हम विभिन्न प्रकार के गाँव कहें तो कोई हानि नहीं है। सम्भव है इसी तरह किसानों, जुलाहों, मजदूरों तथा सुनारों आदि के गाँव रहे हों। परन्तु अधिकतर गाँव मिले-जुले पेशे वालों के होते थे। पेशों की भिन्नता होते हुये भी एक ही प्रकार की पंचायतें इन पर शासन करती थीं। उत्तरी और दक्षिणी भारतवर्ष में ग्राम पंचायतों का रूप एक-सा था। चूँकि उत्तरी हिन्दोस्तान को बाहरी हमलों का अधिक सामना करना पड़ा और उनके ऊपर विदेशी वातावरण का अधिक प्रभाव पड़ा, इसलिये उनके संगठन में कुछ परिवर्तन होना स्वाभाविक था।

---

* Madras Epigraphy Annual Report, 1906—7.

† जातक, भाग २-४ नं० १५६, १८७, ४६६।

वर्तमान समय में गाँवों को दो प्रकारों में बाँटा गया है :—

१—रैयतवारी गाँव

२—जमींदारों के गाँव

(१) पहिले प्रकार के गाँव वे हैं जो दक्षिणी हिन्दोस्तान में पाये जाते हैं। इनका आन्तरिक संगठन बहुत ही सरल है। प्रत्येक किसान या रैयत सीधे सरकार को अपनी लगान अदा करता है। प्रजा और सरकार के बीच में कर वसूल करने वाला कोई मध्यवर्ती नहीं है। जो जितनी भूमि अपने अधिकार में रखता है वह उतने का लगान सरकार को सीधे देता रहता है। यदि गाँव में कोई पर्ती, जङ्गल, बंजर अथवा ऊसर जमीन है और उसे कोई जोतता नहीं, तो वह सरकारी जमीन समझी जाती है। लेकिन गाँव के रहने वाले इनसे पूरा फायदा उठा सकते हैं। यह सबके सम्मिलित लाभ के लिये होती है। प्रत्येक खेत की अलग अलग लगान निश्चित रहती है। इससे प्रजा को लगान अदा करने में कोई कठिनाई नहीं होती। लगान की व्यक्तिगत जिम्मेवारी से गाँव का सम्मिलित जीवन नष्ट नहीं हुआ है। गव का मुखिया, जो पटेल या रेड्डी कहलाता है, सबका प्रधान होता है। नाई, धोबी, दर्जी, लोहार, कुम्हार सारे गाँव की सेवा करते हैं। गाँव का चौकीदार सबके घरों की रखवाली करता है। मुखिया का पद पैत्रिक होता है। गाँव का लगान वसूल करने तथा शान्ति की व्यवस्था रखने की जिम्मेवारी इसे दी गई है। इस प्रकार के गाँव अधिकतर मद्रास, बम्बई, बरार तथा मध्य भारत में पाये जाते हैं। जमींदारी प्रथा के पहले मध्यप्रान्त और बङ्गाल में भी इस प्रकार के गाँव थे।

(२) दूसरे प्रकार के गाँव जमींदारों के गांव कहलाते हैं। एक गाँव में एक या दो चार जमींदार होते हैं। कुछ जमींदार एक से अधिक गाँवों के मालिक होते हैं। लगान वसूल करने की जिम्मेवारी इन्हीं जमींदारों को होती है। सरकार प्रजा से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। वह जमींदारों से मालगुजारी वसूल करती है। यद्यपि मालगुजारी की दर निश्चित है फिर भी जमींदार अनुचित रीति से प्रजा से धन वसूल करते हैं। सरकार इस बात का ध्यान रखती है कि जो लगान प्रजा से वसूल हो उसका कुछ हिस्सा जमींदार अपने पास रख ले और बाकी सरकारी खजाने में भेज दे। जमींदारों का हिस्सा लगभग १/१० माना गया है। लेकिन कार्य रूप में ऐसा नहीं होता। जो मालगुजारी

जमींदार सरकार को अदा करते हैं उसका दूना और चौगुना प्रजा से वसूल करते हैं। गाँव की पर्ती और जङ्गल आदि उस गाँव के जमींदारों की सम्पत्ति समझी जाती है। हर गाँव में एक मुखिया और पञ्चायत होती है। प्राचीन काल में इनकी शक्ति अधिक थी, परन्तु बृटिश राज की मातहती में इन्हें कोई अधिकार प्रदान नहीं किया गया था। संयुक्तप्रान्त, पञ्जाब तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश में इस प्रकार के गाँव पाये जाते हैं। इस तरह के गाँवों की मालगुजारी प्रत्येक खेत पर नहीं लगाई जाती। सरकार हर गाँव से एक सम्मिलित रकम वसूल करती है। सारा गाँव मिलकर इसके लिये जिम्मेवार होता है।

ग्राम पंचायत

अनादि काल से हिन्दोस्तान में गाँव ही शासन की इकाई माने गये हैं। शासन-प्रबन्ध के लिये प्रत्येक गाँव में कई पञ्चायतें होती थीं जिनका शासन और व्यवस्था में एक विशेष स्थान था।* प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार के जो जो विभाग आज हम देखते हैं, उनके लिये अलग अलग पञ्चायतें थीं। शिक्षा पञ्चायत, रक्षा पञ्चायत, सेवा पञ्चायत, सफाई पञ्चायत इत्यादि इत्यादि गाँवों का प्रबन्ध करती थीं। जब कोई नया गाँव बसाया जाता था तो ये सभी प्रकार की पञ्चायतें वहाँ बना दी जाती थीं। गाँव बसाने का अधिकार केवल राजा को होता था। तेरहवीं शताब्दी के शिला-लेखों से पता चलता है कि जब कोई गाँव बसाना होता था तो यह पहले ही निश्चित कर लिया जाता था कि उसका क्षेत्रफल क्या होगा और उसमें किस किस वर्ण के लोग कितनी कितनी संख्या में बसाये जायेंगे। प्रत्येक गाँव में कुछ जमीन पर्ती रक्खी जाती थी। इसे कोई जोत नहीं सकता था। इस पर सभी लोग अपने जानवर चरा सकते थे। गाँव के बाहर जङ्गल होता था। लकड़ी आदि के लिए इससे सुविधा होती थी। गाँव के सभी लोग मिलकर एक या दो तालाब खोदते थे। बरसात के दिनों

---

* पञ्चायत शब्द जितना ही पवित्र है उतना ही महत्व का है। इस शब्द से संसार एवं सम्पूर्ण ब्रह्मांड की रचना हुई है। पञ्च तत्व और पञ्च महाभूत इसके आधार हैं। पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च केन्द्रीय के आधार पर मनुष्य के जीवन का संचालन होता है और पञ्च पवन (प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान) की शक्ति से ही मनुष्य का जीवन है। यही पञ्च परमेश्वर है, जिसके राज्य की हमें आवश्यकता है।

में इनमें पानी भरा जाता था। साल भर लोग इसमें स्नान करते थे और सिंचाई का काम करते थे। जो जमीन गाँवों के लिये चुनी जाती थी उसमें सुन्दर सुन्दर रास्ते चारों ओर जाने के लिये बना दिये जाते थे। हावेल लिखता है, "चन्द्रगुप्त मौर्य के जमाने में शिल्पशास्त्र के नियमानुसार सैकड़ों गाँव बसाये गये थे।" बृटिश सरकार ने पञ्जाब में कितनी ही बंजर जमीनों को आबाद कराया है। 'कनाल उपनिवेश' इसी का परिणाम है। चर्च मिशनरी सोसाइटी ने भी संयुक्तप्रान्त और बंगाल में इस तरह के कितने ही गाँव बसाने का प्रयत्न किया है। यद्यपि इनका उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना है, फिर भी कितनी ही बंजर और उजाड़ भूमि उपजाऊ बनाई गई है। पूर्वी बङ्गाल में इन्होंने जो सन्थाल नामक उपनिवेश बसाया है उसका क्षेत्रफल १४ वर्गमील है। इसके अन्दर १० गाँव हैं और प्रत्येक का मुखिया होता है। पूरे उपनिवेश के प्रबन्ध के लिए इन्हीं ग्राम निवासियों की कौंसिल बनाई गई है। आज वहाँ २५०० ईसाई निवास करते हैं। यदि कोई बाहरी आदमी वहाँ रहना चाहता है तो उसे उपनिवेश की सभी शर्तें माननी पड़ती हैं।*

ऊपर कहा गया है कि प्राचीन काल में गाँवों का प्रबन्ध पञ्चायतों द्वारा होता था। हर गाँव में एक सर्वप्रधान पञ्चायत होती थी। कुछ अँग्रेज लेखकों ने इन पञ्चायतों को जाती पञ्चायतें कहा है। लेकिन यह उनकी सरासर भूल है। इस देश में पञ्चायतें हमेशा से दो उद्देश्यों से बनाई जाती रही हैं। या तो शासन-प्रबन्ध के लिये अथवा पेशे की निगरानी के लिये। गाँव के सभी अनुभवी आदमियों की एक बड़ी पञ्चायत होती थी। मुखिया इसका प्रधान होता था। कार्य की सुविधा के लिये यह पंचायत अपनी ओर से कई कमीटियों को बनाती थी। सफाई, रक्षा, शिक्षा, आदि के लिये अलग अलग कमीटियां होती थीं। कमीटी अथवा पंचायत के बनाने में जातीय अथवा पेशे के कारण कोई आदमी अछूत नहीं समझा जाता था। चारों वर्णों का विधान केवल पेशे के लिये बनाया गया था।† लोहार, बढ़ई, जुलाहे, कुम्हार तथा

---

*Those who are not Christians sign a pledge to abstain from intoxicating drink and heathen sacrifices and to abide by the rules of the colony.

† The four-fold division of the people in itself is one according to profession.

सोनार समाज में सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे।* आनन्द रंगा पिलाई, जो डूपले का एजेन्ट था, अपनी दिनचर्या में लिखता है, "एक गाँव में किसी मन्दिर के झगड़े का निपटारा करने के लिये पञ्चायत की बैठक बुलाई गई। इसमें ब्राह्मण से लेकर चण्डाल तक सम्मिलित थे।"†

पंचायत शब्द के दो अर्थ लगाये जाते हैं। वह सभा जिसमें ५ आदमी काम करें पञ्चायत कहलाती है। अथवा गाँव के शासन-प्रबन्ध के लिये सभी अनुभवशील व्यक्तियों की मंडली पञ्चायत कहलाती है। वास्तव में पंचायत और ५ का कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं है। यह हो सकता है कि गाँव की बड़ी पंचायत किसी मामले का अन्तिम निर्णय करने के लिये ५ आदमियों की एक छोटी कमीटी बना देती रही हो। इस तरह की कितनी ही कमीटियाँ आजकल बनाई जाती हैं। मनु के ग्रन्थों से यह पता चलता है कि हर गाँव में शासन की पूरी जिम्मेवारी पंचायत को दे दी जाती थी। कुछ लेखकों ने इस तरह की पञ्चायतों का मुकाबिला ट्यूटन जाति के संगठनों से किया है। लेकिन इससे उनकी अदूरदर्शिता का परिचय मिलता है। ट्यूटन जाति में जो संगठन बनाये गये थे उनका उद्देश्य लूट-मार करना था। इसके विपरीत ग्राम पञ्चायतें शासन-प्रबन्ध करने तथा शान्ति की रक्षा के लिये बनाई गई थीं। पञ्चायतों का काम अत्याचार को दबाना था। इसके सदस्य चतुर और अनुभवशील होते थे। पञ्चायत की आज्ञा सबको माननी पड़ती थी। गाँव की सभी घटनायें इनमें पेश की जाती थीं। बारहवीं शताब्दी की एक घटना का उल्लेख मद्रास की एक सरकारी रिपोर्ट में किया गया है। एक गाँव में किसी आदमी ने अपने पड़ोसी को जान से मार डाला। जिले भर की पञ्चायतों ने यह फैसला किया कि अपराधी की इच्छा प्राण लेने की न थी, अतएव इसे फाँसी का दंड नहीं मिलना चाहिये। अन्त में उसे यह सजा दी गई कि वह गाँव के मन्दिर में दीपक जलाये।‡

---

* Hindu Administrative Institution p. 366.

† The private diary of Anandaranga Pillay, p. 332—3.

‡ Madras Epigraphy Annual Report, 1899-1900 p. 11

छोटी छोटी बातों का फैसला पेशे की पञ्चायतों में किया जाता था। गाँव की बड़ी पञ्चायत के अतिरिक्त हर पेशे वालों की एक अलग पञ्चायत होती थी। नाई, धोबी, दर्जी, कुम्हार, लोहार, सोनार आदि पेशे वाले अलग अलग पञ्चायतें रखते थे। इन्हीं पेशे की पञ्चायतों को विदेशियों ने जाती पञ्चायत कह कर पुकारा है। जब कोई झगड़ा वा मतभेद उत्पन्न होता तो दोनों पार्टियाँ अपनी पेशे वाली पञ्चायतों को सूचित करती थीं। उन्हें यह अधिकार न था कि वे सबसे पहले सरकारी दफ्तर में इसकी सूचना दें। यदि जाती पञ्चायत अथवा ग्राम की बड़ी पञ्चायत की अवहेलना करके वे सरकारी दफ्तर की शरण लेतीं तो दोहरे अपराध की भागी ठहराई जाती थीं। तामील जिले में एक ग्राम पञ्चायत के सामने चोरी का मामला पेश हुआ। एक महीना पहिले किसी ब्राह्मण के घर में चोरी हुई थी। ब्राह्मण ने तुरन्त पुलीस को इसकी इत्तला दे दी थी। पुलीस को जब चोरी का कुछ पता न चला तो उसने यह कहकर इस मामले से हाथ खींच लिया कि चोरी का मामला झूठा है। जब यह बात ग्राम पञ्चायत के सामने पेश की गई तो पञ्चायत ने उस ब्राह्मण को २० रुपया इसलिये जुर्माना किया कि पञ्चायत की अवहेलना करके उसने पुलीस को इत्तला दी थी। यह रुपया ग्राम के सार्वजनिक कामों में खर्च किया गया। इसके बाद चोरी की जाँच-पड़ताल शुरू हुई। चार प्रधान व्यक्तियों को यह कार्य सौंपा गया कि वे चोरी का पता लगावें और चाहे जैसे हो ब्राह्मण को ३०० रुपये का जेवर वापिस करें। इसी तरह की घटना का वर्णन रूस की एक ग्राम पञ्चायत में भी मिलता है।

ग्राम पञ्चायत के अतिरिक्त शासन-प्रबन्ध के लिये कुछ और भी कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे। गाँव का मुखिया इनका प्रधान होता था। सरकार और ग्राम पञ्चायत के बीच में इसका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण था। जब कोई सरकारी फरमान जारी होता तो उसकी सूचना इसी को दी जाती थी। किसी अफसर को गाँव के मामले में इसकी आज्ञा के विरुद्ध दखल देने का अधिकार न था। सरकारी टैक्स वसूल करने का अधिकार इसी को दिया गया था। एक दूसरा कर्मचारी गाँव का हिसाब किताब रखता था। इसका काम खेतों की नाप पड़ताल करना तथा हर कुटुम्ब की आय का हिसाब रखना था। गाँव के प्रत्येक घर से सालाना कुछ अन्न इसे वेतन के रूप में दिया

जाता था। यही कर्मचारी आजकल पटवारी कहलाता है। गाँव का तीसरा कर्मचारी चौकीदार कहलाता था। चौकीदार दो होते थे। एक का काम अपराधियों का पता लगाना था। गाँव में जब कोई नया व्यक्ति आता तो उसकी जाँच पड़ताल के लिये यह तैयार रहता था। इससे बाहरी चोर-डाकू गाँव में प्रवेश नहीं कर सकते थे। दूसरे चौकीदार का काम रात में पहरा देना था। वह खेती आदि की रक्षा करता था पहले प्रकार के चौकीदार का दर्जा ऊँचा समझा जाता था। ये चौकीदार शूद्र जातियों में से नियुक्त किये जाते थे। इनको यह जिम्मेवारी थी कि वे गाँव के प्रत्येक निवासी की रहन-सहन से परिचित हों। जब कोई चोरी आदि होती तो उन्हें अपराधी का पता लगाना पड़ता था। प्रत्येक घर से सालाना अन्न उसे वेतन के रूप में दिया जाता था। जब तक चोरी का पता नहीं लग जाता तब तक उसकी ज़िम्मेवारी समाप्त नहीं होती थी। ये गाँव से बाहर रहते थे और इनका पद पैत्रिक था।

गाँव का चौथा कर्मचारी अमीन कहलाता था। इसका काम गाँव की सीमा ठीक करना था। यदि एक गाँव के रहने वाले किसी पड़ोसी गाँव की कुछ जमीन पर कब्जा कर लेते तो दोनों गाँव के अमीन इस का निपटारा करते थे। जब कभी दो व्यक्तियों में अपने खेतों की सीमा के लिये झगड़े पैदा हो जाते तो अमीन उसका फैसला करता था। इनके अतिरिक्त गाँव का अध्यापक, पुजारी, ज्योतिषी तथा तालाब और पानी का निरीक्षक आदि कर्मचारी गाँव को देख-रेख के लिये रक्खे गये थे। इन्हें वेतन नहीं दिया जाता था। या तो इन्हें गाँव की कुछ जमीन बिना लगान के दे दी जाती थी अथवा हर साल प्रत्येक घर से कुछ अन्न दिया जाता था। बढ़ई, कुम्हार, लोहार, धोबी, नाई, ग्वाला, वैद्य, गायक, कवि, नर्तक, भाँड़ आदि कर्मचारियों को सालाना अन्न दिया जाता था। ये अपने-अपने पेशे द्वारा गाँव की सेवा करते थे। किसी का दर्जा एक दूसरे से कम नहीं समझा जाता था। इन सब की अलग-अलग पञ्चायतें थीं। सभी पेशे वालों के अनुभवशील व्यक्ति ग्राम की बड़ी पञ्चायत में शामिल किये जाते थे। इन पेशे वालों को देखते हुए स्पष्ट है कि प्रत्येक गाँव अपनी आवश्यकताओं के लिये स्वावलम्बी था फिर भी आस-पास के गाँवों में एकता स्थापित करने के लिए पंचायतें बनाई गई थीं। राजराजा चोला प्रथम (९८५—१०१३ ई०) के एक शिला-लेख से पता चलता है कि ४०

गाँवों की एक पंचायत थी जो इन सब पर शासन-प्रबन्ध करती थी।* एक अँगरेज विद्वान लिखता है, "गाँव का प्रबन्ध करने के लिये निम्नलिखित ६ कमीटियाँ होती थीं; ये सब प्रधान पञ्चायत की मातहती में अपना कार्य करती थीं :—

१—वार्षिक कमीटी, २—वाटिका कमीटी, ३—तालाब कमीटी, ४—स्वर्ण कमीटी, ५—न्याय कमीटी और ६ पञ्चवार कमीटी (यह अन्य कमीटियों की देख-रेख करती थी)।"

ग्राम पंचायतों का चुनाव

वर्तमान प्रजातन्त्रवाद के अन्दर वोट लेने की जो प्रथा प्रचलित है वह नई नहीं है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों से यह पता चलता है कि ग्राम-पंचायतों में वोट लेने की प्रथा प्रचलित थी। सभी व्यक्ति इनके सदस्य नहीं बन सकते थे। इसके लिये आयु, शिक्षा, तथा सम्पत्ति की शर्त लगाई गई थी। जिसके पास अपना मकान होता, जो निश्चित मात्रा में सरकारी टैक्स देता, जो मन्त्रों का ज्ञान रखता, और कम से कम एक धर्मशास्त्र की पूरी जानकारी रखता वह पञ्चायत का सदस्य बन सकता था। जिसे एक वेद का पूरा ज्ञान रहता वह भी पञ्चायत का सदस्य बनने का अधिकारी समझा जाता था। इसके अतिरिक्त चरित्र और आयु का भी बन्धन लगाया गया था। ३५ वर्ष से कम और ७५ वर्ष से ऊपर की आय का कोई व्यक्ति पञ्चायत का सदस्य नहीं बन सकता था। निम्नलिखित व्यक्ति सदस्य बनने से सर्वथा अयोग्य ठहराये गये थे :—

१—जो सदस्य किसी कारणवश एक बार अपराधी करार दिया जाता या उसके सम्बन्धी पञ्चायत के सदस्य नहीं बन सकते थे। उसके भाई, बहिन, माता, पिता आदि को पञ्चायत में स्थान नहीं दिया जाता था।

२—ब्रह्म-हत्या करने वाला, शराबी, सोने की चोरी करने वाला, अथवा व्यभिचारी पञ्चायत का सदस्य नहीं बन सकता था। अर्थात् पंच महापातकी इस पद से वंचित किये गये थे।

३—चोर तथा डाकू, नीचों की संगति में रहने वाले, और उतावले पञ्चायत में शामिल नहीं हो सकते थे।

४—चरित्रहीन व्यक्तियों के लिये पञ्चायत में कोई स्थान न था।

५—त्याज्य भोजन करने वालों को पञ्चायत में स्थान नहीं दिया जाता था।

---

* Archological Survey of India, 1904—5, p.130

६—जालसाजी करने वाले तथा गदहे पर चढ़े हुये व्यक्तियों को पञ्चायत में शरीक नहीं किया जाता था।

चुने हुये व्यक्तियों में से सबसे चतुर तथा अनुभवशील १२ सदस्यों की एक कमीटी अन्य कमीटियों की देख-रेख के लिये बना दी जाती थी। इसे वार्षिक कमीटी कहा जाता था। दूसरे १२ सदस्यों की एक कमीटी बगीचों की देख-रेख के लिये और इन दोनों के अतिरिक्त ६ सदस्यों की एक तीसरी कमीटी तालाबों की देख-रेख के लिये बनाई जाती थी। इन कमीटियों का कोई सदस्य किसी अपराध में पकड़ा जाता तो वह अपने पद से हटा दिया जाता था। इनके अतिरिक्त जो बाकी कमीटियाँ गाँव की देख-रेख के लिये बनाई जाती थीं उनका चुनाव फिर से होता था।

इन ३० सदस्यों का चुनाव इस वैज्ञानिक ढंग से किया जाता था कि किसी को इसमें आपत्ति की गुंजाइश न होती थी। गाँव को ३० बराबर हिस्सों में बाँट दिया जाता था। प्रत्येक हिस्से में रहने वाले योग्य व्यक्तियों को एक एक टिकट दिया जाता था। वे इस पर अपना नाम लिख कर किसी एक जगह रखते थे। तीसों मुहल्लों की तीस ढेरियाँ लग जाती थीं। हर ढेरी पर मुहल्ले का नाम लिखा रहता था। फिर हर ढेरी के टिकट अच्छी तरह रस्सी से बाँध दिये जाते थे। यह सारा काम गाँव की सबसे बड़ी सभा के सामने, जिसमें गाँव के लगभग सभी लोग शरीक रहते थे, होता था। गाँव के छोटे बड़े सभी पुजारी मौजूद रहते थे। सबसे बड़ा पुजारी तीसों ढेरियों को अलग अलग बँधी हुई गठरियों को एक मिट्टी के बर्तन में रखता था। इसके पश्चात् वह दोनों हाथों से बर्तन को उठाकर आँख ऊपर किये किसी बच्चे को बुलाता था। बच्चे को यह मालूम नहीं था कि मिट्टी के बर्तन में क्या रक्खा हुआ है। बच्चा बर्तन से एक गठरी निकाल देता था। इसके बाद पुजारी उस गठरी के तमाम टिकटों को इधर उधर फेर कर किसी दूसरे बर्तन में रख देता था। फिर वह बच्चा इनमें से एक टिकट निकालता था। टिकट को लेने के लिये एक मध्यस्थ दाहिना हाथ अच्छी तरह खोलकर पाँचों उँगलियों को फैलाकर इस टिकट को बच्चे से ले लेता था। जिस व्यक्ति का नाम इस टिकट पर लिखा रहता था वह पञ्चायत का एक सदस्य घोषित कर दिया जाता था। इसी तरह बारी बारी से तीसों सदस्य का चुनाव होता

था । स्त्रियाँ भी पंचायत अथवा कमीटियों की सदस्य बन सकती थीं ।*

गाँव और राजा

मुसलमानी जमाने में बादशाहों को गाँवों के मामलों में हाथ डालने की जरूरत कम पड़ती थी । जब तक उन्हें कर आसानी से मिल जाता तब तक वे गाँवों की चिन्ता से सर्वथा निर्द्वन्द थे । ग्राम पंचायत तथा कमीटियों का वे इतना आदर करते थे कि किसी सरकारी कर्मचारी को उसमें हाथ डालने की सख्त मुमानियत थी । परन्तु हिन्दू काल में यह बात न थी ।† राजा ग्राम पंचायतों का आदर करते हुये भी गाँव के प्रबन्ध का ध्यान रखता था । वह इसे अपने राज्य का एक अंग समझता था । राजा की ओर से अनेक कर्मचारी गाँवों की देख-रेख के लिये नियुक्त किये जाते थे । परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि गाँव और केन्द्रीय सरकार के बीच में एक तीसरी राजनीतिक संस्था थी । गाँवों का सम्बन्ध सीधे केन्द्रीय सरकार से था । हितोपदेश में एक स्थान पर कहा गया है कि :—

त्यजेत्कुलार्थे पुरुषं, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे, पृथिवीं त्यजेत् ।

अर्थात् कुटुम्ब की भलाई के लिये व्यक्ति को, ग्राम की भलाई के लिये कुटुम्ब को, राष्ट्र की भलाई के लिये गाँव को और अपनी भलाई के लिये व्यक्ति इस पृथ्वी को छोड़ने के लिये सर्वथा तैयार रहे ।

मनु के कथनानुसार गाँव और राजा का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट था । गाँव का मुखिया वही नियुक्त करता था ।‡ कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस विषय के अनेक वर्णन मिलते हैं कि राजा गाँवों के मामलों में सीधा हाथ डाल सकता था । § शुक्रनीति में राजा के अनेक कर्तव्यों

---

* Madras Epigraphy Annual Report, 1909-10, p. 98.

† For Metcalfe's famous description of the Indian Village Community so Baden-Powell Land System of British India, Vol. 1, p. 170.

‡ मानव धर्मशास्त्र, अ० ८

§ मैसूर पत्रिका, फरवरी १९०८

में एक यह भी बात आवश्यक ठहराई गई है कि यह वर्ष में एक बार हर गाँव का भ्रमण करे। उसका यह भी कर्तव्य है कि वह प्रजा की तकलीफों को स्वयं सुने, और कोई सरकारी कर्मचारी उस पर अत्याचार करता है तो उसे दंड देने की व्यवस्था करे। दक्षिणी भारत के शिला-लेखों से पता चलता है कि ग्राम पंचायतों और राजाओं में घनिष्ट सम्बन्ध रहता था। किसी गाँव की सभा ने ग्राम-वासियों का कुछ रुपया खा डाला। यह रकम किसी मन्दिर के लिये रक्खी गई थी। मन्दिर के कर्मचारियों ने राजा से इसकी फरियाद की। राजा ने दोनों पार्टियों को बुला भेजा और सभा को दोषी साबित किया। सभा को जुर्माना किया गया और यह रकम मन्दिर को दे दी गई।* १२६१ ई० में एक ग्राम की पंचायत ने राजा से यह फरियाद की कि अमुक ब्राह्मण चरित्रहीन है और एक विधवा स्त्री रक्खे हुये है। इस मामले में राजा का क्या फैसला रहा इसका जिक्र नहीं किया गया है।† इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि हिन्दू काल में राजा स्वयं गाँवों में जाते थे और प्रजा की हालत जानने की कोशिश करते थे। कुछ राजा तो वेष बदल कर गाँवों में घूमते थे ताकि प्रजा की ठीक ठीक दशा का ज्ञान हो। रात में राजा लोग प्रजा की दशा जानने के लिये गांवों का चक्कर करते थे। लेकिन जब उन्हें गाँव के मामलों में हाथ डालना होता तो वे ग्राम पंचायतों द्वारा ऐसा कर सकते थे।

बृटिश राज्य में ग्राम पञ्चायतें

स्थानीय शासन की व्यवस्था का अपहरण होने से ग्राम पंचायतों का महत्व जाता रहा। गाँव के मुखिया, चौकीदार, पटवारी, अमीन सबके अधिकार छीन लिये गये। इनमें से कुछ तो सरकारी कर्मचारी करार दिये गये और कुछ सर्वथा शक्तिहीन कर दिये गये। मुखिया आज भी है, लेकिन उसे कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। इसका परिणाम इतना भयंकर हुआ है कि गाँव असंगठित तथा अशिक्षित होते गये हैं। जिन गाँवों के तमाम-झगड़े पंचायतों द्वारा फैसला किये जाते थे वेही आज थानों और कचहरियों का मुँह ताकते हैं। छोटे छोटे

---

* Madras Epigraphy, Annual Report, 1906-7 p. 71

†Madras Epigraphy Annual Report, 1908-9, p. 83.

झगड़ों तक को रिपोर्ट पुलीस को दी जाती है। सरकारी कर्मचारियों की ओर से जब उन पर बेजा दबाव डाले जाते हैं तो उनकी सुनाई सरकारी महकमे में कम होती है। जिले का कलक्टर और सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस की रक्षा के लिये ग्रामवासियों की कोई फरियाद नहीं सुनते। पुलीस के भय के कारण कोई गवाही तक करने के लिये तैयार नहीं होता। यदि गाँव का जीवन संगठित होता, और सरकारी कर्मचारियों को अपनी बेजा हरकतों के लिये पंचायत का डर रहता, तो वे निहत्थे ग्रामवासियों पर अनाचार और अत्याचार न करते। स्थानीय स्वराज की वृद्धि के साथ पंचायतों का फिर से श्रीगणेश किया गया है। लेकिन इसका तात्पर्य केवल ऊपरी ढाँचे से नहीं है, बल्कि ग्राम पंचायतों को वे सारे अधिकार प्राप्त होने चाहिये जो उन्हें हिन्दू और मुसलमानी जमाने में दिये गये थे।

वर्तमान समय में पंचायतों की स्थापना फिर से की गई है। दक्षिणी हिन्दोस्तान में पंचायतों ने अधिक सफलता दिखलाई है। इसकी वजह यह है कि जमींदारी प्रथा न होने से प्रजा की कार्रवाइयों में कोई बेजा हाथ डालने की हिम्मत नहीं रखता। उत्तरी हिन्दोस्तान में पंचायतों की स्थापना के लिये विभिन्न सूबों में कितने ही कानून पास किये गये हैं। १९२० ई० में संयुक्तप्रान्त में एक ग्राम पंचायत ऐक्ट पास किया गया। बिहार और पञ्जाब में भी इसी प्रकार के पञ्चायत ऐक्ट पास किये गये। १९१९ ई० में बंगाल में एक ग्राम स्वराज ऐक्ट पास किया गया, तदनुसार बहुत से यूनियन बोर्ड की स्थापना की गई। १९२० ई० में संयुक्तप्रान्त में जो पंचायत ऐक्ट पास किया गया था उसके अनुसार जिले के कलेक्टर को यह अधिकार दिया गया कि वह ग्रामों में पंचायतें बना सकें। गाँवों में पंचों को नियुक्त करने का अधिकार उसे दिया गया। पंचों की संख्या कम से कम ५ और अधिक से अधिक ७ हो सकती थी। यह पंचायत या तो प्रत्येक गाँवों में हो सकती है थी अथवा ४-६ गाँवों के बीच में एक ही पंचायत बनाई जा सकती थी।

पिछली पंचायत को दीवानी और फौजदारी दोनों तरह के अधिकार दिये गये थे। २५ रुपये तक के दीवानी के मुकदमें का फैसला करने का अधिकार इसे दिया गया था। यदि किसी ने जान बूझ कर किसी की मवेशी पकड़ ली अथवा ग्रामनिवासियों की सफाई में बट्टा पहुँचाया तो उसका मुकदमा पंचायत फैसला करती थी। जिसने १० रुपये तक की चोरी की या किसी भी तरह से १० रुपये तक का नुकसान पहुँचाया तो

उसका मुक़दमा पंचायत को सुपुर्द किया जाता था। मामूली मारपीट अथवा अपमान करने वाले फौजदारी के मुक़दमे पंचायत में पेश किये जाते थे। वह फौजदारी के मामलों में १० रुपये तक, मवेशियों के मामलों में ५ रुपये तक, और स्वास्थ्य सम्बन्धी मामलों में १ रुपये तक जुर्माना कर सकती थी। जिन व्यक्तियों को नम्बर १० करार दिया गया था उनके मुक़दमों की सुनाई पंचायत में नहीं हो सकती थी। सरकारी कर्मचारियों के मुक़दमे पंचायत में पेश नहीं किये जा सकते थे। पंचायत न तो किसी को जेल भेज सकती थी और न १० रुपये से अधिक जुर्माना कर सकती थी। इसका मुख्य काम गाँव की सफाई करवाना, कुएँ और तालाबों की सफाई का प्रबन्ध करना तथा शिक्षा, खेल-तमाशे, रोशनी, बगीचे आदि की व्यवस्था करना था।

पूर्ण स्वाधीनता और पञ्चायत राज्य

स्वतन्त्र भारतमे पञ्चायती राज्य की भावना बढ़ रही है। सभी प्रान्तों में पञ्चायतें स्थापित की गई हैं और ऐसी व्यवस्था की जा रही है कि ग्रामीण क्षेत्र में पञ्चायत राज्य का प्राचीन गौरव पुनः स्थापित हो जाय। देहात के लोग अधिक ईमानदार और कम प्रपंचकारी होते हैं। उनके स्थानीय शासन की व्यवस्था उन्हीं के हाथों में सौंपना हर प्रकार से उचित है। इसलिये अकेले युक्तप्रान्त में लगभग ५०,००० पञ्चायतें बनाई गई हैं। प्रत्येक १००० जन-संख्या वाले ग्राम में एक ग्राम-सभा बनाई गई है। ग्राम-सभा में गाँव के सभी स्त्री और पुरुष नागरिक सम्मिलित किये गये हैं। इसी ग्राम-सभा की कार्य-कारिणी का नाम ग्राम पञ्चायत है। ग्राम पञ्चायत में एक हजार की जन-संख्या तक ३०, दो हजार तक ३६, दो से ३ हजार के बीच में ३६, तीन से चार हजार के बीच में ४५ और चार हजार से ऊपर की जन-संख्या पर ५१ पंच होते हैं। प्रत्येक पञ्चायत का सभापति और उपसभापति गाँव सभा द्वारा चुना जाता है। पञ्चायत के सदस्य तीन वर्ष के लिये चुने जाते हैं। गाँव सभा दो तिहाई वोटों से सभापति और उपसभापति को अलग कर सकती है।

प्रत्येक ग्राम सभा के सभी वयस्क स्त्री-पुरुष पञ्चायती अदालत के लिये ५ पंच चुनते हैं। तीन से पाँच ग्राम-सभाओं के चुने हुये पाँच-पाँच पंचों का एक-एक पंच मण्डल होता है। यही अपना सरपञ्च चुनता है। सरपञ्च प्रत्येक मुकदमे के लिये पंच-मण्डल में से ५ पञ्चों

की एक बेंच बनाता है। इसे कारावास का दण्ड देने का अधिकार नहीं है परन्तु यह १०० रुपये तक जुर्माना कर सकती है। दीवानी के १०० रुपये की मालियत तक का मुकदमा करने का इसे अधिकार दिया गया है। सरकार किसी पञ्चायती अदालत को ५०० रुपये तक की मालियत का मुकदमा करने का अधिकार दे सकती है। छोटे-मोटे फौजदारी के भी मुकदमे पञ्चायत में फैसला किये जाते हैं। पंचायती अदालत की अवधि ३ वर्ष रक्खी गई है।

ग्राम पंचायत और पंचायती अदालत की विस्तृत व्यवस्था के लिये एक स्वतन्त्र ग्रंथ की आवश्यकता है। इनके अधिकार और कार्य-क्षेत्र देखने में छोटे हैं परन्तु वे व्यापक हैं। सरकार का विचार पंचायतों को शासन का क्रियात्मक केन्द्र बनाना है। ग्रामोन्नति के सभी कार्य पंचायत के हाथों में रक्खे गये हैं। चूँकि यह व्यवस्था सदियों से विकृत हो गई थी, इसलिये ग्राम निवासी इसे सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। सरकार और जनता दोनों को धैर्यपूर्वक इसे चलाना होगा। विदेशी शासन ने जनता की मनोवृत्ति को ऐसे साँचे में ढाल दिया है जो स्वतन्त्र वातावरण पैदा करने में कठिनाई उत्पन्न करता है। कुछ वर्षों के अभ्यास से ही इसका निराकरण होगा।

अध्याय १५
भारतीय रियासतें

रियासतों की संख्या और इनका विभाजन

अब तक राजनीतिक दृष्टि से हिन्दोस्तान ४ भागों में विभाजित किया गया था—बृटिश प्रान्त, देशी रियासतें, फ्रांसीसियों के उपनिवेश और पुर्तगीजों की भूमि। प्रान्तों का वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है; फ्रांसीसी और पुर्तगीजों के अधिकार में हिन्दोस्तान में कुल १८३४ वर्ग मील भूमि और लगभग ६ लाख व्यक्ति हैं। बटलर कमीटी की रिपोर्ट के अनुसार रियासतों की संख्या ५६२ रही है। परन्तु ज्वाइंट पार्लियामेंटरी कमीटी की रिपोर्ट से इनकी संख्या लगभग ६०० ठहराई गई थी। इनमें १०६ बड़ी रियासतें थीं, जिनके शासकों को नरेन्द्र मंडल (Chamber of Princes) में स्थान दिया गया था। १२६ रियासतों को केवल १२ सदस्य नरेन्द्र मंडल में भेजने का अधिकार था। ३०० रियासतें जागीरदारों और तालुकेदारों की थीं। सम्पूर्ण रियासतों का क्षेत्रफल ७१२५०८ वर्ग मील और इनकी जन-संख्या ८१३१०८४५ रही है। ४५४ रियासतों का क्षेत्रफल १००० वर्ग मील से कम था। ३७६ रियासतें ऐसी थीं जिनकी सालाना औसत वसूली एक लाख से भी कम थी। राजपूताने की कुछ रियासतों का क्षेत्रफल १६ वर्गमील से भी कम था। १५ रियासतें ऐसी रही हैं जिनका क्षेत्रफल एक वर्गमील भी नहीं था। २७ रियासतों का क्षेत्रफल एक वर्ग मील था। कुछ रियासतों की जनसंख्या १०० से भी कम थी और उनकी सालाना वसूली १०० रुपये के लगभग थी। एक रियासत का क्षेत्रफल केवल ३० एकड़ था लेकिन चन्द रियासतें ऐसी रही हैं जो योरप के बड़े बड़े स्वतन्त्र देशों से भी लम्बी चौड़ी थीं। हैदराबाद का क्षेत्रफल इटली के बराबर है और इसकी जन-संख्या १ करोड़ ४० लाख से ऊपर है, अर्थात् जापान से इसका क्षेत्रफल केवल ८००० वर्ग मील कम है। काश्मीर का क्षेत्रफल ग्रेट बृटेन से कुछ ही कम है। मैसूर का क्षेत्रफल डेनमार्क के दूने के लगभग है।

रियासतें कई समूहों में विभक्त की जाती रही हैं। भौगोलिक, राजनीतिक और शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से इनमें अन्तर दिखाई पड़ेगा। जम्बू और काश्मीर की रियासत हिन्दोस्तान के उत्तर में स्वर्ग के समान

इतनी सुन्दर और विशाल रही है कि इसे स्वयं एक समूह में रक्खी जा सकता था। पंजाब की ३४ रियासतें एक समूह में रक्खी जा सकती थीं। संयुक्तप्रान्त में केवल ३ रियासतें रहीं हैं। ये एक दूसरे से सर्वथा अलग हैं। बिहार और उड़ीसा में २६ रियासतों का एक अलग समूह रहा है। बंगाल में २ और आसाम में केवल मनीपुर की रियासत रही है। २०६ रियासतों का एक दूसरा समूह वेस्टर्न इन्डियन स्टेट्स एजेन्सी के नाम से प्रसिद्ध रहा है। राजपूताने में २१ रियासतों का एक अलग समूह रहा है। मध्य भारतीय रियासतों (Central Indian States) में ६० रियासतें रही हैं। कुछ रियासतें मध्यप्रान्त में रही हैं। बम्बई में १५१ रियासतों का एक दूसरा समूह रहा है। दक्षिण में हिन्दोस्तान की सबसे बड़ी रियासत हैदराबाद है। इसके बाद मैसूर की दूसरी बड़ी रियासत है। सुदूर दक्षिण में कोचीन और ट्रावनकोर की रियासतें हैं। भौगोलिक दृष्टि से यह बिभाजन रियासतों की जलवायु समझने में कुछ सहायक हो सकता है परन्तु राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से इसका कोई महत्व नहीं रहा है।

भारतीय रियासतें इतने प्रकार की रही हैं कि इनका विभाजन किसी वैज्ञानिक आधार पर होना चाहिये था। इनका क्षेत्रफल, जनसंख्या, तथा शासन-प्रबन्ध—ये बातें इनमें अलग अलग पाई जाती हैं। पद के अनुसार ये रियासतें तीन श्रेणियों में रक्खी गई थीं :—

१—वे रियासतें जो नरेन्द्र मंडल की सदस्य थीं। इनकी संख्या १०८ थी। इन सबका क्षेत्रफल ५१४८८६ वर्ग मील और जनसंख्या ६ करोड़ के लगभग थी। इन सबकी सालाना वसूली ४३ करोड़ रुपये के लगभग थी। इन्हें 'सलामी वाली' (Salute States) रियासतें भी कहते रहे हैं। इनके अतिरिक्त ८ अन्य रियासतों को भी सलामी का अधिकार दिया गया था, परन्तु वे नरेन्द्र मंडल (Chamber of princes) की सदस्य नहीं थीं।

२—वे रियासतें जिन्हें केवल १२ सदस्य नरेन्द्र मंडल में भेजने का अधिकार था। इनकी संख्या १२७ थी। इनका क्षेत्रफल ७६८४६ वर्ग मील और जनसंख्या ८० लाख से कुछ अधिक थी। उनकी लाना वसूली ३ करोड़ रुपये थी।

३—वे रियासतें जो नरेन्द्र मंडल में अपना प्रतिनिधि नहीं सकती थीं। इनके शासक एक प्रकार के जागीदार अथवा ताल्लुकेदार थे। इनकी संख्या ३२७ और क्षेत्रफल ६४०६ वर्ज मील था। जनसंख्या ८ लाख से कुछ ऊपर और सालाना वसूली ७५ लाख रुपये के लगभग थी। ये रियासतें बहुत ही छोटी और नाममात्र के लिये थीं।

रियासतों का यह विभाजन बहुतों को पसन्द नहीं था। सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने इनका विभाजन 'स्वतन्त्र' और 'परतन्त्र' दो प्रकार से किया था। प्रत्येक रियासत के साथ बृटिश सरकार ने एक सुलहनामा किया था। हर एक राजा को अधिकारों और कर्तव्यों की एक सनद दी गई थी। इसमें यह सूचित किया गया था कि कौन रियासत किस दर्जे तक स्वतन्त्र है। कुछ ऐसी भी रियासतें थीं जो सरकार को कर अथवा नज़र नहीं देती थीं। इसके अलावा कुछ रियासतों को प्रति वर्ष कुछ घोड़े, सिपाही और एक निश्चित रक़म देनी पड़ती थी। काश्मीर के राजा को प्रति वर्ष १ घोड़ा, १२ बकरियाँ और ३ ऊनी शाल देने पड़ते थे। लार्ड डलहौजी ने भी इस विभाजन को स्वीकार कर लगभग सभी परतन्त्र रियासतों को बृटिश राज्य में शामिल कर लिया था। ग़दर के बाद यह विभाजन दूर कर दिया गया। उनके साथ नये तरह के सुलहनामें किये गये और उनके दर्जों में अनेक परिवर्तन हुये। कुछ भारतीय लेखकों तथा राजनीतिज्ञों ने रियासतों का बहुत ही सरल विभाजन किया है। उनका कहना है कि जो रियासतें क्षेत्रफल, जनसंख्या, वसूली तथा रुतबे में बड़ी हैं उन्हें एक कोटि में रक्खा जाय और बाक़ी को दूसरी कोटि में।

सरदार डी० के० सेन ने रियसतों को ७ श्रेणियों में बाँटा था। राजसत्ता के आधार पर उन्होंने यह विभाजन किया था। जो रियासतें जहाँ तक शासन-प्रबन्ध में आज़ाद रही हैं। उसी हिसाब से उनको एक कोटि में रक्खा गया था। रियासतों में इतनी विषमतायें थीं कि उनके विभाजन के लिये कोई निश्चित सिद्धान्त बनाना कठिन था। ३० रियासतों में धारा-सभायें स्थापित की गई थीं; ४० रियासतें अपनी स्वतन्त्र हाईकोर्ट रखती थी; ३४ रियासतों ने अपने राज्य में न्याय और कार्यकारिणी विभाग को एक दूसरे से अलग कर रक्खा था : ५४ रियासतों ने पेंशन देने का नियम बनाया था; ४६ रियासतों में सरकारी पदाधिकारियों का वेतन और उनका कार्यकाल बृटिश प्रान्तों की तरह था; ५६ रियासतों में राजा को एक निश्चित रक़म उसके निजी खर्च के लिये दी जाती थी; २२१ रियासतें बृटिश सरकार को कर देती थीं। इस प्रकार इनके आन्तरिक और बाह्य सम्बन्ध में बड़ा ही अन्तर था। शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से रियासतों को दो भागों बाँटा गया था :—

१—वे रियासतें जो अधुनिक प्रजातन्त्रवाद के आधार पर अपना राजनीतिक प्रबन्ध करती थीं। इनमें निर्वाचन की प्रथा प्रचलित थी और लोकमत का आदर किया जाता था। दक्षिण को कुछ बड़ी-बड़ी रियासतें

और उत्तर और मध्य की लगभग एक दर्जन रियासतें इस कोटि में गिनी जाती थीं।

२—वे रियसतें जिनमें पुरानी दकियानूसी जारी थी। सारे अधिकार राजा को प्राप्त थे और प्रजा उनके हाथ की कठपुतली थी। राजपुताना की कुछ रियासतें और हिन्दोस्तान की शेष रियासतें इसी कोटि में रक्खी जा सकती थीं।

रियासतों की विषमतायें यहीं समाप्त नहीं हो जातीं। हिन्दोस्तान में कुल १८ विश्वविद्यालय हैं, इनमें केवल २ रियासतों में हैं। केवल काश्मीर में अपना स्वतन्त्र तारघर है। ट्रावनकोर, हैदराबाद और कोचीन में डाकघर हैं। हैदराबाद, उदयपुर, ट्रावनकोर और कुछ राजपुताने की रियासतों में अपने निजी सिक्के चलते रहे हैं। किसी भी रियासत को यह अधिकार नहीं रहा है कि वह किसी अंगरेज कर्मचारी के वेतन पर इनकमटैक्स लगा सके। कुछ रियासतों की प्रजा को बृटिश प्रान्तों की बराबरी में रक्खा गया था, परन्तु बाकी की जनता छोटे-छोटे अधिकारों के लिये तरसती थी। शिक्षा और उद्योग-धन्धों की दृष्टि से इन रियासतों में कोई समता नहीं थी। क्षेत्रफल में जम्बू और काश्मीर की रियासत हिन्दोस्तान में सबसे बड़ी है। परन्तु जन-संख्या में हैदराबाद का नम्बर सर्वप्रथम है। ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ रियासतें बहुत ही प्राचीन हैं। कुछ का निर्माण अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में किया गया था। मैसूर का निर्माण १७६६ ई० में किया गया था। १८८१ ई० में इसकी सीमा में कुछ परिवर्तन किया गया। टोंक, राजपिपला, झालावाड़, गढ़वाल, बनारस, कोल्हापुर आदि रियासतें बृटिश राज्य दृढ़ हो जाने के बाद बनाई गई थीं। कुछ रियासतों में राष्ट्रीय भावनायें बृटिश प्रान्तों की तरह फैली हुई थीं। परन्तु बाकी की जनता योरप के मध्ययुग की तरह कूपमंडूक थी। इन्हीं सब कारणों से कुछ राजनीतिज्ञों ने रियासतों को ११ भागों में विभाजित किया था।

चाहे जिस तरह से रियासतों का विभाजन किया जाय कोई न कोई कमी जरूर रह जायेगी। इसलिये अच्छा होगा कि उपरोक्त विभाजनों में से किसी को मानकर अपना काम चला लिया जाय। लार्ड इरविन ने भी इसे स्वीकार किया था कि रियासतों का विभाजन ठीक नहीं है। यदि सभी रियासतें दो श्रेड़ियों में बाँटी जायँ तो कोई बुरा न होगा।

१—वे रियासतें जो सरकार को कर (Tribute) देती रही हैं।

२—वे रियासतें जो कर से मुक्त रही हैं।

१६१६ ई० में भारतीय शासन-विधान की जो नई योजना बनाई गई

नरेन्द्र-मंडल (Chamber of Princes)

उसमें इस बात की शिफ़ारिश की गई थी कि देशी नरेश अपना एक संगठन बनावें। ८ फरवरी १९२१ ई० को राजाओं के इस संगठन का उद्घाटन किया गया। इसी का नाम नरेन्द्र-मंडल (Chamber of Princes) पड़ा। तब से बराबर यह मंडल रियासतों की भलाई और अधिकारों पर विचार करता रहा है। वाइसराय इस मंडल का सभापति होता था। सभी रियासतें नरेन्द्र-मंडल का सदस्य नहीं बन सकती थीं। ३२७ रियासतों का मंडल से कुछ भी सम्बन्ध नहीं था। केवल उन्हीं रियासतों को इसका सदस्य बनने का अधिकार था जिन्हें सलामी दी जाती थी। नरेन्द्र-मंडल में कुल १२१ सदस्य होते थे। १०९ रियासतों के,जो सबसे बड़ी गिनी जाती थीं, यहाँ के राजा और शेष १२७ रियासतों में केवल १२ रियातों के राजा इस मंडल में आते थे। राजा लोग स्वयं मंडल के पदाधिकारियों को नियुक्त करते थे। चान्सलर और प्रोचान्सलर इसके सबसे बड़े पदाधिकारी होते थे।

१९२८ ई० तक मंडल की कार्रवाइयाँ गुप्त रक्खी जाती थीं। इसकी बैठक में बाहरी व्यक्ति शरीक नहीं किये जाते थे। परन्तु १९२९ के फरवरी महीने में राजाओं ने यह प्रस्ताव पास किया कि आम जनता इसकी कार्रवाइयाँ सुन सकती है। नरेन्द्र-मंडल का दफ्तर नई दिल्ली में था। उसमें इतनी जगह नहीं थी कि बाहरी आदमी काफी तादाद में वहाँ बैठ सकें। मंडल की बनावट को देखते हुये कोई भी इसे प्रजातन्त्रवादी संस्था नहीं कह सकता। राजा लोग अपने पद के कारण मंडल के सदस्य होते थे, उनका चुनाव नहीं किया जाता था। २३६ रियासतों को ही यह सौभाग्य प्राप्त था कि मंडल में अपने सदस्य भेज सकें। अधिक से अधिक रियासतें इस अधिकार से वंचित रक्खी गई थीं। जब यह संस्था हिन्दोस्तान की सभी रियासतों की भलाई और बेहतरी के लिये बनाई गई थी तो इतनी अधिक रियासतों को अलग रखने में कोई अर्थ नहीं मालूम पड़ता यद्यपि वे रियासतें छोटी थीं फिर भी इन्हें मंडल से एकदम अलग नहीं किया जा सकता था।

वैसे तो मंडल का कार्य रियासतों और बृटिश सरकार के सम्बन्ध को ठीक बनाये रखना था, परन्तु जबसे इसकी स्थापना हुई तभी से इसका ध्यान संघ-शासन की ओर आकर्षित हुआ। कई बार इस समस्या पर विचार किया गया। रियासतों की यह अभिलाषा थी कि बृटिश प्रान्तों के साथ उनका सम्पर्क हो जाय,लेकिन साथ ही वे यह भी चाहती थीं कि उनकी

स्वतन्त्रता में कोई बाधा न पड़ने पाये। गोलमेज सभा में इस पर विचार किया गया। राजाओं की इस पर दो रायें थीं। कुछ लोग संघ-शासन के पक्ष में थे और कुछ विपक्ष में। बड़ी रियासतें मंडल में हमेशा से अपना अधिक हाथ रखती रही हैं संघ-शासन के प्रश्न पर जब छोटी रियासतों के साथ उनका मतभेद हुआ तो उन्हें झुकना पड़ा। कारण यह है कि मंडल में छोटी रियासतों के राजाओं की संख्या अधिक थी। इसलिये उनका सदैव ही बहुमत रहता था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए यह चर्चा चलाई गई कि मंडल का संगठन नये सिरे से किया जाय। इसके लिये एक कमीटी बना दी गई, जिसका निर्णय होने के पहले रियासतों का अस्तित्व ही जाता रहा।

नरेन्द्र-मंडल के अधिकार बहुत ही सीमित थे। किसी रियासत के आन्तरिक प्रबन्ध के विषय में उसे विचार करने का अधिकार नहीं था। बृटिश सरकार के साथ जो उनकी सन्धियाँ हुई थीं उन पर भी सदस्य गण वाद विवाद नहीं कर सकते थे। मंडल इस विषय का कोई प्रस्ताव पास नहीं कर सकता था कि बृटिश सरकार और रियासतों का सम्बन्ध बदल दिया जाय। यह संस्था एक प्रकार की सलाहकारणी थी। रियासतों के छोटे-मोटे प्रबन्ध के लिये यह सलाह देती रहती थी। जब कोई ऐसा राजनीतिक प्रश्न उठ खड़ा होता जिसका प्रभाव सब पर पड़ता तो इस विषय में यह वाइसराय को सलाहें दे सकती थी। कुछ रियासतें नरेन्द्र-मंडल को बेकार समझती थीं। काश्मीर, ट्रावनकोर, मैसूर, और हैदराबाद, जिनकी गणना सबसे बड़ी रियासतों में की जाती थी, नरेन्द्र-मंडल की सदस्य नहीं थीं।

रियासतों में जिम्मेवार शासन

हिन्दोस्तान की २४ प्रतिशत जनता देशी रियासतों में रहती थी यदि प्रान्तों को आजादी दे दी जाय, और रियासतों में कोई परिवर्तन न किया जाय, तो यह मुल्क आजाद नहीं कहा जा सकता। भूतकाल की परिस्थित में देशवासियों की नजर रियासतों की ओर भले ही न थी, परन्तु समय किसी आन्दोलन का इन्तजार नहीं करता। रियासतों में रहने वाले लोग यह नहीं जानते थे कि राजनीतिक अधिकार क्या है। जिस प्रकार एकतन्त्रवाद का जिक्र प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है उसी का जीता जागता उदाहरण रियासत में मौजूद था। राजा के शब्द ही कानून कहलाते थे। दो चार इनीगिनी को छोड़कर किसी में भी प्रतिनिधि सभा नहीं पाई जाती। राजा

स्वयं कानून बनाते, फैसला करते और उन्हें कार्यान्वित करते थे। जनता को यह अधिकार अब तक नहीं है कि वह स्वतन्त्रता-पूर्वक कोई संगठन बनाये और सभायें करे। ऐसे कितने ही उदाहरण मौजूद हैं जब कि मीटिंगों और भरी सभाओं में कर्मचारियों की ओर से गोलियाँ चलाई गई हैं। रियासतों में लेखन और भाषण की भी स्वतन्त्रता नहीं है। सरकारी कर्मचारी प्रजा को भेंड़ और बकरी समझते हैं। नियमित कर से अधिक कर वसूल करना उनके लिये मामूली सी बात है। प्रजा अपनी तकलीफों को राजदरबार तक नहीं पहुँचा सकती। अगर किसी ने हिम्मत भी की तो उसे या तो रियासत से बाहर निकाल दिया जाता है अथवा तरह-तरह की तकलीफें दी जाती हैं। कहा जाता है कि बृटिश प्रान्तों में तो कोई न कोई कानून बर्ते जाते हैं, परन्तु रियासतों में कोई कानून नहीं है। अपराधी महीनों बन्द कोठरियों में पड़े रहते हैं, उनके मुकदमें की सुनाई नहीं होती।

एकतन्त्रवाद में जितनी बुराइयाँ हो सकती हैं वे सब देशी रियासतों में पाई जाती हैं। राजाओं को अपने पद और अधिकारों का इतना गर्व होता है कि वे अपनी एक भी बात टाल नहीं सकते। उनका लालन-पालन ऐसे वातावरण में होता है और उनकी शिक्षा इतनी एकांगी होती है कि प्रजा के प्रति सद्भावना की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। या तो वे महलों में बैठे चन्द चापलूसों की जी हुजूरी सुनते हैं, अथवा योरप कि सैर करते हैं। सारा कार्य दीवान और चन्द कर्मचारियों को सौंप दिया जाता है। वे जितना फायदा उठा सकते हैं, उसमें कोई कसर बाकी नहीं रखते। कर्मचारियों को यह भली भाँति मालूम है कि न जाने किस समय राजा उन्हें निकाल बाहर कर दें। इसलिये अपने कार्य-काल में वे प्रजा से अधिक अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा करते हैं। रियासतों में जनता की राय सरीखी कोई चीज नहीं है। काश्मीर हिन्दोस्तान की बड़ी रियासतों में है। वहाँ के नायब दारोगा को यह अधिकार है कि वह जिसे चाहे गिरफ्तार करके एक महीना जेल में बन्द रक्खे अपराधी को यह भी अधिकार नहीं है कि वह अपने निरपराध होने का सबूत पेश कर सके। फ्रांस के बादशाह चौदहवें लुई की तरह राजा लोग रियासत को अपनी सम्पत्ति समझते हैं। यदि रियासतों की आय और व्यय पर नजर डाली जाय तो आधे से अधिक खर्च राजा का निजी खर्च कहलाता है। शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सार्वजनिक कामों पर कम से कम व्यय किया जाता है।

काँग्रेस आन्दोलन का प्रभाव देशी रियासतों पर भी गहरा पड़ा है। यद्यपि रियासतों में काग्रेस सीधे हाथ नहीं डालती, फिर भी इसके सिद्धांत

अधिकतर रियासतों को मान्य हैं। वहाँ की प्रजा यह हृदय से चाहती है कि उन्हें भी आजादी हासिल हो जाय। प्रान्तों में प्रजा पर केवल सरकार का भार है, परन्तु रियासतों में सरकार और राजा दोनों का है। इसलिये वहाँ के लोग अधिक दब्बू और जाहिल हैं। प्रान्तों की देखा-देखी उनके अन्दर कुछ उत्साह पैदा हुआ है, लेकिन अभी तक उनका भार हल्का नहीं हुआ। एक जिम्मेवार शासन के लिये जो जो बातें जरूरी हैं, उनकी माँग वे वर्षों से पेश कर रहे हैं, परन्तु अभी तक उनकी पूर्ति नहीं हुई।* चन्द प्रगतिशील रियासतों ने इस दिशा में कुछ करने का वचन दिया है। रियासती प्रजा की माँगों में निम्नलिखित माँगें सबसे महत्वपूर्ण रही हैं :—

१—राजा को सलाह देने के लिये एक मन्त्रि-मंडल की स्थापना की जाय, जो प्रजा द्वारा निर्वाचित हो।

२—कानून आदि बनाने के लिये धारा सभायें स्थापित की जायँ। सभी बालिग व्यक्तियों को वोट देने का अधिकार हो।

३—रियासत की आमदनी और खर्च धारा-सभा के हाथों में रक्खी जाय।

४—सरकारी कर्मचारियों की बेजा हरकतों को दूर करने के लिये उन्हें उचित वेतन दिया जाय, और उनका कार्य-काल निश्चित कर दिया जाय।

५—प्रजा को लेखन और भाषण की स्वतन्त्रता दी जाय।

६—अपराधियों को बिना उन्हें उचित कारण बतलाये गिरफ्तार न किया जाय। उनका मुकदमा जल्दी से जल्दी फैसल किया जाय।

७—कानून में किसी के साथ पक्षपात न किया जाय।

८—उचित व्यक्तियों को राजनीतिक अधिकार प्रदान किये जायँ।

कितनी ही रियासतों में "प्रजा-मंडल" स्थापित किये गये हैं। इनका उद्देश्य रियासतों में जिम्मेवार शासन की स्थापना करना है। कुछ राजाओं ने इन्हें गैर कानूनी करार दिया है। मंडल के सदस्यों पर तरह तरह के प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। सारांश यह है कि रियासतों में अभी तक जिम्मेवार शासन की स्थापना नहीं हुई है। राजाओं के दिलों में अभी यह भाव उत्पन्न नहीं हुआ है कि वे प्रजा के प्रतिनिधि हैं और

---

* रियासतों के विलयन अथवा समूहीकरण के पश्चात प्रजा के अधिकार सर्वथा बढ़ जायेंगे।

उन्हें सारी सुविधायें उसी से प्राप्त हुई हैं। उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि समय बड़े जोरों से बदल रहा है। वे इसकी अवहेलना नहीं कर सकते। प्रजातन्त्रवाद की लपट सब जगह एक-सी फैल रही है। यदि राजा लोग इस गुर को समझ जायँ तो उन्हें अधिक सुख और शान्ति मिल सकती है। प्रजा की भलाई को यदि वे अपना कर्तव्य मान लें तो निर्भय होकर अकंटक राज्य कर सकते हैं। हिन्दोस्तान की एक चौथाई जनता की किस्मत उनके हाथों में है। उनकी शिक्षा तथा सभी प्रकार की उन्नति की जिम्मेवारी लेकर वे अपने मुल्क की अधिक भलाई कर सकते हैं।

रियासतों के अधिकार

रियासतों को मनमाना अधिकार प्राप्त नहीं हैं। कुछ तो बृटिश सरकार से सुलह के कारण और कुछ उसकी नीति से वे बँधी हुई रही हैं। किसी भी राजा को अपनी रियासत में किले बनवाने का अधिकार नहीं है। बृटिश सरकार को यह भय था कि इससे उनकी शक्ति बढ़ सकती है। यदि किसी पुराने किले की मरम्मत करानी है तो सरकार से इसकी आज्ञा लेनी पड़ती है। यदि बृटिश सरकार किसी रियासत से होकर रेल की लाइन ले जाना चाहती, अथवा तार या फौज के लिये ज़मीन चाहती, तो रियासतों को बिना मूल्य उसे देना पड़ता था। अपनी फौज और हथियारों की संख्या कोई भी रियासत नहीं बढ़ा सकती। कुछ रियसतों को योरोपीय निवासियों पर मुकदमें चलाने का अधिकार नहीं है। हैदराबाद, मैसूर और बड़ौदा आदि बड़ी बड़ी रियसतों तक को किसी अँगरेज अथवा अमेरिकन को फाँसी की सजा देने का अधिकार नहीं है। छोटी-छोटी रियासतों में रेजीडेन्ट कलेक्टर और जज दोनों होता है। किसी रियासतको यह अधिकार नहीं है कि वह अपने राज्य का कोई भाग किसी दूसरी रियासत को बदले में दे सके। थोड़ी ही रियासतें अपना निजी सिक्का चला सकती हैं।

१८५७ ई० में बृटिश सरकार ने यह कानून पास किया कि रियासतें आयात और निर्यात कर नहीं बढ़ा सकतीं। इस पर सम्राट् का दैवी अधिकार माना गया था। बृटिश सरकार की आज्ञा के बिना किसी रियसत को गोद लेने का अधिकार नहीं था। जब सम्राट् इस गोद को स्वीकार करता तो रियासत को कुछ रकम उसे भेंट करनी पड़ती थी। किसी विशेष कारण से यह रकम माफ भी कर दी जाती थी। यदि किसी रियासत का निवासी हिन्दोस्तान से बाहर जाना चाहे तो

उसे बृटिश सरकार से पासपोर्ट लेना पड़ता था। भारत-सरकार का राजनीतिक विभाग (Political Department)जब चाहे इन रियासतों में दखल दे सकता था। ऐसे भी उदाहरण मौजूद हैं जब कि राजा को रियासत से बाहर निकाल दिया गया है। दीवान, प्रधान मन्त्री तथा रियासत के अन्य कर्मचारी राजनीतिक विभाग द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। बड़ी से बड़ी रियासत को किसी दूसरी रियासत से लड़ाई की घोषणा करने का अधिकार नहीं है। यदि कोई राजा अपनी प्रजा पर मनमाना अत्याचार करे तो केन्द्रीय सरकार उसे ऐसा नहीं करने देगी। रियासत को केवल इतनी स्वतन्त्रता प्राप्त है कि वे सन्धि के अनुसार चलती रहें और आन्तरिक प्रबन्ध को ठीक रक्खें।

सर्वोच्च अधिकार Paramount Power

यह विषय बहुत ही विवादग्रस्त है कि रियासतों को स्वतन्त्र कहा जाय अथवा नहीं। यह तो स्पष्ट है कि वाह्य और आन्तरिक दोनों विषयों में उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं है। किसी बाहरी देशों से एक स्वतन्त्र राष्ट्र की तरह वे सन्धि नहीं कर सकतीं। आन्तरिक मामलों में भी बृटिश सरकार अनेक कारणों से दखल दे सकती थी। इस दृष्टि से उन्हें स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता। कुछ लोगों का कहना है कि रियासतों की वाह्य राजसत्ता बृटिश सरकार के हाथ में और आन्तरिक राजसत्ता राजाओं के हाथ में थी, इसलिये इन्हें अर्द्ध राष्ट्र कहा जा सकता है। जान आस्टिन, जो राजसत्ता पर एक प्रमाण माना जाता है, राजसत्ता को अखंडित और अदेय बतलाता है। अर्थात् इसका विभाजन नहीं किया जा सकता। अतएव यह कहना ग़लत है कि रियासतों को राजसत्ता का कोई अंश प्राप्त है।

रियासतों के राजा अपने आपको किसी स्वतन्त्र बादशाह से कम नहीं मानते। किसी अंश तक अपने आन्तरिक प्रबन्ध के लिये वे स्वतन्त्र जरूर हैं, लेकिन उन्हें वे अधिकार प्राप्त नहीं हैं जो एक स्वतन्त्र शासक को होने चाहिये। रियासतें अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से भी स्वतन्त्र नहीं कही जा सकतीं। एक स्वतन्त्र राष्ट्र किसी भी सुलहनामे को जब चाहे तोड़ सकता है। रियासतें ऐसा नहीं कर सकतीं। उनके ऊपर इतनी शर्तें हैं कि उनके सामने उन्हें आज़ाद होने का स्वप्न नहीं देखना चाहिये। जो रियासतें बृटिश सरकार को कर देती रही हैं, और जिनकी फौज तथा हथियारों की संख्या निश्चित है, वे

राजसत्ता की अधिकारिणी नहीं कहला सकतीं। इनकी वास्तविक स्थिति का ठीक-ठीक वर्णन करने में कुछ लेखकों ने इतनी गोलमाल बातें लिखी हैं कि उनसे कुछ समझ में नहीं आता। लेज़ली स्काट (Sir Leslie Scott) लिखता है, "आरम्भ में हर एक रियासत स्वतन्त्र थी। यह स्वतन्त्रता अभी तक क़ायम है। इसकी थोड़ी सी कमी का कारण यह है कि इनकी कुछ स्वतन्त्रता बृटिश सम्राट् को दे दी गई।"* जिस राष्ट्र की स्थिति किसी दूसरे राष्ट्र की मर्ज़ी पर कायम रहे वह अपने आपको पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं कह सकता। भारतीय रियासतों का वर्तमान स्वरूप बृटिश सम्राट् द्वारा निश्चित किया गया था। रियासतों की परिभाषा में यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि सम्राट् ही उन्हें बना और बिगाड़ सकता था।†

रियासतों की राजसत्ता बृटिश सम्राट् के हाथों में दी गई थी। इसी को सर्वोच्च अधिकार (Paramount Power) कहते हैं। यह अधिकार स्पष्ट नहीं किया गया है। किस-किस दशा में सम्राट् इस अधिकार का प्रयोग कर सकता था, इसकी कोई सीमा निर्धारित नहीं है। कहा जाता है कि तीन कारणों से सम्राट् अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता था। राजा की भलाई, रियासत के लाभ, और सम्पूर्ण भारत की रक्षा तथा उन्नति का प्रश्न उपस्थित होने पर वह रियासतों में हाथ डाल सकता था। परन्तु कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि सर्वोच्च शक्ति (Paramount Power) ने अनायास और निष्प्रयोजन रियासतों में दख़ल दिया है। सर्वोच्च शक्ति इस बात का दावा करती रही है कि उसी के कारण राजाओं के अधिकार और इनकी मर्यादा सुरक्षित है। सम्राट् ने अपने इस सर्वोच्च अधिकार को

---

* As each state was originally independent, so each remains independent except to the extent to which any part of the ruler's sovereignty has been transferred to the Crown.

† Indian states means any territory, not being part of British India, which his Majesty recognises as being such a state, whether described as a state, an estate, a Jagir or otherwise.

वाइसराय को दे रक्खा था। आवश्यकता पड़ने पर वाइसराय रियासतों में दख़ल दे सकता था।

"सर्वोच्च अधिकार (Paramountcy) एक तरह की ईजाद थी जो बृटिश सरकार ने बड़े अनुभव से किया था *।" सच्ची बात तो यह है कि रियासतों को किसी तरह एक सूत्र में बाँधना था। इस लिये बृटिश सम्राट् को यह अधिकार दिया गया था कि वह इनकी रक्षा और आन्तरिक प्रबन्ध की जिम्मेवारी अपने हाथों में ले ले। बृटिश भारत को एक सूत्र में बाँधकर सरकार बिखरी हुई रियासतों को स्वतन्त्र कैसे रख सकती थी। यह कहना ठीक है कि सम्राट् को सर्वोच्च शक्ति की व्याख्या नहीं की जा सकती। इसका प्रयोग छोटी और बड़ी सभी रियासतों में एक सा किया जा सकता था। जो अधिकार राजाओं को दिये गये हैं वे सर्वोच्च अधिकार की बराबरी नहीं कर सकते। १६२६ ई० के लार्ड रीडिंग के एक पत्र से, जो उन्होंने हैदराबाद के निजाम को लिखा था, यह बात और भी साफ हो जाती है। सम्राट् उन सुलहनामों से बाध्य नहीं था जो रियासतों के साथ समय-समय पर किये गये थे। इसी सर्वोच्च शक्ति द्वारा रियासतों और बृटिश सम्राटों के बीच में एकता स्थापित की गई थी। दोनों का सम्बन्ध शासक और शासित का सा था। सम्राट् रियासतों का संरक्षक था। छोटी-छोटी बातों में वह दखल देता रहता था। भूपाल राज्य में एक कतल हुआ। बृटिश सरकार को यह शक हुआ कि इसमें राजा का भी हाथ है। वह तुरन्त गिरफ्तार कर लिया गया। उसे जेल की सजा दी गई और बृटिश भारत के एक जेल में उसे रख दिया गया। इसी से हम अनुमान कर सकते हैं कि राजाओं को कहाँ तक स्वतन्त्रता

---

* The idea of Paramountcy is an original political idea forged by the British in the factory of experience.

‡ The sovereignty of the British Crown is supreme in India, and therefore no ruler of an Indian State can justifiably claim to negotiate with the British Government on equal footing. Its supremacy is not based only upon treaties and engagements, but exists independently of them (27 th March 1926).

दी गई है। महाराजा रीवा को वहिष्कृत कर इस अधिकार को और भी स्पष्ट कर दिया गया था।

रियासतें और संघ-शासन

शासन-विधान का उपयोग जनता की इच्छा पर है। बुरे से बुरे शासन-विधान को अच्छी तरह कार्यान्वित करके कोई भी राष्ट्र अपना कल्याण कर सकता है। इतना जरूर है कि उन्हें आपस में मिलने का अवसर प्राप्त होना चाहिये। अभी तक हिन्दोस्तान ही ऐसे राजनीतिक टुकड़ों में बटा हुआ था कि एक के निवासी दूसरे से कोई सम्पर्क नहीं रखते थे। इस देश में संघ-शासन की उपयोगिता बहुत पहले से स्वीकार की गई है। १९३५ ई० में यह योजना पूरी की गई और देशी रियासतों तथा प्रान्तों को एकत्र होने का अवसर दिया गया। यद्यपि यह संघ-शासन-विधान वैसा नहीं है जिसकी हमें आशा थी, फिर भी कार्यान्वित होने पर शायद इससे कुछ लाभ पहुँचता। परन्तु योरोप की लड़ाई के कारण इसकी अवधि अनिश्चित काल तक टाल दी गई। कुछ बुराइयों के कारण, जिनका वर्णन पिछले अध्याय में किया गया है, यह संघ-शासन-विधान सर्वथा दोषपूर्ण ठहराया गया है। कॉंग्रेस ने इसका विरोध किया। वह नहीं चाहती थी कि शासन की शकल ऐसी ही बनी रहे।

१९३० ई० में जब लंदन में पहली गोलमेज सभा बुलाई गई थी तो राजाओं ने यह फैसला किया कि संघ-शासन की योजना पर वे गहराई के साथ विचार करेंगे। राजाओं को अभी तक यह भय रहा है कि कॉंग्रेस हिन्दोस्तान में समाजवाद की स्थापना करना चाहती है। इसीलिये वे ब्रिटिश सरकार की छत्रछाया से बाहर निकलने में भयभीत होते थे। संघ-शासन में उन्हें बराबरी की हैसियत से बर्ता जाता। यह बात उन्हें पसन्द नहीं थी। इस शंका को दूर करने के लिये १९२९ ई० में लार्ड इरविन ने उन्हें यह आश्वासन दिलाया कि प्रत्येक दशा में उनके अधिकारों की रक्षा की जायेगी। १९३१—३२ में जो दूसरी और तीसरी गोलमेज सभायें हुई उनमें राजाओं ने पूरा-पूरा भाग लिया। इतने आश्वासन दिलाने पर भी उन्होंने निम्नलिखि शर्तों के साथ संघ-शासन की योजना में शामिल होने का वादा किया :—

१—संघ-सरकार की शक्ति किसी भी तरह कमजोर न हो। उसे सभी वास्तविक शक्तियाँ (Real Powers) प्रदान की जायँ।

२—बृटिश सरकार के साथ जो उनके सुलहनामें हुए हैं उनमें कोई कमी न पड़ने पाये। संघ-सरकार इन मामलों में तब तक दखल न दे जब तक रियासतें अपनी इच्छा से इन्हें छोड़ दें।

३—संघ में शरीक होने और न होने का अधिकार राजाओं की मर्जी पर छोड़ दिया जाय।

४—संघ को रियासतों के आन्तरिक प्रबन्ध में हाथ डालने का अधिकार न हो।

५—जिन विषयों का सम्बन्ध सीधे बृटिश सम्राट् से है उनमें संघ को हाथ डालने का अधिकार न हो।

जब संघ-शासन-विधान बनाया गया तो बृटिश पार्लियामेंट ने इन बातों का ध्यान रक्खा, ताकि राजाओं को बिना किसी असुविधा के इसमें शरीक होने का अवसर मिले। अनुपात से अधिक उन्हें धारा-सभाओं में स्थान दिये गये थे। प्रान्तों को संघ-शासन में शामिल होना अनिवार्य ठहराया गया था, परन्तु रियासतों को इस बात की स्वतन्त्रता थी कि वे जब चाहे इसमें शरीक हों और इच्छा न होने पर वे इससे अलग भी रह सकती थीं। रियासतों को संघ-सरकार के कर्मचारियो से सर्वथा स्वतन्त्र रक्खा गया था। उन्हें यह अधिकार था कि संघ-सरकार से अपना सम्बन्ध वे स्वयं निश्चित कर लें। संघ की स्थापना के बाद भी बृटिश सम्राट् के सुलहनामें वैसे ही बने रहते। आबादी के हिसाब से संघ धारा-सभा में उन्हें अधिक से अधिक २५ प्रतिशत स्थान मिलने चाहिये, परन्तु ४० प्रतिशत स्थान उन्हें दिये गये थे। संघ-सरकार की ६० प्रतिशत आमदनी प्रान्तों से होती थी और रियासतें केवल १० प्रतिशत देती थीं। शासन-विधान में यहाँ तक कहा गया था कि जब तक सम्पूर्ण रियासतों की आधी जन-संख्या से सम्बन्ध रखने वाली रियासतें संघ में शरीक न होंगी तब तक शासन-विधान कार्यान्वित नहीं किया जायगा। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि रियासतें चाहतीं तो बने बनाये संघ-शासन को बेकार साबित कर सकती थीं।

संघ में प्रवेश करते समय रियातें एक प्रकार का शर्तनामा करत जिसके अनुसार वे अपने चन्द विषय संघ-सरकार की मातहती में देतीं। यह शर्तनामा (Instrument of Accession) सभी रियासतों के साथ एक सा नहीं होता। इससे संघ-सरकार का प्रभाव रिया-सतों पर भिन्न-भिन्न पड़ता था। इस शर्तनामें को बृटिश सम्राट् स्वीकार

करता। संसार के किसी देश में इस प्रकार का संघ-शासन नहीं पाया जाता। सब जगह शासन की इकाइयाँ एक सा अधिकार रखती हैं। उसके स्थान भी समान रूप से दिये जाते हैं। परन्तु भारतीय संघ शासन-विधान में रियासतें अपवाद स्वरूप थीं। संघ-धारा-सभा के सदस्य दो प्रकार के होते थे। प्रान्तों के सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित किये जाते यद्यपि यह निर्वाचित प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से होता। परन्तु देशी रियासतों के सदस्य राजाओं द्वारा नामजद किये जाते। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में संघ-सरकार की बड़ी धारा-सभा (Senate) में सभी रियासतों को बराबर स्थान दिया गया है। प्रत्येक रियासत, छोटी हो अथवा बड़ी, दो सदस्य भेजती है। छोटी धारा-सभा (House of Representatives) में स्थानों का वितरण रियासतों की आबादी के हिसाब से किया गया है। भारतीय संघ-सरकार-विधान में ऐसा नहीं था। बड़ी धारा-सभा में रियासतों और सूबों को बराबर स्थान प्राप्त नहीं था। छोटी धारा-सभा में आबादी के हिसाब से रियासतों को केवल १/४ स्थान मिलने चाहिये, परन्तु उन्हें १/२ स्थान दिया गया था।

संघ-शासन-विधान में रियासतों और प्रान्तों की कोई समानता नहीं थी। ऐसा दो कारणों से नहीं किया गया था। बृटिश सरकार रियासतों के सुलहनामें को बदलना चाहती थी। दूसरे राजा स्वयं यह नहीं चाहते थे कि उनके व्यक्तिगत सुख और स्वार्थ में बट्टा लगे। इन्हीं रियासतों के कारण संघ की शकल टेढ़ी-मेढ़ी हो गई थी। एक ओर तो प्रजातन्त्रवाद का गिरोह था और दूसरी ओर एकतन्त्रवादी रियासतें थीं। इन दोनों का मेल नहीं खा सकता था। यदि संघ को सचमुच सफल बनाना था तो रियासतों में पहले जिम्मेवार शासन की स्थापना की जाती। संघ-सरकार के अन्दर उनका वही स्थान होता जो प्रान्तों का था। राजाओं के साथ किसी भी प्रकार का पक्षपात न किया जाता और न उनसे शर्तनामें लिखवाये जाते। संघ में शरीक होना सबके लिये अनिवार्य ठहराया जाता। संघ-सरकार के कानून प्रान्तों और रियासतों में एक से बर्ते जाते। रियासतों के सदस्य राजाओं द्वारा नामजद न होकर प्रजा के प्रतिनिधि होते।

रियासतों का भविष्य

हिन्दोस्तान की वर्तमान राष्ट्रीय प्रगति को देखते हुए यह भली भाँति स्पष्ट है कि इसका कोना कोना प्रजातन्त्रवादी संस्थाओं (Democratic Institutions) से ओतप्रोत होगा। रियासतों में जो धाँधली

चल रही है यह चन्दरोजा है। प्रान्तों की आजादी को देखकर उनके पड़ोसी कूपमंडूक नहीं रह सकते। वह दिन अब दूर नहीं है जब कि रियासतों में जिम्मेवार शासन की स्थापना के लिये राजाओं को बाध्य होना पड़ेगा। सरकार को स्वयं इस मामले में प्रजा को मदद करनी होगी। एक समय ऐसा भी आयेगा जब कि रियासतों और प्रान्तों की प्रजा एक प्लेटफार्म पर मिलेगी। जितनी तेजी के साथ संसार की काया पलट हुई है उससे हिन्दोस्तान को २४ प्रतिशत जनता किस प्रकार वंचित रही है, यह एक बहुत बड़ा आश्चर्य है। परन्तु प्रजा-मंडलों की वृद्धि, उनकी माँगें और राष्ट्रीय भावनाओं से उनके सहयोग को देखते हुये यह अनुमान किया जा सकता है कि कितनी तेजी के साथ हिन्दोस्तान की राष्ट्रीयता बढ़ रही है। इस चतुर्मुखी लहर से रियासतें क्योंकर अपने को अलग रख सकती हैं। इतिहास इस बात का प्रमाण है कि किसी छोटे से देश की विजय का प्रभाव सारे महाद्वीप पर पड़ता है। जब जापान ने रूस को शिकस्त दी तो सम्पूर्ण एशिया महाद्वीप को इसका गर्व हुआ था। उन्हें यह विश्वास हुआ कि पूर्व भी पश्चिम को हरा सकता है। अपनी सेवा और त्याग के कारण हिन्दोस्तान को जो आजादी मिली है उसका प्रभाव रियासतों पर पड़े बिना नहीं रह सकता।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत-सरकार रियासतों की स्थिति और उपयोगिता पर विशेष रूप से विचार करने लगी है। देश की एक तिहाई जनता की उपेक्षा करना तथा उनके ऊपर एकतन्त्र राज्य का भार लादना राष्ट्रीय सरकार को शोभा नहीं देता। इसलिये रियासतों को प्रान्तों में मिलाने की योजना तेजी के साथ कार्यान्वित की जा रही है। छोटी-छोटी रियासतों का संगठन प्रान्तीय सरकार का रूप धारण कर रहा है। ग्वालियर, इन्दौर, मालवा आदि २२ रियासतों का एक संघ स्थापित किया गया है। इसका क्षेत्रफल ४७००० वर्ग मील है और यह देशी राज्यों के बने हुये संघों में सबसे पड़ा संघ है। महाराज ग्वालियर इस संघ के आजीवन राज प्रमुख बनाये गये हैं। पं० जवाहरलाल नेहरू ने इस संघ को 'भारत का हृदय' कहा है। बिहार की दो रियासतें सरायकेला और सरसवाँ बिहार प्रान्त में शामिल कर दी गई हैं। गुजरात के १७ राज्य बम्बई प्रान्त में शामिल किये गये हैं। कई देशी राज्यों के मेल से एक हिमांचल प्रदेश बनाया गया है, जिसका क्षेत्रफल ११००० वर्ग मील है। उत्तर में

तिब्बती पठार तक इस प्रान्त का प्रदेश चला गया है। दक्षिण में पूर्वी पंजाब की पठानकोट तहसील इसकी दूसरी सीमा है। इस प्रदेश में २४ रियासतें हैं। 'पटियाला तथा पूर्वी पंजाब की रियासतों का संघ' १५ जुलाई १६४८ ई० को स्थापित किया गया है। इसका क्षेत्रफल १०००० वर्गमील से कुछ अधिक और जनसंख्या ३५ लाख है। महाराजा पटियाला संघ के राजप्रमुख नियुक्त किये गये हैं। इसी प्रकार सेन्ट्रल इन्डिया की कुछ रियासतों को मिलाकर एक नये विन्ध्य प्रान्त की स्थापना की गई है। महाराजा रीवा इसके राजप्रमुख हैं। ६ जुलाई १६४८ ई० को भारत-सरकार द्वारा जो श्वेत पत्र प्रकाशित किया गया है उसके अनुसार २१६ रियासतें, जिनका क्षेत्रफल १४७७४ वर्गमील, आबादी १२०१८ लाख और राजस्व ५४१४ लाख है, भारत के प्रान्तों में विलीन हो गईं।*

बड़ौदा १ मई को और कोल्हापुर १मार्च को बम्बई प्रान्त में सम्मिलित कर लिये जायेंगे। इन राज्यों को मिलाने के बाद भारतीय प्रान्तों में बम्बई का स्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से तीसरा और जनसंख्या की दृष्टि से चौथा होगा।† राजस्थान रियासतों के समस्त नरेशों और राजप्रमुखों ने अपने राज्यों और संघों को 'बृहत्तर राजस्थान' में मिलाने का निश्चय कर लिया है। राजस्थान संघ के राजप्रमुख महाराणा उदयपुर और बृहत्तर राजस्थान के महाराणा प्रमुख महाराज जयपुर नियुक्त किये गये हैं। समस्त राजपूताना के लिये एक समान शासन प्रणाली स्थापित करने पर विचार किया जा रहा है। भूपाल मध्यप्रान्त में और

---

*श्वेत पत्र के ४ भाग हैं। दो भागों में रियासतों की राजनीतिक और ऐतिहासिक समस्या का वर्णन है। एक हिस्से में बृटिश सरकार के अन्तर्गत रियासतों की स्थिति का दिग्दर्शन है। दूसरे हिस्से में १६३५ ई० से ३ जून १६४७ ई० तक की घटनाओं का तत्सम्बन्धी वर्णन है। तीसरे हिस्से में रियासतों का विलीनीकरण और चौथे में लोकतन्त्र स्थापित करने का वर्णन है।

† रियासतों के प्रान्तों में मिलने से उनकी जन संख्या और क्षेत्रफल में अन्तर पड़ना स्वाभाविक है। इसी के कारण आज मध्यप्रान्त और बरार भारत का सबसे बड़ा प्रान्त है, जिसका क्षेत्रफल १५३७१० वर्ग मील है। जनसंख्या में युक्तप्रान्त सबसे बड़ा है। इसके बाद दूसरा स्थान मदरास का और तीसरा बिहार का है।

रामपुर युक्तप्रान्त में सम्मिलित कर लिये गये। भरतपुर और धौलपुर भी युक्तप्रान्त में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट कर रहे हैं।*

भारतीय संघ में रियासतों का विलीन होना भारतवर्ष के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। इससे एक आदर्श भारत का निर्माण होगा। रियासतों का संगठन और उनमें लोकतन्त्रवादी शासन की वृद्धि देश में राष्ट्रीय संगठन में सहायक होगी। काश्मीर और हैदराबाद इन दो रियासतों का प्रश्न जटिल है, जिन्हें सुलझाने का प्रयत्न किया जा रहा है। टेहरी, बनारस, रामपुर, त्रिपुरा, कासी, पहाड़ी राज्य, और कूच बिहार अभी किसी प्रान्त में विलीन नहीं हुई हैं। महाराजा बनारस ने युक्तप्रान्त के प्रधान मन्त्री से हाल में जो बातचीत की है उससे स्पष्ट है कि बनारस राज्य युक्तप्रान्त में विलीन होगा।



* लन्दन टाइम्स नामक पत्र ने देशी रियासतों पर टिप्पणी करते हुये लिखा है कि भारत को स्वाधीनता प्राप्त होने के १५ महीने के भीतर भारतीय रियासतों की संख्या ५६५ से घटकर एक दर्जन से भी कम हो गई है। बिस्मार्क ने जर्मन राष्ट्र का जो एकीकरण किया था वह भारत सरकार के इस कार्य की तुलना में बहुत ही छोटे पैमाने पर हुआ था। भारत सरकार ने देशी रियासतों के एकीकरण का यह कार्य अपेक्षाकृत कम समय में पूरा कर लिया है जिसने भारतीय संघ के राजनीतिक मानचित्र को बिलकुल बदल दिया है।

अध्याय १६

स्वास्थ्य और सफाई

सभ्यता की पहचान

किसी सभ्य जाति की पहली पहचान उसकी बाहरी सफाई है। इसके पश्चात् उसकी बुद्धि और कला-कौशल की परीक्षा की जाती है। जो जाति गन्दे तरीके पर रहती है और जिसकी रहन-सहन में पवित्रता की भावना कम है वह आगे को नहीं बढ़ सकती। उसका साहित्य और जीवन दूसरों को आकर्षित नहीं कर सकता। पाश्चात्य सभ्यता की तमाम कमजोरियों के बावजूद, यह बात निर्विवाद है कि योरोप निवासी बाहरी सफाई पर अधिक ध्यान देते हैं। जब तक हमारे कपड़े गन्दे हैं और शरीर पर धूल और मैल है तब तक हमारी बुद्धि कोई साफ चीज नहीं पैदा कर सकती। संसार का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि गन्दी और बुरी तरह रहने वाली जातियाँ हमेशा गुलाम रही हैं। आज भी भारतीय समाज में जो वर्ग गन्दा जीवन व्यतीत कर रहा है उसकी आर्थिक और सामाजिक हालत बड़ी ही शोचनीय है। इसका बहुत कुछ कारण उसकी अशिक्षा और गरीबी है, फिर भी जो जाति अपने आपको किसी हद तक उठाने की सामर्थ्य नहीं रखती वह गुलामी की जंजीर से मुक्त नहीं हो सकती। ज्यों-ज्यों मनुष्य की रहन-सहन बदलती गई है, और वह जंगलों तथा पहाड़ों के कन्दरों से निकल कर हवादार मकानों और नगरों में रहने लगा है, त्यों-त्यों उसकी सभ्यता ऊपर को उठती गई है। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि पाश्चात्य सभ्यता में ऊपरी सफाई पर जितना जोर दिया जाता है उतना अन्य मानसिक प्रवृत्तियों पर नहीं। किसी खास दृष्टिकोण से यह बात ठीक हो सकती है, परन्तु विज्ञान और वर्तमान भौतिक उन्नति को देखते हुए हम उन्हें पिछड़ा हुआ नहीं कह सकते।

मनुष्य का यह पहला कर्तव्य है कि वह अपने शरीर पर ध्यान रक्खे। स्वास्थ्य और सफाई का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिसे साफ रहने की आदत है उसे बीमारियाँ कम होंगी और दवा की आवश्यकता उसे नहीं पड़ सकती; उसका स्वास्थ्य हर समय ठीक रहेगा। स्वस्थ भोजन और पौष्टिक पदार्थों से बढ़कर साफ हवा और परवाह की आवश्यकता है।

स्वास्थ्य के लिये सबसे जरूरी चीज हवा और पानी है। इसके बाद भोजन और कसरत आदि का दर्जा आता है। शहरों में अच्छा-से-अच्छा भोजन करके लोग स्वस्थ और निरोग नहीं रह पाते। गन्दी गलियों और कारखानों के धुयें के सामने बादाम और हरे फलों के रस कुछ काम नहीं करते। गाँवों में इतनी गरीबी होते हुये भी लोग स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं। जैसे भी हो स्वास्थ्य को ठीक रखना निहायत जरूरी है। इसी से मनुष्य के विचार पुष्ट होते हैं। राष्ट्र की उन्नति का एक यह भी लक्षण है कि अधिक से अधिक व्यक्ति निरोग और हृष्ट-पुष्ट हों। कमजोर और बीमार व्यक्ति समाज को खोलला करते हैं। प्राचीन काल में स्पार्टा नगर में किसी कमजोर व्यक्ति को रहने की इजाजत न थी। जब लड़के पैदा होते तो उनकी परीक्षा की जाती थी। यदि वे कमजोर होते तो उन्हें मार डाला जाता था। वहाँ की सरकार का यह सख्त हुक्म था कि राज्य में कोई दुबला-पतला अथवा बीमार न रहे। सबको बच्चे से बूढ़े तक, चाहे वे स्त्री हों अथवा पुरुष, फौजी शिक्षा दी जाती थी। सरकारी कर्मचारी विशेष रूप से स्वस्थ रक्खे जाते थे।

ज्यों-ज्यों समय बदल रहा है, सफाई और स्वास्थ्य की ओर लोगों का ध्यान अधिक दिलाया जाता है। मशीनों के कारण स्वास्थ्य पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा है, लेकिन जैसा युग होता है वैसी ही व्यवस्था बनानी पड़ती है। फैक्ट्रियों तथा मिलों के अन्दर मजदूरों का स्वास्थ्य खराब होना अनिवार्य है। रोजी के कारण वे अपना काम बन्द नहीं कर सकते। सरकार का यह फर्ज है कि यह इन मिलों में इस तरह के सुधार करे जिससे मजदूरों का स्वास्थ्य अधिक से अधिक अच्छा रहे। जब उनसे १२ या १४ घंटे किसी बन्द कमरे के अन्दर काम लिया जायगा और उनके रहने के लिये गन्दे-से-गन्दे मकान दिये जायेंगे तो उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। तरह तरह की बीमारियाँ फैलेंगी और दूसरों को भी उनका शिकार बनना पड़ेगा। इसीलिये सरकार कानून द्वारा हवादार कमरे तथा खुले हुए मकान की व्यवस्था करती है। इतने पर भी विचारे मजदूर गरीबी के कारण एक एक कमरे में दर्जनों गुजर करते हैं। मशीनों के कारण मजदूरों की दशा और भी बिगड़ती गई है। पहले गाँवों में लोग खुली हवा में काम करते थे। उनके घर भी खुले मैदान में होते थे। अधिक परिश्रम करने पर भी उनका स्वास्थ्य ठीक रहता था। इसलिये पहले लोगों की आयु अधिक होती थी। आजकल ६० वर्ष में लोग बूढ़े हो जाते हैं, लेकिन पहले ८० या १०० वर्ष तक हट्टे कट्टे रहते थे। उनका

शरीर भी आजकल से भिन्न होता था। वर्तमान सभ्यता जितना ध्यान सफाई पर देती है उतना स्वास्थ्य पर नहीं है। शहरों की संख्या बढ़ने तथा कल-कारखानों की वृद्धि के कारण स्वास्थ्य की समस्या बड़ी ही विकट हो गई है। स्थानीय संस्थायें इसे सुलझाने की कोशिश करती हैं लेकिन जब तक लोगों का आकर्षण गाँवों की ओर न होगा तब तक हमारे देशवासियों का स्वास्थ्य नहीं सुधर सकता।

गाँव और शहर

हिन्दोस्तान गाँवों का देश है। इने-गिने शहर आज भी यहाँ मौजूद हैं। फिर भी अधिकतर जनता गाँवों में निवास करती है। बृटिश सरकार की कृपा-दृष्टि गाँवों की अपेक्षा शहरों पर अधिक रही है। म्युनिसिपल बोर्ड, इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट तथा सरकारी अस्पताल शहरों की सफाई और वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य पर ध्यान रखते हैं। कोई ऐसा शहर नहीं जिसमें दो चार अस्पताल और इतने ही औषधालय सरकार की ओर से न खोले गये हों। इनके अलावा अनेक धनमानी लोग जनता की सेवा के लिये दवाइयों का प्रबन्ध करते हैं। कितने ही वैद्य और डाक्टर अपनी निजी दुकाने शहरों में चलाते हैं। इस प्रकार दवाइयों का प्रबंध शहरों में काफी रहता है। सफाई के लिये भी शहरों में विशेष इन्तजाम रहता है। सरकारी कर्मचारी इसकी देख-रेख के लिये गलियों-गलियों में घूमते रहते हैं। कूड़े तथा सड़ीगली चीजों को फेंकने के लिये जगह जगह स्थान बने रहते हैं। लेकिन गाँवों में औषधि और सफाई पर कम ध्यान दिया जाता है। बड़े-से-बड़े जिले के गाँवों में मुश्किल से १० या १५ मील की दूरी पर एक छोटा सा अस्पताल मिलेगा। छोटी-छोटी बीमारियों के लिये भी लोगों को शहरों की शरण लेनी पड़ती है। जहाँ तक सफाई की बात है, गाँवों की अशिक्षित और अनभिज्ञ जनता को कोई यह भी बतलाने वाला नहीं है कि घर के कूड़े तक कहाँ रखना चाहिये। दरवाजों के सामने ही लोग घूर और कूड़े का ढेर लगाते हैं। हैजे और प्लेग ऐसी भयङ्कर बीमारियों के लिये उनके पास घर छोड़कर किसी आस पास के बगीचे में निकल जाने के अतिरिक्त कोई दूसरी दवा नहीं है।

गाँवों में लोग अपना घर बनाते समय हवा और रोशनी का ध्यान कम रखते हैं। लगभग सबके घर बिना खिड़की और ऊँची सीढ़ियों के होते हैं। कुछ तो गरीबी के कारण और कुछ कूपमण्डूकतावश घरों की दीवारें छोटी बनाई जाती हैं। दरवाजे भी इतने छोटे होते हैं कि कोई

आदमी सीधे किसी कमरे में प्रवेश नहीं कर सकता। पुराने रसम-रिवाजों के कारण स्त्रियों को पर्दे में रखने के लिये रोशनी की परवाह नहीं की जाती। घर के आसपास हफ्ते में शायद ही कभी झाड़ू लग जाता है। यदि गाँवों के पास कोई जंगल हुआ तो लोग उसे इतना गंदा रखते हैं कि सुबह-शाम उधर से कोई गुजर भी नहीं सकता। गाँवों के तालाब गंदगी के घर होते हैं। उसी में जानवर पानी पीते हैं, स्नान करते हैं और वहाँ के रहने वाले भी उसी में नहाते हैं। सड़ीगली चीजें उसमें पड़ी रहती हैं। इसीलिये कुछ लोगों को बीमारी का शिकार बनना पड़ता है। यदि गाँवों की हवा और पानी शुद्ध न होता तो इतनी लापरवाही पर वहाँ के निवासियों का स्वास्थ्य शहर वालों से भी बदतर रहता। परन्तु फिर भी गाँवों में दवा की आवश्यकता कम पड़ती है। आवश्यकता केवल इसी बात को है कि उन्हें सफाई की मोटी मोटी बातें बतला दी जायँ।

लापरवाही के कारण हमारे देश वासियों को काफी हानि उठानी पड़ती है। यहाँ की मृत्यु-संख्या की औसत इङ्गलैण्ड से दूनी है। जितने आदमी हमारे देश में मरते हैं उतने संसार के किसी सभ्य देशों में नहीं मरते। आँकड़ों पर हमें कोई विश्वास न करना चाहिये। कितने ही बच्चे गांवों में जन्म लेते ही मृत्यु के ग्रास हो जाते हैं और उनकी कोई गणना नहीं की जाती। हमारे देश-वासियों की औसत आयु अन्य देश-वासियों की अपेक्षा कम है। बेचारी मजदूर स्त्रियाँ पेट में बच्चे लेकर खेतों और मिलों में काम करती हैं। बच्चा होने के एक हफ्ते पहले तक उन्हें काम से छुट्टी नहीं दी जाती। इस अधःपतन का कारण देश की विकट गरीबी है। एक ओर लोग अपनी रहन-सहन को ऊँचा बनाने के चक्कर में हैं, परन्तु दूसरी ओर अमानुषिक नृत्य रोज उनके सामने होते रहते हैं। स्वार्थ और पाप के कारण यदि उनका ध्यान उधर को न जाय तो सेवा और त्याग का सारा ढोंग रत्ती भर भी देश को आगे नहीं बढ़ा सकता। कहा जाता है कि लन्दन में १००० बच्चों में ६६ जन्म लेते ही मर जाते हैं, परन्तु बम्बई में १००० में २७४ मृत्यु के ग्रास बनते हैं। कुछ तो सामग्रियों के अभाव के कारण और कुछ अपनी लापरवाही से लोग अपना तथा अपनी सन्तान की आयु आधी कर देते हैं। कितने ही किसान घर की कमी के कारण एक ही बड़े कमरे में अपने तथा जानवरों तक को एक जगह रखते हैं। सभी बीमारियों की दवा पुष्ट भोजन है। लेकिन हमारे देश के ७५

प्रतिशत लोगों को अपने जीवन में कभी दूध नसीब नहीं होता। घी और अन्य पौष्टिक पदार्थों की तो बात ही और है। जिस देश में पत्थर की मूर्तियों तक को दूध से स्नान कराया जाता है वहाँ के जीते-जागते बच्चे दूध का दर्शन न करें—इससे बढ़कर हमारे पतन की सीमा और क्या होगी।

स्वास्थ्य और सफाई की प्राचीन व्यवस्थायें

बृटिश राज से पहले आजकल की तरह अस्पताल और औषधालय नहीं थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों कालों में वैद्यों का अभाव न था, परन्तु सरकार की ओर से इनसे लाभ उठाने की व्यवस्था कुछ और थी। राज-दरबारों में वैद्य और हकीम रक्खे जाते थे। इन्हें सरकारी खजाने से कुछ वेतन, जमीन तथा चीजों के रूप में दिया जाता था। वास्तव में ये राज-कुटुम्ब की सेवा के लिये रक्खे जाते थे। परन्तु जनता को भी इनसे लाभ पहुँचता था। जिसे औषधि की आवश्यकता पड़ती वह जाकर उनसे ले सकता था। गाँवों में भी तजुरबेकार पंडित और वैद्य रहते थे। दोनों कोई दर्जे पास नहीं रहते थे, लेकिन लोगों को दवाइयाँ देते थे। इनकी कोई फीस न थी। बीमारी अच्छी हो जाने पर अपनी खुशी से जो चाहता कुछ दे देता था। रुपये-पैसे न देकर लोग इन्हें अधिकतर चीजें दे दिया करते थे। आज भी गाँवों में इस तरह के वैद्य और हकीम मौजूद हैं जो अपनी फीस नहीं लेते। उनकी दवाइयाँ भी बहुत ही सस्ती और आमफहम होती हैं। सफाई के लिये गाँवों और शहरों में कमीटियाँ होती थीं। हर तरह की सफाई का काम इन्हीं को सुपुर्द था। पहले आजकल की सी बीमारियाँ भी नहीं थीं। बीमारी को अच्छा करने से बढ़कर उसे रोकने की व्यवस्था करना है। यदि सरकार लोगों की सफाई और उनके स्वास्थ्य पर उचित ध्यान दे तो उसे इतने अस्पतालों की आवश्यकता शायद ही हो। प्राचीन काल में इसी तरह की व्यवस्था थी। खान-पान की सुविधा के कारण लोगों को बीमारियों का असर कम होता था। आजकल तो हजारों गरीब आदमी जाड़े में कपड़े की कमी के कारण मर जाते हैं। सरकार जाड़े की दवा क्यों नहीं करती?

किसी प्राचीन ग्रन्थ में एक कहानी का जिक्र आता है। एक बुढ़िया किसी राजा के पास गई और फरियाद की कि उसका लड़का बीमार है। राजा ने पूछा, "क्या तुम्हारे लड़के को दूध मिलता है?" बुढ़िया ने

कहा कि "आजकल इसकी व्यवस्था नहीं है।" राजा ने हुक्म दिया कि सरकारी खजाने से उसके बच्चे को तब तक दूध दिया जाय जब तक वह हट्टा-कट्टा न हो जाय। तात्पर्य यह है कि शरीर-रक्षा पर इतना ध्यान दिया जाता था कि दवा की आवश्यकता कम पड़ती थी। जो पैसा सरकार आज दवाइयों पर खर्च कर रही है वही पहले लोगों के स्वास्थ्य पर खर्च होता था। दोनों का उद्देश्य एक ही है लेकिन प्राचीन व्यवस्था का सिद्धान्त अच्छा है। हम स्वयं किसी का हाथ काट कर फिर डाक्टर की तलाश करें तो इसमें कौन सी बुद्धिमानी है। आजकल की सरकार प्रजा से अधिक-से-अधिक टैक्स वसूल करती है। लोग गरीबी के कारण आधे पेट भोजन भी नहीं पाते। जब वे ही बीमार पड़ते हैं तो सरकार उन्हें अस्पतालों का रास्ता दिखाती है, और इस बात का गर्व करती है कि वह प्रजा की अधिक-से-अधिक सेवा करती है। इस तरह की दिखलावटी संस्थाओं से लाभ के बदले हानि अधिक होती है। इन्हें चलाने तथा इनकी वृद्धि के लिये सरकार को टैक्स की दर बढ़ानी पड़ती है। इससे प्रजा को और भी तकलीफें होती हैं।

स्वास्थ्य सम्बन्धी वर्तमान सरकारी संगठन

स्वास्थ्य और सफाई का काम हमारे देश में तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकार और स्थानीय संस्थायें इनकी देख-रेख करती हैं। केन्द्रीय सरकार में स्वास्थ्य-विभाग की देख-रेख के लिए एक अफसर (The Director General of the Indian Medical Service) रहता है। अपने कामों के लिये वह केन्द्रीय सरकार के प्रति जिम्मेवार होता है। इसके अतिरिक्त एक सफाई अफसर (Sanitary Commissioner) भी रहता है। दोनों का काम प्रान्तीय सरकार के स्वास्थ्य और सफाई की व्यवस्था का निरीक्षण करना है। ये दोनों व्यक्ति कभी कभी राष्ट्र-संघ (The League of Nations) की उन मीटिंगों में शरीक होते रहे हैं जिनका काम स्वास्थ्य और सफाई पर विचार करना था। राष्ट्र-संघ ने इस विषय में मनुष्यमात्र का काफी कल्याण किया है और कितनी ही भयंकर बीमारियों का कारण खोज निकाला है। हमारे देश को भी इससे लाभ पहुँचा है। उपरोक्त दोनों अफसर अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य सम्बन्धी संस्थाओं से हमारे देश को अधिक-से-अधिक लाभ पहुँचाने

को कोशिश करते हैं। चूँकि ये दोनों अपने विषयों के विशेषज्ञ होते हैं इसलिये प्रान्तीय सरकारों को इनसे काफी मदद मिलती है। देश के विभिन्न हिस्सों का वे समय-समय पर अध्ययन करते हैं। जिस हिस्से को किसी विशेष बात की परवाह करने की आवश्यकता महसूस होती है उसका प्रबन्ध वे केन्द्रीय सरकार से कराते हैं। ये दोनों पद अभी तक अँगरेजों को ही दिये जाते रहे हैं और इनकी नियुक्ति गृह-सरकार स्वयं करती थी। इनके अतिरिक्त स्वास्थ्य विभाग के सभी उच्च पदाधिकारी गृह-सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते थे।

प्रत्येक प्रान्त में एक स्वास्थ्य और सफाई विभाग रहता है। यह विभाग किसी मन्त्री को सुपुर्द किया जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि वह इन विषयों में विशेषज्ञ हो। उसके नीचे प्रान्त में सबसे बड़ा पदाधिकारी, जो इस विभाग की देख-रेख करता है, इन्सपेक्टर जनरल आफ सिविल अस्पताल (Inspector General of Civil Hospitals) कहलाता है। बम्बई, मद्रास और बंगाल अहातों में इसे सरजन जनरल (Sergeon General) कहते हैं। कुछ सूबों में सफाई कमिश्नर और स्वास्थ्य निरीक्षक भी नियुक्त किये गये हैं। प्रान्त के सभी अस्पताल और औषधालय इसकी अध्यक्षता में अपना कार्य करते हैं। इसके नीचे प्रत्येक जिले में एक सिविल सर्जन होता है। अधिकतर जिलों में हेल्थ अफसर और सफाई-इन्सपेक्टर भी होते हैं। जिला तथा म्युनिसिपल बोर्ड इन्हीं की सहायता से अस्पताल और सफाई आदि का प्रबन्ध करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सरकार का स्वास्थ्य और सफाई विभाग बहुत ही सरल तरीके पर संगठित किया गया है। इस विभाग में काम करने वाले कर्मचारियों की संख्या बहुत थोड़ी है। इनका वेतन काफी लम्बा होता है।

अस्पताल और औषधालय

ऊपर कहा गया कि शहरों में दवाइयों और सफाई का प्रबन्ध काफी अच्छा होता है, परन्तु गाँवों में इनका प्रबन्ध नहीं के बराबर है। प्रत्येक शहर में सरकार की ओर से दो चार अस्पताल खोले गये हैं। कुछ लोग सेवा के निमित्त भी दवाइयों का वितरण करते हैं। गाँवों में अभी तक सरकार का ध्यान कम गया था। जब काँग्रेस सरकार प्रान्तों में स्थापित हुई तो उसने गाँवों की ओर ध्यान देना आरम्भ किया। पहले ४० या ५० गाँव के बीच में एक अस्पताल हुआ करता था। काँग्रेस सरकार ने यह निश्चित किया

कि ग्राम-पंचायतों को सरकार की ओर से कुछ दवाइयाँ दी जायँ और लोग उनसे फायदा उठावें। इसी के फलस्वरूप प्रत्येक प्रान्त में सैकड़ों वैद्य और हकीम नियुक्त किये गये। सरकार का यह भी खयाल हुआ कि भारतीय वातावरण में अँग्रेजी दवाइयाँ बहुत लाभ नहीं पहुँचा सकतीं। औषधालयों और सफाखानों पर अधिक जोर दिया गया। हर ४ या ५ गाँव के बीच में एक वैद्य रक्खे गये हैं। इन गाँवों के लोग वहाँ से हर समय दवाइयाँ ले सकते हैं। आवश्यकता पड़ने पर लोग इन्हें अपने घर भी ले जा सकते हैं। वैद्यों को निजी व्यापार करने की आज्ञा नहीं है। प्रति मास इन्हें दवाइयाँ दी जाती हैं और कोई भी इनसे लाभ उठा सकता है।

औषधालयों के अतिरिक्त प्रत्येक जिले में एक सरकारी अस्पताल होता है। किसी-किसी जिले में इसकी संख्या ३ या ४ तक है। स्थानीय संस्थायें भी अपनी ओर से अस्पतालों की व्यवस्था करती हैं। सफाई के लिये प्रत्येक जिले में एक इन्सपेक्टर होता है। यह शहरों और गाँवों में घूम-घूम कर लोगों की रहन-सहन की जाँच करता है। जब से ग्राम-उद्योग-विभाग खोला गया है तब से सफाई का और भी ध्यान दिया जाता है। हर ४ या ५ गाँव के बीच में एक व्यक्ति (Organiser) नियुक्त किया गया है। इसके कार्य निम्नलिखित हैं :—

१—गाँवों में कुओं की सफाई कराना।

२—गाँवों के रास्तों को साफ-सुथरा रखना।

३—घरों की नालियों को साफ रखने की तरकीबें बताना।

४—हवादार और रोशनीवाले घरों का नकशा बनाकर लोगों को देना।

५—लोगों के दरवाजों की सफाई करना और घूरे आदि को गाँव से बाहर रखवाना।

६—समय-समय पर सफाई और स्वास्थ्य पर व्याख्यान देना तथा इससे सम्बन्ध रखने वाली पुस्तिकाओं का प्रचार करना।

इन ग्रामीण संस्थाओं के अतिरिक्त जिले के अन्य कर्मचारी भी समय-समय पर लोगों की सफ़ाई और उनकी बीमारी आदि की जाँच-पड़ताल करते रहते हैं। हैजे, प्लेग, चेचक आदि बीमारियों को रोकने के लिये टीके लगाये जाते हैं। कुओं में जहरीले कीड़ों को मारने के लिये दवाइयाँ छोड़ी जाती हैं। गाँव के पटवारी से कोई भी पोटाश

लेकर अपने कुएँ में डाल सकता है। कभी-कभी चौकीदारों को यह हिदायत कर दी जाती है कि वे अपने इल्के के सभी कुओं में पोटाश छोड़ दें। मलेरिया एक बहुत ही भयंकर बीमारी है। लगभग ५० लाख आदमी प्रति वर्ष हमारे देश में इसके शिकार बनते हैं। इसे रोकने के लिये सरकार ने कुनैन की गोली का प्रबन्ध किया है। किसी भी डाकखाने से यह गोली मोल ली जा सकती है। जहाँ कहीं बीमारी का सदमा होता है वहाँ के जिले के कर्मचारी तुरन्त ध्यान देते हैं और कई युक्तियों से लोगों की रक्षा करते हैं। विशेष प्रकार से लेक्चर और तसवीरों का प्रबन्ध करके लोगों को इस बात की शिक्षा दी जाती है कि विभिन्न बीमारियों से किस प्रकार बचना चाहिये।

स्कूलों और कालेजों में स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रबन्ध

कुछ वर्षों से सरकार का ध्यान स्कूलों के बच्चों की सफाई और उनके स्वास्थ्य की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ है। १६३४ ई० से आगरा, इलाहाबाद, कानपुर तथा बनारस में विद्यार्थियों के लिये अलग अस्पताल खोले गये हैं। समय-समय पर प्रत्येक विद्यार्थी की परीक्षा की जाती है कि कहीं उसे कोई छूत की बीमारी तो नहीं है। प्रत्येक विद्यार्थी से एक आना इस कार्य के लिये फीस ली जाती है। अकसर उनका वजन किया जाता है और डाक्टर प्रत्येक विद्यार्थी की एक फाइल रखता है। जब किसी स्कूल का विद्यार्थी बीमार पड़ता है तो डाक्टर तुरन्त उसकी देख-भाल करता है। अस्पताल की ओर से गरीब विद्यार्थियों के भोजन और चश्में का भी प्रबन्ध किया जाता है। इस प्रकार के अस्पताल केवल विद्यार्थियों के लिये हैं। किसी बाहरी आदमी को इनमें दवा नहीं मिल सकती। विद्यार्थियों को साधारण स्वास्थ्य का ज्ञान कराया जाता है। कक्षा ८ तक प्रत्येक विद्यार्थी के लिये स्वास्थ्य और सफाई विषय का अध्ययन अनिवार्य ठहराया गया है। छोटी-मोटी बीमारियों को कैसे अच्छा किया जा सकता है, इसकी शिक्षा प्रत्येक विद्यार्थी को दी जाती है। कुछ प्राइवेट परीक्षाओं का भी विधान बनाया गया है। जो विद्यार्थी इन्हें पास करते हैं उन्हें सर्टिफिकेट दी जाती है। स्वास्थ्य-विभाग की ओर से जहरीले कीड़ों और उनसे बचने के इलाज सम्बन्धी नकशे और चार्ट स्कूलों में दिये जाते हैं। छूत की बीमारियों को रोकने के लिये टीके लगाये जाते हैं।

गोरखपुर जिले के सभी स्कूलों के विद्यार्थियों ने अपना एक अलग

संगठन बनाया है। प्रत्येक विद्यार्थी से दो पैसे फीस ली जाती है और इससे उनकी दवा का प्रबन्ध किया जाता है। विद्यार्थी स्वयं इसका सारा प्रबन्ध करते हैं। शहर के डाक्टरों से सहायता लेकर वे इस संघठन द्वारा विद्यार्थियों की काफी सेवायें कर रहे हैं। यदि विद्यार्थियों को सफाई और स्वास्थ्य के साधारण पाठ अच्छी तरह बता दिये जायँ तो सरकार की बहुत-सी परेशानियाँ कम हो सकती हैं। उचित शिक्षा प्राप्त कर ये अपने घरों को साफ-सुथरा रक्खेंगे और गाँवों को भी गन्दगी से बचायेंगे। आने वाली सन्तान को छोटी-छोटी बातें अपने आप मालूम होती रहेंगी। स्कूलों में यह विषय आवश्यक है। प्रान्तीय सरकारों का ध्यान इस दिशा में दिलाया गया है। वे विद्यार्थियों के लिये सैनिक शिक्षा अनिवार्य करने पर विचार कर रही हैं।

स्त्रियों की चिकित्सा

जितनी आवश्यकता बच्चों की सफाई और उनके स्वास्थ्य की है उससे अधिक उनकी माताओं का ध्यान रखना आवश्यक है। यदि स्त्रियाँ स्वस्थ और नीरोग हों तो उनकी सन्तान भी बीमारियों का शिकार नहीं बन सकती। हमारे देश में गरीबी के कारण कितनी हो स्त्रियाँ बीमारी और कमजोरी को हालत में भी काम करती हैं। इससे उनका स्वास्थ्य तो खराब होता ही है, उनको सन्तान को भी अपने स्वास्थ्य से हाथ धोना पड़ता है। ४८ प्रतिशत बच्चे जन्म के समय ही मृत्यु के ग्रास होते हैं। ६ महीने के अन्दर २६ प्रतिशत बच्चे अपने जीवन से हाथ धो बैठते हैं। इसका एक मात्र कारण उनकी माताओं का स्वास्थ्य है। कल-कारखानों में कितनी ही स्त्रियाँ अपने भरण-पोषण के लिये गर्भाधान समय में भी काम करती हैं। उनको रहन-सहन इतनी गन्दी होती है कि वे स्वस्थ सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकतीं। बच्चों का स्वास्थ्य माता-पिता के स्वास्थ्य पर बहुत कुछ निर्भर करता है। जो जाति एक बार अस्वस्थ और रोगी हो जाती है, उसकी आने वाली सन्तान वीर और पुरुषार्थी नहीं बन सकती। राष्ट्रीय उन्नति की दृष्टि से स्त्रियों के स्वास्थ्य और सफाई पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

कुछ प्राचीन कुप्रथाओं के कारण भारतीय स्त्रियों के स्वास्थ्य-सुधार में अनेक कठिनाइयाँ हैं। पर्दे तथा अशिक्षा के कारण उनका ध्यान उन बातों की ओर नहीं दिलाया जा सकता जिनसे उन्हें लाभ पहुँचे। राष्ट्रीय तथा धार्मिक आन्दोलन से इसमें बहुत कुछ सुधार हुआ है। बड़े-बड़े शहरों में उनके लिये अस्पतालों की अलग व्यवस्था की गई है। हिन्दोस्तान

के वाइसराय लार्ड डफरिन की स्त्री ने इस ओर काफी ध्यान दिया था। १८८५ ई० में उनके सतत परिश्रम से स्त्रियों की दवा के लिये एक संघ की स्थापना की गई। वह संग अभी तक अपना कार्य कर रहा है। व्यक्तिगत सहायता के अतिरिक्त सरकार भी धन से इसकी मदद करती है। संग के धन से जगह जगह पर स्त्रियों के लिये अस्पताल खोले गये हैं। लेडी हार्डिंज की याद में दिल्ली में स्त्रियों के लिये एक मेडिकल कालेज खोला गया है। इसमें केवल स्त्रियों की चिकित्सा की शिक्षा दी जाती है। स्त्रियों की विशेष चिकित्सा के लिये इलाहाबाद में एक कमला नेहरू अस्पताल खोला गया है। इसकी इमारत बनवाने में लगभग ६ लाख रुपये खर्च किये गये हैं। यह अस्पताल ग्रामीण स्त्रियों की अधिक सेवा कर रहा है।

गैर सरकारी संस्थायें

स्वास्थ्य और सफाई के लिये सरकारी विभाग से अलग कुछ गैर सरकारी संस्थायें भी हैं। सरकार इन्हें थोड़ी बहुत मदद जरूर देती है लेकिन इनका अधिकतर कार्य दान और चन्दों से चलता है। अखिल भारतीय सेवासमिति ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है। इस संस्था की ओर से शहरों तथा गाँवों में अनेक अस्पताल और औषधालय खोले गये हैं। तीर्थ-स्थानों, मेलों तथा सार्वजनिक सभाओं में सेवासमिति बड़ी तत्परता के साथ सेवा-कार्य करती है। रेडक्रास सोसाइटी एक दूसरी गैर सरकारी संस्था है। यह भी स्वास्थ्य और सफाई के लिये बहुत कुछ कर रही है।। सेन्ट जॉन एम्बुलैंस एसोसिएशन और कुछ छोटी-मोटी संस्थाये भी इस ओर विशेष कार्य कर रही हैं। कितने ही ईसाई मिशनरी अन्धों, बहरों, लूलों तथा कोढ़ियों को सेवा के लिये जगह-जगह पर अस्पताल खोले हुये हैं। दवा के साथ-साथ वे बीमारों की शिक्षा का भी प्रबन्ध करते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना है। इस विशालकाय देश में स्वास्थ्य और सफाई पर ध्यान देने के लिये बहुत बड़ा क्षेत्र खाली है। यह कहना गलत है कि पैसे की कमी के कारण हमारे देश में सार्वजनिक कामों की गुंजाइश कम है। यर्थ के दान के रूप में धन का जो अपव्यय हमारे देश में हो रहा है वह किसी और देश में दिखाई नहीं पड़ेगा। तीर्थस्थानों में पंडे-पुजारियों को जो रुपये दान में दिये जाते हैं, यदि उनका संगठन ठीक तरीके पर किया जाय तो इस देश के सेवक ईसाई मिशनरियों की तरह विदेशों में जाकर अपनी सेवा और त्याग का परिचय दे सकते हैं।

आँख मूँद कर दवाइयों के चक्कर में पड़े रहने से उतना लाभ नहीं हो सकता जितना बीमारियों को समूल नष्ट करने से। सरकार के विशेषज्ञों द्वारा इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि भयंकर बीमारियाँ कैसे हटाई जा सकती हैं। इसके लिये अध्ययन और खोज की जरूरत है। जगह-जगह पर अन्वेषण कार्यालय (Research Institutes) खोले जायँ और विशेष डाक्टरों को इस बात का अवसर दिया जाय कि अपनी बुद्धि से बीमारियों के मूल कारण खोज निकालें। १८९६ ई० के पहले हमारे देश में प्लेग की बीमारी नहीं थी। इस बात का पता लगाया जा सकता है कि इसका आरम्भ कैसे हुआ और उन कारणों को दूर करने का क्या इलाज है। इस दिशा में कुछ कार्य किया जा रहा है। कसौली में एक सेन्ट्रल रीसर्च इन्स्टीट्यूट स्थापित किया गया है। कलकत्ते में अखिल भारतीय स्वास्थ्य और हाईजीन नामक संस्था की स्थापना की गई है। मद्रास और बम्बई में अन्वेषण के लिये जो संस्थायें हैं उनमें हैजा, प्लेग, चेचक, मलेरिया आदि बीमारियों का कारण जानने की कोशिश की जा रही है। तपेदिक की बीमारियों के लिये हिन्दुस्तान के वाइसराय लार्ड लिनलिथगो की स्त्री ने एक कोष इकट्ठा किया है। इससे एक ऐसे अस्पताल खोलने की योजना बनाई गई है जहाँ तपेदिक के सभी मरीज रहकर अपने को अच्छा कर सकें। इनके अलावा मेडिकल कालेजों में भी तरह-तरह की खोजें होती रहती हैं। आशा है कुछ दिनों में बहुत-सी भयंकर बीमारियों को रोकने का ठीक-ठीक प्रबंध किया जा सकेगा।

अन्वेषण कार्य

बीमारियों के लिये दवा से बढ़कर कोई दूसरा निदान नहीं है। लेकिन कुछ बातों से यह अनुभव प्राप्त किया जा सकता है कि सरकार अस्पतालों और औषधालयों के मदों को कम करके वही पैसा दूसरे तरीकों पर खर्च करके जनता की कहाँ तक अधिक सेवा कर सकती है। अँग्रेजी में एक कहावत है कि संयम सभी दवाइयों से बढ़कर हैं (Prevention is better than cure)। यदि लोग स्वस्थ और साफ रक्खे जायँ और उनका जीवन नियमित हो, तो शायद उन्हें दवा की जरूरत कम होगी। कुछ नई योजनाओं को सरकार काम में लावे। जगह-जगह पर खेल-कूद के स्थान तथा व्यायाम शालायें खोली जायँ। इस प्रकार की संस्थायें जिले में दस-बीस जरूर हों। यहाँ पर लोगों को कसरत, खेल-कूद आदि की शिक्षा दी जाय। त्यौहारों तथा

नवीन योजनायें

त्सवों पर पारितोषिक बाँटे जायँ ! समय-समय पर दंगल कराये जायँ। जिले के दस-बीस चुने हुये आदर्श स्वस्थ व्यक्तियों को सरकार इनाम देने का प्रबन्ध करे। गाँवों में इस प्रकार की योजना अधिक सफल हो सकती है। हर जिले में वयस्क लोगों की नुमाइश लगाई जाय। जो सबसे स्वस्थ और वजनदार हों उन्हें पारितोषिक दिया जाय। जिले में हर साल ५ इनाम इसलिये रक्खे जायँ कि जो ५ गाँव सबसे साफ होंगे उन्हें ये इनाम दिये जायेंगे। सरकार अपने खर्च से हर जिले में चार आदर्श गाँव बसाने की व्यवस्था करे। गाँव के होनहार नवयुवकों को सफाई और स्वास्थ्य के लिये उत्साहित किया जाय। गाँवों में ट्रेन्ड दाइयाँ रक्खी जायँ जो बच्चे होने वाली स्त्रियों की ठीक-ठीक देख-भाल करें। साल में प्रतिवर्ष एक 'सफाई सप्ताह' हर जिले में मनाया जाय। इन तरीकों से लोगों की सफाई और उनके स्वास्थ्य में अधिक-से-अधिक उन्नति की जा सकती है। हमारा अनुमान है कि इससे अस्पतालों और औषधालयों की बहुत बड़ी संख्या कम हो जायेगी।



अध्याय १७

न्यायालय

(JUDICIARY)

न्यायालय का महत्व

धारा-सभा और कार्यकारिणी विभाग का कार्य कानून को बनाना और उन्हें कार्यान्वित करना है। इनके अन्दर इस बात की योग्यता नहीं होती कि इन्हें कार्यान्वित करने में कहाँ तक न्याय बर्ता जा सकता है। इसीलिये सरकार का न्याय-विभाग बनाया गया है कि वह राज्य में न्याय की रक्षा करे। राज्य के तमाम उद्देश्य तब तक सिद्ध नहीं हो सकते जब तक वहाँ सब कामों में न्याय की बू नहीं है। अफलातून के कथनानुसार न्याय राज्य का अन्तिम उद्देश्य है। (Justice is the end of the State) यदि धारा-सभा किसी कार्य के लिये एक लाख रुपये मंजूर करे, और कार्यकारिणी विभाग केवल १० हजार खर्च करके बाकी अपनी जेब में रक्खे, तो इसकी देख-रेख के लिये एक ऐसा विभाग आवश्यक है जो उसे उचित दंड दे। प्रत्येक व्यक्ति का अपनी अच्छाई और बुराई का पारितोषक और दंड मिलना चाहिये। जितने लोग कारागार की यातनायें भोग रहे हैं उनके साथ भी सरकार ने न्याय किया है। सचाई को असत्य से अलग करना इसी का कार्य है। जो सरकार अपने राज्य में छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, धनी-गरीब, का विचार कर कार्य करती है वह पक्षपाती और दोषी कहलाती है। इन्हीं कमजोरियों को दूर करने के लिये न्याय विभाग बनाया जाता है। कचहरियों का उद्देश्य केवल आँख मूँद कर कानून को बर्तना नहीं है, बल्कि उनके उचित प्रयोग से लोगों को इस बात की चेतावनी देना है कि सची स्वतन्त्रता कानूनों के पालन में है।

नागरिकों के अधिकार, उनकी सुविधायें, उनकी स्वतन्त्रता तथा उनके उच्च जीवन की रक्षा की परख न्यायालयों में होती है। यदि न्याय-विभाग द्वारा दंड प्रयोग न किया जाय तो कमजोर की रक्षा बलवान से नहीं हो सकती। इस विभाग की प्रधानता के कारण सरकार का बड़ा-से-बड़ा कर्मचारी अपने कर्तव्यों में सतर्क रहता है। न्याय का स्थान राज्य में जितना ही ऊँचा होता है उसी परिमाण में वहाँ सुख और शान्ति

विराजती है। परन्तु न्यायालयों में कार्य करने वाले पदाधिकारी योग्य और निष्पक्ष होने चाहिये। न्यायाधीश को अपने समय और परिस्थिति की पूरी जानकारी होनी चाहिये। उतावलेपन में आकर वह न्याय के बदले अन्याय कर सकता है। न्याय बर्तने में उसे निर्भय और निःसंकोच होना चाहिये, तभी वह कानून के वास्तविक अर्थ को समझ सकता है। सरकार को स्वयं ऐसे व्यक्तियों को तलाश करना चाहिये और उन्हें अपने कर्तव्य-पालन का एक समुचित वातावरण तैयार करना चाहिये। न्याय के लिये समानता और समता का होना आवश्यक है। न्ययाधीश का शान्त, निष्पक्ष, निर्भय और प्रभाव से ऊपर होकर अपनी जिम्मेवारी निबाहनी होगी, वकीलों के तर्क-वितर्क को समझने के लिये उसमें पूरी योग्यता हो और मनुष्य तथा संसार दोनों का उसे अधिक-से-अधिक अनुभव हो। पद और पैसे के लोभी व्यक्ति न्याय-विभाग को गन्दा किये बिना नहीं रह सकते।

न्याय की प्राचीन व्यवस्था

बृटिश-राज्य से पहले आजकल की-सी कचहरियाँ न थीं। हिन्दू जमाने में हमारे देश में छोटे-छोटे एकतन्त्र राज्यों का वर्णन मिलता है। इनमें कुछ तो वर्तमान नाजीवाद से भी बदतर थे, परन्तु अधिकतर प्रजातन्त्रवादी थे। राजा लोग प्रजा की अनुमति का आदर करते थे। लोकमत की अवहेलना करने में उन्हें संकोच होता था। न्याय-विभाग यद्यपि अलग नहीं था, परन्तु इसके कर्मचारी स्थान-स्थान पर नियुक्त किये गये थे। बड़े-बड़े मामलों की फरियाद राजा स्वयं सुनता था। अपराधियों को कारावास का दंड आजकल की तरह नहीं दिया जाता था। दंड की व्यवस्था समय-समय पर बदलती रहती थी। किसी काल में कड़े दंड का विधान था और किसी समय अपराधी को समझा-बुझाकर अथवा आध्यात्मिक दंड देकर छोड़ दिया जाता था। कभी-कभी तो लोगों के हाथ-पैर तक काट लिये जाते थे। मुकदमों का फैसला पञ्चायतों द्वारा होता था। लोगों को कचहरियों की आवश्यकता नहीं होती थी। सरकार की ओर से जो कर्मचारी न्याय के लिये नियुक्त किये जाते थे वे धार्मिक और सात्विक विचारों के होते थे। मुसलमानी जमाने में सूबों के गवर्नर मुकदमों का फैसला करते थे। काजी और पण्डित जिन मामलों को नहीं सुलझा पाते थे उनका फैसला गवनर करता था।

प्राचीन काल की न्याय-पद्धति का पूरा वर्णन हमारे विषय से बाहर की

चीज है। इसकी चर्चा इसलिये की गई है कि प्राचीन न्याय-संस्थायें थोड़ी थीं। उनका संगठन आजकल की तरह जटिल नहीं था। स्थानीय संस्थायें स्वयं अपना फैसला भी कर सकती थीं। गाँव का मुखिया जज का भी काम करता था। लोगों को धर्म का इतना अधिक भय था कि वे झूठ बोलने तथा धोखा देने में भयभीत होते थे। उन्हें यह डर था कि किसी को धोखा देकर हम ईश्वर के सामने अपराध से नहीं बच सकते। धर्म-ग्रन्थों में यह भलीभाँति स्पष्ट किया गया है कि परलोक की यातनायें इस लोक से कहीं सख्त हैं। इसी भय के कारण लोग अपने अपराधों को छिपाने का प्रयत्न कम करते थे। गंगा का पानी अथवा कोई धर्म-ग्रन्थ ज्योंही उनके सामने रक्खा जाता त्योंही वे साफ-साफ बातों को कह देते थे। ऊपरी वातावरण भी ऐसा था कि लोग अपने कर्तव्यों का फल भोगने में अपना गौरव समझते थे। किसी अपराधी की रक्षा करना पाप समझा जाता था। यही वजह है कि कोई भी साधारण व्यक्ति अपराधियों को पहचान सकता था। कभी-कभी तो अपराध करने वाले स्वयं पण्डितों और काजियों के पास चले आते और अपना उचित दंड चाहते थे। न्याय-ग्रन्थों में इस प्रकार के भी दंड पाये जाते हैं जब कि अपराधी अपने आप किसी पेड़ के खोखले में, अथवा पर्वत की गुफाओं में बिना अन्नजल के महीनों बैठकर प्राण त्याग देते थे। कुछ अपराधी अपने आपको अग्नि में जला लेते थे। दान और पुण्य का दंड अधिक दिया जाता था। ऐसे उच्च वातावरण में न्याय करने में सुविधा होती थी।

बृटिश राज्य में न्यायालयों का विकाश

वैज्ञानिक युग आरम्भ होते ही विश्वास की भावना जाती रही। लोगों को धर्म का भय एक ढोंग मालूम पड़ने लगा। विश्वास का स्थान तर्क ने ले लिया। लोग अपने अपराध को छिपाने में कोई कसर बाकी नहीं रखते। इसीलिये न्याय-विभाग का संगठन नये सिरे से करना पड़ा। जो मशीन आज दिखाई पड़ रही है वह अधिक से अधिक १५० वर्ष पुरानी है। न्याय का मुहकमा नीचे से ऊपर तक जिस शकल में आज काम कर रहा है वह सब बृटिश सरकार की देन है। जब तक ईस्ट इंडिया कम्पनी केवल व्यापार करती थी तब तक उसे न्याय करने का अधिकार नहीं था। परन्तु जब उसका व्यापार बढ़ने लगा और उसकी मातहती में काम करने वाले कर्मचारियों की संख्या काफी बढ़ गई तो उसे इस बात की आवश्यकता महसूस हुई कि अपने

क्षेत्र में छोटे-मोटे झगड़ों का निपटारा वह स्वयं करे। मुगल राज्य में न्याय की व्यवस्था कम न थी।

कम्पनी को यह अधिकार आसानी से नहीं मिल सकता था उसके कर्मचारी मुगल राज्य की प्रजा थे। अतएव उसका फैसला नव्वाबों और काजियों के हाथ से अलग कम्पनी को कैसे दिया जा सकता था।

एलिजबेथ के समय में कम्पनी को जो आज्ञा-पत्र मिला। जसमें उसे यह अधिकार दिया गया था कि वह कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये अपने अधीन कर्मचारियों को दण्ड दे सकती है। इसका अर्थ यह नहीं था कि कम्पनी को न्यायालय बनाने की आज्ञा मिल गई, बल्कि अपने व्यापार की सुविधा के लिये उसे कुछ साधारण अधिकार दिये गये थे। १६६१ ई० में फैक्ट्री के गवर्नरों को यह अधिकार दिया गया कि इंगलैंड के कानून के अनुसार वे अपने कर्मचारियों को दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार का दण्ड दे सकते हैं। १६६९ ई० में जब बम्बई कम्पनी को सुपुर्द किया गया तो कुछ समय के लिये यहाँ दो अदालतें बनाई गई। छोटी कचहरी में एक अंगरेज और दो हिन्दुस्तानी जज रक्खे गये। बड़ी कचहरी का नाम सुप्रीम कोर्ट (Supre me Court) था, इसमें डिप्टी गवर्नर और एक कौंसिल मुकदमों का फैसला करते थे। इसका फैसला अन्तिम माना जाता था। १६८७ ई० में जेम्स द्वितीय के समय में मद्रास में एक म्युनिसिपल बोर्ड को स्थापना की गई। इसके अध्यक्ष मेयर तथा उसकी समिति (Albermen) को दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के मुकदमें फैसल करने का अधिकार दिया गया। १७२६ ई० में इसी तरह की अदालतें कलकत्ता और बम्बई में भी स्थापित की गईं। इन मुकदमों की अपील सुप्रीम कोर्ट में की जाती थी। ४००रुपये से ऊपर के मुकदमों की अपील सम्राट् की कौंसिल में होती थी।

१७७३ ई० के रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के अनुसार बंगाल में एक प्रधान न्यायालय (Supreme Court of Judicature) की स्थापना की गई। १८६२ ई० तक इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया। प्रधान न्यायाधीश के अतिरिक्त इसमें ४ सहायक न्यायाधीश रक्खे गये। इन सबकी नियुक्ति स्वयं सम्राट् द्वारा की गई थीं। इसे सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। बंगाल की प्रजा और कम्पनी के कर्मचारियों पर इस न्यायालय का अधिकार था। वारेन हेस्टिंग्ज और प्रधान न्यायालय में मतभेद आरम्भ हुआ। यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि गवर्नर-जनरल और प्रधान न्यायालय इन दोनों में कौन बड़ा और कौन छोटा है। न्यायालय

के अधिकार स्पष्ट नहीं किये गये थे। अन्त में पार्लियामेंट ने एक कानून पास करके इसका निपटारा किया। १७८१ ई० में यह बात स्वीकार कर ली गई की गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल का दर्जा प्रधान न्यायालय से ऊँचा है। किसानों, जमींदारों और पेंशनप्राप्ता कर्मचारियों पर न्यायालय का कोई अधिकार नहीं ठहराया गया। इनका फैसला मुगल राज्य के न्यायालयों में किया जाता था। कम्पनी की मातहती में हिन्दू और मुसलमान अपराधियों का फैसला दोनों के नियमों के अनुसार क्रमशः किया जाता था। रसम-रवाजों तथा धार्मिक उसूलों का ध्यान रक्खा जाता था।

१७६५ ई० में जब कम्पनी को बंगाल और बिहार प्रान्त की दीवानी मिली तो उसे मुकदमें फैसल करने का भी अधिकार मुगल राज्य की ओर से दिया गया। वारेन हेस्टिंग्ज ने मुगल राज्य के न्यायालयों के आधार पर कचहरियों का निर्माण किया। टैक्स वसूल करने तथा मुकदमों को फैसल करने का कुल अधिकार अंगरेज कर्मचारियों को दे दिया गया। हर जिले में एक अंगरेज कलेक्टर और एक हिन्दुस्तानी दीवान रक्खे गये। इन दोनों के मेल से दीवानी अदालत बनाई गई। इसके अतिरिक्त हर जिले में एक फौजदारी अदालत बनाई गई। इस अदालत में एक काजी, एक मुफ्ती और दो मौलवी रक्खे गये। कलेक्टर भी इनके साथ बैठता था, लेकिन वह चुपचाप इनकी कार्रवाइयों को देखने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करता था। दीवानी अदालत की अपील सदर दीवानी अदालत में होती थी। यह अदालत कलकत्ते में थी। गवर्नर और उसकी कौंसिल और कुछ हिन्दुस्तानी अफसर मुकदमों का फैसला करते थे। फौजदारी के मुकदमों की अपील सदर निजामत अदालत में की जाती थी। एक दारोगा, एक मुफ्ती, एक काजी और एक मौलवी इसके जज होते थे। पहले यह अदालत कलकत्ते में थी, परन्तु बाद में यह मुर्शिदाबाद में कर दी गई। कचहरियों का कार्यक्रम वारेन हेस्टिंग्ज ने स्वयं निश्चित किया। यह पहला अवसर था जब कि अंगरेजी तरीके के न्यायालय हमारे मुल्क में स्थापित हुए।

१७७४ ई० में न्याय और मालगुजारी के मुकदमें एक दूसरे से अलग कर दिये गये। दोनों विभागों के कर्मचारी अलग-अलग नियुक्त किये गये। दीवानी मुकदमों का फैसला करने के लिये हिन्दुस्तानी अमीन नियुक्त किये गये। १७८० ई० में १६ दीवानी अदालतें बनाई गईं। हर अदालत का प्रधान सुपरिन्टेन्डेन्ट कहलाता था। हमें यह याद रखना

चाहिये कि न्याय विभाग के नये-नये तजुरबे और विभिन्न न्यायालय ंगाल प्रान्त से आरम्भ होते थे। कम्पनी की जड़ पहले इसी प्रान्त में जमी थी। जब कार्नवालिस हिन्दुस्तान का गवर्नर-जनरल हुआ तो न्यायालयों के संगठन में अनेक परिवर्तन किये गये। १७६० ई० में सदर निजामत अदालत मुर्शिदाबाद से फिर कलकत्ता बुला ली गई। छोटे-मोटे फौजदारी के मुकद्मों को फैसल करने के लिये १७६३ ई० में ४ नई कचहरियाँ और स्थापित की गईं। इन्हें सरकुट कोर्ट (Court of Circuit) कहते हैं। कार्नवालिस ने कलेक्टर को फिर फौजदारी के मुकदमों का अधिकार दे दिया। इसी की देख-रेख के लिये ४ सरकुट कोर्ट स्थापित की गई थीं। कलकत्ते में एक सबसे बड़ी फौजदारी की अदालत (Sadar Nizamat Adalat) खोली गई। गवर्नर जनरल-स्वयं इसका सभापति होता था। दीवानी के मुकदमें विशेष जजों को दिये गये। इन्हें फौजदारी मुकदमें भी फैसल करने का अधिकार था। इनकी अपील प्रान्तीय कचहरियों में होती थी। इन प्रान्तीय कचहरियों की संख्या ४ थीं। दीवानी मुकदमों के अपील की सबसे बड़ी अदालत, सदर दीवानी अदालत, स्थापित की गई। गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल इसके जज नियुक्त किये गये।

लार्ड वेलेजली के समय में दोनों अपील की कचहरियों (Sadar Diwani and Nizamat Adalat) में १८०१ में कुछ संशोधन किये गये। गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल के अतिरिक्त ३ या इससे कुछ अधिक-जज इनमें नियुक्त किये जा सकते थे। लार्ड विलियम बेंटिंग ने प्रान्तीय कचहरियों को बर्खास्त कर दिया और उनका कार्य जजों को सुपुर्द किया गया। कलक्टर को फिर मजिस्ट्रेट के सारे अधिकार दे दिये गये। तब से आज तक कलेक्टर को ये दोनों प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं। एक ओर तो वह अपने ज़िले में कार्यकारिणी विभाग का प्रधान है और दूसरी ओर मुकदमों का फैसला भी करता है। इसे अलग-अलग करने की चर्चा बहुत दिनों से चल रही है, परन्तु अभी तक इस दिशा में कुछ किया नहीं गया। इन कचहरियों के अलावा कुछ और भी छोटी-छोटी अदालतें बनाई गई थीं।

१८६१ ई० में महारानी विक्टोरिया को यह अधिकार दिया गया कि वह कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में हाईकोर्ट की स्थापना करे। सुप्रीम कोर्ट और अदालत कोर्ट बर्खास्त कर दी गई। इस हाईकोर्ट ऐक्ट के अनुसार प्रत्येक हाईकोर्ट में एक प्रधान जज और अधिक से अधिक १५

सहायक जज नियुक्त किये जा सकते थे। इनमें कम-से-कम एक तिहाई जज बैरिस्टर हों और एक तिहाई इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य हों। १८६६ ई० में इलाहाबाद हाईकोर्ट की स्थापना की गई और इसी साल लाहौर में एक चीफकोर्ट खोली गई। १६११ ई० में एक दूसरा हाईकोर्ट ऐक्ट पास किया गया। इसके अनुसार जजों की संख्या १५ से २० तक कर दी गई। आवश्यकता पड़ने पर किसी भी प्रान्त में हाईकोर्ट की स्थापना की जा सकती है। इसी ऐक्ट के अनुसार पटना, लाहौर और रंगून में हाईकोर्ट की स्थापना की गई। अवध में एक चीफकोर्ट खोली गई। मध्यप्रान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश और सिन्ध में जुडीशियल कमिश्नर कोर्ट की स्थापना की गई। यहीं पर न्यायालयों का ऐतिहासिक विकास समाप्त हो जाता है। अब यह देखना है कि वर्तमान समय में इसका संगठन कैसा है और इनके क्या क्या अधिकार हैं।

न्यायालयों का वर्तमान संगठन

भारतीय न्यायालयों का विभाजन तीन श्रेणियों में किया जा सकता है। इनके अधिकार और कार्यक्षेत्र का ध्यान रखते हुए यह विभाजन वैज्ञानिक कहा जा सकता है। इनके अलावा इंगलैंड की प्रिवी कौंसिल भी हमारे देश के न्याय विभाग से सम्बन्ध रखती रही है। यदि इसे हिन्दोस्तान की सबसे बड़ी अपील की अदालत कहा जाय तो कोई गलती नहीं है। ये श्रेणियाँ निम्न-लिखित हैं:—

१—प्रिवी कौंसिल

२—संघ-न्यायालय

३—हाई कोर्ट

४—जिला कोर्ट

प्रिवी कौंसिल

अब तक प्रिवी कौंसिल हिन्दोस्तान की सबसे बड़ी अदालत रही है। हाई कोर्ट तथा संघ न्यायालय द्वारा फैसल किये गये मुक़दमें इस कौंसिल में अपील किये जा सकते थे। फौजदारी के मुकदमें किसी विशेष परिस्थिति में ही इसमें अपील किये जा सकते थे। दीवानी मुक़दमें भी तभी अपील किये जा सकते थे जब इनका मूल्य किसी खास रकम से ऊपर हो; १०,००० रुपये से कम क़ीमत का कोई भी मुक़दमा कौंसिल में अपील नहीं किया सकता था। दोनों प्रकार की अपीलों की आज्ञा हाई कोर्ट से प्राप्त करनी पड़ती थी। अपील के अलावा

किसी नये मुकदमें की उत्पत्ति प्रिवी कौंसिल में नहीं हो सकती थी। १६३५ के शासन-विधान के अनुसार जो संघ-न्यायालय स्थापित किया गया है वह कानूनन प्रिवी कौंसिल से छोटा है। संघ-न्यायालय में फैसल किये गये मुकदमों की अपील प्रिवी कौंसिल में नहीं हो सकती थी। स्वतन्त्रता के पश्चात् संघ-न्यायालय सर्वोच्च माना जाता है। नये शासन विधान में इसको रूप-रेखा का ठीक ठीक वर्णन होगा।

संघ न्यायालय और इसकी आवश्यकता

प्रत्येक संघ शासन-विधान म संघ-न्यायालय का होना अनिवार्य है। संघ-शासन का निर्माण कई रियासतों अथवा सूबों के मेल से होता है। केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त प्रत्येक इकाई अपनी स्थानीय सरकार रखती है। संघ-शासन की योजना इन इकाइयों को संगठित कर इनकी शक्ति को और दृढ़ करने के लिए बनाई जाती है। केन्द्रीय सरकार, जिसे संघ-सरकार भी कहते हैं, स्थानीय सरकारों को किसी भी तरह दबाने की अधिकारिणी नहीं है। इसी कठिनाई को दूर करने के लिये संघ और स्थानीय सरकारों के विषय अलग-अलग बाँट दिये जाते दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र हैं। रियासतों या सूबों के घनिष्ठ सम्पर्क के कारण सब को स्थापना होती है। किसी हद तक इनकी सहानुभूति और सहकारिता पहुँच जाने के बाद संघ का निर्माण किया जाता है। इतने पर भी दो प्रकार के भय सदैव बने रहते हैं। किन्हीं भी दो सूबों में मतभेद उत्पन्न हो सकता है। विषयों के विभाजन में संघ और स्थानीय सरकार को कोई-न-कोई कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। यह भी सम्भव है कि शासन-विधान की किसी धारा के दो अर्थ निकाल लिये जायँ जब इस प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती तो एक ऐसी संस्था आवश्यक है जो इन्हें सुलझाने की योग्यता रखती हो। संघ-न्यायालय की स्थापना इसीलिये की जाती है। कोई भी संघ-शासन एक प्रधान न्यायालय के बिना नहीं चल सकता।

संघ-न्यायालय संघ-शासन-विधान का संरक्षक होता है।* इसमें

---

*"A Federal Court is an essential element in a Federal Constitution. It is at once the interpreter and guardian of the Constitution and a tribunal for the determination of disputes between the constituent units of the Federation.

काम करने वाले न्यायाधीशों के सूबों और संघ दोनों को एक दृष्टि से देखना पड़ता है। जिस प्रकार साधारण कचहरियाँ दो व्यक्तियों अथवा दो दलों में निष्पक्ष भाव से फैसला करती हैं, उसी प्रकार संघ-न्यायालय को संघ और प्रान्तीय सरकार दोनों के बीच में फैसला करना पड़ता है। संघ शासन-विधान को बारीकियों से इन्हें भली-भाँति परिचित रहने की आवश्यकता है। संघ-न्यायालय और अखिल भारतीय न्यायालय में कुछ अन्तर है। एक का कार्य शासन-प्रबन्ध में वैधानिक कठिनाइयों को सुलझाना है और दूसरे का कार्य हिन्दोस्तान में सभी प्रकार के मुक़दमों का अन्तिम फैसला करना है। १६२५ ई० में भारतीय असेम्बली में इस विषय का एक प्रस्ताव पेश किया गया था कि एक अखिल भारतीय न्यायालय की स्थापना की जाय। सरकार के विरोध करने पर यह प्रस्ताव पास न हो सका। प्रिवी कौंसिल के रहते इस तरह के न्यायालय बनाने में सरकार को कोई लाभ नहीं जान पड़ा। जब १६३५ के संघ-शासन-विधान की कार्रवाइयाँ आरम्भ हुईं तो फिर इस प्रकार की माँग पेश की गई कि अखिल भारतीय न्यायालय स्थापित किया जाय। सफेद पत्र (White Paper) में संघ-न्याया-लय और अखिल भारतीय न्यायालय दोनों की शिफारिश को गई थी। संयुक्त पार्लियामेंटरी कमीटी ने संघ-न्यायालय को स्वीकार किया परन्तु अखिल भारतीय न्यायालय निरर्थक साबित किया गया।

संघ न्यायालय का संगठन

११३५ के संघ-शासन-विधान के अनुसार १ नवम्बर सन् १९३७ ई० को संघ-न्यायालय की स्थापना की गई। शासन-विधान में भली-भाँति स्पष्ट किया गया था कि संघ-न्यायालय में अधिक से अधिक ७ जज रह सकते हैं। यदि इससे अधिक जजों की आवश्यकता होगी तो संघ-धारा-सभा गवर्नर-जनरल के सामने इस आशय का प्रस्ताव रक्खेगी और अन्त में बृटिश साम्राट् से इसकी अन्तिम अनुमति ली जायगी। जजों की नियुक्ति सम्राट् द्वारा हुई है। चूँकि संघ-शासन विधान पूरी तरह कार्यान्वित नहीं किया गया इसलिये संघ-न्यायालय में केवल ३ जज रक्खे गये थे। संघ-न्यायालय के जज ६५ वर्ष की आयु तक कार्य कर सकते हैं, परन्तु इसके बीच में चरित्र अथवा शारीरिक अंगभंग के कारण अपने पद से हटाये जा सकते हैं। अपने पद से वे किसी भी समय त्याग-पत्र दे सकते हैं। इस संगठन से यह भली भाँति स्पष्ट है कि संघ-न्यायालय पर भारतीयों का कोई अधिकार

नहीं था। जजों को नियुक्त करने और उन्हें हटाने का अधिकर केवल सम्राट् को था। अर्थात् कार्य रूप में भारत-मन्त्री इसका सर्वेसर्वा रक्खा गया था। देश का सबसे बड़ा न्यायालय एक विदेशी सरकार के कब्जे में रहे, यह न्याय की दृष्टि से संगत नहीं था। लोगों का यह विचार था कि इस न्यायालय को संघ-धारा-सभा और गवर्नर-जनरल के कब्जे में रक्खा जाय, जजों की भर्ती करने और हटाने का अधिकार इन्हीं को दिया जाय, परन्तु पार्लियामेंट के सामने उनकी एक न चली।

संघ-न्यायालय में ३ से कम जज नहीं रक्खे जाते। आजकल इनकी संख्या इतनी ही रक्खी गई है। प्रधान जज को छोड़कर बाकी जजों की योग्यतायें एक रक्खी गई हैं। जज के लिये निम्नलिखित योग्यता का रखना आवश्यक रहा है :—

१—बृटिश भारत अथवा देशी रियासत की किसी हाईकोर्ट में कम से कम ५ वर्ष तक न्यायाधीश रहा हो। अथवा

२—इंगलैंड या उत्तरी आयरलैंड में १० वर्ष तक बैरिस्टर रहा हो। अथवा

३—स्काटलैंड में १० वर्ष तक एडवोकेट रहा हो अथवा

४—हिन्दोस्तान की किसी हाईकोर्ट में १० वर्ष तक वकील रहा हो। प्रधान जज को इन योग्यताओं के अतिरिक्त दौर भी बातें पूरी करनी होंगी :—

१—उपरोक्त दो और तीन नम्बर के अनुसार उसे १५ वर्ष का अनुभव होनी चाहिये।

२—नियुक्ति के समय उसे इंगलैंड या उत्तरी आयरलैंड का बैरिस्टर, या स्काटलैंड का एडवोकेट या भारतवर्ष का वकील होना चाहिये।

प्रधान जज को ७००० रुपया और बाकी जजों को ५५०० रुपया महीना वेतन दिया जाता है। ६५ वर्ष की आयु होने पर जजों को पेंशन देने का विधान बनाया गया है। यह पेंशन अधिक-से-अधिक ३०००० रुपये सालाना तक दी जा सकती है। प्रधान न्यायाधीश का स्थान खाली हो जाय तो गवर्नर-जनरल को यह अधिकार होगा कि वह सहायक जजों में से कुछ समय के लिये किसी को प्रधान न्यायाधीश बना दे। परन्तु किसी दशा में उसे सहायक जजों को भर्ती करने का अधिकार नहीं दिया गया है। संघ-न्यायालय का स्थान दिल्ली है,

परन्तु प्रधान न्यायाधीश गवर्नर-जनरल की अनुमति से इसका स्थान तब्दील कर सकता है। संघ-न्यायालय का सब खर्च भारतीय खजाने से दिया जाता है, परन्तु संघ-धारा-सभा (अभी इसका निर्माण नहीं हुआ है) को जजों का वेतन घटाने-बढ़ाने का अधिकार नहीं है। वह केवल उस पर विचार कर सकती है। न्यायालय का पूरा खर्च गवर्नर-जनरल के निजी अधिकार में रक्खा गया है। इसकी फीस आदि की आमदनी संघ सरकार की आमदनी समझी जाती है। संघ-न्यायालय का सब काम अँगरेजी भाषा में होता है।

संघ न्यायालय के अधिकार और कर्तव्य

इसके कर्तव्य दो प्रकार के हैं :—

१—संघ-शासन को वैधानिक कठिनाइयों को सुलझाना।

२—प्रान्तीय हाईकोर्ट से दीवानी मुकदमों को अपील सुनना।

संघ-न्यायालय में नये और अपील दोनों प्रकार के मुकदमें आते हैं। जब कभी किसी प्रान्त और केन्द्रीय सरकार में कोई मतभेद होता रहा है तो इसका निपटारा संघ न्यायालय में किया जाता था। यदि दो प्रान्तीय सरकारें आपस में लड़ बैठतीं तो उनका फैसला संघ-न्यायालय करता। जो रियासतें संघ-शासन में शरीक होतीं उनके बीच में यदि किसी प्रकार का वैधानिक संकट उत्पन्न होता तो न्यायालय इसका फैसला करता। तात्पर्य यह है कि नये मुकदमें व्यक्तियों से सम्बन्ध रखने वाले न होकर सरकार से सम्बन्ध रखते। अर्थात् संघ-शासन के अन्दर केन्द्रीय अथवा स्थानीय जितनी भी सरकारें होतीं उनके आपसी झगड़े संघ-न्यायालय में फैसला होते। इसलिये यह व्यक्तियों का न्यायालय न होकर सरकारों का न्यायालय होता है। संघ-न्यायालय जहाँ कहीं भी स्थापित किये गये हैं उनका मुख्य काम वैधानिक उलझनों को सुलझाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस न्यायालय का पद शासन-विधान से ऊपर माना जाता है। शासन की प्रधानता होते हुये भी इसे स्पष्ट करने का अधिकार इसी न्यायालय को दिया जाता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में प्रधान न्यायालय (Supreme Court) को जो स्थान प्राप्त है, वह भारतीय संघ-न्यायालय को नहीं दिया गया था। अमेरिका की सभी रियासतों पर प्रधान न्यायालय का एक सा अधिकार है, परन्तु भारतीय संघ-न्यायालय रियासतों और प्रान्तों पर समान अधिकार

नहीं रख सकता था। प्रान्तों पर तो उसके अधिकार एक से होते थे, परन्तु रियासतों पर वे कुछ शर्तों के साथ लागू होते थे।

उपरोक्त वैधानिक मुकदमों के अतिरिक्त संघ-न्यायालय में कुछ मुकदमों की अपील भी की जाती रही है। जो मुकदमें प्रान्तों अथवा रियासतों की हाईकोर्ट में फैसल होते उनकी अपील संघ-न्यायालय में होती, परन्तु इसकी आज्ञा हाईकोर्ट देती थीं। सभी मुकदमों की अपील की आज्ञा नहीं दी जा सकती थी। जिन मुकदमों में कोई कानूनी दाँव पेच होता अथवा किसी ऐक्ट के स्पष्टीकरण की आवश्यकता होती, उन्हीं की अपील संघ-न्यायालय में होती थी। जहाँ ऐसे प्रश्न उपस्थित होते वहाँ हाईकोर्ट दोनों पार्टियों को एक सार्टिफिकेट देती थी कि इनमें कोई भी पार्टी संघ-न्यायालय में इसकी अपील कर सकती है। इस तरह के मुकदमों की अपील संघ-न्यायालय को छोड़कर और कहीं नहीं की जा सकती थी। प्रिवी कौंसिल में ऐसे मुकदमें हाईकोर्ट से सीधे नहीं जा सकते थे। उन्हें संघ-न्यायालय से होकर गुजरना होता था। यदि संघ-न्यायालय इस प्रकार के किसी मुकदमें की अपील हाईकोर्ट से प्रिवी कौंसिल में करने की विशेष आज्ञा देता तब भी प्रिवी कौंसिल इनकी अपील नहीं सुन सकती थी।

कानूनी मामलों के अतिरिक्त कुछ मुकदमों की अपील हाईकोर्ट संघ-न्यायालय में होती रही है। परन्तु इसकी आज्ञा केवल संघ-धारा-सभा गवर्नर-जनरल की अनुमति से दे सकती थी। यदि संघ-धारा-सभा इस प्रकार की अपीलों का विधान बनाना चाहती तो वह गवर्नर-जनरल की सलाह से संघ-न्यायालय के अधिकार को बढ़ा सकती थी। ऐसी दशा में दीवानी के कुछ मुकदमें हाईकोर्ट से प्रिवी कौंसिल में न जाकर संघ-न्यायालय में अपील किये जाते। इनके लिये हाईकोर्ट के सार्टिफिकेट की जरूरत न होती। परन्तु इसमें एक बहुत बड़ी शर्त यह थी कि आरम्भ में मुकदमा कम से कम ५०००० रुपये का और अपील के समय कम से कम १५००० रुपये का होता। इससे कम कीमत के माल के मुकदमें संघ-न्यायालय में तभी अपील किये जा सकते थे जब संघ-न्यायालय इसकी विशेष आज्ञा देता था। इस प्रकार की अपीलों को कार्यान्वित करने के पहिले संघ-धारा-सभा को एक कानून द्वारा इस बात का एलान करना पड़ता कि अमुक-अमुक प्रकार के मुकदमें हाईकोर्ट से सीधे प्रिवी कौंसिल में अपील न किये जायँ। ऐसा करने से प्रिवी कौंसिल के अधिकार कुछ कम जरूर हो जाते, परन्तु हिंदोस्तान से

उसका नाता एकदम तोड़ा नहीं जा सकता था। जो रियासतें संघ-शासन में शरीक होती, उन्हें भी संघ-न्यायालय में कानूनी मुकदमें अपील करने का अधिकार होता। ये अपीलें दो प्रकार की होतीं :—

१—रियासतों की हाईकोर्ट स्वयं किसी मामले को संघ-न्यायालय में सलाह के लिये भेज सकती थीं।

२—संघ-न्यायालय इस बात की आज्ञा जारी कर सकता था कि अमुक मामला उसके सामने पेश किया जाय।

कुछ लोगों ने संघ-न्यायालय के कर्तव्य को ३ भागों में बाँटा है :—

१—नये मुकदमों (Original Cases) को सुनना।

२—अपील के मुकदमों को सुनना।

३—गवर्नर-जनरल को कानून सम्बन्धी मामलों में सलाह देना।

पहले दो प्रकार के कर्तव्यों का वर्णन ऊपर किया गया है। तीसरे प्रकार का कर्तव्य गवर्नर-जनरल की इच्छा पर निर्भर था। यदि उसकी राय में कोई वैधानिक संकट उपस्थित होता, अथवा भविष्य में उसके उपस्थित होने की सम्भावना होती, तो वह इसे संघ-न्यायालय के सामने पेश कर सकता था। जजों का कर्तव्य था कि वे अपना बहुमत उसे देते। परन्तु यदि किसी जज को बहुमत पसन्द नहीं होता तो वह अपना स्वतन्त्र निर्णय दे सकता था। संघ-न्यायालय की यह राय मुकदमों के फैसले के भाँति गवर्नर-जनरल पर लागू न होती थी। वह चाहता तो इससे लाभ उठाता, वरन् इसका कोई मूल्य नहीं था। इससे एक बहुत बड़ा लाभ यह था कि थोड़े ही परिश्रम से कितनी ही शासन सम्बन्धी अड़चनें दूर होती रहतीं। परन्तु गवर्नर-जनरल को छोड़कर और किसी को भी यह अधिकार नहीं था कि वह संघ-न्यायालय से किसी प्रकार की कानूनी राय ले सके। यदि यह अधिकार प्रान्तीय कर्मचारियों को दे दिया जाता तो शासन-विधान का रास्ता और भी साफ हो जाता। लेकिन ऐसा नहीं किया गया था। जब कभी प्रान्तीय सरकारी को सलाह की आवश्यकता होती तो वे गवर्नर-जनरल की आज्ञा द्वारा संघ-न्यायालय से इसे प्राप्त कर सकती थीं

संघ न्यायालय की कमजोरियाँ

भारतीय संघ-न्यायालय के कर्तव्यों को देखते हुए भली भाँति स्पष्ट है कि इसके कार्य केवल वैधानिक नहीं हैं। यह वैधानिक न्यायालय कहलाने का अधिकारी नहीं कहा जा सकता। दीवानी के मुकदमों की अपीलें भी इसमें नहीं होतीं। संसार के अन्य

संघ-शासन-विधानों के अन्दर संघ-न्यायालय प्रधान माने गये हैं। उनके फैसले की अपील किसी दूसरी अदालत में नहीं की जा सकती। परन्तु भारतीय संघ-न्यायालय द्वारा फैसल किये गये मुकदमों की अपील प्रिवी कौंसिल में होती रही है। ऐसी हालत में संघ-न्यायालय को संघ-शासन-विधान का संरक्षक कहना निरा भ्रम है। इसीलिये कहा गया है कि, "संघ-न्यायालय अपील की आखीरी अदालत नहीं है। न तो इसका दीवानी के मुकदमों पर ही अन्तिम अधिकार है और न शासन-विधान की संरक्षता ही इसे प्राप्त है।"* बम्बई के गवर्नर ने इसे "महँगी विलासिता' कहा है। इन तमाम कमजोरियों के बावजूद भी लोगों को संघ-न्यायालय से बड़ी-बड़ी आशायें थीं। उनका विचार था कि देशी रियासतों और बृटिश प्रान्तों में नैयायिक एकता स्थापित करने में यह सहायक सिद्ध होता। यद्यपि संघ-न्यायालय कुछ परिवर्तनों के साथ आज भी कार्य कर रहा है, परन्तु नये शासन-विधान में इसकी रूप-रेखा कुछ और होगी।

प्रान्त में सबसे बड़ी कचहरी हाईकोर्ट कहलाती है। १९३५ के शासन-विधान के अनुसार हिन्दोस्तान में ७ हाईकोर्ट

हाईकोर्ट रही हैं :—

कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, इलाहाबाद, लाहौर, पटना और नागपुर। इनके अतिरिक्त अवध के लिये लखनऊ में एक चीफ कोर्ट स्थापित की गई थी, जो अब इलाहाबाद हाईकोर्ट में शामिल कर दी गई है। मध्य-प्रान्त और बरार, पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा सिन्ध में जुडीशियल कमिश्नर कोर्ट स्थापित की गई है। सम्राट् को यह अधिकार रहा है कि वह किसी भी प्रान्त में हाईकोर्ट की स्थापना कर सके। हाईकोर्ट जजों की संख्या अधिक से अधिक बीस रक्खी गई है। इसकी नियुक्ति सम्राट् स्वयं करता रहा है। गवर्नर-जनरल को यह अधिकार है कि आवश्यकता पड़ने पर अपनी कौंसिल की सलाह से वह सहायक जज नियुक्त कर सके। परन्तु इसकी अवधि अधिक-से-अधिक दो वर्ष हो सकती है। प्रधान न्यायाधीश का स्थान यदि किसी कारणवश खाली हो जाय तो गवर्नर-जनरल अपने विशेष अधिकार से सहायक जजों में से किसी

---

* It is not the final appellate authority—the last authoritative judicial interpreter of the constitution, or the ultimate declarer of the civil law of the land.

को भी थोड़े समय के लिये उस स्थान पर नियुक्त कर सकता है। ६५ वर्ष की आयु तक प्रत्येक जज कार्य कर सकता है। इसके पहले यदि वह इस्तीफा देना चाहता है तो वह गवर्नर को त्यागपत्र देकर अपना पद छोड़ सकता है। अपने चरित्र अथवा शारीरिक कमजोरियों के कारण वह हटाया भी जा सकता है।

हाईकोर्ट के न्यायाधीश के लिये कुछ योग्यताओं का रखना आवश्यक है। या तो वह इङ्गलैण्ड अथवा उत्तरी आयरलैण्ड में कम से कम दस वर्ष बैरिस्टर रहा हो; या इतनी ही अवधि तक स्काटलैण्ड में एडवोकेट रहा हो; और साथ ही कम से कम दस वर्ष तक इन्डियन सिविल सर्विस का सदस्य रहा हो, और साथ ही कम से कम तीन वर्ष तक डिस्ट्रिक्ट जज रहा हो, या पाँच वर्ष तक बृटिश भारत में किसी कचहरी में जज रहा हो, या दस वर्ष तक किसी हाईकोर्ट का वकील रहा हो। प्रधान न्यायाधीश के लिये इनके अतिरिक्त कुछ और भी शर्तें रक्खी गई हैं। उसे कम से कम तीन वर्ष तक किसी हाईकोर्ट का जज होना आवश्यक है। नियुक्ति के समय उसे बैरिस्टर अथवा ऐटवोकेट होना चाहिये। नये शासन-विधान के पहले यह आवश्यक था कि कम से कम एक तिहाई जज इन्डियन सिविल सर्विस के सदस्य हों और एक तिहाई इङ्गलैण्ड, स्काटलैण्ड या आयरलैण्ड के वकील या बैरिस्टर हों, परन्तु अब यह बन्धन दूर कर दिया गया है। इससे जजों को तलाश करने में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती थीं। नियुक्ति के समय जजों को गवर्नर के सामने एक प्रकार की शपथ लेनी पड़ती है।

जजों का वेतन, भत्ता तथा इनकी पेन्शन आदि निश्चित करने का अधिकार ब्रिटिश सम्राट् को रहा है। इनका वेतन इसके कार्यकाल में घटाया बढ़ाया नहीं जा सकता।

१९३७ ई० में भारत-सरकार ने हाईकोर्ट के जजों का जो वेतन निश्चित किया है उसका व्योरा निम्नलिखित प्रकार से है :—

संख्या	स्थान	सालाना वेतन
१	कलकत्ता हाईकोर्ट का प्रधान न्यायाधीश	...७२००० रु०
२	मद्रास, बम्बई, इलाहाबाद, पटना और लाहौर हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश	...६०००० रु०
३	नागपुर हाईकोर्ट का प्रधान न्यायाधीश	...५०००० रु०
४	कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, इलाहाबाद, पटना और लाहौर के न्यायाधीश और अवध कोर्ट का चीफ जज	...४८००० रु०
५	अवध चीफ कोर्ट के जज; सिंध का जुडीशियल कमिश्नर	...४२००० रु०
६	नागपुर हाईकोर्ट का जज	...४०००० रु०
७	पश्चिमोत्तर प्रदेश का जुडीशियल कमिश्नर	...३६००० रु०
८	सिंध तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश के सहायक जुडीशियल कमिश्नर	...३६००० रु०

हाईकोर्ट के जजों का वेतन तथा सभी प्रकार के खर्चे प्रान्तीय खजाने से दिये जाते हैं। लेकिन प्रान्तीय धारा-सभा को इसे घटाने-बढ़ाने का अधिकार नहीं है। हाईकोर्ट के खर्चे की रकम प्रान्तीय गवर्नरों के निजी अधिकार में रक्खी गई है। प्रान्तीय स्वराज्य की दृष्टि से ऐसा करना सर्वथा अनुचित है। जिस प्रकार मंत्रियों के अधिकार अन्य विभागों पर रक्खे गये हैं उसी तरह हाईकोर्ट भी उनकी शक्ति से बाहर नहीं होनी चाहिये।

हाईकोर्ट के अधिकार

कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के हाईकोर्ट को अपील तथा नये दोनों प्रकार के मुकदमें सुनने का अधिकार है। अन्य हाईकोर्टों में अधिकतर अपील के मुकदमें फैसल किये जाते हैं। दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के मुकदमें इसमें अपील किये जाते हैं। प्रान्त में सभी अदालतें हाईकोर्ट की मातहती में काम करती हैं।

हाईकोर्ट को यह अधिकार है कि अपने प्रांत के अंदर किसी मुकदमें को एक कचहरी से दूसरे में भेज सके। यदि किसी छोटी कचहरी में संघ अथवा प्रान्त से सम्बन्ध रखने वाला कोई ऐक्ट सम्बन्धी मुकदमा पेश है तो संघ अथवा प्रान्त के ऐडवोकेट-जनरल की आज्ञा पाने पर हाईकोर्ट उसे अपने पास तब्दील कर सकती है। छोटी कचहरियों का कार्यक्रम यही बनाती है। कचहरियों के कर्मचारियों का वेतन, मुकदमों की फीस तथा हिसाब-किताब रखने का तारीका निश्चित करने का अधिकार इसी को दिया गया है। टैक्स से सम्बन्ध रखने वाले मुकदमें हाईकोर्ट में आरम्भ नहीं किये जा सकते।

हाइकोर्ट का कार्यक्षेत्र बढ़ाया जा सकता है। कुछ विषयों में इसके अधिकार सीमित रक्खे गये हैं। इसकी सारी कार्रवाइयाँ अंगरेजी भाषा में ही होती हैं। गवर्नर-जनरल, देशी रियासतों का सम्बन्ध तथा गवर्नर—इनके विरुद्ध हाईकोर्ट में किसी तरह का विचार नहीं किया जा सकता। फौजदारी के सभी मुकदमें अधिक-से-अधिक हाईकोर्ट तक आ सकते हैं। फाँसी और कालेपानी का अन्तिम निर्णय देने का अधिकार हाईकोर्ट को दिया गया है परन्तु गवर्नर जनरल को यह अधिकार है कि वह किसी फाँसी के अपराधी को माफ कर दे। १६१६ के शासन-विधान के अनुसार कलकत्ता हाईकोर्ट को छोड़कर बाकी हाईकोर्ट प्रान्तीय सरकारों से सीधा सम्बन्ध रखते थे। अर्थात् प्रान्तीय सरकारें उनके खर्चे आदि के लिये जिम्मेवार थीं। संघ-शासन-विधान के अनुसार न्याय विभाग प्रान्तीय विषयों की सूची में रख दिया गया था। लेकिन साथ ही संघ-सरकार का भी इसमें हाथ होता था। हाईकोर्ट न तो पूरी तरह प्रान्तीय थीं और न संघीय।

जिला कोर्ट

हाईकोर्ट से नीचे दीवानी और फौजदारी की अदालतें अलग-अलग हैं। प्रत्येक जिले में ये दोनों प्रकार की अदालतें पाई जाती हैं। जिले में फौजदारी के मुकदमें की सबसे बड़ी अदालत सेशन कोर्ट कहलाती है। इसका न्यायाधीश सेशन जज कहलाता है। आवश्यकता पड़ने पर एक से अधिक जज इसमें नियुक्त किये जा सकते हैं। फौजदारी के सभी मुकदमें इसमें फैसल किये जाते हैं। यह अदालत किसी अपराधी को फाँसी की सजा दे सकती है, परन्तु इसका अन्तिम निर्णय हाईकोर्ट में किया जाता है। मजिस्ट्रेट की कचहरी से फैसल किये गये मुकदमें की अपील सेशन कोर्ट में की जाती है। सेशन कोर्ट से नीचे फौजदारी की

दूसरी अदालत मजिस्ट्रेट कोर्ट है। ये मजिस्ट्रेट ३ प्रकार के होते हैं। अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेट को २ वर्ष सख्त जेल की सजा और १००० रुपया जुर्माना, दोयम दरजे के मजिस्ट्रेट को ६ महीने सख्त जेल की सजा और २०० रुपये जुर्माना, और तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट को १ महीने को सजा और ५० रुपये जुर्माना करने का अधिकार है। इन मजिस्ट्रेटों के कार्यक्षेत्र अलग-अलग बटे होते हैं। जिले का कलेक्टर अव्वल दर्जे का मजिस्ट्रेट होता है। फौजदारी के जो मुकदमें इनके अधिकार से बाहर होते हैं, उन्हें ये सेशन कोर्ट में भेज देते हैं।

ऊपर कहा गया है कि जिले का कलेक्टर अव्वल दर्जे का मजिस्ट्रेट होता है। जिले के और मजिस्ट्रेट उसकी देख-रेख में अपना कार्य करते हैं। प्रत्येक जिले की हर तहसील में एक डिप्टी कलेक्टर होता है। अपने क्षेत्र में इसे भी फौजदारी के मुकदमें फैसल करने का अधिकार होता है। कलेक्टर इनका कार्य वितरण करता है। और इनकी देख-रेख रखता है। बड़े शहरों में सिटी-मजिस्ट्रेट नियुक्त किये जाते हैं। शहर के फौजदारी के मुकदमें इनकी कचहरियों में फैसल होते हैं। इनके अतिरिक्त हर जिले तथा शहर में कुछ अवैतनिक मजिस्ट्रेट भी रक्खे जाते हैं। इनके अधिकार उपरोक्त मजिस्ट्रेटों की तरह अव्वल, दोयम और सोयम ३ दर्जे में बँटे हुए हैं। प्रान्तीय सरकार इन्हें नियुक्त करती है। जिले के प्रतिष्ठित अनुभवशील व्यक्ति इस पद पर नियुक्त किये जाते हैं। फौजदारी के छोटे-मोटे मुकदमें इनकी कचहरियों में फैसल होते हैं।

हाईकोर्ट के नीचे प्रत्येक जिले में दीवानी की सब से बड़ी अदालत डिस्ट्रिक्ट जजेजकोर्ट कहलाती है। बंगाल, आगरा तथा आसाम प्रान्त के हर जिले में दीवानी अदालतें ३ श्रेणियों में विभक्त की गई हैं—डिस्ट्रिक्ट कोर्ट, सब जज कोर्ट तथा मुन्सिफ कोर्ट। अन्य प्रान्तों में इसकी श्रेणियों में कुछ भेद भाव किया गया है। डिस्ट्रिक्ट कोर्ट का न्यायाधीश डिस्ट्रिक्ट जज कहलाता है। जिले की तमाम दीवानी अदालतें इनकी मातहती में काम करती हैं। नाबालिग और पागल की जायदाद की रक्षा के लिये संरक्षक यही नियुक्त करती है। दीवानी की छोटी कचहरियों द्वारा फैसल किये गये मुकदमें इसमें अपील किये जाते हैं। ५,००० रुपये से अधिक से सम्बन्ध रखने वाले किसी मुकदमें की अपील डिस्ट्रिक्ट कोर्ट में नहीं की जा सकती। डिस्ट्रिक्ट जजेज कोर्ट के नीचे की दीवानी अदालत सिविल जज कोर्ट कहलाती है।

इसके अतिरिक्त हर जिले में एक मुनसफ कोर्ट होती है। इन दोनों कचहरियों का दर्जा लगभग बराबर सा है, अन्तर केवल इतना ही है कि मुनसफ कोर्ट में केवल २००० रुपये तक के दीवानी मुकदमें पेश किये जा सकते हैं। इन दोनों सहायक कचहरियों के फैसल किये गये मुकदमों की अपील डिस्ट्रिक्ट जजेज कोर्ट में होती है। परन्तु यदि कोई मुकदमा ५००० रुपये से अधिक कीमत का है तो उसकी अपील सीधे हाईकोर्ट में होती है, डिस्ट्रिक्ट जजेज कोर्ट में नहीं। नकद रुपये के मुकदमें ५०० रुपये तक स्माल काज कोर्ट में फैसल होते हैं। इनके फैसल किये गये मुकदमें कहीं अपील नहीं किये जा सकते। यह कचहरी केवल बड़े जिले में होती है।

योरप निवासियों के मुकदमें

योरप निवासियों को आरम्भ से ही कुछ विशेष सुविधायें दी जाती रही हैं। यद्यपि धारा सभाएँ सम्पूर्ण देशवासियों के लिये कानून बनाती रही हैं और कचहरियों का अधिकार सब पर एक सा हा रहा है, फिर भी योरप निवासियों के साथ इस विषय में कुछ पक्षपात किया जाता था। १६ वीं सदो के मध्य में यह प्रश्न उठाया गया था कि अन्य लोगों की तरह इनके भी मुकदमें स्थानीय कचहरियों में फैसल किये जायँ, परन्तु इसका कोई परिणाम न हुआ। प्रेसीडेन्सी शहरों में सुप्रीम कोर्ट में उनके फौजदारी के मुकदमें फैसल किये जाते थे। जब इंडियन सिविल सर्विस का दर्वाजा हिन्दोस्तानियों के लिये खोल दिया गया तो यह प्रश्न उठा कि क्या उन्हें योरप-निवासियों के मुकदमें फैसल करने का अधिकार दिया जाय अथवा नहीं। अब तक जज और कलेक्टर के पद पर केवल अँगरेज होते थे। परन्तु सिविल सर्विस का दर्वाजा खुल जाने से हिन्दोस्तानी भी इन पदों पर नियुक्त किये जाने लगे। एक ही पद पर कार्य करने वाले पदाधिकारियों के अधिकार दो तरह के नहीं रक्खे जा सकते थे। गवर्नमेंट ने १८८३ ई० में इल्बर्ट बिल पास करना चाहा। इसका आशय यह था कि हिन्दोस्तानी जजों तथा कलेक्टरों को योरप निवासियों के मुकदमें फैसल करने का अधिकार दिया जाय। हिन्दोस्तान में रहने वाले योरप निवासियों ने इसका विरोध किया। उन्हें यह बात खटकने लगी कि हिन्दोस्तानी और गोरे एक नजर से देखे जायेंगे। अन्त में सरकार को विवश होकर उनके सामने झुकना पड़ा।

१८८४ ई० में सुलह का एक मार्ग निकाला गया। हिन्दोस्तानी जजों और कलेक्टरों को योरप निवासियों के मुकदमें फैसला करने का अधिकार इस शर्त पर दिया गया कि एक जुरी की मदद से उनका मुकदमा फैसला किया जाय। जुरी के कम से कम आधे व्यक्ति योरोपियन हों संघ तथा प्रान्तीय धारा-सभाओं में गवर्नर-जनरल की आज्ञा के बिना कोई ऐसा बिल पेश नहीं किया जा सकता था जिसका प्रभाव योरप निवासियों के फौजदारी के मुकदमों की कारवायों पर पड़ता हो। जातीय भेद-भाव कमीटी (Racial Distinction Committee) ने इस मसले पर विचार किया था कि योरोपियन तथा भारतीयों का मुकदमा हिन्दोस्तानी कचहरियों में किस तरह फैसला किया जाय। कमीटी ने इस बात की सिफारिश की कि पुराने भेद-भावों को बहुत कुछ दूर कर देना चाहिये। तब से हिन्दोस्तानी और योरोपियन दोनों को समान रूप में यह अधिकार दे दिया गया कि उनके मुकदमें मिश्रित जुरी द्वारा फैसला किये जायँ। जुरी के आधे सदस्य उस राष्ट्र के निवासी हों जिसकी प्रजा अपराधी ठहगई गई है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार इस तरह के भेद-भाव को दूर कर रही है।

पंचायती अदालत

१९४७ ई० के बाद ग्राम पंचायतों के अन्तर्गत पंचायती अदालतें स्थापित की जा रही हैं। पंचायत अदालत में ५ पंच होंगे, जिनका चुनाव 'गाँव-सभा, प्रौढ़ सदस्यों में से करेगी। पंचों की अवधि निर्वाचन तिथि से ३ वर्ष की होगी। पंचायती अदालत को दीवानी और फौजदारी के मुकदमों को तै करने का अधिकार दिया गया हैं। उनके निर्णय की अपील मुन्सिफ के यहाँ ६० दिन के अन्दर हो सकती है। पंचायत अदालत को जेल की सजा देने का अधिकार नहीं है। उसे १००) तक जुर्माना करने का अधिकार दिया गया है। १००) मूल्य तक के माल के मुकदमें इसमें फैसल किये जायेंगे। पंचायती अदालत के सामने किसी कानून पेशा व्यक्ति को पैरवी करने की आज्ञा नहीं दी गई है। इसके निर्णय के सबन्ध में मुन्सिफों को निगरानी का अधिकार होगा। पंचायती अदालत २५) तक का जमानती वारन्ट जारी कर सकती है।

अध्याय १८

सरकारी नौकरियाँ

सरकारी कर्मचारियों का प्रभाव

किसी देश का शासन-प्रबन्ध वहाँ के सरकारी कर्मचारियों की योग्यता पर निर्भर करता है। जनता के साथ जैसा अच्छा या बुरा व्यवहार होगा, शासन-प्रबन्ध की महत्ता उसी मात्रा में अच्छी या बुरी समझी जायगी। यदि सरकारी कर्मचारी योग्य और सुशिक्षित हैं तो यह स्वाभाविक है कि वे शासन की मशीन को और अच्छी तरह चला सकेंगे। जब हम यह सुनते हैं कि अमुक देश में घूसखोरी अधिक चलती है और अत्याचार बहुत होते हैं तो हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि वहाँ के सरकारी कर्मचारी अपने कर्तव्यों का ठीक-ठीक पालन नहीं करते। प्रत्येक देश की सरकार इस बात के लिये बदनाम है कि वह अपने कर्मचारियों को अधिक-से-अधिक वेतन और सुविधायें देती है। जिस काम के लिये व्यक्तिगत नौकरियों में पचास रुपये वेतन है उसी के लिये सरकार सौ रुपये खर्च करती है। इसके अतिरिक्त वह पेन्शन तथा कुछ और तरह की सुविधायें भी देती है। सरकार के ऐसा करने में एक बहुत बड़ा कारण है। प्रजा के धन का वह दुरुपयोग नहीं करना चाहती। लम्बी-लम्बी तनखाहें वह इसीलिये देती है कि कर्मचारी बेजा तरीके से प्रजा से धन वसूल करने की ख़्वाहिश न रक्खें। जिस कर्मचारी को आवश्यकता से कम पैसे मिलेंगे वह ईमानदारी से काम नहीं कर सकता। पैसे के लोभ से तथा सुविधाओं के कारण सरकारी कर्मचारी अधिक तत्परता और भय से कार्य करते हैं। कर्मचारियों से अलग सरकार कोई दूसरी चीज नहीं है। उनकी योग्यता, कार्य-कुशलता, सच्चाई तथा तत्परता का प्रभाव जनता के ऊपर गहरा पड़ता है।

कर्मचारियों को नियुक्त करते समय सरकार को कई बातों का ध्यान रखना पड़ता है। उसकी योग्यता के अतिरिक्त उसे सभी वर्गों की ओर एक नजर रखनी पड़ती है। यदि किसी देश में एक ही वर्ग के लोग सरकारी नौकरियों में लिये जायँ तो अन्य वर्ग इस पक्षपात को सहन नहीं कर सकते। कर्मचारियों को नियुक्ति के लिये ऐसे तरीके बनाने

पड़ते हैं जिसमें सभी लोगों को शरीक होने का अवसर मिल सके। इसीलिये प्रजा-तन्त्रवादी देशों में बड़ी बड़ी सरकारी नौकरियों के लिये परीक्षाओं का विधान बनाया गया है। रूप, रंग, जाति, अथवा धन के कारण किसी व्यक्ति को वंचित नहीं किया जाता। परीक्षाओं में जिन्हें सबसे अधिक नम्बर मिलते हैं वे सरकारी विभाग में लिये जाते हैं। इससे दो प्रकार के लाभ हैं। एक तो योग्य व्यक्ति सरकारी नौकरियों में चले आते हैं। दूसरे प्रजा को यह कहने का मौका नहीं मिलता कि उनकी सरकार किसी वर्ग विशेष के साथ पक्षपात करती है। जिस विभाग में देश के योग्य से योग्य व्यक्ति काम करेंगे उसका प्रभाव साधारण जनता पर पड़े बिना नहीं रह सकता। कुछ तो अपने पद के कारण और कुछ अपने चरित्र अथवा व्यक्तित्व के कारण सरकारी कर्मचारी लोगों को प्रभावित करते हैं। व्यक्तिगत योग्यताएँ हर जगह काम करती हैं। जिनके अन्दर योग्यता का आभास अधिक है और जो अपने व्यवहार से दूसरों को आकर्षित कर सकते हैं वे सरकारी विभाग में रहते हुये सार्वजनिक कामों को और अधिक उन्नत कर सकते हैं। शासन की मशीन अच्छी होने पर भी अयोग्य कर्मचारी इसे दूषित कर सकते हैं। स्थानीय संस्थायें अपने उद्देश्य में जो थोड़ी बहुत असफल हुई हैं इसका मुख्य कारण उचित कर्मचारियों का अभाव है। सरकारी विभाग में कार्य करने वाले व्यक्ति अपने कर्तव्यों का ठीक-ठीक पालन कर अपने देश की सभी प्रकार उन्नति कर सकते हैं।

भारतीय सरकारी नौकरियों का इतिहास

जब ईस्ट इन्डिया कम्पनी की स्थापना हमारे देश में हुई तो उसे अनेक कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ी। व्यापार से बढ़ते-बढ़ते जब कम्पनी राजनीति में भाग लेने लगी तो कर्मचारियों की आवश्यकता और भी बढ़ने लगी। व्यापार कार्य गौण होता गया। शासन-प्रबन्ध को चलाने के लिये नये-नये पदों का निर्माण करना पड़ा। कम्पनी को अपने सारे काम अंगरेजी भाषा में करने पड़ते थे। हमारे देश में अंगरेजी पढ़े-लिखे लोगों का सर्वथा अभाव था। यदि कम्पनी अपने कर्मचारियों को योरप से बुलाती तो उसे एक का तीन देना पड़ता। कम्पनी को अपना फौजी विभाग बहुत ही मजबूत रखना था। जीते हुए देशों की रक्षा के लिये तथा नये-नये देशों को बृटिश राज में शामिल करने के लिये उसे अपने सेना विभाग पर सबसे अधिक ध्यान देना पड़ता

था । कुछ समय तक कम्पनी के कर्मचारी बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स द्वारा नियुक्त किये जाते थे। परन्तु जब कार्य अधिक बढ़ा तो गवर्नर तथा गवर्नर-जनरल को इस बात का अधिकार दिया गया कि वे आवश्यकतानुसार कर्मचारियों को स्वयं भर्ती कर लें। कम्पनी के कर्मचारियों के कारनामें भारतीय इतिहास में अच्छी तरह वर्णन किये गये हैं। बृटेन निवासी कुछ दिनों के लिये हिन्दोस्तान में कम्पनी की नौकरी करने के लिये आते और कुछ ही दिनों में मालामाल होकर अपने देश को लौट जाते थे। कहा जाता है कि १ ५८ से १८१५ ई० तक यानी ५८ वर्ष के भीतर कम्पनी के कर्मचारी पचीस करोड़ रुपया तनखाह के रूप में अपने देश को ले गये । बुक्स ऐडम्स के कथनानुसार इन्हीं रकमों ने इंगलिस्तान की नई ईज़ादों को फैलने का अवसर दिया।

जब लार्ड कार्नवालिस हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल हुआ तो उसका ध्यान बड़ी-बड़ी सरकारी नौकरियों की शुद्धि की ओर आकर्षित हुआ। उसका कहना था कि बड़ी-बड़ी सरकारी नौकरियाँ हिन्दुस्तानियों को नहीं मिलनी चाहिये। कलकत्ता में सरकारी नौकरियों की ट्रेनिंग तथा पूर्वी भाषाओं की जानकारी के लिये एक कालेज की स्थापना की गई । १८०६ ई० में हेल्स बरी नाम का एक दूसरा कालेज इंगलैन्ड में खोला गया। यहाँ के उत्तीर्ण विद्यार्थी हिन्दोस्तान में कम्पनी की नौकरी में भेजे जाते थे। कम्पनी की बड़ी-बड़ी नौकरियाँ हिन्दोस्तानियों को नहीं मिल सकती थीं। वे केवल चपरासी और क्लर्क बन सकते थे। १८३५ ई० के चार्टर ऐक्ट के अनुसार सरकारी पदाधिकारियों की नामजदगी का अधिकार डाइरेक्टरों से छीन लिया गया। बड़ी-बड़ी नौकरियों का दरवाजा अंगरेज और हिन्दोस्तानी दोनों के लिये एक समान खोल दिया गया। यह निश्चित किया गया कि इंगलैंड में बड़ी-बड़ी नौकरियों के उम्मीदवारों की परीक्षायें ली जायँगी। हिन्दोस्तानी उम्मीदवार भी इसमें हिस्सा ले सकते थे।

इंडियन सिविल सर्विस का दरवाजा हिन्दोस्तानियों के लिये खोल तो दिया गया परन्तु इसमें तरह-तरह की कठिनाइयाँ रख छोड़ी थीं। बहुत थोड़े से धनीमानी उम्मीदवार हिन्दोस्तान से ६००० मील की दूरी पर जाकर एक नये वातावरण में रह सकते थे। इसके अतिरिक्त परीक्षा के लिये कुछ ऐसे प्रतिबन्ध लगाये गये थे जिनकी पूर्ति दो प्रतिशत भी उम्मीदवार नहीं कर सकते थे । रवीन्द्रनाथ टैगोर के भाई सत्येन्द्रनाथ टैगोर पहले हिन्दोस्तानी थे जिन्होंने लन्दन में इंडियन सिविल सर्विस

की परीक्षा पास की थी। इनके बाद दो चार और हिन्दोस्तानियों ने परीक्षा में सफल होकर अपनी बुद्धि का परिचय दिया। बृटिश सरकार को यह बात खटकने लगी। अब तक उसे यह उम्मीद न थी कि हिन्दोस्तानी भी इंडियन सिविल सर्विस में अंगरेजों का मुकाबिला कर सकते हैं। जब उसकी आशाओं के विरुद्धि कुछ लोगों को सफलता प्राप्त हुई और भविष्य के लिये हिन्दोस्तानियों को कुछ उत्साह मिला तो उनकी उमर की कैद २६ वर्ष से घटाकर १६ वर्ष कर दी गई। अर्थात् प्रत्येक हिन्दोस्तानी उम्मीदवार को १६ वर्ष से अधिक आयु का नहीं होना चाहिए। इसने भारतीय उम्मीदवारों का दरवाजा बिलकुल बन्द कर दिया। भारत-मंत्री को अपने एक पत्र में लार्ड लिटन ने यह लिखा कि "जिन बातों को सुनकर हिन्दोस्तानियों को कुछ तसल्ली हुई थी उन्हें इनकार कर हम लोगों ने उनकी कमर तोड़ दी।"* अर्थात् सिविल सर्विस में उत्तीर्ण होने की उनकी आशायें मिट्टी में मिल गईं।

१८७० ई० में एक एक्ट द्वारा हिन्दोस्तानी उम्मीदवारों को सिविल सर्विस को नौकरियाँ कुछ आसान कर दी गईं। परन्तु बहुत थोड़ी जगहें इस ऐक्ट के अनुसार इन्हें दी गईं। १८७६ ई० में इंडियन सिविल सर्विस के नियमों पर पुनः विचार किया गया। खानदान और रुतबे वाले नवयुवकों को विशेष सुविधायें प्रदान की गईं। सरकार द्वारा इस बात के लिये कमीशन नियुक्त किया गया कि वह कोई ऐसा रास्ता निकाले जिससे हिन्दोस्तानियों को बड़ी-बड़ी नौकरियाँ मिल सकें। १८८७ ई० में कमीशन ने अपनी रिपोर्ट भारत-सरकार को दी। इसमें कुछ आवश्यक सिफारिशें की गई थीं। इसके फलस्वरूप सरकारी नौकरियाँ तीन श्रेणियों में विभाजित कर दी गईं :—

१—इंडियन सिविल सर्विस (Indian Civil Service.)

२—प्रान्तीय सिविल सर्विस (Provincial Civil Service)

३—छोटी सिविल सर्विस (Subordinte Civil Service)

कार्यकारिणी तथा न्याय विभाग की बड़ी-बड़ी नौकरियाँ प्रान्तीय सिविल सर्विस के सदस्यों को दी जाती थीं। इनमें प्रवेश करने के नियम तथा उपनियम प्रान्तीय सरकार द्वारा बनाये जाते थे और भारत-सकार से इनकी मंजूरी लेनी पड़ती थी। इन पदों के लिये

---

*We have broken to the heart the hopes held out to the ear.

नामजदगी, परीक्षायें तथा छोटी नौकरियों से तरक्कियाँ—इन तीनों का विधान बनाया गया था। इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य तथा सभी विभागों के अखिल भारतीय पदाधिकारी लन्दन में ही चुने जाते थे। अन्य दोनों प्रकार की नौकरियाँ भारतनिवासियों को कुछ आसानी से मिल सकती थीं। १९१२ ई० में इलिंगटन कमीशन इस बात के लिये नियुक्त किया गया कि वह बड़े-बड़े सरकारी पदों पर हिन्दोस्तानियों को नियुक्त करने की समस्या पर विचार करे। १९१४ ई० में जर्मनी की लड़ाई के कारण १९१७ ई० तक कमीशन की रिपोर्ट पर कुछ भी विचार नहीं किया गया। इसी बीच में १९१७ ई० के अगस्त महीने में भारतमन्त्री ने इस बात की घोषणा की कि बृटिश सरकार की नीति भारतीय शासन में हिन्दोस्तानियों का अधिक-से-अधिक सहयोग प्राप्त करना है। मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-रिपोर्ट में इस बात की सिफारिश की गई थी कि लन्दन के अतिरिक्त हिन्दोस्तान में भी सिविल सर्विस के उम्मीदवार भर्ती किये जायँ।

१९१९ ई० का शासन-सुधार और सरकारी नौकरियाँ

१९१९ ई० के शासन-सुधार से सरकारी मशीन का ढांचा बहुत कुछ बदल दिया गया। भारतीय नौकरियों पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा। हिन्दोस्तानियों की ओर से बहुत दिनों से इस बात की मांग पेश की गई थी कि बड़ी-बड़ी नौकरियाँ कसरत से उन्हें दी जायँ। अँगरेज कर्मचारी इस बात को सहन नहीं कर सकते थे कि वे हिन्दोस्तानी अफसरों के हुकुम की तामील करें। चेम्स-फोर्ड रिपोर्ट में सलाह दी गई थी कि इंडियन सिविल सर्विस में ३३ प्रतिशत पदाधिकारी हिन्दोस्तानी हों। इनकी संख्या प्रतिवर्ष डेढ़ प्रतिशत बढ़ाई जाय। कुछ जातीय भेद-भावों को भी दूर करने की सिफारिश की गई थी। इसी रिपोर्ट के आधार पर इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा १९२१ ई० से हिन्दोस्तान में ली जाने लगी। दिल्ली इसका केन्द्र माना गया। इसमें भारतीय उम्मीदवारों को अपनी प्रतिभा दिखलाने का अवसर मिला।

यद्यपि सिविल सर्विस की परीक्षा हिन्दोस्तान में आरम्भ की गई, परन्तु वेतन तथा नौकरी के नियम उपनियमों में अनेक सुधारों की आवश्यकता थी। योरपनिवासियों को जो सुविधायें इन नौकरियों में पहले से दी जाती थीं वे थोड़ी भी कम न की गईं। १९१९ के शासन-विधान में नौकरियों पर अलग विचार किया गया था। इसके अनुसार सिविल

सर्विस के सदस्य तब तक अपने पद पर कार्य कर सकते थे जब तक सम्राट् की इच्छा हो। जिस व्यक्ति को उन्हें भर्ती करने का अधिकार दिया गया था वही उन्हें निकाल भी सकता था। यद्यपि ये कर्मचारी विभिन्न प्रान्तों में कार्य करते थे, फिर भी इनकी जिम्मेदारी भारतमंत्री के प्रति थी। वह जिसे चाहता तरक्की या तनज्जुली देता। ऊपर कहा गया है कि सिविल सर्विस के अँगरेज़ कर्मचारियों को हिन्दोस्तानी अफसरों की बराबरी में एतराज़ था। साथ ही छोटे कर्मचारी हिन्दोस्तानियों की मातहती में काम करना पसन्द नहीं करते थे। १९१९ के शासन-सुधार के अनुसार कुछ प्रान्तीय विभागों का प्रबन्ध भारतीय मंत्रियों को सौंप दिया गया। इसलिये यह लाजिमी था कि उन विभागों के बड़े-बड़े कर्मचारी मंत्रियों की देख-रेख में काम करें। सिविल सर्विस के अंगरेज सदस्यों ने भारत-मंत्री से इस बात की माँग पेश की कि उनके लिये जल्दी से जल्दी अपने पद से छुट्टी मिल जाने की कोई योजना बनाई जानी चाहिये।

भारत-मंत्री ने कुछ ऐसे नियम बनाये जिनसे पहली जनवरी सन् १९२० ई० के पहले नियुक्त किये गये भारतीय सिविल सर्विस के अंगरेज पदाधिकारियों को अपने पद से छुट्टी प्राप्त करने की विशेष सुविधायें दे दी गईं। वे अपनी अवधि पूरी होने के पहले ही नौकरी से छुट्टी लेकर पूरी पेन्शन के हक़दार बन सकते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि १९२४ ई० के लगभग करीब ३४५ भारतीय सिविल सर्विस के अंगरेज सदस्य अपने पद से अलग हो गये। यद्यपि इन पदाधिकारियों के चले जाने से हिन्दोस्तान को कुछ हानि हुई परन्तु इसके लिये कोई दूसरा रास्ता न था। जिस सिद्धान्त से ये पदाधिकारी अपने सूबों में काम करते थे वे नये शासन-विधान में पुराने करार दिये गये। प्रान्तीय धारा-सभायें इन कर्मचारियों की टीका-टिप्पणी करने लगीं। राष्ट्रीय भावनाओं की वृद्धि के कारण भारतीय जनता पुरानी नौकरशाही की कड़ी आवाज नहीं सह सकती थी। १९२२ के राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण विदेशी कर्मचारियों की असुविधायें और भी बढ़ गईं। इधर लड़ाई के कारण इंगलैन्ड में चीजों का भाव बढ़ जाने से अँग्रेज उम्मीदवार भारतीय सिविल सर्विस के लिये कम लालायित होने लगे। इस उदासीनता को देखकर बृटिश सरकार बहुत ही चिन्तित हुई। वह किसी भी प्रकार से भारतीय सिविल सर्विस में अँग्रेजीपन को कम करने के पक्ष में न थी दूसरी ओर अँग्रेजी उम्मीदवार हिन्दोस्तान में पैर रखना खतरे से खाली नहीं समझते थे।

लार्ड मैकडानल की अध्यक्षता में एक कमीटी इस बात की जाँच के लये नियुक्त कि गई कि वह भारतीय सिविल सर्विस में अंगरेजी उम्मीदवारों की उदासीनता का कारण खोज निकाले। बृटिश सरकार इतने ही से सन्तुष्ट न हुई। १६२३ ई० में लार्ड ली की अध्यक्षता में एक दूसरा कमीशन नियुक्त किया गया। भारतीय लेजिस्लेटिव असेम्बली ने इस कमीशन का विरोध किया और इस पर एक पाई भी खर्च करने से इन्कार कर दिया। उसकी समझ में कमीशन बिलकुल बेकार था और इस पर खर्च करने की कोई जरूरत न थी। परन्तु वाइसराय ने अपने अधिकार से कमीशन के खर्चे की रकम भारतीय खजाने से मन्जूर की। १६४२ ई० में ली कमीशन ने अपनी रिपोर्ट दे दी। रिपोर्ट काफी विस्तार के साथ की गई थी और इसकी बहुत सी सिफ़ारिशों को भारत-सरकार ने स्वीकार कर लिया। पहली बात जिसकी कमीशन ने सिफारिश की वह यह थी कि भारतीय सिविल सर्विस भारतीय पुलीस सर्विस भारतीय जङ्गल सर्विस तथा सिंचाई विभाग की भारतीय इन्जीनियरिंग सर्विस भारतमन्त्री के हाथ में रक्खी जायँ। भारतीय शिक्षा सर्विस भारतीय कृषि सर्विस, भारतीय इन्जीनियरिङ्ग सर्विस, भारतीय पशु-चिकित्सा सर्विस तथा भारतीय औषधि सर्विस प्रान्तीय सरकार की मातहती में दे दी जायँ। इन कर्मचारियों को नियुक्त करने तथा हटाने का अधिकार केवल प्रान्तीय सरकार को हो।

ली कमीशन की दूसरी सिफारिश भारतीय सिविल सर्विस में हिन्दोस्तानियों को अधिक से अधिक संख्या में शरीक करने की थी। कमीशन की राय थी कि प्रान्तीय सिविल सर्विस के सभी पद भारतवासियों को दिये जायँ। उनके ऊपर किसी प्रकार के प्रतिबन्ध की आवश्यकता नहीं है। जहाँ तक अखिल भारतीय तथा केन्द्रीय सर्विस की बात थी उसमें कमीशन ने कुछ प्रतिशत हिन्दोस्तानियों के लिये निश्चित कर दिया। भारतीय सिविल सर्विस में बीस प्रतिशत स्थान हिन्दोस्तानियों के लिये निश्चित किये गये। कमीशन ने भारतीयकरण पर जोर देते हुये यह कहा कि १६३६ ई० तक भारतीय सिविल सर्विस और १६४६ तक भारतीय पुलीस सर्विस में हिन्दोस्तानी और अँगरेज दोनों की संख्या बराबर हो जानी चाहिये। कमीशन की राय में सिविल सर्विस में अंगरेज पदाधिकारियों का होना आवश्यक ठहराया गया। भारतीय जङ्गल सर्विस में ७५ फी सदी स्थान हिन्दुस्तानियों के लिये और २५ फी सदी अँगरेजों के लिये उचित ठहराये गये।

अँगरेज उम्मीदवारों को भारतीय सिविल सर्विस में आकर्षित करने के लिये कुछ सुविधाओं को सलाह दी गई। उन्हें कुछ आर्थिक भत्ते आदि की सिफारिश की गई। कमीशन का कहना था कि उनका वेतन बढ़ा दिया जाय तथा उनका कार्यकाल कुछ और सुरक्षित कर दिया जाय; अपने कार्यकाल में इंगलैंड आने-जाने के लिये चार बार छुट्टियाँ दी जायँ। उनकी पेन्शन बढ़ाने की भी सिफारिश की गई। यदि सिविल सर्विस का कोई अंगरेज पदाधिकारी हिन्दोस्तान में मर जाय तो उसके कुटुम्ब के लिये कुछ विशेष सुविधाओं की सिफारिश की गई थी। कमीशन की रिपोर्ट में अखिल भारतीय सिविल सर्विस की रक्षा के लिये एक पब्लिक सर्विस कमीशन की सिफारिश की गई।

१६१६ ई० के भारतीय ऐक्ट में इस बात का विधान बनाया गया कि पाँच सदस्यों का पब्लिक सर्विस कमीशन बनाया जाय। इसका सभापति भारतमंत्री द्वारा नियुक्त किया जाय। यह कमीशन सरकारी पदाधिकारियों को नियुक्त करने के लिये बनाया गया था। इसका कार्य-विधान बनाने का अधिकार भारतमंत्री और उसकी कौंसिल को दिया गया था। तदनुसार १६२५ ई० में पब्लिक सर्विस कमीशन की स्थापना की गई। प्रान्तीय धारा-सभा के ऐक्ट के अनुसार १६२६ ई० में मद्रास प्रान्त में भी एक पब्लिक सर्विस कमीशन स्थापित किया गया।

१६३५ का शासन-विधान और सरकारी नौकरियाँ

काँग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलनों कारण भारतीय जनता की दृष्टि बदलने लगी। सरकारी पदाधिकारी जनता के सेवक समझे जाने लगे। लोग इस बात की माँग पेश करने लगे कि भारत-सरकार के अन्दर छोटी और बड़ी सभी प्रकार की नौकरियाँ लोगों को इस दृष्टि से दी जायँ कि वे भारतीय जनता की अधिक-से-अधिक भलाई कर सकें। लम्बी-लम्बी तनखाहें लेकर बाबू बनने का युग पुराना ठहराया गया। लोगों का कहना था कि जब ये कर्मचारी भारतीय खजाने से अपना वेतन लेते हैं तो इनकी जिम्मेवारी भी हिन्दोस्तानियों के प्रति होनी चाहिये। इस बात की कड़े शब्दों में आलोचना की जाने लगी कि हमारे देश के बड़े-बड़े कर्मचारी भारतीय वातावरण से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। वे अपने आपको सेवक के बदले जनता का स्वामी समझते हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि जो प्रजा उनका भरण-पोषण करे और जिनकी गाढ़ी कमाई से वे लम्बी-लम्बी तनखाहें लें, उन्हीं के ऊपर वे धौंस जमायें। ये बातें लोगों के

दिमाग में बहुत जोरों के खटकने लगीं। प्रजातन्त्रवाद की स्थापना करने की घोषणा के कारण नौकरियों का मसला और भी जोर पकड़ने लगा। संघ-शासन-विधान के लिये जब साइमन कमीशन की नियुक्त की गई उस समय भारतीय नौकरियों का भी प्रश्न उसके सामने रक्खा गया था। कमीशन ने नौकरियों के भारतीयकरण के सम्बन्ध में उसी तरह की सिफारिश की जैसी ली कमीशन ने की थी। प्रत्येक प्रान्त में एक पब्लिक सर्विस कमीशन स्थापित करने की सिफारिश की गई थी।

संघ-शासन-विधान के अनुसार भारतीय नौकरियाँ दो भागों में विभाजित की गई हैं :—

१—रक्षा सम्बन्धी नौकरियाँ (Defence Services)

२—सिविल सर्विस।

सिविल सर्विस फिर तीन भागों में विभाजित की गई है :—

अ—वे अखिल भारतीय नौकरियाँ जो भारतमंत्री के हाथों में रक्खी गई थीं।

ब—संघ-शासन के अन्दर वे नौकरियाँ जो गवर्नर-जनरल के हाथों में रक्खी गई हैं।

स—प्रान्तीय नौकरियाँ जो गवर्नर के अधिकार में रक्खी गई हैं।

रक्षा सम्बन्धी नौकरियाँ

संघ-शासन-विधान में रक्षा का विषय सुरक्षित विभाग है। यह एकमात्र गवर्नर-जनरल के अधिकार में रक्खा गया है। भारतीय मंत्रियों का इस पर कोई अधिकार नहीं है। इसीलिये इस विभाग में कार्य करने वाले पदाधिकारियों की नियुक्ति के लिये कुछ विशेष नियम बनाये गये हैं। इस विभाग का सबसे बड़ा पदाधिकारी कमान्डर-इन-चीफ कहलाता है। इसका वेतन और भत्ता सब कुछ भारतमंत्री और उसकी कौंसिल के हाथ में रक्खे गये थे। इस विभाग के सभी बड़े कर्मचारी भारतमंत्री और उनकी कौंसिल द्वारा नियुक्त किये जाते थे। इससे सम्राट् के दैवी अधिकार पहले की तरह सुरक्षित रक्खे गये थे। फौजी मुहकमें के सभी बड़े कर्मचारी भारतीय खजाने से वेतन लेते हुये भी बृटिश सम्राट् के प्रति जिम्मेवार थे। यद्यपि सम्राट् को यह अधिकार रहा है कि वह संघ-मंत्रिमंडल को कुछ पदाधिकारियों को नियुक्त करने का अधिकार दे दे, किन्तु कार्य रूप में इसकी सम्भावना कम थी। हवाई, जहाजी और स्थल हर प्रकार की सेना के बड़े कर्मचारी भारत-मन्त्री के इशारे पर

काम करते रहे हैं अर्थात गवर्नर-जनरल द्वारा वह इन कर्मचारियों पर अधिकार रखता था।

फौजी मुहकमें में कुछ भारत-निवासियों को भी बड़े-बड़े पद दिये जाते थे। इसके लिये गवनर-जनरल भारतीय मन्त्रियों की सलाह से कार्य करता था। इस विभाग के अन्दर कार्य करने वाले किसी कर्मचारी को यदि किसी तरह की फरियाद करनी होती तो वह सीधे भारतमन्त्री से कर सकता था। भारत-सरकार की फौज बृटिश सम्राट् की सेना समझी जाती थी। फौज का पूरा खर्च भारतीय संघ सरकार सहन करती थी। परन्तु संघ-धारा-सभा का इस खर्च में कोई हाथ न था। वह इस विभाग के किसी कर्मचारी के वेतन आदि पर विचार नहीं कर सकती थी। गवर्नर-जनरल अपने विशेष अधिकारों से इस विभाग की कार्रवाइयों को देखता था। तात्पर्य यह है कि जो विभाग हिन्दोस्तान की रक्षा के लिये बनाया गया था, और जिस पर प्रजा का सबसे अधिक धन खर्च किया जाता था वही जनता के हाथ से एकदम बाहर रक्खा गया था। इस विभाग की थोड़ी-बहुत नौकरियाँ, जो चन्द हिन्दोस्तानियों को दी जाती थीं। दाल में नमक के बराबर रही हैं। मालूम नहीं क्यों जहाँ अन्य विभागों में भारतीयकरण की नीति बर्ती गई थी वहाँ यह विभाग अपवाद में रक्खा गया था।

सिविल सर्विस

किसी देश के शासन-प्रबन्ध में सिविल सर्विस के कर्मचारियों का क्या महत्व है इसका वर्णन इस अध्याय के आरम्भ में ही किया गया है। उसे सामने रखते हुये यह भली भाँति स्पष्ट है कि इस विभाग के कर्मचारियों को नियुक्त करने और उन्हें हटाने की व्यवस्था बहुत ही ठीक होनी चाहिये। इनका कार्य-क्रम और वेतन आदि निश्चित करने का अधिकार भारतीय प्रतिनिधियों को मिलना चाहिए। संघ-शासन-विधान में इनका कर्तव्य पहले से कहीं अधिक बढ़ा दिया गया था। सिविल सर्विस के कुछ सदस्य भारत-मन्त्री द्वारा नियुक्त किये जाते थे। इन्डियन सिविल सर्विस, इन्डियन औषधि सर्विस तथा इन्डियन पुलीस सर्विस—इस प्रकार के कर्मचारियों को नियुक्त करने का अधिकार भारतमन्त्री को था। वह बृटिश पब्लिक सर्विस कमीशन तथा फेडरल पब्लिक सर्विस कमीशन की सिफ़ारिश से इन्हें नियुक्त करता था। ये दोनों कमीशन उम्मीदवारों की परीक्षा लेकर तथा उचित व्यक्तियों को चुनकर भारतमन्त्री के पास भेज देते थे। १९३६ ई० के इन्डियन सिविल सर्विस में अँगरेज सदस्यों

की नियुक्ति नामजदगी द्वारा इस शर्त पर होती रही है कि वे किसी बृटिश यूनिवर्सिटी की आनर्स परीक्षा पास हों। सिविल सर्विस के जिन कर्मचारियों को नियुक्त करने का अधिकार भारत-मन्त्री को दिया गया था उसकी संख्या वह अपनी इच्छानुसार घटा-बढ़ा सकता था। इसका पूरा ब्यौरा वह कामन सभा के सामने प्रति वर्ष पेश करता था। इस तरह की नई जगहों की आवश्यकता पड़ने पर गवर्नर-जनरल का यह पहला कर्त्तव्य था कि वह भारत-मन्त्री को तुरंत सूचना दे दे।

भारत-मन्त्री के इस अधिकार की कड़े शब्दों में आलोचना की गई थी। हिन्दोस्तान के किसी भी वर्ग को यह बात पसन्द न थी कि किसी भारतीय सरकारी कर्मचारी को उसे नियुक्त करने का अधिकार दिया जाय। यह बात प्रजातन्त्रवाद के बिलकुल विरुद्ध ठहराई गई। इसके बदले यह वसूल बनाया जा सकता था कि अखिल भारतीय पदाधिकारियों को नियुक्त करने का अधिकार भारत-सरकार को दिया जाय; और छोटे और बड़े सभी कर्मचारी प्रान्तीय सरकार द्वारा नियुक्त किये जायँ। कोई भी विदेशी हमारी आवश्यकताओं को उतना नहीं समझ सकता जितना हम स्वयं समझ सकते हैं। संघ-शासन-विधान में अन्य त्रुटियों की सूची में इसे भी शामिल किया गया था।

सिविल सर्विस* के अन्य कर्मचारियों को नियुक्त करने का अधिकार संघ तथा प्रान्तीय सरकारों को दिया गया है। अखिल भारतीय सिविल सर्विस के सदस्यों की नियुक्ति, उनका वेतन तथा कार्य-काल आदि निश्चित करने का अधिकार गवर्नर-जनरल को दिया गया है। इसी प्रकार प्रान्तीय सिविल सर्विस के कर्मचारी गवर्नरों के संरक्षण में रक्खे गये हैं। इन पदाधिकारियों को जो व्यक्ति नियुक्त करेंगे उन्हें छोड़कर किसी और को इन्हें हटाने का अधिकार नहीं है। धारा सभायें इनके वेतन आदि में हाथ नहीं डाल सकतीं। एक निश्चित सीमा के अन्दर इन्हें अपने मातहत कर्मचारियों की टीका-टिप्पणी करने का अधिकार जरूर दिया गया है, परन्तु यदि इन कर्मचारियों के कामों में किसी तरह की अड़चन डाली जाय तो इन्हें अधिकार है कि वे गवर्नर तथा गवर्नर-जनरल से सीधे फरियाद कर सकें। यदि इन पर किसी तरह का मुकदमा चलाया जाय या इनके विरुद्ध कोई कार्रवाई की जाय तो वे गवर्नर और गवर्नर-जनरल से अपनी रक्षा करा सकते हैं।

---

*अब इन्डियन सिविल सर्विस का नाम इन्डियन ऐडमिनिसट्रेटिव सर्विस (I. A. S.) रक्खा गया है।

१६२४ ई० में जब ली कमीशन ने अपनी रिपोर्ट दी तो उसमें यह बात भली भाँति स्पष्ट की गई थी कि भारतीय सिविल सर्विस में भारतीयकरण इस प्रकार किया जाय कि १६३६ ई० तक इसमें आधे हिन्दोस्तानी और आधे अँगरेज हो जायँ। भारतीय उम्मीदवार हिन्दोस्तान और इङ्गलैंड दोनों जगहों से सिविल सर्विस में आते रहें। परिणाम यह हुआ कि इन्डियन सिविल सर्विस में अँगरेज कर्मचारियों की संख्या घटने लगी। इसी कमी को पूरा करने के लिये यह विधान बनाया गया कि भारत मन्त्री कुछ व्यक्तियों को बिना परीक्षा के ही इन्डियन सिविल सर्विस में नामजद कर सकता है। इतने से भी भारतीय उम्मीदवारों की संख्या कम न हुई और वे लन्दन में जाकर मुकाबिले के इम्तहान में सिविल सर्विस के पद को प्राप्त करते रहे। इसे रोकने के लिये जो नियम बनाये गये उनसे भारतीय उम्मीदवारों की संख्या कम होती गई। जो विद्यार्थी बृटिश युनीवर्सिटी की आनर्स परीक्षा पास हों वे ही लन्दन में इन्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठ सकते थे। यह नियम भारतीय दृष्टि से बहुत ही असंगत था। किसी देश के शिक्षित नवयुवकों को सरकारी विभाग द्वारा अपने देश की सेवा करने का अवसर न देना घोर अन्याय नहीं तो और क्या था।

संघ-शासन-विधान में पब्लिक सर्विस कमीशन की स्थापना का नियम बनाया गया है। अखिल भारतीय नौकर संघ पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा और प्रान्तीय विभाग के सरकारी कर्मचारी प्रान्तीय पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। संघ-पब्लिक सर्विस कमीशन के अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्त में एक पब्लिक सर्विस कमीशन बनाया गया है। पहले की स्थापना गवर्नर-जनरल द्वारा और दूसरे को गवर्नर द्वारा की गई है। ये दोनों पदाधिकारी अपने विशेष अधिकार से इनके सदस्यों को नियुक्त करते हैं। इनकी संख्या, वेतन कार्यपद्धति तथा काल आदि निश्चित करने का एकमात्र अधिकार उन्हीं को दिया गया है। कमीशन के सदस्यों में कम-से-कम आधे व्यक्ति ऐसे होने चाहिये जो १० या १० से अधिक साल तक सम्राट् की मातहती में हिन्दोस्तान में नौकरी कर चुके हों। धारा-सभायें इनके खर्च पर विचार नहीं कर सकतीं। यह भी विधान बनाया गया है कि यदि दो प्रान्त चाहें तो एक ही पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा काम चला सकते हैं। संघ तथा प्रान्तों में इन कमीशनों की स्थापना कर दी गई है। बम्बई और सिन्ध-

प्रान्त के लिये एक ही पब्लिक सर्विस कमीशन रहा है, जो पाकिस्तान के बाद बदल दिया गया।

सिविल सर्विस के कर्मचारी इन्हीं पब्लिक सर्विस कमीशनों द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। ये कमीशन परीक्षाओं तथा मौखिक चुनाव द्वारा उम्मेदवारों को चुनते हैं। कमीशन की यह योजना अत्यन्त सराहनीय है। लेकिन इनकी बनावट में कुछ ऐसी कमी है जिससे ये अपने उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकते। अच्छा होता कि इन्हें भारतीय मन्त्रियों की मातहती में रक्खा जाता। प्रजा के प्रतिनिधि इस बात को अच्छी तरह समझ सकते हैं कि देश में किस प्रकार के कर्मचारियों की आवश्यकता है। उनके अन्दर कौन-कौन से गुण होने चाहिये। गवर्नर और गवर्नर-जनरल को इतना ज्ञान नहीं हो सकता। उनकी दृष्टि तो दिमागी लोगों पर जायेगी अथवा धनी मानी लोगों की रक्षा पर। यही कारण है कि हमारे देश की सिविल सर्विस में बहुत कम ऐसे पदाधिकारी मिलेंगे जो राष्ट्र की आवश्यकताओं को महसूस कर अपनी पूरी ताकत उनमें लगायें।

सरकारी नौकरियों में सुधार

हमारे देश की सरकारी नौकरियों में कुछ ऐसी कमजोरियाँ हैं जिन्हें दूर किये बगैर हमारा राजनीतिक वातावरण साफ नहीं हो सकता। पहिले हम पाठकों का ध्यान उन चन्द बातों की ओर दिलाना चाहते हैं जिन्हें जाने बिना सुधार की योजना समझ में नहीं आ सकती। यह तो सभी जानते हैं कि हिन्दोस्तान दुनियाँ के सबसे गरीब देशों में है। यहाँ के निवसियों की गरीबी इतनी भयंकर है कि लाखों आदमियों को एक समय भी भरपेट खाना नहीं मिलता। ऐसी दशा में कोई भी सरकार आँख मूँद कर अपने कर्मचारियों को मिट्टी की तरह चाँदी नहीं बांट सकती। लेकिन हमारे देश में ऐसा ही हो रहा है। बड़े-बड़े सरकारी कर्मचारियों को इतनी लम्बी लम्बी तनखाहें दी जाती हैं कि दुनिया के धनी-से-धनी मुल्क उसका मुकाबिला नहीं कर सकते। जितना वेतन हमारे यहाँ गवर्नर-जनरल को दिया जाता रहा है उतना संसार के सबसे धनी देश संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रेसीडेन्ट तथा सबसे बड़े साम्राज्य (बृटिश साम्राज्य) के प्रधान मन्त्री को भी नहीं दिया जाता। सरकारी विभाग के बड़े-बड़े कर्मचारी इतनी तनखाहें पाते हैं कि मुल्क की गरीबी को सामने रखते हुये फजूलखर्ची की कोई दूसरी मिसाल दिखाई नहीं पड़ती। इसलिये सरकारी नौकरियों में पहला सुधार पैसे का होना चाहिये। कांग्रेस ने ५०० रुपये महिने

का जो नियम बनाया है वह बिलकुल ठीक है। हमारे देश की वर्तमान परिस्थिति में किसी भी कर्मचारी को ५०० रुपये से अधिक वेतन नहीं मिलना चाहिये। वर्तमान असाधारण महँगी के कारण राष्ट्रीय सरकार इस माप दण्ड को पार कर गई है, परन्तु उसका दृष्टिकोण लोकहित से विचलित नहीं है।

सरकारी नौकरियों की दूसरी कमी विदेशीपन है। इस राष्ट्रीय उद्गार के युग में भी बड़े-बड़े पदों पर अँग्रेज और ईसाई दिखाई पड़ते रहे हैं। मालूम पड़ता है मानो बड़ी-बड़ी नौकरियाँ उनके लिये हमेशा के लिए सुरक्षित कर दी गई थीं। बड़े-बड़े शहरों में जो पोर्ट विभाग की नौकरियाँ हैं उनमें हिसाब लगाने से पता चलता है कि १००० और २००० रुपये मासिक की नौकरियों में हर १०४ आदमी में केवल १२ हिन्दोस्तानी रहे हैं। बाकी स्थान अँग्रेज को दिये गये थे। २००० रुपये से ऊपर पाने वाले कर्मचारियों में केवल एक प्रतिशत हिन्दोस्तानी थे। इसी तरह फौज, जंगल तथा कुछ अन्य विभागों में भी अधिक-से-अधिक कर्मचारी अँग्रेज दिखाई पड़ते थे। सूबों के गवर्नर लगभग सभी अँग्रेज होते थे। मुश्किल से १० प्रतिशत कलेक्टर हिन्दोस्तानी दिखाई पड़ते थे। भारत-सरकार के अन्दर गवर्नर-जनरल के सलाहकार आदि अधिकतर अँग्रेज होते थे। इन विदेशी कर्मचारियों से दोहरी हानि उठानी पड़ती थी। एक तो हमारे देश के योग्य से योग्य व्यक्ति बेकार रहते थे, दूसरे विदेशी कर्मचारी अपनी सारी आमदनी अपने देश में खर्च करते थे। जब तक वे हिन्दोस्तान में रहते थे तब तक अधिक-से-अधिक पैसे बचाकर अपने देश को भेजते थे। पेंशन हो जाने पर उनकी तनख्वाह की एक पाई भी हमारे देश में नहीं खर्च होती थी। यदि मुगल-राज्य में कर्मचारियों का वेतन लम्बा था तो वह सब कुछ अपने ही देश में खर्च किया जाता था। अरब और फारस में उसे भेजने की इजाजत न थी। परन्तु गत वर्ष तक जो प्रतिवर्ष पेंशन की एक लम्बी रकम इङ्गलैंड को भेजी जाती रही है वह हमारे ऊपर मानों सदियों का ऋण लदा हुआ था। अतएव नौकरियों में दूसरा सुधार भारतीयकरण का होना चाहिये। हर विभागों में सभी कर्मचारी हिन्दोस्तानी रक्खे जायँ। राष्ट्रीय सरकार इस दिशा में प्रयत्नशील है। अँग्रेज कर्मचारी अपने देश को जाने लगे हैं। प्रान्तों के गवर्नर तथा गवर्नर-जनरल अब भारतीय हैं।

धन और संख्या से बढ़कर हमें एक और भी सुधार करना चाहिये।

आजकल के बड़े-बड़े कर्मचारी अपने आपको जनता का स्वामी समझते हैं। उन दिलों में प्रजा के प्रति कोई सहानुभूति नहीं होती। थोड़े से धनी मानी लोगों से परिचय प्राप्त कर लेने तथा दावतों और क्लबों में शरीक होने के अलावे वे गरीबों से मिलने में अपनी मानहानि समझते हैं। अपने भाइयों के बीच में रहते हुए भी उनकी रहन-सहन विदेशी होती है। दुखिये और संकटग्रस्त लोग उनके बँगलों के अन्दर कदम नहीं रख सकते। एक समय वह था जब कि अशोक ने अपने राज्य में इस बात का एलान कर रक्खा था कि शौचालय तक में उसे राज्य की खबर को जा सकती थी, और हर समय कोई भी आदमी उससे मिल सकता था। जहाँगीर ने अपने दरबार में एक सोने की जंजीर बाँध रक्खी थी, जिसे कोई भी खींचकर बादशाह से मिल सकता था। परन्तु आज वह दिन सामने दिखाई पड़ता है जब कि कलेक्टर और कमिश्नर के बँगलों के अन्दर साधारण आदमियों को जाने की इजाजत नहीं मिलती।* गवर्नर और वाइसराय की तो बात ही और है। इसकी वजह समय की कमी नहीं, बल्कि दिल की कमी है। कर्मचारियों को अब तक इस बात का हौसला नहीं रहा है कि वे दीन-दुखियों की फरियाद सुनें और उन्हें दूर करने की कोशिश करें। जिस में हिन्दोस्तानियों के दिन कट रहे हैं उनमें बड़ी-बड़ी दावतों और परिस्थिति नफासत की गुंजाइश कम है। इसलिये कर्मचारियों को एक ऐसी ट्रेनिंग की जरूरत है जिसमें उनके अन्दर देश के गरीबों और दुखियों की कहानी कूट-कूट कर बैठा दी जाय ताकि वे अपने भाइयों की असली हालत से मुँह न मोड़ें। उनकी ट्रेनिंग एक सच्चे सेवक बनने की होनी चाहिये।

इन सभी सुधारों के बावजूद यदि हमारे बड़े-बड़े सरकारी कर्मचारी जनता के प्रतिनिधियों के अधिकार से बाहर रहें तो इनसे भलाई की आशा बहुत कम करनी चाहिये। यह सीधी सी बात है कि जो जिसका नमक खाये वह उसकी शरीयत दे। भारत-सरकार के अन्दर सभी कर्मचारियों का वेतन भारतीय खजाने से दिया जाता है। यही हालत प्रांतीय नौकरियों की भी है। यह सारा धन प्रजा का है। इसलिये प्रजा को यह अधिकार

---

* राष्ट्रीय सरकार ने यह आज्ञा जारी किया है कि सरकारी कर्मचारी अपने आपको सेवक समझें और सबके साथ नम्रता का व्यवहार करें।

होना चाहिये कि वह अपने कर्मचारियों को स्वयं नियुक्त करे और जब चाहे निकाल सके। अर्थात् सभी सरकारी कर्मचारियों को धारा-सभा की मातहती में रहना चाहिये। भारत-मन्त्री, गवर्नर-जनरल तथा गवर्नर के विशेषाधिकारों से जो कर्मचारी नियुक्त किये जाते रहे हैं वे प्रजा के हितैषी क्योंकर हो सकते हैं। उनकी नौकरी की शर्तें उन्हीं के हाथों में रक्खी गई थी, उनकी जिम्मेवारी भी उन्हीं के प्रति थी। इस तरह की व्यवस्था से एक जिम्मेवार शासन की स्थापना नहीं हो सकती। सभी कर्मचारियों को नियुक्त करने और उन्हें निकालने का अधिकार धारा-सभा को मिलना चाहिये। तभी वह प्रजा की आवश्यकतानुसार उनसे काम लेने में समर्थ होगी।

——

अध्याय १६

शिक्षा

मनुष्य अपने जीवन को अधिक-से-अधिक सुखमय बनाने की चिन्ता में निमग्न रहता है। इसके लिये वह समाज को अपना साधन बनाता है। उससे अलग होकर वह सांसारिक सुख का अनुभव नहीं कर सकता। जब यही आवश्यकता सम्पूर्ण समाज की है तो उसके कार्यों तथा विचारों में एक प्रकार की समता लानी होगी। इसी के आधार पर मानव-समाज एकत्र होकर अपने सुख-दुःख का अनुभव कर सकता है। इसी उद्देश्य से जो वस्तु सम्पूर्ण समाज को एक सूत्र में बाँधती है उसे शिक्षा कहते हैं। हम कुत्ते, बिल्ली तथा चिड़ियों आदि की विचार-धारा से परिचित न होकर उनके सुख-दुःख का अनुभव नहीं कर सकते। उनकी उन्नति-अवनति की प्रगति हमारी बुद्धि से बाहर की चीज है। यदि हमारे और उनके बीच में विचारों के आदान प्रदान का कोई साधन होता तो मानव-समाज से बृहत् एक प्राणी समाज की स्थापना हुई होती। शिक्षा के कारण मनुष्य अपने आपको मानव-समाज का एक अंग समझता है। समाज में रहने तथा लोगों के साथ व्यवहार करने की सामग्री उसे प्रचलित शिक्षा से प्राप्त होती है। अपनी उन्नति के साथ वह समाज की प्रगति को जानने में अपने को समर्थ पाता है। शिक्षा उसकी मस्तिष्क शक्ति को इतनी व्यापक बना देती है जिससे एकान्त में बैठे हुए भी वह मानव-समाज को देखता है। शिक्षित मनुष्य के नेत्र दूर तक देखते हैं; उसके कान उड़ते हुए शब्दों को भी सुनते हैं और उसकी बुद्धि अदृश्य पर भी विचार कर सकती है।

शिक्षा की आवश्यकता

शिक्षा मनुष्य के जीवन को सफल बनाने की एक कुंजी है। डेविडसन लिखता है, "शिक्षा द्वारा मनुष्य अपने अन्दर एक ऐसे संसार की रचना करता है जो उसे वाह्य संसार में रहने के योग्य बनाता है।"* शिक्षा द्वारा मनुष्य की आन्तरिक शक्तियाँ बाह्य जगत को भली भाँति पहिचानने लगती हैं। समय प्रतिक्षण बदलता रहता है। जिसे इसका ज्ञान न होगा और जो समयानुकूल अपने विचारों को बनाने में समर्थ न होगा वह दुःख और कठिनाइयों के जाल से नहीं निकल सकता।

---

*Education consists in building up an inner world that fits into the outer world.

शिक्षा समय के परिवर्तन का ठीक-ठीक ज्ञान कराती है। किस समय हमें कैसे विचार रखने चाहिये, किन चीजों को प्राचीन समझ कर छोड़ देना चाहिये तथा किन पुरातन वस्तुओं को पुनः अपनाना चाहिये—इन सब का ज्ञान प्रचलित काल की शिक्षा द्वारा होता है। विचारों में पीछे रह कर जैसे कोई व्यक्ति अपनी और समाज किसी की भी भलाई नहीं कर सकता, उसी तरह कोई राष्ट्र अशिक्षित तथा कूपमंडूक रह कर दुनिया के सामने अपना सिर ऊँचा नहीं कर सकता। जो देश अपने आपको उन्नत करना चाहता है वह उचित शिक्षा को ग्रहण करे। मनुष्य स्वभाव से ही रूढ़िवादी है। जिन वस्तुओं को वह एक बार ग्रहण करता है उन्हें वह छोड़ नहीं सकता। शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जो उसे प्रतिक्षण नवीनताओं का पाठ पढ़ाती रहती है। यह एक साधारण कहावत है कि "जिस जाति को जैसा बनाना है उसे उसी प्रकार की शिक्षा दी जाय।"

शिक्षा द्वारा मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को भली भाँति पहचान सकता है। इसी से स्वावलम्बन तथा स्वाभिमान की उत्पत्ति होती है। उसके अन्दर एक ऐसी शक्ति पैदा होती है जो उसके जीवन को आगे बढ़ाती है। जिस युग में हम रहते हैं उसे समझने के लिये भूत और भविष्य को थोड़ी जानकारी आवश्यक है। शिक्षा द्वारा हम अपने आपको पहिचान सकते हैं कि सृष्टि के आरम्भ से हम कितनी दूर पर खड़े हैं। शरीर को सुडौल बनाने के लिये व्यायाम की आवश्यकता पड़ती है। हमारे मस्तिष्क में कुछ ऐसी शक्तियाँ मौजूद हैं जिनका विकास शारीरिक अवयवों से कम आवश्यक नहीं है। बाह्य पदार्थ हमें जितना सुख और आनन्द दे सकते हैं उससे कहीं बढ़कर सुख हमारे आन्तरिक विचार देते हैं। इन आन्तरिक शक्तियों को बढ़ाने का एक मात्र साधन शिक्षा है। आत्मबल के सामने शारीरिक बल एक तुच्छ सी चीज है। अतएव हमारा ध्यान आन्तरिक विकास की ओर सबसे अधिक होना चाहिये। जीवन के आरम्भ में हमें जिस प्रकार की ट्रेनिंग मिलेगी उसी प्रकार के कार्य हम करते रहेंगे। इसीलिये शिक्षा में सबसे अधिक छानबीन की आवश्यकता है।

उचित शिक्षा

जिस शिक्षा में इतने अधिक गुण हैं जिसे हमारी उन्नति-अवनति का मापदड होने का श्रय प्राप्त है उसकी बुराई से हमें बचना होगा। जिस प्रकार शरीर पर जलवायु का प्रभाव पड़ता है। और हमारी सारी रहन-सहन

अपनी भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार बन जाती है, उसी प्रकार शिक्षा का प्रभाव हमारे जीवन पर बहुत ही गहरा पड़ता है। उल्टी और बुरी शिक्षा किसी देश को अवनति के गढ्ढे में डाल सकती है। इसके विपरीत आवश्यकता और अनुभव के आधार पर बनाई गई शिक्षा किसी पिछड़े हुए देश को उन्नतिशील बना सकती है। यह कहना असम्भव है कि उचित शिक्षा का ठीक-ठीक स्वरूप क्या है। प्रत्येक देश या समाज को विभिन्न प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता होती है। एक ही समाज में व्यक्तियों की आवश्यकतायें भिन्न-भिन्न होती हैं। सबके विचार अलग-अलग होते हैं। इसी के अनुसार उचित शिक्षा का निर्माण किया जा सकता है। एक ही शिक्षा किसी समय उचित और किसी समय अनुचित हो सकती है। जैसे-जैसे हमारा विकास होता है उसी प्रकार शिक्षा में भी परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है।

उचित शिक्षा का स्वरूप निश्चित करने में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं। हमें यह मालूम नहीं कि किन-किन घटनाओं का प्रभाव हमारे जीवन पर किस प्रकार पड़ेगा, किस प्रकार की परिस्थिति का मुकाबिला हमें समय-समय पर करना होगा। हो सकता है कि किसी असाधारण परिस्थिति में पड़कर हमारे देशवासी काहिल और निरुद्यमी हो जायँ और उनके अन्दर आशा और उत्साह लेशमात्र भी बाकी न रहे। उस अवसर पर हमारी शिक्षा का ढाँचा आजकल से भिन्न होगा। वर्तमान समय में हमारे देश की शिक्षा कोरी किताबी है। इसे प्राप्त कर लोगों के अन्दर रचनात्मक बुद्धि का विकास नहीं होता। देश के शिक्षित नवयुवक तथा नवयुवतियाँ बेकारी का शिकार बनती हैं। इसीलिये वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर टिप्पणियों के बौछार उड़ाये जाते हैं। यह बात सर्वसम्मति से मान ली गई है कि हिन्दोस्तान की मौजूदा शिक्षा-प्रणाली समय के अनुकूल नहीं है। इस समय हमारे देश को एक ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो हमारे हाथों को चलता कर दे अर्थात् हमारी बुद्धि किताबी न होकर व्यावसायिक और रचनात्मक हो। उचित शिक्षा वह है जो व्यक्ति की सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करे। एकाङ्गी शिक्षा उचित शिक्षा नहीं कही जा सकती।

उचित शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को किसी और पर निर्भर करने की

आवश्यकता नहीं है। जो शिक्षा समाज की आवश्यकताओं से परे होती है वह नवयुवकों के अन्दर एक प्रकार का विकार पैदा करती है। जब शिक्षा का तात्पर्य समाज को सुखी और सम्पन्न बनाना है तो इसका विधान समय और परिस्थिति के अनुकूल होना चाहिये। उचित शिक्षा समयानुकूल बदलती रहती है। बाह्य तथा आन्तरिक कारणों से कभी-कभी सामाजिक संगठन ढीला पड़ जाता है। उसे ठीक रास्ते पर लाने के लिये शिक्षा की प्रणाली बदलनी पड़ती है। उचित शिक्षा प्रतिबन्धों से रहित होती है। जो शिक्षा केवल थोड़े से लोगों के लिये ग्राह्य है उसकी उपयोगिता उतनी नहीं है जितनी उस शिक्षा की जिसका दरवाजा छोटे और बड़े सब के लिये एक-सा खुला हुआ है। उदाहरण के लिये हम अँगरेजी शिक्षा की ओर नजर उठाकर देखें। यह शिक्षा केवल थोड़े से धनीमानी लोगों के लिये किसी विशेष उद्देश्य से बनाई गई है। इसके वर्तमान ढाँचे को देखते हुये यह निश्चित है कि ६० प्रतिशत हिन्दोस्तानी इसको ग्रहण नहीं कर सकते। अतएव यह शिक्षा-प्रणाली उचित नहीं कही जा सकती। जो शिक्षा सब को इस बात का अवसर दे कि वे इसे प्राप्त कर अपने जीवन की समस्याओं का हल करें वही उचित शिक्षा कहलाने की अधिकारिणी है। जब हम किसी देश की समस्याओं को विकट देखें और उन्हें सुलझाने का कोई मार्ग दिखलाई न पड़े तो इसका निष्कर्ष यही निकाला जा सकता है कि वहाँ उचित शिक्षा का अभाव है। जीवन के प्रश्न बड़े ही गम्भीर होते हैं। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि किसी वस्तु से और किन तरीकों से हमारा जीवन सुखी बन सकता है। इस प्रश्न को सुलझाने में शिक्षा सबसे अधिक सहायक होती है। परन्तु उसका आकार बहुत ही अनुभव के साथ बनना चाहिये। शुभमूर्ति सरोजनी नायडू ने केन्द्रीय शिक्षा बोर्ड में भाषण देते हुये यह व्यक्त किया था कि "कोई भी शिक्षा नीति हम क्यों न कार्यान्वित करें, किन्तु उसमें सत्य की दृढ़ता और घृणा-निवारण पर सबसे अधिक बल दिया जाय।"

भारत में शिक्षा का इतिहास

हमारे देश में शिक्षा के इतिहास को देखते हुये यह पता चलता है कि इसमें परिवर्तनों की कोई गणना नहीं की जा सकती। एक ऐसा भी समय था जब कि यहाँ की शिक्षा बहुत ही बढ़ी-चढ़ी थी, उसका दरवाजा सबके लिये खुला हुआ था। राजा-

महाराजा विद्वानों का आदर करते थे; शिक्षित वर्ग अपने आपको समाज का सेवक समझता था। परन्तु एक ऐसा भी समय आया जब पुस्तकालय जलाये गये; पुरानी पाठशालाओं का नामनिशान जाता रहा। किसी समय हमारे देश का एक-एक घर स्कूल था, प्रत्येक मन्दिर तथा मसजिद शिक्षा के केन्द्र थे, लेकिन आज वह दिन भी हमें देखने पड़ रहे हैं जब कि हमारे देश में केवल दस प्रतिशत आदमी लिख पढ़ सकते हैं। कभी तो हमारी शिक्षा धर्म से मिली हुई थी और कभी उससे अलग। कभी हमारे देश के शिक्षित व्यक्ति समाज के सेवक रहे और कभी उन्हीं के व्यसन से आम जनता को तकलीफें उठानी पड़ीं। कभी शिक्षित व्यक्तियों का आचरण आदर्श माना जाता था और समाज में उन्हें हर तरह की सुविधायें प्राप्त थीं, लेकिन एक ऐसा भी दिन आया जब पढ़े लिखे लोग चरित्रहीन, निरुद्यमी और भार-स्वरूप समझे जाने लगे। किसी समय हमारे देश के पढ़े-लिखे लोगों को भारतीय सभ्यता पर नाज था लेकिन आज वह दिन भी हमें देखने पड़ते हैं जब कि शिक्षित वर्ग अपनी सभ्यता की जड़ अपने ही हाथों से काट रहा है। किसी समय ऋषि-महर्षियों के आश्रम विद्या के केन्द्र कहलाते थे और किसी समय कालेज और विश्वविद्यालयों की बड़ी-बड़ी आलीशान इमारतें बनवाई गईं। इतना परिवर्तन किसी सभ्य देश के इतिहास में शायद ही मिलेगा।

प्राचीन भारत में शिक्षा

जिस हिन्दोस्तान की चर्चा विदेशों में की जाती है उसका नकशा आजकल से भिन्न है। यहाँ की सभ्यता की प्रशंसा विदेशियों ने मुक्तकंठ से की है। यह तो सभी जानते हैं कि किसी देश को सभ्य बनाने का मूल कारण वहाँ की शिक्षा है। हिन्दूकाल की शिक्षा प्रणाली में कुछ ऐसी विशेषतायें पाई जाती हैं जो दुनिया के किसी भी देश में दिखाई नहीं पड़तीं। व्यक्ति का संपूर्ण जीवन चार भागों में बाँट दिया गया था। आरम्भ के पहले २५ वर्ष केवल शिक्षा प्राप्त करने के लिये रक्खे गये थे। ६ वर्ष की आयु में ही माता-पिता बच्चे को किसी गुरु के पास छोड़ देते थे। गुरु का स्थान ही गुरुकुल कहलता था। यह प्रणाली ब्राह्मणकाल में प्रचलित थी। २५ वर्ष की आयु तक बच्चे को गुरु के पास रहकर शिक्षा-प्राप्त करनी पड़ती थी। बौद्धकाल में इसका स्वरूप कुछ बदल गया। शिक्षा के लिये बड़े-बड़े केन्द्र स्थापित किये गये। इन्हें विहार अथवा महाविहार

कहते थे। इसमें किसी विशेष आयु तक लोग शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। प्रयाग में भारद्वाज ऋषि का आश्रम आज कल के किसी विश्व-विद्यालय से कम न था। विहारों में गुरु के अतिरिक्त शिक्षित सन्यासी भी रहते थे। वे घूम घूम कर आस-पास के गाँवों में लोगों को शिक्षा देते थे। नालन्द महाविहार में १०,००० विद्यार्थी निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करते थे। उपरोक्त दोनों प्रणालियों में विद्यार्थी की रहन-सहन पर कड़ी दृष्टि रक्खी जाती थी।

हिन्दूकाल की शिक्षा उपयोगी और सार्थक समझी जाती थी। आजकल की तरह वह विलासिता की सामग्री न थी। चारों वर्णों को उनकी आवश्यकतानुसार शिक्षा दी जाती थी। इससे समाज के धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संगठन में सदैव एकता रहती थी। जो व्यक्ति जिसके लिये सबसे अधिक उपयुक्त होता वह उसी प्रकार की शिक्षा का भागी समझा जाता था। शिक्षालयों में धनी और गरीब का कोई भेद-भाव नहीं किया जाता था। कृष्ण और सुदामा की कहानी सबको ज्ञात है। विद्यार्थियों के खान-पान, व्यवहार तथा वेष-भूषा की समानता का भी ध्यान रक्खा जाता था। जीवन के आरम्भ में विद्यार्थियों को एक ऐसी सख्त ट्रेनिंग दे दी जाती थी जिसे प्राप्त कर वे किसी भी परिस्थिति में अपने आपको रख सकते थे। लड़कियों की शिक्षा लड़कों से भिन्न होती थी। दोनों की आवश्यकतानुसार उनके विषय भिन्न-भिन्न होते थे। लड़कों की शिक्षा का उद्देश्य उचित नागरिक बनाना था और लड़कियों को सुगृहिणी। इन दोनों की शिक्षा साथ-साथ नहीं होती थी। इन दोनों के स्कूल अलग-अलग होते थे। शिक्षाकाल में जीवन की शुद्धता पर अधिक ध्यान दिया जाता था। इसीलिये विद्यार्थियों को बार-बार घर आने की आज्ञा न थी। किसी विशेष अवसर पर वर्ष में एक बार वे किसी गुरु की अध्यक्षता में अपने घर जा सकते थे। गुरु और शिष्य के व्यवहार आजकल के-से न थे।

प्राचीन शिक्षा एकाङ्गी न थी। साहित्य, न्याय, धर्म, दर्शन, राजनीति इत्यादि विषयों के अतिरिक्त विद्यार्थियों को कलाकौशल का भी ज्ञान कराया जाता था। संगीत, पच्चीकारी और वास्तुकला में कितने ही विद्यार्थी इतने कुशल होते थे कि उनकी कीर्तियाँ अभी तक ऐतिहासिक स्थानों में पाई जाती हैं। अजन्ता की गुफा में जो चित्रकारी दिखाई पड़ती है वह उस काल की शिक्षा का प्रमाण है। तात्पर्य यह है कि शिक्षा का निर्माण समाज की आवश्यकताओं के आधार पर किया गया

था। दैनिक आवश्यकताओं के सभी विषय विद्यार्थियों को सिखला दिये जाते थे। शिक्षालयों से निकल कर वे स्वावलम्बी जीवन व्यतीत कर सकते थे। कुछ विद्यार्थी विद्यामें इतने निमग्न हो जाते कि उन्हें गार्हस्थ्य जीवन रुचिकर मालूम नहीं पड़ता था। ऐसे विद्यार्थियों के सम्पूर्ण जीवन के लिये विद्याध्ययन का विधान बनाया गया था। देश के विभिन्न स्थानों में विशेष प्रकार की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया था। काशी में दर्शनशास्त्र, साहित्य तथा धर्म की विशेष शिक्षा दी जाती थी। वहाँ पर निःशुल्क शिक्षा के अतिरिक्त विद्यार्थियों को भोजन और वस्त्र भी दिया जाता था। तक्षशिला विश्वविद्यालय में संस्कृत व्याकरण की विशेष शिक्षा दी जाती थी। इसी विश्वविद्यालय ने पाणिनी और कौटिल्य जैसे विद्वानों को पैदा किया था। कण्व विश्वविद्यालय में वेदों की विशेष शिक्षा दी जाती थी। उज्जैन में ज्योतिष की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया था।

मध्ययुग की शिक्षा-प्रणाली

मुसलमानी जमाने में शिक्षा-प्रणाली हिन्दूकाल से कुछ भिन्न थी। शिक्षा के मुख्य दो प्रकार के केन्द्र थे। एक को मकतब और दूसरे को मदरसा कहते थे। हर मसजिद में एक मकतब होता था। लगभग दस वर्ष की आयु तक हर एक मुसलमान का बच्चा इसमें शिक्षा ग्रहण करता था। यह शिक्षा अधिकतर धार्मिक होती थी। कुरान की आयतें सबको कण्ठस्थ करा दी जाती थीं। इसके अतिरिक्त गणित, भूगोल और इतिहास का भी साधारण ज्ञान करा दिया जाता था। इन मकतबों का खर्च कुछ व्यक्तिगत चन्दे और दान से चलता था और कुछ सरकार देती थी। मुसलमानी जमाने में धर्म के नाते मसजिदों को सरकार की ओर से इमदाद दी जाती थी। इसी इमदाद से मकतब का खर्च चलाया जाता था। मकतब के अलावे जगह-जगह पर मदरसे खोले गये थे। इनमें उच्च शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता था। सरकार इन्हें इमदाद देती थी। बदायूँ, आगरा, जौनपुर, दिल्ली, मुलतान आदि शहरों में मदरसे खोले गये थे। इनमें केवल मुसलमान विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। हिन्दुओं को शिक्षा के लिये अलग संस्थायें कायम की गई थीं। सरकार की ओर से इमदाद नहीं दी जाती थी। सेठ-साहुकारों की इमदाद से इनका खर्च चलता था। पंडित लोग अपने घर पर विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। संस्कृत-शिक्षा की उन्नति के लिये सरकार की ओर से कोई उत्साह नहीं

दिया जाता था। केवल थोड़े से इने-गिने बादशाहों को छोड़ कर हिन्दुओं को शिक्षा का उचित प्रबन्ध किसी के जमाने में भी नहीं किया गया था।

मध्ययुग में मुगल बादशाह शिक्षा तथा कला-कौशल के विशेष प्रेमी थे। हुमायूँ बादशाह के पास बहुमूल्य पुस्तकों का भण्डार था। अकबर स्वयं विद्वानों की मण्डली में बैठकर विद्या की चर्चा करता था। औरंगजेब कवियों का सम्मान करता था। हुमायूँ की बहिन को लिखने का बड़ा शौक था। हुमायूँ नामा ग्रन्थ उसी का लिखा हुआ है। कला-कौशल में इन मुगल बादशाहों ने भारतीय इतिहास में जो स्थान प्राप्त किया है उसका मुकाबिला दुनिया की कोई भी बादशाहत नहीं कर सकती। जीवन के सभी क्षेत्रों में इन बादशाहों की अमर कीर्तियाँ देश के कोने-कोने में पाई जाती हैं। इन उदाहरणों से हमारा तात्पर्य केवल इतना ही नहीं कि भारतीय इतिहास का मध्यकाल यूरप के मध्ययुग की तरह अशान्ति और कुव्यवस्था का युग नहीं था। देश में शिक्षा का प्रचार था। फारसी और अरबी के अच्छे-अच्छे विद्वान् इस काल में मौजूद थे। समाज में विद्वानों का आदर था। विद्या के क्षेत्र में मुगल बादशाह जाति का पक्षपात कम करते थे। हिन्दी के धुरन्धर विद्वान् इसी काल में पैदा हुये। मुसलमान सूफियों ने हिन्दू और मुस्लिम सभ्यता को मिलाने का जो सराहनीय प्रयत्न किया उसका प्रभाव आज भी दिखाई पड़ता है। मुसलमान युग की शिक्षा हिन्दू काल से अलग होते हुए भी एकता और समानता की विरोधी न थी। दोनों के सम्पर्क से एक नई सभ्यता का जन्म हुआ। अरबी और फ़ारसी के गूढ़ रहस्य हिन्दुओं को और संस्कृत की गम्भीर बातें मुसलमानों को मालूम हुईं।

आधुनिक शिक्षा का विकास

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के बाद हिन्दोस्तान की राजनीतिक परिस्थिति डाँवाडोल होने लगी। इसका प्रभाव शिक्षा संस्थाओं पर बड़ा गहरा पड़ा। जब कम्पनी की हालत कुछ मजबूत हुई तो उसे शिक्षा की तरफ ध्यान देना पड़ा। कम्पनी की पहली आवश्यकता कर्मचारियों की थी। गोदाम और कारखानों में काम करने के लिये वह इङ्गलैंड से कर्मचारी नहीं बुला सकती थी। उसके पास इतना रुपया नहीं था कि वह छोटी-छोटी जगहों पर लम्बी-लम्बी तनखाहों वाले अँगरेजों को रखती। वारेन हेस्टिंग्ज का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। १७८१ ई० में उसने कलकत्ता-मदरसा नामक एक

स्कूल खोला। इसमें विद्यार्थियों को फारसी की शिक्षा दी जाती थी यह स्कूल केवल मुसलमानों के लिये था। १७६१ ई० में लार्ड कार्नवालिस ने बनारस में एक संस्कृत कालेज की स्थापना की। इसमें केवल हिन्दू विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती थी। इन शिक्षा-संस्थाओं से कम्पनी को दो प्रकार के लाभ पहुँचते थे। एक तो कम-से-कम वेतन पर हिन्दोस्तानी क्लर्क मिल जाते, दूसरे पश्चात्य निवासियों को पूर्वीय विचारों को समझने में आसानी होती। कम्पनी के अधिकारी इन्हीं शिक्षालयों द्वारा हिन्दोस्तान के रसम-रिवाजों की जानकारी हासिल करते थे। इनके निकले हुये विद्यार्थी कम्पनी के न्यायालयों में मुकदमा फैसल करने में उनकी मदद करते थे।

उपरोक्त संस्थाओं के अतिरिक्त ईसाई मिशनरी भी शिक्षा का प्रचार करते थे। उनका उद्देश्य हिन्दू और मुसलमान दोनों को ईसाई बनाना था। हिन्दू समाज में इन मिशनरियों के किसी हद तक सफलता प्राप्त हुई। पैसे तथा पद के लोभ के कारण कितने ही व्यक्ति ईसाई होने लगे। परन्तु मुसलमानों ने अपने को इनसे अलग रक्खा। १८१३ ई० में पार्लियामेंट ने कम्पनी को एक चार्टर में यह आदेश दिया कि वह हिन्दोस्तान की बेहतरी के लिये कम-से-कम एक लाख रुपया शिक्षा पर खर्च करे। अब तक जो शिक्षा कम्पनी की ओर से लोगों को दी जाती थी उसका माध्यम संस्कृत या फारसी था। परन्तु अब यह प्रश्न उठा की शिक्षा का माध्यम क्या हो। लार्ड मेकाले ने (१८३५ ई०) अपना विचार प्रकट करते हुये यह कहा कि शिक्षा का माध्यम अँगरेज़ी होना चाहिये। कुछ ईसाई मिशनरियों ने भी इसकी ताईद की। राजा राममोहनराय ने भी इसका समर्थन किया। अन्त में लार्ड विलियम वेन्टिग के समय में यह फैसला किया गया कि शिक्षा का माध्यम अँगरेजी होगा। इससे कम्पनी को शासन-प्रबन्ध में अनेक सुविधायें प्राप्त हुईं। साथ ही कम्पनी ने यह भी घोषित किया कि धार्मिक मामलों में उसकी नीति निष्पक्ष रहेगी।

१८१६ ई० में कलकत्ते में एक हिन्दू कालेज की स्थापना की गई। राजा राममोहनराय तथा डेविड हेयर के उद्योग से इसकी नींव डाली गई थी। १८१८ ई० में बंगाल में सिरामपुर नामक स्थान में पहिला मिशनरी कालेज खोला गया। १८५२ ई० में सर चार्ल्स उड की अध्यक्षता में पार्लियामेंट ने एक कमीटी इस बात के लिये नियुक्त की जो भारतीय शिक्षा की जाँच करे। कमीटी ने अपनी रिपोर्ट में प्रारम्भिक,

माध्यमिक और युनिवर्सिटी शिक्षा को अलग-अलग करने की सलाह दी। सर चार्ल्स उड का कहना था कि सरकार केवल अपने ही बनाये हुये कालेजों पर रुपया खर्च न करे। छोटे-छोटे स्कूलों तथा कालेजों को सहायता देने का भी नियम बनाया जाय। रिपोर्ट का यह परिणाम हुआ कि शिक्षा का एक अलग विभाग (Department of Public Instruction) बनाया गया। साथ ही अँगरेजी भाषा के मुकाबले में देशी भाषाओं को पढ़ने-पढ़ाने की सलाह दी गई। इसी के फलस्वरूप १८५७ ई० में कलकत्ता, मद्रास और बम्बई नामक स्थानों पर तीन विश्वविद्यालय खोले गये। १८७१ ई० में भारत-सरकार ने शिक्षा का प्रबन्ध प्रान्तीय सरकारों को दे दिया। परन्तु इसका खर्च केन्द्रीय सरकार से प्राप्त होता था। १८८२ ई० में हन्टर कमीशन की नियुक्ति की गई। इसने प्रारम्भिक शिक्षा की वृद्धि पर बहुत ही जोर दिया। लार्ड रिपन के समय में जब स्थानीय स्वराज की व्यवस्था बनाई गई तो प्रारम्भिक शिक्षा का भार म्युनिसिपल बोर्ड तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को सौंप दिया गया।

१९०२ ई० में लार्ड कर्जन के समय में यूनिवर्सिटी कमीशन नियुक्त किया गया। इसकी रिपोर्ट के आधार पर १९०४ ई० में यूनिवर्सिटी ऐक्ट पास किया गया। इससे सरकार का अधिकार यूनिवर्सिटियों के ऊपर और कड़ा कर दिया गया। साथ ही इनका क्षेत्र निश्चित करके स्कूल तथा कालेजों पर इन्हें पूरा अधिकार दे दिया गया। १९१० ई० में भारत-सरकार ने शिक्षा विभाग का मुहकमा बना कर इसका भार शिक्षा मेम्बर को सौंप दिया। तब से बराबर यह मेम्बर वाइसराय की कार्यकारिणी सभा का एक सदस्य होता है। इसका उद्देश्य प्रान्तीय सरकारों को शिक्षा में सलाह देना है। १९१७ ई० में भारत-सरकार ने कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमीशन की नियुक्ति की। इसकी रिपोर्ट में यूनिवर्सिटी शिक्षा को फिर से संगठित करने का अच्छा विवरण दिया गया है। १९१९ ई० में भारतीय राजनीतिक सुधार के अनुसार शिक्षा का विषय पूर्णतया प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिया गया। केन्द्रीय सरकार इसमें किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं कर सकती। प्रान्तों में भारतीय मंत्रियों को यह विषय सौंपकर उन्हें इस बात का अवसर दिया गया कि वे अपनी आवश्यकतानुसार शिक्षा संस्थाओं में सुधार करें। १९२७-२८ ई० में एक कमीशन की नियुक्ति की गई। सरफिलिप हरटाग इसके सभापति नियत किये

गये। इसका उद्देश्य भारतीय शिक्षा की जाँच करना था। कमीटी की रिपोर्ट में जो मार्के की बातें कही गई हैं उनसे हम काफी लाभ उठा सकते हैं।

१९३७ में जब प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना हुई तो कॉंग्रेस का ध्यान शिक्षा-सुधार की ओर आकर्षित हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा में अनेक सुधार किये गये। प्रौढ़ तथा रात्रि पाठशालायें खोली गईं। जगह-जगह पर पुस्तकालय तथा वाचनालय स्थापित किये गये। शिक्षा के प्रचार के लिये शिक्षा-सप्ताह मनाने को योजना बनाई गई। माध्यमिक शिक्षा सुधार करने पर अभी विचार किया जा रहा था कि कॉंग्रेस सरकारों को इस्तीफा दे देना पड़ा। फिर भी कितने ही प्रान्तों में हाई स्कूल तक की शिक्षा का माध्यम हिन्दी करार दिया गया। संयुक्तप्रान्त की सरकार ने तो एफ० ए० में भी शिक्षा का माध्यम हिन्दी घोषित कर दिया। विद्यार्थियों को यह सुविधा दी गई कि वे प्रश्नों का उत्तर हिन्दी या उर्दू में भी दे सकते हैं। यूनिवर्सिटी शिक्षा पर भी कॉंग्रेस का ध्यान गया था। संयुक्तप्रान्त में एक कमीटी इस पर विचार करने के लिये बनाई गई थी। इन सुधारों के अतिरिक्त कॉंग्रेस का ध्यान बुनियादी शिक्षा की ओर दिलाया गया था। तब से यह नई योजना कितने ही प्रान्तों में काम में लाई जा रही है। यदि इस योजना में सफलता मिली और उपरोक्त सुधारों को कार्य रूप में परिणत किया गया तो शिक्षा में एक महान् क्रान्ति की सम्भावना है।

अभी तक शिक्षा की प्रगति का वह इतिहास वर्णन किया गया है जिसका सम्बन्ध एकमात्र सरकार से है, परन्तु इसके अलावा हमारे देश में अनेक सार्वजनिक संस्थायें शिक्षा के प्रचार में लगी हैं। इनका प्रयत्न सरकार की योजनाओं से कम महत्व नहीं रखता। प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा उच्च श्रेणी की शिक्षा का प्रबन्ध करने में इन संस्थाओं ने सरकार को भी मात कर दिया है। कुछ तो साम्प्रदायिक भावनाओं के कारण और कुछ सेवा को लगन से आज कितनी ही शिक्षा-संस्थायें हरी-भरी दिखलाई पड़ रही है। हजारों लड़के और लड़कियाँ इनमें शिक्षा प्राप्त करती हैं। आर्य समाज ने शिक्षा को फैलाने में जो सफलता प्राप्त की है उसका मुकाबिला किसी देश की सरकार भी नहीं कर सकती। शायद ही कोई जिला या शहर बाकी हो जिसमें डी० ए० वी० स्कूल न हों। मुसलमानों के प्रयत्न से अलीगढ़ यूनिवर्सिटी की स्थापना हुई। ईसाई मिशनरियों के कितने ही स्कूल

आज चल रहे हैं। सिख और हिन्दुओं की कितनी ही शिक्षा-संस्थायें काम कर रही हैं। पण्डित मदनमोहन मालवीय के प्रयत्न से हिन्दू यूनिवर्सिटी की स्थापना हुई है। इनके अतिरिक्त संस्कृत की हजारों पाठशालायें और मुसलमानों के मकतब विद्यार्थियों को शिक्षा दे रहे हैं। अभी तक शिक्षा का जो विकास हमारे देश में हुआ है, उसका संक्षिप्त इतिहास यहीं समाप्त किया जाता है। वर्तमान शिक्षा किन-किन श्रेणियों में विभाजित की गई है और उसका प्रबन्ध किस प्रकार किया जाता है इसका वर्णन आगे किया गया है।

वर्तमान शिक्षा-संगठन

ऊपर कहा गया है कि १६१६ ई० में शिक्षा का पूरा प्रबन्ध प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिया गया। प्रान्तीय मन्त्रि-मंडल में शिक्षा मंत्री इसका प्रधान होता है। इसका विभाग शिक्षा-विभाग कहलाता है। यह मन्त्री अपने कार्यों के लिये प्रान्त की धारा-सभा के प्रति जिम्मेवारी होता है। शिक्षा मन्त्री के नीचे प्रान्त में एक डाइरेक्टर होता है जिसे 'डाइरेक्टर आव पब्लिक इन्स्ट्रक्शन' कहते हैं। इसका कार्य प्रान्त के शिक्षा-विभाग के कर्मचारियों की देख-रेख करना तथा शिक्षा-मन्त्री को उचित सलाहें देना है। प्रत्येक प्रान्त कुछ विभागों में बाँट दिया जाता है। हर विभाग का प्रधान रीजनल इन्सपेक्टर कहलाता है। इसकी सहायता के लिये असिस्टेन्ट इन्सपेक्टर तथा डिप्टी इन्सपेक्टर होते हैं। प्रत्येक जिले में एक डिस्ट्रिक्ट इन्सपेक्टर होता है। उसके नीचे सब डिप्टी-इन्सपेक्टर्स होते हैं। योरोपियन स्कूलों की देख-रेख तथा संस्कृत पाठशालाओं के निरीक्षण के लिये अलग इन्सपेक्टर होते हैं। जो संस्थायें किसी विशेष दस्तकारी अथवा कृषि आदि की शिक्षा देती हैं उसकी देख-रेख शिक्षा-विभाग से अलग उनसे सम्बन्ध रखने वाले विभागों द्वारा की जाती है। सरकार शिक्षा-संस्थाओं को कई प्रकार से सहायता देती है। कुछ को तो वह स्वयं चलाती है और कुछ को इमदाद देती है।

वर्तमान शिक्षा तीन श्रेणियों में विभाजित की गई है:—प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा यूनीवर्सिटी। अब तक माध्यमिक शिक्षा का तात्पर्य दो प्रकार की संस्थाओं से रहा है, हिन्दी और अँगरेजी। हिन्दी के मिडिल तक की शिक्षा को माध्यमिक शिक्षा कहते रहे हैं। अँगरेजी में हाई स्कूल तक की शिक्षा भी माध्यमिक शिक्षा कहलाती थी। राष्ट्रीय सरकार

ने इस तरह के भेदभाव को मिटा दिया है। कई प्रान्तों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी घोषित कर दिया गया है। हिन्दी एक अनिवार्य विषय है। हिन्दी और अँग्रेजी स्कूलों का अन्तर भी हटा दिया गया। सभी स्कूल प्रारम्भिक, जूनियर हाई स्कूल तथा हाइयर सेकेन्ड्री स्कूल कहलायेंगे। माध्यमिक शिक्षा में हिन्दी और अँगरेजी स्कूलों में जो पाठ्यक्रम में अन्तर रहा है, वह भी दूर कर दिया गया है। इन तीनों श्रेणियों का वर्णन अलग-अलग दिया जायेगा।

प्रारम्भिक शिक्षा

हमारे देश में प्राइमरी शिक्षा का प्राय: अभाव है। यदि जड़ ठीक कर दी जाय तो सरकार का बहुत-सा धन व्यर्थ न होगा। साथ ही प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के बाद लोग अपने अध्ययन से कुछ लाभ भी उठा सकेंगे। प्राइमरी शिक्षा का प्रबन्ध डिस्ट्रिक्ट तथा म्युनिसिपल बोर्ड करते हैं। कुछ तो अपनी आय से और कुछ प्रान्तीय सरकार की इमदाद से इनका खर्च चलता है। प्राइमरी शिक्षा कक्षा चार तक होती है। १६११ ई० में लेजिस्लेटिव कौंसिल में गोखले ने भाषण देते हुए कहा कि प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय। अनिवार्य शिक्षा विधान तभी सफल हो सकता है जब यह निःशुल्क करार दी जाय। पैसे की कमी के कारण सरकार ने इसे इन्कार कर दिया था। मद्रास प्रान्त में ६ और १० वर्ष की आयु तक कुछ विशेष जगहों में शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क की गई है। संयुक्तप्रान्त और बम्बई में भी इसका तजुर्बा किया जा रहा है। कहीं-कहीं पर यह नियम लड़के और लड़कियों के लिये एक सा बर्त्ता जाता है।

प्रारम्भिक शिक्षा का निरीक्षण प्रान्तीय सरकार के कर्मचारी करते हैं। प्रान्तीय शिक्षा-विभाग द्वारा कोर्स की किताबें आदि निश्चित की जाती हैं। कहा जाता है कि प्रारम्भिक शिक्षा की बहुत-सी रकम बेकार चली जाती है। हिसाब लगाने से पता चला है कि केवल १५ फीसदी लड़के प्राइमरी शिक्षा को समाप्त कर पाते हैं। अर्थात् ८५ प्रतिशत लड़कों पर जो रुपया खर्च किया जाता है यह बिलकुल बेकार चला जाता है। कारण यह है कि प्रारम्भिक शिक्षा से कम दरजे पास करने पर विद्यार्थी को कोई लाभ नहीं पहुँचता। यहाँ तक कि इसे समाप्त करने पर भी इतनी कुशलता नहीं आती कि विद्यार्थी अपने दैनिक जीवन में कुछ सफलता प्राप्त कर सकें। इस शिक्षा का आधार कोई-न-कोई व्यवसाय होना चाहिये। परन्तु अभी तक बच्चों को केवल किताबी

ज्ञान कराया जाता है। बुनियादी शिक्षा में इस बात पर जोर दिया गया है कि आरम्भ से बच्चों को हाथ के काम सिखाये जायँ। प्रारम्भिक शिक्षा में कृषि एक अनिवार्य विषय होना चाहिये। इस कक्षा तक उन्हीं अध्यापकों को नियुक्त करना चाहिये जो बाल-विज्ञान से कुछ परिचित हों। लेकिन आज-कल ऐसा देखा जाता है कि कम-से-कम पैसे देकर अयोग्य अध्यापक प्रारम्भिक स्कूलों में रक्खे जाते हैं। लोग यह भूल जाते हैं कि एक स्कूल खोलने के मानी एक जेल बन्द करना है। प्रारम्भिक शिक्षा लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या भारत में १ करोड़ के लगभग रही है। १९३४ ई० में प्रारम्भिक स्कूलों की कुल संख्या २ लाख से कुछ ऊपर थी।

माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा दो प्रकार की है। ४ से ७ तक जो हिन्दी की श्रेणियाँ हैं वे माध्यमिक शिक्षा के अन्तर्गत गिनी जाती हैं। इनका प्रबन्ध स्थानीय संस्थायें करती हैं। हाई स्कूल तक की शिक्षा को भी माध्यमिक शिक्षा कहते हैं। इनका प्रबन्ध विभिन्न प्रान्तों में अलग-अलग तरीके पर किया जाता है। कुछ प्रान्तों में ये स्कूल यूनिवर्सिटियों के अधिकार में रक्खे गये है। कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति तथा इनका कोर्स आदि सब कुछ ये ही बनाती हैं। कुछ प्रान्तों में इनका प्रबन्ध एक बोर्ड द्वारा किया जाता है। संयुक्तप्रान्त में हाई स्कूल तथा इन्टरमीजियट के लिये एक अलग बोर्ड की स्थापना की गई है। यूनिवर्सिटियों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। ये हाई स्कूल दो प्रकार के होते हैं। कुछ को गवर्नमेंट स्वयं चलाती है और बाकी जनता द्वारा चलाए जाते हैं। परन्तु इनकी मंजूरी प्रान्तीय सरकार के शिक्षा विभाग से लेनी पड़ती है। सरकार इन्हें कुछ इमदाद भी देती है। इन स्कूलों का निरीक्षण इन्सपेक्टर तथा असिस्टेन्ट इन्सपेक्टर द्वारा किया जाता है। कुछ हाई स्कूल उन्नति करते-करते इन्टरमीजियट कालेज भी हो सकते हैं। परन्तु इसकी मंजूरी बोर्ड से लेनी पड़ती है।

लगभग प्रत्येक जिले में गवर्नमेंट हाई स्कूल होता है। कहीं-कहीं पर इसे इन्टरमीजियट कालेज भी बना दिया गया है। युक्त प्रान्त में माध्यमिक शिक्षा का माध्यम हिन्दी है। इस शिक्षा के विषय में लोगों की अनेक रायें हैं। कुछ लोगों का कहना है कि माध्यमिक शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो विद्यार्थी के अन्दर सभी व्यावहारिक बातें बैठा दे। संसार के अन्य सभी देशों में इस श्रेणी तक के विद्यार्थी अपने आपको

पूर्ण समझते हैं। हमारे देश में हाई स्कूल पास लड़कों को साधारण व्यावहारिक बातों का भी ज्ञान नहीं कराया जाता। किताबी ज्ञान पर सबसे अधिक जोर दिया जाता है। जब तक शिक्षा का माध्यम अँगरेजी था इन स्कूलों से निकले हुये विद्यार्थी भारतीय वातावरण के सर्वथा अयोग्य होते थे। परन्तु इधर थोड़े दिनों से कुछ सुधार के कारण इसमें थोड़ी उन्नति दिखाई पड़ती है। फिर भी इसका स्वरूप सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। माध्यमिक शिक्षा प्रारम्भ करने वाले ७५ प्रतिशत विद्यार्थी इसी श्रेणी तक चल पाते हैं। इतनी बड़ी संख्या को देखते हुए यह नितान्त आवश्यक है कि माध्यमिक शिक्षा बहुत ही सुलझी हुई होनी चाहिए। इसके बाद ही देश के अधिकतर नवयुवक जीवन में प्रवेश करते हैं। सुधार की जितनी आवश्यकता यूनिवर्सिटी-शिक्षा में है उससे कहीं अधिक आवश्यकता माध्यमिक शिक्षा के सुधार की है।

यूनिवर्सिटी-शिक्षा

शिक्षा की सबसे ऊँची चोटी यूनिवर्सिटी कहलाती है। इस समय समूचे हिन्दोस्तान में कुल १८ यूनिवर्सिटियाँ हैं। इनमें दो देशी रियासतों में और एक बर्मा में है। बृटिश भारत में केवल १५ यूनिवर्सिटियाँ हैं। पाठकगण यह भी याद रक्खें कि समूचे जापान में जिसकी जनसंख्या बंगाल से कुछ ही अधिक है, ४६ यूनिवर्सिटियाँ हैं। केवल टोकियो शहर में १८ यूनिवर्सिटियाँ हैं। १८५७ ई० में पहले-पहल कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में ३ यूनिवर्सिटियाँ बनाई गई। इसके बाद १८८२ में पंजाब यूनिवर्सिटी, १८८७ में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, १९१६ में बनारस तथा मैसूर यूनिवर्सिटी, १९१७ में पटना यूनिवर्सिटी १९१८ में उस्मानिया यूनिवर्सिटी, १९२० में रंगून, अलीगढ़ और लखनऊ यूनिवर्सिटी, १९२१ में ढाका यूनिवर्सिटी, १९२२ में दिल्ली यूनिवर्सिटी, १९२३ में नागपुर यूनिवर्सिटी, १९२६ में आन्ध्र यूनिवर्सिटी १९२८ में आगरा यूनिवर्सिटी, और १९२९ में अनामली यूनिवर्सिटी की नींव पड़ी।

यूनिवर्सिटियाँ अपने प्रबन्ध के लिए सभी प्रकार से स्वतन्त्र हैं। प्रत्येक यूनिवर्सिटी का प्रधान चान्सलर कहलाता है यह। आमतौर से सूबे का गवर्नर होता है। इसके नीचे वाइसचान्सलर होता है। यह पदाधिकारी यूनिवर्सिटी की कार्यकारिणी द्वारा चुना जाता है। सारा प्रबन्ध सिनेट द्वारा किया जाता है। ये यूनिवर्सिटियाँ दो प्रकार की होती हैं। कुछ तो केवल परीक्षायें लेती हैं। उनमें पढ़ाई नहीं होती। बाकी

यूनीवर्सिटियाँ पढ़ाई का भी प्रबंध करती हैं। कुछ वर्षों से यूनिवर्सिटी-शिक्षा विलासिता की एक कुँजी समझी जाने लगी है। जिसके पास पैसे हैं वे अपना समय व्यतीत करने के लिये वर्षों उसमें पड़े रहते हैं। विद्यार्थी और अध्यापक पढ़ने-पढ़ाने पर उतना ध्यान नहीं देते जितना टाइ और बूट पर। ऊँची शिक्षा का उद्देश्य जहाँ सरलता और चरित्र संगठन ठहराया गया था वहीं आज विलासिता की सारी सामग्रियाँ इकट्ठी हो गई हैं। सारा वातावरण नौकरियों की चर्चा से ओत-प्रोत रहता है। सबकी इच्छा सरकारी विभाग में कोई-न-कोई पद प्राप्त करने की रहती है।

औद्योगिक शिक्षा

प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा यूनिवर्सिटी-शिक्षा के अतिरिक्त विद्यार्थियों को कुछ दस्तकारी आदि के काम सिखलाने के लिये भी स्कूल खोले गये हैं। कृषि को शिक्षा देने के लिये सभी प्रान्तों में स्कूल तथा कालेज स्थापित किये गये हैं। अन्धों, गूँगों और बहरों के लिये भी स्कूलों का प्रबन्ध किया गया है। बड़े-बड़े शहरों में संगीतालय खोले गये हैं। डाक्टरी, इञ्जीनियरिंग तथा जङ्गल विभाग की शिक्षा देने के लिये अलग स्कूल और कालेज खोले गये हैं। हवाई जहाज तथा मशीनों की विशेष जानकारी के लिये अभी हाल में प्रबन्ध किया गया है। हमारे देश में औद्योगिक शिक्षा की जितनी आवश्यकता है उनके सामने इन स्कूलों तथा कालेजों की संख्या कोई महत्व नहीं रखती। इन कालेजों से निकले हुए विद्यार्थी नौकरी के अतिरिक्त दस्त-कारी आदि के कामों से परहेज करते हैं।

विदेशों में भारतीय विद्यार्थी

कुछ भारतीय विद्यार्थी विदेशों में जाकर शिक्षा ग्रहण करते हैं। १९३०-३१ में उनकी संख्या २१०६ थी। परन्तु १९३२-३३ में वह घट कर १९०० के लगभग हो गई। शिक्षा ग्रहण करने के लिये विदेशों में जाना कोई बुरा नहीं है। परन्तु जिस उद्देश्य से भारतीय विद्यार्थी विदेशों में जाते हैं वह एक-मात्र नौकरी है। अधिकतर विद्यार्थी इङ्गलैण्ड में जाते हैं। कहा जाता है कि विदेशों में शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों में भारतीय विद्यार्थी सबसे अधिक पाये जाते हैं। इनका उद्देश्य यह होता है कि वे इङ्गलैण्ड से कोई सनद लेकर जल्दी-से-जल्दी अपने देश को लौटें और किसी सरकारी मुहकमें में नौकरी करें। १५०० से अधिक विद्यार्थी इङ्गलैण्ड में अध्ययन करते हैं। यदि प्रत्येक विद्यार्थी का खर्च २५०० रुपये साल रख लिया जाय तो ३८

लाख के लगभग रकम प्रति वर्ष इस पर खर्च की जाती है। हम यह न समझ बैठें कि अपने विषयों में विशेष अध्ययन करने के लिये ये विद्यार्थी विदेशों में जाने का कष्ट करते हैं। जिन विषयों का प्रबन्ध हमारे देश में हो सकती है उन्हें भी वे विदेश में जाकर सीखते हैं। यदि इनके साथ विदेशियों का व्यवहार अच्छा होता तो भी गनीमत थी परन्तु विदेशों की कितनी ही शिक्षा संस्थायें इन्हें प्रवेश तक की आशा नहीं देतीं। उनमें रूप, रंग तथा जाति का भेद-भाव किया जाता है। भारतीय विद्यार्थी जिन दर्जों को यहाँ से पास करके इंलैण्ड में जाते हैं उन्हीं में उनका प्रवेश किया जाता है। कुछ वर्षों से विदेशों में जाने की प्रथा कम हो चली है। यह भी हमारे देश का एक सौभाग्य है।

बुनियादी शिक्षा

अँग्रेजी शिक्षा की बेकारी को देखते हुये हमारे राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान शिक्षा-सुधार की ओर आकर्षित हुआ। लोगों को यह मालूम पड़ने लगा कि शिक्षित लोगों की संख्या आवश्यकता से अधिक हो गई है। परन्तु दूसरी ओर जब अशिक्षितों की संख्या पर ध्यान दिया गया तो पता चला कि ९० प्रतिशत आदमी अशिक्षित हैं। केवल २½ प्रतिशत आदमी अँग्रेजी पढ़ सकते हैं। यह बात लोगों को और खटकने लगी कि पढ़े-लिखे लोगों की संख्या दाल में नमक के बराबर होते हुये भी शिक्षित लोगों में इतनी बेकारी क्यों कर है। अन्त में यह बात निश्चित ठहराई गई कि जो शिक्षा हमारे देशवासियों को दी जा रही है उसकी हमें जरूरत नहीं है। वह हमें गुलाम और अकर्मण्य बनाती है। जाकिर हुसेन की अध्यक्षता में एक कमीटी इस पर विचार करने के लिये बनाई गई। इसकी रिपोर्ट में यह बात जाहिर की गई कि हमारी शिक्षा में उद्योग-धन्धों का कोई स्थान नहीं है। सिद्धान्त की बड़ी-बड़ी बातें पढ़कर लड़कों के दिमाग तो बढ़ जाते हैं, परन्तु उनके मस्तिष्क से क्रियात्मक शक्ति निकल जाती है। हाथ और पैर दोनों से वे बेकार हो जाते हैं। अतएव कमीटी ने बुनियादी शिक्षा को प्रारम्भ करने की सिफारिश की।

बुनियादी शिक्षा का तात्पर्य व्यावहारिक ज्ञान से है। हमें जितनी आवश्यकता अपने दिमाग को बढ़ाने की है उससे बढ़कर आवश्यकता अपनी रोटी और कपड़े की है वह शिक्षा बेकार है। जो हमारी साधारण आवश्यकता की भी पूर्ति नहीं कर सकती। बुनियादी शिक्षा में शरीर के सम्पूर्ण अवयवों की उन्नति पर जोर दिया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक विद्यार्थी को शरीर और दिमाग दोनों से काम लेना चाहिए।

जब हम ६ घन्टे अपने दिमाग से काम लेते हैं तो कम-से-कम ४ घन्टे हमें शारीरिक परिश्रम भी करना चाहिये। प्रत्येक विषय का ज्ञान किसी व्यवसाय द्वारा करना चाहिए। शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिए। बुनियादी शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी अपने पैर पर खड़ा हो सकता है। सारांश यह है कि उस ज्ञान से हमें कोई लाभ नहीं जिसे हम कार्य रूप में परिणत नहीं कर सकते। बुनियादी शिक्षा का तजुरबा किया जा रहा है। काँग्रेस सरकारों ने इसकी सफलता पर काफी जोर दिया था और आज भी यह योजना कार्यान्वित की जा रही है। भविष्य में इसे कहाँ तक सफलता प्राप्त होगी यह हम नहीं कह सकते।

स्त्री शिक्षा हमारे देश में स्त्री-शिक्षा का कभी भी अभाव नहीं रहा है। इतना जरूर है कि उनकी शिक्षा पुरुषों से भिन्न रही है। इधर कुछ वर्षों से स्त्रियाँ भी कालेजों और यूनिवर्सिटियों में जाने लगी हैं और उनकी संख्या काफी बढ़ रही है। बड़े-बड़े शहरों में महिला-विद्यापीठ, सेवा-सदन, शिल्प-भवन आदि खोले गये हैं। अखिल भारतीय महिला-शिक्षा-परिषद् स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में सराहनीय कार्य कर रही है। डिस्ट्रिक्ट और म्यूनिसिपल बोर्ड भी लड़कियों की शिक्षा पर जोर देने लगे हैं। आर्य समाज ने स्त्रियों की शिक्षा के लिये कन्या-गुरुकुल आदि स्थापित किया है। इतना प्रयत्न करने पर भी अभी तक स्त्रियाँ केवल दो प्रतिशत पढ़ी लिखी हैं। कुछ तो पर्दे के कारण और कुछ धनाभाव से शिक्षा प्राप्त नहीं कर पातीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्त्रियों की शिक्षा पुरुषों से कहीं आवश्यक है, परन्तु दोनों की शिक्षा में अन्तर होना चाहिये। दोनों की आवश्यकतायें अलग-अलग हैं। समाज के दोनों दो अंग है। एक का क्षेत्र लड़ाई का मैदान है और दूसरे का कुटुम्ब को सुखमय बनना। इसलिये दोनों को एक प्रकार की शिक्षा से समाज को हानि के बदले कोई लाभ नहीं हो सकता। अंगरेजी शिक्षा के प्रचार से हमारे घरों की नींव कमजोर होती जा रही है। यह सभी महसूस करते हैं। स्त्रियों की शिक्षा का सम्बन्ध गृह-प्रबन्ध और पुत्र-पालन से होना चाहिये। कोरा किताबी ज्ञान उन्हें पुरुषों से अधिक हानि पहुँचायेगा। पाश्चात्य सभ्यता की नकल से हमें काफी नुकसान उठाने पड़े हैं। शिक्षा हमारे जीवन का आधार है। इसके सभी पाये अपनी भौगोलिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं पर टिकने चाहिये। हमारी मौजूदा आवश्यकता उद्यमी और कार्यशील बनने की है। अंगरेजी शिक्षा हमें काहिल और

निष्क्रिय बनाती है। यदि समाज का एक अंग इसे पूरी तरह अपना ले तो हमारी संस्कृति लेशमात्र भी बाकी नहीं रह सकता। स्त्रियाँ इस गुर समझने की कोशिश करें।

शिक्षा में सुधार की आवश्यकता

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली केवल दिमागी है। शरीर को खोकर मस्तिष्क को बढ़ाया जाता है। इसमें पहिला सुधार यह होना चाहिये कि शारीरिक परिश्रम को स्थान दिया जाय। इससे कार्य का महत्व बढ़ेगा और बेकारी भी दूर होगी। उद्योग-धंधों से सम्बन्ध रखने वाले तरह-तरह के स्कूल और कालेज खोले जायँ। इनमें विद्यार्थियों को ऐसी व्यावहारिक शिक्षा दी जाय जिसके द्वारा वे अपनी रोजी आसानी से कमा सकें। ऊँची शिक्षा पर जो रकम खर्च की जा रही है उसे कम किया जाय। वह धन गाँवों में छोटे-मोटे कारोबार की वृद्धि में लगाया जाय। जितनी शिक्षा-संस्थायें आज शहरों में खुली हुई हैं उनसे रुपये और समय की हानि के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। शिक्षा-विभाग को चाहिये कि अधिकतर स्कूल गाँवों में खोले और कृषि उनमें एक अनिवार्य विषय हो। सरकार हाथ के कामों का मूल्य उतना ही समझे जितना दिमागी कामों का। हमारे समाज में यह कमी है कि एक हाई स्कूल पास क्लर्क १०० रुपये मासिक पाये और दिन भर दौड़ने वाले चपरासी को भर पेट भोजन भी न मिले। यदि शिक्षा में परिश्रम को स्थान दिया तो यह अन्तर नहीं रह सकता।

शिक्षा लोगों को आवश्यकतानुसार मिलनी चाहिये। वर्तमान परिस्थिति को देखते हुये 'शिक्षा ज्ञान के लिये' वाला सिद्धान्त नहीं चल सकता। शिक्षित वर्ग की भयंकर बेकारी इस बात का एलान कर रही है कि शिक्षा में एक महान् क्रान्ति की आवश्यकता है। प्रान्तीय सरकारों को जनता की आवश्यकतायें जाननी चाहिये और उनकी संतान को वही शिक्षा देनी चाहिये जो उन्हें मौजूदा संकट से निकाल सके। किसी भी विद्यार्थी को तब तक सनद न दी जाय जब तक उसे कम-से-कम एक दस्तकारी का पूरा ज्ञान न हो। सूत कातने से लेकर महल बनाने तक का काम उसे सिखाया जा सकता है। लेकिन ये तमाम सुधार एक से नहीं होने चाहिये। लड़के और लड़कियों की शिक्षा के पाठ्यक्रम अलग-अलग हों दोनों को दो प्रकार की शिक्षा दी जाय। प्रचलित विषयों का साधारण ज्ञान दोनों को कराया जाय, परन्तु, इनकी आवश्यकताओं और जिम्मेवारियों को देखते हुये इनके स्कूल एक दूसरे से अलग हों और उनमें भारतीय वातावरण की पुट हो।

अध्याय २०

सरकारी आय-व्यय

(INDIAN FINANCE)

सरकार की आर्थिक आवश्यकतायें

अपने कर्तव्यों की पूर्ति के लिये सरकार को प्रजा से धन वसूल करना पड़ता है। परन्तु ये सारे कर्तव्य प्रजा के ही प्रति होते हैं। जो सरकार अपनी प्रजा का धन व्यर्थ खर्च करती है, अथवा निष्प्रयोजन विदेशों में भेज देती है, वह अपने कर्तव्यों को पूरा नहीं करती। सार्वजनिक कामों को एक व्यक्ति नहीं कर सकता। सरकार की स्थापना इसीलिए की गई है कि वह व्यक्तिगत चिन्ता से ऊपर सम्पूर्ण समाज की भलाई सोचे। हर आदमी स्कूल और कालेज नहीं खोल सकता और न १०-२० आदमी रेल और तार का संगठन कर सकते हैं। दो-चार गाँव पूरे राष्ट्र की रक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकते। इस तरह के कामों को सरकार कर सकती है। उसकी शक्ति अनन्त है। यद्यपि यह शक्ति उसे जनता से ही मिली है, लेकिन वह इसे वापिस नहीं ले सकती। समाज में हम जिन-जिन चीजों से लाभ उठाते हैं उन पर करोड़ों रुपये खर्च किये गये हैं। इस धन का कुछ अंश हमारी जेब से भी लगा हुआ है। तभी अपना अधिकार समझ कर हम उन्हें अपनी चीज समझते हैं। अगर इन चीजों पर नजर डाली जाय तो पता चलेगा कि इन्हें बनाने तथा इनकी रक्षा के लिये जितने रुपये की जरूरत है उसका हम अनुमान भी नहीं कर सकते। पुलीस, अस्पताल, रेल, तार, डाक, सड़क, पुल, जहाज, रक्षा इत्यादि इत्यादि मदों में जो रुपये लगाये जा रहे हैं उनकी उपयोगियता हमारे लिये कम नहीं है। इन्हीं को सँभालने के लिये सरकार को धन की आवश्यकता पड़ती है। उसे तरह-तरह के टैक्स लगाने पड़ते हैं।

इस रकम को वसूल करने के लिये सरकार को कुछ नियमों की आवश्यकता पड़ती है। वह जिससे जितना रुपये चाहे वसूल नहीं कर सकती। प्रजा की हैसियत के अनुसार ही वह टैक्स ले सकती है। भोजन और वस्त्र के अतिरिक्त जो रकम प्रजा के पास बच जाती है उसका कुछ अंश सरकार लेती है। यह कर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरीकों से

लिया जाता है। सरकार को इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि गरीबों पर टैक्स का भार कम-से-कम पड़े। जो रकम प्रजा से वसूल की जाती उसके उचित खर्च का भी ध्यान रखना पड़ता है। यदि १० रुपये वसूल करने में १५ रुपये का खर्च पड़ता है तो सरकार इस तरह की बेवकूफी नहीं कर सकती। उसकी आवश्यकतायें प्रजा की इच्छानुसार बढ़ती हैं। जब धन की जरूरत अधिक होती है तो वह प्रजा की आमदनी को बढ़ाने का प्रयत्न करती है। इससे प्रजा की भलाई के साथ-साथ सरकार को भी टैक्स वसूल करने में आसानी पड़ती है। जिस राज्य में प्रजा की माली हालत अच्छी होती है वहाँ की सरकार भी धनी समझी जाती है। आवश्यकता पड़ने पर वह अधिक-से-अधिक धन इकट्ठा कर सकती है। जिस प्रकार माली बगीचे से फूलों को चुन लेता है और फिर पानी देकर उसे हरा-भरा रखता है, उसी तरह सरकार अपनी प्रजा को सुखी और सम्पन्न बनाकर उसकी आय का थोड़ा-सा अंश ले लेवे।

भारत सरकार और भारतीय प्रजा

हिन्दोस्तान की विकट गरीबी को देखते हुए यह बात समझ में नहीं आती कि किस प्रकार यहाँ की सरकार प्रजा का पेट काटकर टैक्स वसूल करती है। लाखों आदमियों को भर पेट भोजन तक मुयस्सर नहीं होता। सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक सर विलियम हंटर लिखता है, "चार करोड़ हिन्दोस्तानी अपर्याप्त भोजन पर अपने दिन काटते हैं।" सर चार्ल्स इलियट का अनुमान है कि "किसान वर्ग में से आधे किसानों की भूख वर्ष के आरम्भ से लेकर अन्त तक कभी भी पेट भर भोजन करके शान्त नहीं हुई।"* १८९१ की मनुष्य-गणना की रिपोर्ट में यह बात दर्ज है कि "यह निश्चित प्रतीत होता है कि करीब-करीब ७ करोड़ भारतवासी यह भी नहीं जानते कि दो बार भोजन किसे कहते हैं।" हिन्दोस्तान के करीब १० करोड़ आदमी १८ बिस्वे जमीन जोतकर अपना दिन काटते हैं। रैम्जे मेकडानल अपनी "हिन्दोस्तान की जागृति" नामक पुस्तक में लिखते हैं, "५ करोड़ कुटुम्ब (अर्थात् २५ करोड़ मनुष्य) साढ़े तीन आने की आय पर अपना गुजारा करते हैं।" इस तरह के उद्धरणों से हमारा इतिहास भरा पड़ा है। इतने पर भी सरकार इन गरीबों से टैक्स वसूल करने में कोई कसर बाकी नहीं रखती। टैक्स वसूल करना सरकार का फर्ज है, लेकिन जिसके पास खाने और शरीर ढकने तक का

---

*Industrial Decline in India—Balkrishna.

ठिकाना नहीं वह टैक्स कैसे दे सकता है। यदि भारत-सरकार अपनी जिम्मेवारी को महसूस करती और भारतीय प्रजा की लम्बी रकम वह विदेशों में न भेजती, तो इस भयंकर दरिद्रता का मुक़ाबिला न करना पड़ता।

बृटिश सरकार की टैक्स-सम्बन्धी नीति का इतिहास

१८५८ ई० तक बृटिश सरकार की नीति सभी क्षेत्रों में शक्ति-संचय की थी। आर्थिक मामलों में भी भारत-सरकार को सभी अधिकार दिये गये थे। प्रान्तीय सरकारों को किसी भी प्रकार का टैक्स लगाने अथवा उसे खर्च करने का अधिकार न था। वे केन्द्रीय सरकार की एजेन्ट मात्र थीं। उसकी आज्ञानुसार वे टैक्स वसूल करके उसे भेज देतीं और अपने खर्च के लिये केन्द्रीय सरकार की इमदाद पर निर्भर रहती थीं। जान स्ट्रेची लिखता है, "यदि प्रान्तीय सरकार को कोई सड़क बनवाने के लिये २० पौंड की भी जरूरत पड़ती····तो उसे केन्द्रीय सरकार से इसकी आज्ञा लेनी पड़ती थी।" *प्रान्तीय सरकारों को उनकी आवश्यकतानुसार प्रतिवर्ष केन्द्रीय सरकार एक बँधी हुई रकम देती थी। उसी में इन्हें अपना खर्च चलाना पड़ता था। यह रकम घटती-बढ़ती रहती थी और सभी दृष्टियों से अपर्याप्त थी। केन्द्रीय सरकार में जिसकी जितनी पहुँच थी वह उतनी रकम मंजूर करा लेती, बाकी प्रान्तीय सरकारों को सब्र करना पड़ता था। उन्हें टैक्स की वसूली में कोई दिलचस्पी न थी और न खर्च में ही मितव्ययी बनने का ध्यान था। जब इन दोनों से उन्हें कोई फायदा न था तो वे अनायास कष्ट क्यों करतीं। इस उदासीनता से प्रान्तीय प्रजा को सरासर नुकसान हुआ। सरकार पैसे की कमी के कारण उनकी भलाई की परवाह नहीं कर सकती थी।

१४ दिसम्बर सन् १८७० को लार्ड मेयो की सरकार द्वारा एक घोषणा-पत्र निकाला गया। इसके अनुसार खर्च के कुछ जरिये प्रान्तीय सरकारों को चन्द शर्तों के साथ सौंप दिये गये। आर्थिक विषयों में शक्ति वितरण का यह पहला कदम था। अब तक प्रान्तीय सरकारों को एक पाई भी खर्च करने का अधिकार न था। परन्तु लार्ड मेयो की कृपा से उन्हें यह अधिकार मिला कि पुलीस, शिक्षा, सड़कें, रजिष्ट्री,

* India : Its administration and progress (Third Edition) pp. 112—13

जेल, अस्पताल आदि के खर्च वे स्वयं करें। इनके खर्च के लिये केन्द्रीय सरकार रुपये देती थी, परन्तु यदि कमी महसूस होती तो स्थानीय करों से वे इसकी पूर्ति कर सकती थीं। १८७७ ई० में लार्ड लिटन के जमाने में शक्ति-वितरण का दूसरा कदम उठाया गया। केन्द्रीय सरकार की इमदाद के अतिरिक्त प्रान्तीय सरकारों को कुछ और भी विषय दे दिये गये। सरकारी आमदनी के कुछ जरिये ३ भागों में बाँट दिये गये :—

१—केन्द्रीय विषय

२—प्रान्तीय ”

३—सम्मिलित ”

इनका तात्पर्य यह था कि केन्द्रीय विषयों की आमदनी और उनका खर्च केन्द्रीय सरकार के हाथ में रक्खा गया, प्रांतीय विषयों की जिम्मेवारी प्रान्तीय सरकार को दी गई। इनके अतिरिक्त सम्मिलित विषयों की आमदनी दोनों सरकारों में विभाजित कर दी जाती थी। अफीम, नमक, तार और डाक देशी रियासतों से कर, तथा रेलवे इत्यादि—इनकी आमदनी केन्द्रीय सरकार के हाथों में रक्खी गई। शेष विभागों की आमदनी प्रान्तीय सरकार को दी गई। भूमिकर तथा इनकम टैक्स की आमदनी दोनों सरकारों में बाँट दी जाती थी। इन रुपयों को खर्च करने के लिये प्रान्तीय सरकारों को केन्द्रीय सरकार से कुछ सलाहें लेनी पड़ती थीं। उन्हें कर्ज लेने का अधिकार न था। और न वे कोई नया कर लगा सकती थीं। यह प्रबन्ध केवल पाँच वर्ष के लिये किया गया। हर पाँचवें वर्ष इसे फिर नया करना पड़ता था। १८८२ ई० में लार्ड रिपन के प्रबन्ध के अनुसार केन्द्रीय सरकार से प्रान्तीय सरकारों की इमदाद बन्द कर दी गई। उपरोक्त तीन प्रकार के विषयों का बटवारा फिर नये सिरे से किया गया। १९०४ ई० में लार्ड कर्जन ने इस प्रबन्ध को अर्धस्थायी करार दिया। हर पाँचवें साल इसे नया करने की जरूरत जाती रही। किसी असाधारण परिस्थिति के कारण इसमें तबदीली की जा सकती थी। केन्द्रीय सरकार की इमदाद को फिर से जारी किया गया। १९०८ ई० में इस पर विचार करने के लिये एक कमीशन निर्धारित किया गया, परन्तु उसने किसी प्रकार के परिवर्तन की सलाह न दी।

१९११ ई० में लार्ड हार्डिंज ने उपरोक्त प्रबन्ध को स्थायी करार दिया। अर्थात् १९१९ के शासन-सुधार तक सरकारी आमदनी और

खर्च तीन भागों में बँटे हुये थे। चुंगी, नमक, अफीम, रेलवे, तार और डाक, टकसाल और देशी रियासतों के कर—इनकी आमदनी केन्द्रीय सरकार लेती थी। राष्ट्रीय, पुलीस, शिक्षा, कानून और न्याय, अस्पताल तथा छोटी-छोटी सिंचाई के काम इत्यादि—इनका प्रबन्ध प्रान्तीय सरकारों को दिया गया था। इन मदों की आमदनी और खर्च प्रान्तीय सरकारें स्वयं करती थीं। भूमिकर, इनकम टैक्स, आबकारी-कर, इनकी आमदनी दोनों में बाँट दी जाती थी।

१९१९ का शासन-सुधार और सरकारी आय-व्यय

१९१९ के शासन-सुधार में सरकारी आय-व्यय में प्रबन्ध के अनेक परिवर्तन किये गये। एक जिम्मेवार शासन की स्थापना के लिये यह आवश्यक था कि हिन्दोस्तानियों को आर्थिक क्षेत्र में कुछ और अधिकार दिये जायँ। मान्टेग्यू चेम्सफोर्ट ने इस बात की सिफारिश की थी कि प्रान्तीय स्वराज की पहली शर्त आर्थिक जिम्मेवारी है। इसका तात्पर्य यह था कि केन्द्रीय सरकार प्रान्तों को टैक्स सम्बन्धी और भी जरिये दे दे और उन्हें खर्च करने की पूरी आजादी भी दे दी जाय। जब तक ऐसा नहीं किया जाता तब तक सार्वजनिक भलाई के कामों में वृद्धि नहीं की जा सकती थी स्थानीय संस्थायें पहले से ही इस बात के लिये बदनाम थीं कि वे अपने क्षेत्र में कोई नई योजना कार्यान्वित नहीं करतीं। राष्ट्रीय उत्थान के साथ-साथ लोगों की आवश्यकतायें और माँगे बढ़ रही थीं। इधर प्रान्तीय सरकारों के हाथ बँधे हुए थे। न तो उनके पास पैसे के साधन थे और न उन्हें कर्ज लेने का अधिकार था। वे सभी प्रकार से अकर्मण्य थीं और स्थानीय जनता की टीका-टिप्पणियों को चुपचाप सुनती रहती थीं। शासन-सुधार के समय इन बातों पर विचार किया गया। सम्मिलित आय के मद तोड़ दिये गये। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों को आमदनी के स्वतन्त्र जरिये अलग-अलग बाँट दिये गये प्रान्तीय सरकारों को इस बात का अवसर दिया गया कि वे अपने क्षेत्र में नये-नये कार्य करें और प्रजा की माँगों की पूर्ति करें।

मेस्टन अवार्ड

शासन को कार्यान्वित हुये अभी दो वर्ष भी व्यतीत न हुये थे कि केन्द्रीय सरकार की आर्थिक स्थिति डाँवाडोल होने लगी। १९२०-२३ के बजट में उसे ९८३ लाख रुपये की कमी महसूस हुई। इसे पूरा करने की चिन्ता सरकार को जरूरी थी। १९२० ई० में लार्ड मेस्टन की अध्यक्षता

में एक कमीटी जाँच के लिये बनाई गई। कमीटी ने जो फैसला किया, उसे मेस्टन अवार्ड (Meston Award) कहते हैं। इसके अनुसार यह निश्चित किया गया कि बिहार और उड़ीसा प्रान्त को छोड़कर शेष प्रान्तों से यह कमी पूरी की जाय। १६२१-२२ में निम्नलिखित रकम प्रान्तों से ली गई :—

प्रान्त			केन्द्रीय सरकार को दी गई रकम (लाख की संख्या में)
१—मद्रास	...	...	३४८
२—बम्बई	...	...	५६
३—बंगाल	...	...	६३
४—संयुक्तप्रान्त	...	...	२४०
५—पंजाब	...	...	१७५
६—ब्रह्मा	...	...	६४
७—मध्यप्रान्त और बरार	...	...	२२
८—आसाम	...	...	१५
			कुल जोड़ ६८३ लाख रुपया

बिहार और उड़ीसा को इसलिये छोड़ दिया गया था कि उसकी आर्थिक स्थिति स्वयं अच्छी न थी। इसीलिये अन्य प्रान्तों से ६८३ लाख की कमी पूरी की गई। पहली किश्त देने के बाद बंगाल प्रान्त की सरकार ने इस बात की मजबूरी जाहिर की कि वह एक पैसा भी देने की क्षमता नहीं रखती। अन्त में केन्द्रीय सरकार ने यह फैसला किया कि १६२२-२३ से बंगाल प्रान्त से ६ वर्ष तक कोई किश्त न ली जायेगी। मेस्टन कमीटी ने यह भी सिफारिश की थी कि केन्द्रीय सरकार आर्थिक मामले में जल्दी से जल्दी स्वतन्त्र हो जाय और प्रान्तों पर निर्भर न करे। प्रान्तीय धारा-सभाओं को नये टैक्स लगाने का अधिकार दे दिया गया। कुछ शर्तों के साथ उन्हें कर्ज लेने की भी इजाजत दे दी गई। केन्द्रीय सरकार का दबाव बहुत कुछ कम कर दिया गया। मेस्टन अवार्ड से कोई भी प्रान्त सन्तुष्ट न था। उसे केन्द्रीय सरकार को जो एक लम्बी रकम हर साल देनी पड़ती वह उनकी आर्थिक नींव को कमजोर कर देती थी।

मेस्टन अवार्ड से किसी को भी लाभ न हुआ। प्रान्तों में असन्तोष के साथ-साथ केन्द्रीय सरकार की भी माली हालत बिगड़ती गई। चारों ओर से इस बात की माँगें पेश की जाने लगी कि प्रान्तों की किश्त बन्द कर दी जाय। १६२६ ई० के लगभग केन्द्रीय सरकार के बजट में कुछ बचत हुई और अन्त में १६२७-२८ ई० में प्रान्तों की किश्त बिलकुल

बंद कर दी गई। नये टैक्स लगाकर केन्द्रीय सरकार ने अपनी कमी पूरी की। प्रांतों को भी किश्त बन्द हो जाने से कुछ राहत मिली। लेकिन जर्मनी की बड़ी लड़ाई का असर १९२८ के बाद मालूम पड़ने लगा। एक तरफ लोगों की आवश्यकतायें बढ़ती जा रही थीं और दूसरी ओर भारत सरकार कर्ज के सूद से दब रही थी। इसी समय संघ-शासन की योजना पर विचार आरम्भ किया गया।

संघ-शासन और आर्थिक संगठन

किसी भी संघ-शासन में आर्थिक बटवारा ठीक-ठीक नहीं हो सकता। कितनी ही सफाई के साथ इसका विभाजन किया जाय, कोई-न-कोई कमी रह जाती है। संसार का कोई भी संघ-शासन इसी कमी से वंचित नहीं है। कारण यह है कि इसके अन्दर दो स्वार्थों की पूर्ति करनी पड़ती है। एक तो संघ-सरकार को अपनी जिम्मेवारी निबाहने के लिये पैसे वसूल करने पड़ते हैं और दूसरी ओर स्थानीय सरकारें भी टैक्स लगाकर अपना खर्च चलाती हैं। दोनों का साधन एक ही जनता को बनना पड़ता है। यह संभव है कि आर्थिक बटवारे में दोनों में उलझन पैदा हो जाय। हो सकता है कि दोनों की आवश्यकतायें इस कदर बढ़ जायँ कि टैक्स की भरमार हो जाय और प्रजा दोनों के बीच में पिस जाय। संघ-शासन के अन्दर जितनी इकाइयाँ रहती हैं उनमें भी समानता बर्तनी पड़ती है। यदि एक से कम और दूसरे से अधिक कर वसूल किया जाय तो न्याय में फरक पड़ेगा। केन्द्रीय और स्थानीय सरकारों की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुये उनकी आय के जरिये इस प्रकार अलग करने पड़ते हैं कि किसी को अपने हक के लिये एतराज न हो। ज्वायंट पार्लियामेंटरी कमीटी ने भारतीय संघ-शासन में भी इन कठिनाइयों को महसूस किया था। अपनी रिपोर्ट में इसका जिक्र करते हुये उसने लिखा है कि, किसी भी संघ-शासन में आय-व्यय का बटवारा एक कठिन विषय है। कारण यह है कि दो सरकारें एक ही प्रजा से स्वतन्त्रता-पूर्वक टैक्स वसूल करती हैं।"*

---

* In any Federation the problem of the allocation of resources is necessarily one of difficulty, since two different authorities (Federal and Provincial) each with independent powers; are raising money from the same body of tax-payers.

१९३५ का संघ शासन-विधान और आर्थिक प्रबन्ध

संघ शासन-विधान में अनेक परिवर्तनों के कारण सरकारी आय-व्यय का नये सिरे से बटवारा किया गया। ब्रह्मा के अलग हो जाने से केन्द्रीय सरकार की आय में ३ करोड़ रुपये की हानि हुई थी। सिन्ध और बिहार दो नये प्रान्तों के बनने से केन्द्रीय सरकार को और भी हानि हुई है। बम्बई अहाते से सिन्ध को अलग कर देने से बम्बई को ९० लाख रुपये का घाटा उठाना पड़ा था। इसी प्रकार उड़ीसा के बनाने म मद्रास और बिहार प्रान्तों को क्रमशः २० लाख और ८ लाख रुपये प्रतिवर्ष का घाटा पड़ा था। केन्द्रीय सरकार को इन तमाम कमियों को पूरा करना पड़ा। संघ-शासन को कार्यान्वित करने के लिये १॥ करोड़ रुपये की जरूरत और पूरी करनी पड़ी। बम्बई और बंगाल प्रान्त इस बात की बार-बार माँग पेश कर रहे थे कि इनकम टैक्स की आमदनी में केन्द्रीय सरकार उन्हें कुछ हिस्सा दे। रियासतें पहले से ही चिल्ला रही थीं कि संघ-सरकार को यह अधिकार न दिया जाय कि वह उनके अन्दर कोई प्रत्यक्ष कर लगा सके। संघ के खर्च से वे सभी प्रकार से बचना चाहती थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके संघ-शासन में शरीक होने से केन्द्रीय सरकार को आर्थिक लाभ के बदले हानि होने की सम्भावना थी।

आर्थिक बटवारा

कुछ विषय ऐसे थे जिनकी सारी आमदनी केन्द्रीय सरकार अपने लिये खर्च करती। वह इन टैक्सों को घटा-बढ़ा भी सकती थी। चुङ्गी, कारपोरेशन टैक्स, इनकम टैक्स पर सर चार्ज आदि मद इस कोटि में रक्खे जा सकते हैं। कुछ विषय ऐसे थे जिनकी आमदनी वसूल करने का अधिकार संघ-सरकार को दिया गया था, परन्तु वह इसे प्रान्तों अथवा रियासतों में बाँट देतीं। स्टैम्प कर, चेक, सरखत, बीमा, रेल की चीजों अथवा यात्रियों पर कर इत्यादि मद इस कोटि में रक्खे गये थे। कुछ मदों की आमदनी संघ-सरकार वसूल करती और उसका कुछ हिस्सा वह प्रान्तों अथवा रियासतों को देती। इनकम टैक्स, जूट निर्यात कर, नमक कर, अफीम, आबकारी, निर्यात कर इत्यादि विषय इस कोटि में रक्खे गये थे। इनके अतिरिक्त संघ सरकार की आमदनी के कुछ और भी जरिये थे। रेल, तार और डाक, देशी रियासतों से कम, तथा टकसाल की

आमदनी संघ-सरकार की आय समझी जाती। केन्द्रीय सरकार इस आय को कुछ तो हिन्दोस्तान में और कुछ इंगलैंड में खर्च करती। जो सूबे अपने पैर पर खड़े नहीं हो सकते उन्हें वह कुछ वार्षिक सहायता देती जिसका व्यौरा निम्नलिखित है :—

१—पश्चिमोत्तर प्रदेश को १०० लाख रुपया सालाना।

२—उड़ीसा प्रान्त को ४७ लाख रुपया सालाना १६४२ तक, ४३ लाख रुपया सालाना १६४२ से १९४६ तक और, ४० लाख रुपया सालाना १६४६ के बाद।

३—आसाम को ३० लाख रुपया सालाना।

४—संयुक्त प्रान्त को २५ लाख रुपया सालाना १६४२ तक।

५—सिन्ध प्रान्त को ५० वर्ष तक संघ सरकार वार्षिक सहायता देती रहती :—*

१६३७-३८ में ११० लाख रुपया।

१६३६-१६४८ तक १०५ लाख रुपया सालाना।

१६४६-१६६६ तक ८० लाख रुपया सालाना।

१६७०-१९७५ तक ६५ लाख रुपया सालाना।

१६७६-१९८१ तक ६० लाख रुपया सालाना।

१९८२-१६८७ तक ५५ लाख रुपया सालाना।

प्रान्तीय सरकारों को आमदनी के स्वतन्त्र जरिये भी दिये गये हैं। केन्द्रीय सरकार जो इनकम टैक्स वसूल करती है उसका कुछ हिस्सा प्रान्तों को दिया जाता है। भूमिकर, खेतीकर, आबकारी, पेशाकर, जीवकर, तथा अन्य प्रकार के टैक्सों से जो आय होती है, वह प्रान्तीय सरकार की आय समझी जाती है। केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों सरकारों को किसी हद तक कर्ज लेने का अधिकार दिया गया है। प्रान्तीय स्वराज की स्थापना होने से प्रान्तों को कुछ नये-नये टैक्स लगाने का भी अधिकार दिया है। संयुक्त प्रान्त तथा मध्य प्रांत में काँग्रेस सरकारों ने कुछ नये टैक्स लगाये हैं। संघ-सरकार की आज्ञा के बिना प्रान्तीय सरकारों को विदेशों से कर्ज लेने का अधिकार नहीं था।

संघ-शासन विधाने में रियासतों और संघ-सरकार के आर्थिक

* संघ-शासन के पूरी तरह कार्यान्वित न होने के कारण इन बातों पर अमल नहीं किया गया।

कुछ पदाधिकारियों के वेतन आदि निश्चित करने का अधिकार उन्हीं को दिया गया था। संघ-सरकार की आमदनी और खर्च को जाँचने के लिये एक अफसर (Auditor General of India) बृटिश सम्राट् द्वारा नियुक्त किया जाता। इसका दर्जा वही रक्खा गया था जो फेडरल कोर्ट के जजों का है। ६०,००० रुपया सालाना वेतन दिया जाता। ५५ वर्ष की आयु तक यह अपने पद पर कार्य करता। इस तरह का एक पदाधिकारी प्रत्येक प्रान्त में नियुक्त किया जा सकता था। गवर्नर-जनरल तथा गवर्नर को, अपने-अपने क्षेत्र में हिसाब ठीक रखने के लिये, नियम बनाने का पूरा अधिकार दिया गया था। जिस प्रकार अन्य क्षेत्रों में इन दोनों पदाधिकारियों को विशेषाधिकार प्रदान किये गये थे उसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र में भी इनका बहुत बड़ा हाथ रक्खा गया था।

प्रजा के धन का अपव्यय

इस बात के अनेक प्रमाण मौजूद हैं कि हमारे देश में प्रजा का धन पानी की तरह बहाया जाता रहा है। दुनिया के मुकाबिले में हमारी दशा सबसे हीन और गई गुजरी है। यदि इस गरीबी का वर्णन किया जाय तो यह विषय हमारी प्रस्तुत पुस्तक से बाहर चला जायगा। थोड़े से आँकड़ों से यह बात भली भाँति समझ में आ सकती है कि दुनिया के मुकाबिले में हमारी आर्थिक स्थिति कैसी है।

देश	वार्षिक आय प्रति व्यक्ति
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	...१०८० रुपया
ग्रेट बृटेन	...७५० ,,
जर्मनी	...४५० ,,
जापान	...१२० ,,
हिन्दोस्तान	...६० ,,

इतनी भयंकर गरीबी में भी प्रजा का धन आँख मूँदकर खर्च किया जाता था। देश से प्रतिवर्ष ४० करोड़ रुपया "होम चार्जेज" के मद में इङ्गलैण्ड को जाता रहा है। वहाँ इस लम्बी रकम से हमारे देश-वासियों को रत्ती भर भी फायदा नहीं पहुँचता था। जहाँ तक घरेलू खर्च का सम्बन्ध है, इसका भी बटवारा उचित तरीके पर नहीं किया गया था हमारे देश में केवल ६ प्रतिशत लोग लिखना-पढ़ना जानते हैं। बृटेन में ६७ प्रतिशत; जापान में ६० प्रतिशत; जर्मनी में १०० प्रतिशत; डेनमार्क में १०० प्रतिशत व्यक्ति शिक्षित हैं। इसे देखते

हुये भारत-सरकार का यह पहला फर्ज होना चाहिये कि वह शिक्षा पर अधिक-से-अधिक रकम खर्च करे। परन्तु निम्नलिखित आँकड़ों से यह प्रकट है कि हमारी शिक्षा पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता था।

देश	शिक्षा पर प्रति व्यक्ति सालाना खर्च
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	५५ रुपया
ग्रेट बृटेन	२० ,,
फ्रांस	१० ,,
हिन्दोस्तान	केवल ९ आने पैसे

कृषि हमारे देश का मुख्य व्यवसाय है। ८० प्रतिशत व्यक्तियों की रोजी इसी पर निर्भर है। परन्तु सरकार अपनी आमदनी का केवल १॥ प्रतिशत इसकी बेहतरी पर खर्च करती रही है। अस्पताल और औषधालयों की संख्या को देखते हुये कोई भी दाँतों तले उँगली दबा सकता है। समूचे हिन्दोस्तान में कुल ७००० अस्पताल हैं। ५०,००० व्यक्तियों के लिये एक अस्पताल की व्यवस्था की गई है और १६० मील की दूरी में एक अस्पताल बनाया गया है। उद्योग-धन्धों के ऊपर सरकार केवल ½ प्रतिशत खर्च करती रही है। यही वजह है कि काम की कमी के कारण "१० करोड़ ७० लाख आदमियों को साल भर में कम-से-कम चार महीने बेकार रहना पड़ता है।" इसी प्रकार अन्य सार्वजनिक कामों पर सरकारी आय का कम-से-कम हिस्सा खर्च किया जाता रहा।

अब सवाल यह है कि जब सार्वजनिक कामों पर बहुत थोड़ी रकम खर्च की जाती रही है तो बाकी रुपया किन मदों में लगाया जाता था। पहली खटकने वाली बात तो सरकार उच्च पदाधिकारियों की लम्बी-लम्बी तनखाहें हैं। अगर दुनियाँ के और मुल्कों से इसकी तुलना की जाय तो हम देखेंगे कि प्रजा के धन का सरासर दुरुपयोग होता रहा है। हिन्दोस्तान ऐसे गरीब मुल्क में इतनी लम्बी-लम्बी तनखाहें देना कहाँ तक उचित था, पाठक इसे स्वयं समझ सकते हैं। गवर्नर-जनरल के बराबर तनखाह पाने वाला पदाधिकारी संसार में कोई दूसरा नहीं था। निम्नलिखित आँकड़ों से यह बात और भी स्पष्ट हो जायगी :—

पदाधिकारी		मासिक वेतन
जापान का प्रधान मन्त्री	...	६२१ रुपया
टर्की का सर्वप्रधान अफसर	...	३१८ रुपया
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का प्रेसीडेन्ट	...	१७००० रुपया
इंगलैण्ड का प्रधान मन्त्री	...	११००० रुपया
हिन्दोस्तान का वाइसराय	...	२१००० ” } भत्ता लेकर १८ लाख रुपया सालाना । }
जापान के अन्य मन्त्री	...	३५० ”
भारतीय प्रान्तों के मन्त्री	...	४००० ”
अमेरिका के प्रेसीडेन्ट की कैबिनेट के सदस्य		३५०० ”
हिन्दोस्तान के वाइसराय की कौंसिल के सदस्य	...	७००० ”

ऊपर के आँकड़ों से यह पता चलता है कि भारत-सरकार अपने कर्मचारियों को अधिक-से-अधिक वेतन देती रही है । सरकारी नौकरियों को आकर्षित बनाने के लिये यह सबसे अच्छा तरीका था, परन्तु इससे प्रजा को जो हानि पहुँची है वह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है। सरकारी आमदनी का ४० प्रतिशत रुपया केवल शासन-प्रबन्ध (Civil Administration) पर खर्च कर दिया जाता था। इसका अधिकतर हिस्सा अफसरों की तनखाहों और उसके भत्ते पर खर्च होता था । २५ प्रतिशत आमदनी फौज पर खर्च की जाती थी । यदि अँग्रेजी फौज के बदले हिन्दोस्तानी फौज हमारे देश में कर दी जाती तो ८ करोड़ रुपये सालाना की बचत हो सकती थी । एक अंगरेज सिपाही का खर्च हिन्दोस्तानी सिपाही से चार गुना अधिक पड़ता था । सरकारी आय का १० फीसदी पुलीस पर खर्च किया जाता था । यह है कि सारा रुपया रक्षा और हथियारों पर ही लगा दिया जाता था । सार्वजनिक कामों के लिये पैसे का सर्वदा अभाव रहता था । कहा जाता है कि भारत पर १२०० करोड़ रुपये का कर्ज रहा । प्रतिवर्ष इसकी सूद की लम्बी रकम देनी पड़ती थी । मालूम नहीं हमारे देश में कौन-सा बड़ा कार्य किया गया जिसके लिये इतने रुपये कर्ज लेने की जरूरत पड़ी । भारतीय राजनीतिज्ञों का कहना है कि बृटिश सरकार ने अपने स्वार्थ के लिये किये गये खर्चों को भी हमारे ऊपर लाद दिया था । अफगान, फारस, चीन, नैपाल तथा मिश्र आदि लड़ाइयों का खर्च हमीं को देना पड़ा था । गदर में ६० करोड़ रुपये का कर्ज हमारे देश पर

लादा गया था। जर्मनी की बड़ी लड़ाई में हिन्दोस्तान के ऊपर ४० अरब रुपये का और कर्ज लाद दिया गया। इस प्रकार प्रजा के धन का अपव्यय शायद ही किसी देश में दिखाई पड़ेगा। गत महायुद्ध में वह सब कर्ज अदा कर दिया गया और बृटेन को १५ अरब ४७ करोड़ रुपये का कर्जदार बना दिया गया। यह रुपया हमें किसी न किसी रूप में बृटेन से वसूल करना है।

भारत-सरकार के आर्थिक कर्त्तव्य

यदि भारत-सरकार प्रजा के धन का सदुपयोग करना चाहे तो वह निःसंकोच कर सकती है। हमारे देश की वर्तमान परिस्थिति को देखते हुये किसी भी बड़े से बड़े कर्मचारी को ५०० रुपये मासिक से अधिक वेतन नहीं मिलना चाहिये। काँग्रेस सरकारों ने इसका विधान तो बनाया, परन्तु वे अपने भत्तों को कम न कर सकीं। यदि सरकार इस नियम पर दृढ़ हो जाय तो उसे अपनी आमदनी को खर्च करने के लिये नये-नये जरिये तलाश करने होंगे। दूसरी विचारणीय बात नौकरियों का भारतीयकरण है। कोई वजह नहीं है कि हमारे देश के शिक्षित नवयुवक बेकार रहें और बाहरी लोग दूनी तनखाह पर रक्खे जायँ। यदि सभी विभागों में इस स्वदेशीपन का ध्यान रक्खा जाय तो बेकारी और गरीबी दोनों एक साथ हल की जा सकती हैं। रक्षा और शासन का खर्च इस कदर बढ़ा हुआ है कि भारत-सरकार इन खर्चों को भी घटा सकती है। शासन के बढ़ते हुये खर्च को रोकने के लिये युक्त प्रान्तीय सरकार ने एक "मितव्ययी" कमीटी का निर्माण किया है। वह इस बात पर विचार कर रही है कि सरकार की आय कैसे बढ़ाई जाय और खर्च कैसे कम किया जाय। प्रान्तीय सेक्रेटेरियट का खर्च बढ़कर ५ लाख से १० लाख रुपया हो गया है। इधर प्रान्तीय सरकार पुनर्निर्माण कार्य में २४ करोड़ रुपया लगाना चाहती है, जो ६ करोड़ की जनता के लिये कदापि अनुचित नहीं। १९४६ ई० में प्रान्तीय सरकार का खर्च ३५६५ लाख रुपये था, परन्तु आज १९४८ ई० में वह बढ़कर ५०५७ लाख रुपये हो गया है। राष्ट्रीय सरकार को इस बढ़ते हुये खर्च को शीघ्र ही रोकना चाहिये। रोजगार और उद्योग-धंधों में हम इतने पिछड़े हुये हैं कि हमें बार-बार अपने पिछले दिनों की याद आती रहती है। राष्ट्रीय सरकार इन कामों को फिर से जागृत करे और हमारे देशवासियों को वैज्ञानिक अनुसन्धानों से लाभ उठाने का अवसर दे।

—

अध्याय २१

पुलिस और जेल

(१) पुलिस

पुलीस की उपयोगिता

लोगों की यह धारणा गलत है कि पुलिस का काम जनता को डरवाना और परेशान करना है। गाँवों में मातायें अपने बच्चों को 'सिपाही' कह कर डरवाती हैं। 'लाल पगड़ी' देखकर अब भी अशिक्षित ग्रामीण भय खाते हैं। इधर पिछली शताब्दी में पुलीस का व्यवहार इतना बुरा था कि लोग इन्हें मनुष्य कोटि से बाहर गिनने लगे थे। घूसखोरी की बीमारी जितनी इस विभाग में चलती रही है उतनी सरकार के किसी भी मुहकमे में नहीं। आज भी, जब कि लोगों में राष्ट्रीय भावना काफी जागृत हो गई है, पुलीस निर्दोष और सेवक की दृष्टि से नहीं देखी जाती। जब किसी गाँव में थाने के दरोगा या कोई सिपाही पहुँच जाते हैं तो लोगों को यह शक हो जाता है कि देखें किसकी तलाशी होती है और कौन चोरों अथवा बदमाशों की सूची में शरीक कर लिया जाता है। पुलीस का किसी गाँव में जाना अशुभ समझा जाता है। पढ़े-लिखे लोगों की यह दलील है कि इस विभाग में देश के नवयुवक तो भर्ती किये जाते हैं, परन्तु वे इतने जाहिल और संकुचित विचार वाले होते हैं कि इनसे लाभ के बदले हानि होती है। अधिकतर व्यक्ति रुपये कमाने की गरज से इसमें भर्ती होते हैं। चूँकि इनका सम्पर्क सीधे जनता से होता है इसलिये वे अपने अधिकारों का बेजा फायदा उठाते हैं।

वास्तव में पुलीस का काम रक्षा करना है। सरकार लोगों के धन-जन की रक्षा इसी विभाग द्वारा करती है। राज्य में अच्छे और बुरे सभी प्रकार के लोग होते हैं। पुलीस का यह फर्ज़ है कि वह गुंडे-बदमाशों पर कड़ी नजर रक्खे। उसकी थोड़ी सी लापरवाही से अशान्ति बढ़ सकती है। यदि यह विभाग इतना तत्पर और सख्त न हो तो अच्छे और भलेमानुष लोग सुख की नींद नहीं सो सकते। चोरी, व्यभिचार, डाका, फौजदारी अथवा किसी भी प्रकार का गुनाह सबसे पहले पुलीस के सामने आता है। इसी की जाँच पर न्यायालयों में बहस और फैसले किये जाते हैं। यदि इस विभाग के कर्मचारी अपनी जिम्मेवारी को महसूस करें तो राज्य में दुष्ट मनुष्य की बेजा हरकतें जाती रहें। पुलीस

हमारे गाँवों और शहरों की रखवाली के लिये बनाई गई है। कम-से-कम वेतन लेकर ८ और १० घन्टे तक एक खास पोशाक में इन्हें अपने कर्तव्य का पालन करना पड़ता है। इनकी नियमबद्धता बड़ी ही सख्त होती है। छिपी-से-छिपी कार्रवाइयों को इन्हें पता लगाना पड़ता है। बड़ी-बड़ी गिरोहों का सामना करने के लिये इन्हें अपनी जान पर खेल जाना पड़ता है। राज्य के सभी व्यक्ति अपने प्रति किये गये अपराधों की रिपोर्ट पहले थानों में करते हैं। पुलीस इस बात की अधिक-से-अधिक कोशिश करती है कि उसके हल्के में किसी प्रकार के लड़ाई-झगड़े न हों कोई किसी को तकलीफ न पहुँचाये और सब लोग सरकारी नियमों का पालन करें। जब कभी हम अपने पड़ोसी द्वारा जेर किये जाते हैं तो पुलीस हमारी रक्षा करती है। यदि देश के पढ़े-लिखे लोग सेवा का थोड़ा भी भाव लेकर इस मुहकमे में शामिल हों तो उनसे दीन-दुखियों की अधिक सेवा हो सकती है।

अंगरेजी राज से पहले

अंगरेजों के नये प्रबन्ध के पहले मुसलमानी जमाने में पुलीस और जमींदार का काम एक में शामिल था अर्थात् जो जमींदार होते थे उन्हें अपनी सीमा के अन्दर धन-जन की रक्षा करनी पड़ती थी। छोटे और बड़े सभी प्रकार के जमींदारों को यह अधिकार दिया गया था कि वे अपने मातहत काश्तकारों की सभी प्रकार रक्षा करें। जब कहीं चोरी, डाका, अथवा किसी तरह की घटना होती तो जमींदार को इसका पता लगाना पड़ता था। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जमींदार स्वयं रखवाली करते थे। गाँवों में पंचायतों द्वारा सारा प्रबन्ध होता था। हर गाँव का एक चौकीदार होता था, जो रात में इसकी रखवाली करता था। गाँव के रहने वालों की चाल-चलन से यह वाकिफ रहता था। जब कभी कोई अजनबी आदमी आता तो उसे इसकी जाँच करनी पड़ती थी। गाँव के मुखिये के पास वह छोटी-छोटी बातों की खबर पहुँचाता रहता था। यदि इतनी चौकसी करने पर भी किसी का सामान चोरी चला जाता तो चौकीदार और मुखिया को इसका पता लगाना पड़ता था और चोरी वाले की हानि पूरी करनी पड़ती थी। गाँवों की देख-रेख के लिये उपरोक्त तरीके के अलावे कोई अलग थाने और चौकियाँ न थीं। शहरों की रखवाली के लिये कोतवाल रक्खे गये थे। हर शहर में एक कोतवाल होता था। उसकी सहायता के लिये चन्द पुलीस भी रक्खे गये थे। इन्हें सरकारी ख़जाने से वेतन मिलता था।

जिस प्रकार शासन की मशीन सीधी-सादी थी उसी तरह पुलीस का मुहकमा भी आजकल की तरह जटिल न था। अधिकतर झगड़े पंचायतों द्वारा फैसल किये जाते थे और लोगों को पुलीस से मदद लेने की कोई जरूरत ही न थी। छोटे-छोटे किसानों को अपनी कमाई का एक बहुत बड़ा हिस्सा मुकदमेबाजी में खर्च नहीं करना पड़ता था। लोगों के अन्दर सहन करने का भाव अधिक था। पंचायत, चौकीदार, जमींदार, कोतवाल इन्हीं को देश में पुलीस के सारे काम सुपुर्द किये गये थे। इससे सरकार का खर्च भी कम पड़ता था और सब की रक्षा भी होती थी।

भारतीय पुलीस का विकास

लार्ड कार्नवालिस पहला गवर्नर-जनरल था जिसने पुलीस विभाग की नींव डाली। इसने जमींदारों को रक्षा और रखवाली के भार से मुक्त कर दिया। लेकिन उनके साथ जो इस्तमरारी बन्दोबस्त किया गया उसमें इस विभाग का खर्च जोड़ दिया गया। हर जमींदार से मालगुजारी के साथ कुछ रकम वसूल कर पुलीस विभाग को दी जाती थी। कार्नवालिस ने १७९३ ई० में बंगाल प्रान्त के जिला-न्यायाधीशों को हुक्म दिया कि वे अपने-अपने जिले में हर ४०० मील की दूरी पर एक थाना बनावें। इससे जो अधिकार अब तक जमींदारों को मिले हुये थे वे सब जिले के कलेक्टर को दे दिये गये। प्रत्येक थाने में थानेदार और कुछ सिपाही रक्खे गये। मुखिया और चौकीदार भी अपना काम करते रहे, परन्तु धीरे-धीरे इनके अधिकार कम होने लगे। कहने के लिये तो आज भी ये दोनों कर्मचारी बने हुये हैं और जब कभी थानेदार को किसी गाँव में आना पड़ता है तो इन दोनों से उसे मदद मिलती है। लेकिन इनकी बातों का वह मूल्य नहीं रहा जो पहले था। विभिन्न प्रांतों में इसका संगठन एक ही साथ नहीं हुआ। मदरास में थामस मनरो ने १८१६ ई० में इसे संगठित किया। इसी प्रकार ज्यों-ज्यों कम्पनी का राज्य बढ़ता गया, यह विभाग नये सिरे से संगठित होता गया। १८०१ से १८६० ई० तक सभी प्रान्तों में यह मुहकमा अच्छी तरह संगठित कर दिया गया। १८५७ ई० के गदर ने अँगरेजों को चौकन्ना कर दिया। उन्हें फिर इस बात की आवश्यकता महसूस हुई कि इसका नये सिरे से संगठन किया जाय।

१८६० ई० के अगस्त के महीने में भारत-सरकार ने एक कमीशन नियुक्त किया। इसका काम सारे हिन्दोस्तान के पुलीस संगठन का अध्ययन करना था और इस पर अपनी राय जाहिर करनी थी। १८६१

ई० में इसकी रिपोर्ट तैयार हुई और उसी आधार पर एक ऐक्ट बनाया गया जो अभी तक काम में लाया जा रहा है। पुलीस विभाग में संगठन का जो सिद्धान्त निश्चित किया गया वह आज भी प्रचलित है। कमीशन की रिपोर्ट में सबसे बड़ी मार्के की बात यह थी कि पुलीस का मुहकमा प्रान्तीय बना दिया जाय। इसी के अनुसार प्रत्येक प्रान्त में एक इंसपेक्टर-जनरल नियुक्त किया गया। पुलीस विभाग का यह सबसे बड़ा अफसर था। इसके नीचे हर जिले में एक सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस और सहायक सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस होते थे। ये तीनों पद केवल अँगरेजों को दिये जाते थे। थाने पर एक थानेदार और एक सहायक थानेदार रक्खे गये। कुछ पुलीस के सिपाही भी रहते थे। १८०६ के कमीशन ने इस बात की सिफारिश की थी कि हर एक मील के घेरे में एक थाना बनाया जाय। अथवा एक हजार जनसंख्या के ऊपर एक थाना हो। सरकार ने इतने थानों की जरूरत न समझी और आज २५ या ५० मील तक के घेरे में इसकी संख्या एक रक्खी गई है।

१९०२ ई० में पुलीस विभाग के पुनर्सङ्गठन के लिये एक दूसरा कमीशन नियुक्त किया गया। इसकी रिपोर्ट में बहुत-सी नई बात की सलाहें दी गई थीं। इनमें से चन्द बातें निम्नलिखित थीं :—

१—खुफिया पुलीस की व्यवस्था की जाय।

२—हिन्दोस्तानी थानेदार बनाये जायँ।

३—हर जिले में सिपाहियों की भर्ती हो और उन्हें उचित ट्रेनिंग दी जाय।

रिपोर्ट की अधिकतर सलाहें मान ली गईं। लगभग सभी प्रान्तों ने इससे लाभ उठाया। वर्तमान पुलीस संगठन इसी के अनुसार काम कर रहा है।

पुलीस का मुहकमा अखिल भारतीय नहीं है। यह विभाग प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिया गया है। प्रांतों में पुलीस और जेल विभाग की देख-रेख के लिये एक मंत्री होता है। अपने कामों के लिये वह प्रांतीय धारा-सभा के प्रति जिम्मेवार है। शांति और रक्षा (Law and Order) विभाग के मन्त्री को इसकी जिम्मेवारी दी जाती है।

वर्तमान पुलीस संगठन

प्रांत का सबसे बड़ा पुलीस अफसर इंसपेक्टर-जनरल (I. G.) कहलाता है। इसी की मातहती में इस विभाग के कर्मचारी काम करते हैं। प्रत्येक प्रांत कई हिस्सों में बाँट दिया जाता है। हर एक हिस्सा रेंज

(Range) कहलाता है। रेंज का प्रधान डिप्टी इन्सपेक्टर-जनरल होता है। इन्सपेक्टर जनरल की मातहती में यह कार्य करता है।

एक रेंज में आमतौर से ८ या १० जिले होते हैं। जिले में पुलीस विभाग का प्रधान सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस (D. S. P.) कहलाता है। इसकी सहायता के लिये एक डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस रहता है। इन दोनों कर्मचारियों की जिम्मेवारी दोहरी होती है। एक ओर तो ये इन्सपेक्टर-जनरल और डिप्टी इन्सपेक्टर-जनरल के प्रति जिम्मेवार होते हैं और दूसरी ओर जिले के कलेक्टर की मातहती में काम करते हैं। सुपिरिन्टेन्डेन्ट पुलीस का यह कर्तव्य है कि वह जिले भर की शान्ति सम्बन्धी सूचना कलेक्टर को देता रहे। जहाँ कहीं कलेक्टर को आवश्यकता महसूस हो वह पुलीस की मदद ले सकता है। सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस उसकी आज्ञाओं को टाल नहीं सकता।

प्रत्येक जिला पाँच या सात हिस्सों में विभाजित किया गया है। इन्हें सरकिल कहते हैं। हर सरकिल का प्रधान इन्सपेक्टर कहलाता है। एक सर्किल में ८ या १० थाने होते हैं। थाने का प्रधान सब-इन्सपेक्टर कहलाता है। हर थाने पर एक मुंशी और मुहर्रिर होते हैं। इनका काम अपने हलके की रिपोर्ट लिखना और कागजों को रखना है। इनके अलावे वहाँ १० या १५ पुलीस के सिपाही रहते हैं। चौकीदारों को यह हिदायत रहती है कि वे अपने गाँवों की हफ्तावारी रिपोर्ट थाने में दर्ज करवाते रहें। लगभग १००वर्ग मील घेरे के लिये एक थाने की व्यवस्था की गई है। जिले पर कुछ सुरक्षित पुलीस भी रक्खी जाती है जिनकी संख्या २०० के आस-पास होती है। इनमें से कुछ सिपाही हर समय हथियार बन्द तैयार रक्खे जाते हैं। जब कहीं कोई आवश्यकता पड़ती है, और थाने की पुलीस काफी नहीं होती, तो यह वहाँ भेजी जाती है। हर जिले में सरकारी खजाना होता है। जिसकी रक्षा का भार इसी सुरक्षित फौज पर रहता है। पुलीस की भर्ती जिले पर सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस द्वारा की जाती है। १९३२ ई० में हिन्दोस्तान में पुलीस की कुल-संख्या २२६५१२ थी। इन पर १३ करोड़ रुपया खर्च पड़ा था।

शहरों में कोतवाल होते हैं। इनकी मातहती में कुछ पुलीस और दस-बीस छोटे-छोटे थाने होते हैं। कलकत्ता, बम्बई और मदरास शहर में पुलीस का प्रधान पुलीस कमिश्नर कहलाता है। यह इन्सपेक्टर-जनरल की मातहती में नहीं होता। इसका संबंध सीधे सरकार से होता है। रेलवे विभाग अपनी अलग पुलीस रखता है। इनका प्रबन्ध जिले की पुलीस से भिन्न होता है—

यद्यपि इन दोनों का सहयोग रहता है, परन्तु इनके अफसर अलग-अलग होते हैं। खुफिया पुलीस (C. I. D.) का मुहकमा इन दोनों से अलग होता है। लार्ड कर्जन के समय में १९०३ में इसकी व्यवस्था की गई थी। इसके कर्मचारी डिप्टी इन्सपेक्टर-जनरल की मातहती में काम करते हैं। इनका काम छिपी हुई बातों का पता लगाना और गुप्त संगठनों तथा अपराधों की सूचना देना है। सरकार इस विभाग में काफी विश्वास करती है, इसीलिये इसके कर्मचारी किसी भी व्यक्ति पर मुकदमे चला सकते हैं। सरकार को इनके द्वारा छोटी छोटी बातों की खबरें मालूम होती रहती हैं। बहुत से अपराध इतनी पोशीदगी से किये जाते हैं कि वर्षों अपराधी का पता नहीं चलता। फिर भी इस विभाग के कर्मचारी तरह-तरह की हिकमतों से इन्हें खोज निकालने में समर्थ होते हैं।

पुलीस की कुछ बेजा हरकतें

जनता की रक्षा और भलाई के लिये सरकार ने पुलीस का जाल-सा फैला रक्खा है। बीहड़ से बीहड़ जगहों में बसे हुये गाँव इससे बाहर नहीं रक्खे गये हैं। लेकिन पत्र-पत्रिकाओं* तथा कचहरियों में कुछ ऐसी बातें देखने में आती हैं जो मनुष्यत्व से बाहर होती हैं। कभी-कभी तो झूठे मुकदमे चलाकर लोगों को पुलीस परेशान करती है। शारीरिक यातनायें अभी तक लोगों को दी जाती हैं। हमारे देशवासियों की अशिक्षा और सादगी का बेजा फायदा इस विभाग के कर्मचारी भली भाँति उठाते हैं। जब कहीं कोई मामला हुआ तो उसकी जाँच आरम्भ होती है। पुलीस अपनी सफाई के लिये तथा अपनी जिम्मेवारी से बचने के लिये कितने ही बेगुनाह आदमियों को फँसा देती है। इसके सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं। मैं यह मानता हूँ कि उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और लोग आसानी से सच्ची बातों को खोल नहीं सकते, लेकिन इस स्वतन्त्रता और समानता के युग में सच्चे और भलेमानुष व्यक्तियों को अपराधी ठहराना सर्वथा अन्याय है। पुलीस के कर्मचारियों को इसे रोकना चाहिये। शिक्षा की वृद्धि से कालेजों और यूनिवर्सिटियों के उत्तीर्ण विद्यार्थी अब इस विभागों में जाने लगे हैं। आशा है वे इन कमजोरियों को काफी अंश तक दूर कर सकेंगे।

(२) जेल

जेलों का इतिहास कोई पुराना नहीं है। बृटिश काल में इसकी नींव

---

*स्वतन्त्रता के पश्चात् सरकारी कर्मचारियों का दृष्टिकोण बदल रहा है। पुलीस की बेजा हरकतें अब दूर हो रही हैं।

आज के १०० वर्ष पहले डाली गई थी। उससे

जेल का ऐतिहासिक विकास

पहले भी जेल थे, परन्तु उनका वर्णन करना हमारे विषय से बाहर की चीज है। इतना जरूर ध्यान रखना चाहिये कि ऐतिहासिक युग में कोई भी ऐसा राजनीतिक प्रबन्ध नही मिलता जिसमें जेल की व्यवस्था न की गई हो। अपराधियों के दंड की व्यवस्था भिन्न-भिन्न होते हुये भी जेलों का जिक्र हर समय मिलता है। १८३६ ई० में एक कमेटी जेल-सुधार के लिये बनाई गई। लार्ड मेकाले इसके एक सदस्य थे। १८६४ और १८८६ ई० में दो और कमेटियाँ नियुक्त की गई। १८६२ ई० में एक चौथी कमेटी फिर नियुक्त की गई। इन सबकी रिपोर्ट के आधार पर १८३४ ई० में एक जेल कानून (Prison Act) पास किया गया। इसी के अनुसार आजकल भारतीय जेलों का सगठन किया गया है। पुलीस की तरह यह विभाग भी प्रान्तीय सरकार की मातहती में रक्खा गया है।

वर्तमान संगठन

जेल ३ प्रकार के होते हैं:—

१—सेन्ट्रल जेल—इसमें लम्बी-लम्बी सजाओं के अपराधी रक्खे जाते हैं। एक साल से कम के अपराधी इसमें नहीं रक्खे जाते। इस प्रकार के जेलों की मौजूदा संख्या ५१ है।

२—डिस्ट्रिक्ट जेल—प्रत्येक जिले में एक जेल होता है। इनकी संख्या इस समय १८२ है। हर तरह के अपराधी इसमें रक्खे जाते हैं।

३—हवालात—इन जेलों में अधिकतर वे कैदी रक्खे जाते हैं। जिनका मुकदमा कचहरियों में चलता रहता है। जिन्हें १० या २० दिन की सजा होती है वे भी इनमें रक्खे जाते हैं। इनकी संख्या ६७० है।

इनके अलावा जब कभी कैदियों की संख्या बढ़ जाती है तो सरकार कैम्प जेल बना लेती है। प्रान्त में जेल विभाग का सबसे बड़ा अफसर इंसपेक्टर-जनरल कहलता है। यह आमतौर से इंडियन मेडिकल सर्विस का सदस्य होता है। सेन्ट्रल जेल सुपरिन्टेन्डेंट की देख-रेख में रहते हैं। इसके नीचे वार्डर आदि अनेक कर्मचारी होते हैं। डिस्ट्रिक्ट जेल का प्रधान सिविल सर्जन होता है। वह लगभग रोज इसका निरीक्षण करता है। जो कर्मचारी २४ घण्टे कैदियों की देख-रेख करते हैं उनमें जेलर सर्वप्रधान होता है। उसके नीचे सहायक जेलर, वार्डर तथा अन्य

छोटे-छोटे कर्मचारी होते हैं। स्त्रियाँ पुरुषों से अलग रक्खी जाती हैं। एक ही जेल में इनका बैरेक पुरुषों से अलग होता है। इसकी देख-रेख के लिये स्त्रियाँ वार्डर नियुक्त की जाती हैं। जिन कैदियों की लम्बी सजायें दी गई होती हैं उन्हें अकसर वार्डर वगैरह बना दिया जाता है और ३ या ४ रुपया मासिक वेतन भी दिया जाता है।

जेलों का सुधार

लोगों की यह आम शिकायत है कि भारतीय जेल दुनियाँ के और मुल्कों के जेलों से बुरे हैं। हमारे यहाँ कैदियों को पशु से भी बदतर समझा जाता है। जेल के कर्मचारी इन्हें सुधारने के बदले और बिगाड़ देते हैं। कैदी सुविधाओं की कमी के कारण चोरी, व्यभिचार तथा झूठ बोलने की आदत सीख जाते हैं। जेल का तात्पर्य यह नहीं है कि वहाँ कैदियों को जानवरों की तरह कुछ दिन तक बाँध रक्खा जाय और अवधि पूरी होने पर उन्हें छोड़ दिया जाय। हमारे देश में इसका यही तात्पर्य समझा जाता है। यही वजह है कि अधिकतर व्यक्ति बार-बार गुनाह करते हैं और जेल उनका घर हो जाता है। लेकिन सरकार का यह उद्देश्य कदापि नहीं है कि कुछ लोग इसे धर्मशाला या बैठक समझ लें। जेल केवल सुधार की दृष्टि से बनाये जाते हैं। कुछ लोग अपने कर्त्तव्यों का पालन करना नहीं जानते। वे अपने जीवन में कुछ ऐसी गलतियाँ करते रहते हैं जिनसे उन्हें और दूसरों को हानि होती है। इसी से बचने के लिये उन्हें जेल की सजा दी जाती है। सुधार के अतिरिक्त यहाँ पर एक प्रकार की चेतावनी भी दी जाती है। जेलों का जीवन बहुत ही नियमित होता है। हर काम ठीक समय पर किया जाता है। खाना, सोना, नित्य कर्म, काम करना इत्यादि इत्यादि कामों के लिये ठीक समय निर्धारित होते हैं। उद्योग-धंधों के तरह-तरह के कार्य वहाँ किये जाते हैं। कैदियों को इस बात का मौका दिया जाता है कि वे तरह-तरह के हुनर सीख कर जेलों बाहर निकलें और यदि चाहें तो उनसे अपनी जीविका कमा सकें। भारतीय जेलों को अभी इतनी सफलता प्राप्त नहीं है।

राष्ट्रीय-आन्दोलन की वृद्धि के कारण सरकार को विवश होकर जेलों के सुधार के ऊपर ध्यान देना पड़ा। जब राजनीतिक कैदी जेलों में गये और उन्हें वहाँ की सारी दिक्कतें उठानी पड़ीं तो उन्होंने सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। १९१९ ई० में एक जेल कमेटी भारत सरकार की ओर से बनाई गई। इसे यह कार्य सौंपा गया कि वह भारतीय जेलों का निरीक्षण करके इस बात की रिपोर्ट दे कि इनमें किस-किस प्रकार के

सुधार की आवश्यकता है। वास्तव में जेल-सुधार की यह पहली कमेटी थी। इसने बड़ी गहराई के साथ जेलों का अध्ययन किया और सरकार को इस बात की सलाह दी कि भारतीय जेलों की दशा बड़ी ही शोचनीय है। रिपोर्ट में कैदियों के सुधार के लिये कुछ नई नई योजनायें रक्खी गई थीं ' इनमें से एक सलाह यह भी थी कि फौजदारी और दीवानी दोनों प्रकार के कैदी अलग-अलग रक्खे जायँ। तनहाई और शारीरिक दण्ड देने की व्यवस्था को दूषित ठहराया गया था। कितने ही प्रान्तों ने इन सलाहों को स्वीकार किया और तदनुसार जेलों में अनेक सुधार किये गये। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भारतीय जेलों की समस्यायें हल हो गईं।

हमारे देश के जेल कैदियों का सुधार नहीं करते उनके अन्दर उन्हें ऐसी शिक्षायें नहीं दी जातीं जिनसे वे अपने जीवन को सुधार सकें। जिस बेरहमी के साथ आँखें बन्द करके उनके साथ व्यवहार किये जाते हैं उन्हें सामने रखते हुये जीवन को सुधारने की अभिलाषा उनके हृदय से जाती रही है। कर्मचारियों की धौंस इतनी कड़ी होती है कि उनसे कुछ सीखने की बात बिलकुल बेतुकी हो जाती है। छोटी-छोटी भूलों के लिये तनहाई और चक्की का दंड दिया जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि सरकार ने जेलों में कुछ व्यवसाय सिखलाने का प्रबन्ध किया है, परन्तु जेल से निकल कर लोगों के पास इतने पैसे नहीं होते कि वे उन्हें अपना पेशा बना सकें। अपराधी होने के नाते कैदियों को हम मनुष्य की कोटि से बाहर नहीं कर सकते। जिस प्रकार हमें मनोरंजन और विश्राम की आवश्यकता है उसी प्रकार कैदियों को भी वे मिलने चाहिये। इतनी सुविधायें तो दूर रहीं, गुड़ और मिर्चे के लिये भी भारतीय कैदी तरसत रहते हैं। जो तुला हुआ भोजन उन्हें दिया जाता है उसके अन्दर न तो कोई स्वाद है और न पौष्टिकता।

१६३७ ई० में जब काँग्रेस ने मंत्रिपद ग्रहण किया तो उसका ध्यान जेलों की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ। उनकी कठिनाइयों का उन्हें पूरा-पूरा अनुभव था। संयुक्त प्रांत को काँग्रेस सरकार ने एक ऐसी सोसाइटी (Discharged Prisoners Aid Society) प्रत्येक जिले में स्थापित की जो छूटे हुये कैदियों की हर तरह से मदद करे। सोसाइटी का प्रधान कयालय लखनऊ रक्खा गया। इसकी ओर से प्रतिमास पत्रिका जेल सुधारों पर निकाली जाती थी। कुछ विशेषज्ञों की एक कमेटी इस बात के लिये नियुक्त की गई जो कुछ ऐसे तरीके खोज निकाले जिनसे जेलों का जीवन एकदम

बदल दिया जाय। इसकी कुछ सलाहें तो तुरन्त मान ली गई, परन्तु बड़ी-बड़ी बातों के लिये एक पंचवर्षीय योजना बनाई गई। कमेटी ने इस बात पर जोर दिया कि कुछ ऐसे विशेष प्रकार के जेल खोले जायँ जिसमें बार-बार अपराध करने वालों का सुधार किया जाय। जेल के कर्मचारियों की ट्रेनिंग के लिये विशेष प्रबन्ध किया जाय। जेलों में पंचायतें कायम की जायें और अपढ़ सयानों को शिक्षा दी जाय। इस प्रकार की रायें इसी बुनियाद पर दी गईं कि जेल एक आध्यात्मिक संस्था होनी चाहिये और उसके चलाने वाले आध्यात्मिक पुरुष होने चाहिये। अमेरिका, इंगलैण्ड तथा अन्य देशों में जेलों का उपयोग इसी दृष्टि से किया जाता है। जेलों के सुधारने के लिये तथा कर्मचारियों को ट्रेनिंग देने के लिये संयुक्त प्रान्त की सरकार ने एक बहुत बड़ा कालेज स्थापित करने का विचार किया था। इसके लिये एक जगह चुन ली गई थी। रुपया भी मंजूर कर दिया गया और यहाँ तक कि उस कालेज के प्रिंसिपल की भी नियुक्ति हो गई थी। परन्तु इस बीच में सरकार को इस्तीफा दे देना पड़ा था। काँग्रेस-सरकार फिर इस पर विचार कर रही है।

बच्चों के लिये जेल की अलग व्यवस्था की गई है। मिर्जापुर जिले में बच्चों का एक जेल स्थापित किया गया है। नाबालिग व्यक्ति इन्हीं जेलों में रक्खे जाते हैं और उन्हें उचित शिक्षा दी जाती है। राजनैतिक कैदी साधारण कैदियों से अलग रक्खे जाते हैं। इन्हें अ, ब और स तीन श्रेणियों में रक्खा जाता है। पहिली दो श्रेणियों में जो सुविधायें इन्हें दी गई हैं वे काफी अच्छी हैं, परन्तु तीसरी श्रेणी के कैदियों को किसी भी प्रकार की सुविधा नहीं दी गई है। हमारे देश में कुछ लोगों को आजन्म अपराधी करार दिया गया है। यहाँ तक कि इनके लड़के बच्चे जन्म से ही अपराधी गिने जाते हैं। ये लोग एक विशेष प्रकार जेलों में रक्खे जाते हैं इन्हें अपराधी जाति (Criminal Tribes) कहते हैं। दिन में ये साधारण लोगों की तरह स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करते हैं। परन्तु रात में जेल के अन्दर इन्हें आ जाना पड़ता है। इन्हें सुधारने के लिये भारत सरकार प्रतिवर्ष एक लम्बी रकम खर्च करती है। अब तक यह कार्य ईसाई मिशनरियों के हाथ में रहा है। उन्होंने न तो इनका सुधार किया है और न कोई ऐसी योजना ही तैयार की जिनसे भविष्य में इसका सुधार हो सके। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने मिशनरियों से यह कार्य छीन कर हरिजन-सेवक-संघ को सुपुर्द कर दिया। देखें संघ कहाँ तक इस अपराधी वर्ग को सुधारने में समर्थ होता है।

सहायक ग्रन्थों की सूची

प्रस्तुत पुस्तक में निम्नलिखित ग्रन्थों से सहायता ली गई है। भारतीय शासन-पद्धति के विस्तृत अध्ययन के लिये ये ग्रन्थ पाठकों को विशेष रूप से सहायक होंगे।

Archbold ...Outlines of Indian Constitutional History.

Anderson, G...Development of Indian Polity.

Anderson, C...Indian Administration.

Arora, F. C...The New Constitution of India.

Bose, S. M. ...The Working Constitution in India.

Benerji, P. ...Public Administration in Ancient India.

Benerji, D.N...The Indian Constitution.

Beni Prasad...The Problem of Indian Constitution.

Bhattacharya, K. K...Indian Constitution.

Baden Powell, B.A...Land Systems of British India, 3 Vols.

Chintamani, C. Y...Indian Politics since the Mutiny.

Chudgar ...Indian Provinces Under British Protection.

Campbell, G. ...Indian as it may be.

Cotton, H. ...New India.

Cumming ...Political India.

Cross, C.M.P...The Development of Self-Government in India.

Curtis, L. ...Dyarchy.

Chesney, G. ...Indian Polity.

Draft Constitution of India.

Dutt, R. C. ...Economic History of India.
Digby, W. ...Prosperous India.
Gwynn ...The Indian Politics.
Gangulee, N....The Making of Federal India.
Horre, F. A. ...The Political System of British India.
Hardinge ...A Study in Indian Politics.
Haksar and Panikkar...Federal India.
Ilbert ...The New Constitution of India.
Indian Year Book 1948-49.
Independence Act of 1947
Joshi, G. N. ...Indian Administration.
„ „ „ ...The New Constitution of India.
Jathar and Beri...Indian Economics.
Keral Putra ...The Working of Dyarchy in India.
Kale ...Indian Administration.
Khan, S. A. ...Indian Federation.
Krishnamurti, Y. G. ...Indian States and Federal Plan.
Kunzru, H. N...Public Service in India.
Kaya ...Administration of the East India Company.
Lahiri and Benerjee...The New Constitution of India.
Lathe ...The Problem of Indian States.
Lajpat Rai ...The Political Future of India.
Madras Epigraphy Annual Reports.
Martineau, H...Suggestions towards the future Government of India.
Mazumdar, A.C...Indian National Evolution.
Malley, O. ...The Indian Civil Service.
Macdonald, R...The Government of India

Munro ...Governments of Europe.
Palande, M.R...Indian Administration.
Prasad, R. S. ...India Social and Political.
Phillips ...Our Administration of India.
Paranjpey ...The Crux of Indian Problem.
Panikkar, K.M...Working of Dyarchy in India
Pole, D. G. ...India in Transition.
Prichard, J.T...Administration of India, 2 Vols.
Proceedings of the U. P. Legislature 1947-48.
Ram and Sharma...Indian Civics and Administration.
Ram Murti ...Problem of Indian Polity.
Reports on the AomeAdministration of Indian Affairs Government of India Act, 1919. 1935.
Roy ..The Spirit of Indian Civilisation.
Sastri, R.S. ...Evolution of Indian Polity.
Sapre ...The Growth of Indian Constitutional Administration.
Shah, K. T. ...Provincial Autonomy.
" " " ...Federal Structure.
" " " ...Federal Finance.
Singh, G.N. ...Indian States.
Sarkar, J.N. ...Economics of British India.
Share ...Notes on Indian affairs, 2 Vols.
Srivastava ...Indian Constitutional Development.
Sobei Mogi ...The Federal India. 2 Vols.
Sastri, S. ...Self-Government for India under the British Flag.
Sastri, K.R.R...Indian States and Responsible Government.

Stark, H.A. ...India under Company and Crown.

Shelvankar, K.S. ...The Problem of India.

Strachay, J. ...India, its Administration and Progress.

Venkatarangaye, M...Federalism in Government.

Whyte, F. ... India a Federation.

Wheeler, J.T...India Under British Rule.

White Paper on India States 1949

कन्हैयालाल वर्मा ...भारतीय राजनीति और शासन पद्धति

वालूभाई मेहता ...खादी मीमांसा

पट्टाभिसीतारामैया ...काँग्रेस का इतिहास

भगवानदास केला ...भारतीय शासन, भारतीय राजस्व

हितोपदेश, मानवधर्मशास्त्र

U. P. INTERMEDIATE EXAMINATION

CIVICS

SECOND PAPER

(Indian Civics)

Time—Three hours

Attempt **five** *questions. All questions are of equal value*

1945

Section A

1. What were the salient features of Provincial Government according to the Government of India Act of 1919, and how far have the changes introduced by the Act of 1935 improve it in terms of provincial autonomy and popular control?

2. State the constitution, functions, and powers of the existing Central Legislative Assembly.

3. In what way does the Secretary of State for India exercise his powers of direction and superintendence over the Government of India?

4. Clearly distinguish between a Federal and a Unitary Constitution. Which will suit India? Give clear and full reasons to support your views.

5. Describe carefully the main features of the Constitution of the Government of India under the Act of 1935.

Section B

6. Mention the aims, methods and pro-

gramme of the chief political parties in India during the last ten years.

7. Describe the demands made by the depressed classes and women in India, and show how far they are justified.

8. What is meant by the terms 'paramountcy' and 'suzerainty' ? State the nature of the tie between Indian States and the Crown.

9. What advantages and disadvantages have, in your opinion, resulted from the institution of District Boards as they are at present in the United Provinces ? What are the source of their income ?

10. Write short notes on any four of the following :—

(*a*) Bicameral Legislatures. (*b*) Wardha Scheme and Basic Education in the U. P. (*c*) League of Nations and its success. (*d*) Post-war Reconstruction. (*e*) Industrialization of India. (*f*) Prohibition.

1946

1. Discuss the position and functions of the Secretary of State for India. Is the retention of India Office desireable ?

2. When and why was the Federal Court established ? Give an account of its composition, and powers and functions.

3. Give an account of the powers and functions of the Governor-General, his advisers and Ministers as planned by the Act of 1935.

4. What is the procedure laid down for

the appointment of Provincial Ministers? Discuss their constitutional relations with (a) the Governor of the Province, and (b) the Provincial Legislatures.

5. Comment on the statement that the District Officers are the real rulers of India.

6. What are the chief defects which you observe in the working of local bodies in the United Provinces? What measures would you suggest for remedying these defects?

7. How far and by what means does the 'Crown Representative' (Viceroy) influence and control the policy of Indian States?

8. What are the main causes of the poverty of the Indian peasant? What measures would you suggest to improve his lot?

9. What are the aims of the Congress Movement? By what methods does it seek to achieve these aims?

10. Discuss the causes which prevent the growth of national unity in India. Do you regard the achievement of such unity as impossible?

11. Write short notes on *any three* of the following :—

(*a*) The High Commissioner for India.
(*b*) The Wavell Plan.
(*c*) *Pakistan.*
(*d*) Instrument of Accession.
(*e*) The Village *Patwari.*
(*f*) Compulsory and Primary Education.

1947

Section A

1. Explain the nature and extent of the control exercised by the British Parliament over India affairs,

2. What do you consider to be the peculiar features of the Indian Federation which was to be brought into existence by the Act of 1935 ?

3. How did the Act of 1935 propose to constitute the Federal Legislature ? What were the limitations imposed by the Act on its legislative and financial powers ?

4. Give an account of the composition and functions of the legislature in the United Provinces. How are differences between the two chambers settled ?

5. What are the provisions mentioned in the Act of 1935 for the accession of Indian States to the Federation ? What will be their gain and loss in joining the Federation ?

Section B

6. What safeguards have been provided in the Act of 1935 for the protection of minorities in India ?

7. Give a short account of the duties performed by the principal officers of a District in the United Provinces.

8. Explain the main features of the educational system in the U. P. What improvements would you suggest to make it more useful to the people ?

9. What are the main points of agreement and conflict between the Indian National Congress and the Muslim League ? Can you suggest any solution of their differences ?

10. What measures would you suggest for promoting the economic prosperity of the country ?

1948

1. What are the essential features of a Federal Constitution ? How far are they found in the Government of India Act, 1935 ?

2. Discuss the nature and extent of the control exercised by the Secretary of State for India over (*a*) the Government of India and (*b*) the Provincial Governments.

3. Describe the structure and powers of the Federal Legislature as contemplated by the Act of 1935.

4. What do you understand by Responsible Government ? How is the working of responsible government in the provinces affected by the special powers and responsibilities of the Governors under the Act of 1935 ?

5. What do you understand by the All-India Services ? How was recruitment made thereto, and what special privileges and protection did they enjoy under the Act of 1935 ?

6. Give a brief account of the administration of justice in the U. P. What reforms would you suggest to make it more efficient ?

7. What measures would you suggest to make life happier in the villages ?

8. What measures have been adopted in recent years for the betterment of Harijans ? What further measures would you suggest to improve their condition ?

9. Discuss the arguments for and against the proposal to make Hindi the national language, and indicate your own view.

10. How should village panchayats be constituted ? What functions would you assign to them ?

11. Write short notes on *any three* of the following :—

(*a*) The Reserve Bank of India.

(*b*) The Communal Award and Poona Pact

(*c*) Dominion Status.

(*d*) Concurrent Legislative List.

(*e*) The Women's Movement in India.

(*f*) Crown Representative.

1949

1· What changes have been introduced in the sphere of 'Home Government' by the Government of India Act, 1935 ?

2. Describe the main features of the Constitution of *either* the Central or the Provincial Government under the Act of 1935.

3. Why is the India Legislature called a 'non-Sovereign law-making body' ? What are the chief limitations of its legislative and financial powers ?

4. Explain the composition, powers, and functions of the High Court of Judicature in the United Provinces.

5. Describe shortly the working of any Village Panchayat in your province. What improvements would you suggest to make the Panchayats effective instruments of Local Self-Government ?

6. What are the main causes of the poverty of the Indian peasant ? What would you do to improve his lot ?

7. How far have modern religious movements in India promoted or hampered the growth of Indian nationalism ?

8. State the demands made by Labour in your province. What would you do to secure to Labour its legitimate rights ?

9. What place would you give to physical and moral education in the educational reconstruction of your province ?

10. Write short notes on *any three* of the following :—

(*a*) Governor's Acts.
(*b*) Pakistan.
(*c*) Problem of adult education.
(*d*) Linguistic provinces.
(*e*) A national language for India.
(*f*) The Village Patwari.
(*g*) The United Nations Organization.